UNIVERSAL LIBRARY
OU_182185
UNIVERSAL LIBRARY

तुलसी-ग्रंथावली

दूसरा खंड

नागरीप्रचारिणी सभा
काशी

ग्रंथ-सूची

			पृष्ठांक
१	रामलला-नहछू	...	१–६
२	वैराग्य-संदीपनी	...	७–१४
३	बरवै रामायण		५–२२
४	पार्वती-मंगल	...	२३–३६
५	जानकी-मंगल	...	३७–५४
६	रामाज्ञा-प्रश्न	...	५५–८४
७	दोहावली	...	८५–१२८
८	कवितावली	...	१२९–२१८
९	गीतावली	...	२१९–३५७
१०	श्रीकृष्ण-गीतावली	...	३५९–३७८
११	विनय-पत्रिका	...	३७९–४९६

रामलला-नहछू

ग्रंथ-सूची

			पृष्ठांक
१	रामलला-नहछू	...	१–६
२	वैराग्य-संदीपनी	...	७–१४
३	बरवै रामायण	...	१५–२२
४	पार्वती-मंगल	...	२३–३६
५	जानकी-मंगल	...	३७–५४
६	रामाज्ञा-प्रश्न	...	५५–८४
७	दोहावली	...	८५–१२८
८	कवितावली	...	१२९–२१८
९	गीतावली	...	२१९–३५७
१०	श्रीकृष्ण-गीतावली	...	३५९–३७८
११	विनय-पत्रिका	...	३७९–४९६

रामलला-नहछू

रामलला-नहछू

सोहर छंद

आदि सारदा गनपति गौरि मनाइय हो।
रामलला कर नहछू गाइ सुनाइय हो॥
जेहि गाये सिधि होय परम निधि पाइय हो।
कोटि जनम कर पातक दूरि सो जाइय हो॥ १॥
कोटिन्ह बाजन बाजहिं दसरथ के गृह हो।
देवलोक सब देखहिं आनँद अति हिय हो॥
नगर सोहावन लागत बरनि न जातै हो।
कौसल्या के हरष न हृदय समातै हो॥ २॥
आलहि बाँस के माँड़व मनिगन पूरन हो।
मोतिन्ह झालरि लागि चहूँ दिसि झूलन हो॥
गंगाजल कर कलस तो तुरित मँगाइय हो।
जुवतिन्ह मंगल गाइ राम अन्हवाइय हो॥ ३॥
गजमुकुता हीरामनि चौक पुराइय हो।
देइ सुअरघ राम कहँ लेइ बैठाइय हो॥
कनकखंभ चहुँ ओर मध्य सिंहासन हो।
मानिकदीप बराय बैठि तेहि आसन हो॥ ४॥
बनि बनि आवति नारि जानि गृह मायन हो।
बिहँसत आउ लोहारिनि हाथ बरायन हो॥
अहिरिनि हाथ दहेंड़ि सगुन लेइ आवइ हो।
उनरत जोबनु देखि नृपति मन भावइ हो॥ ५॥
रूपसलोनि तँबोलिनि बीरा हाथहि हो।
जाकी ओर बिलोकहि मन तेहि साथहि हो॥
दरजिनि गोरे गात लिहे कर जोरा हो।
केसरि परम लगाइ सुगंधन बोरा हो॥ ६॥

मोचिनि बदन-सँकोचिनि हीरा माँगन हो।
पनहि लिहे कर सोभित सुंदर आँगन हो॥
बतिया सुघरि मलिनिया सुंदर गातहि हो।
कनक रतनमनि मौर लिहे मुसुकातहि हो॥ ७॥
कटि के छीन बरिनिया छाता पानिहि हो।
चंद्रबदनि मृगलोचनि सब रसखानिहि हो॥
नैन बिसाल नउनिया भौं चमकावइ हो।
देइ गारि रनिवासहिं प्रमुदित गावइ हो॥ ८॥
कौसल्या की जेठि दीन्ह अनुसासन हो।
नहछू जाइ करावहु बैठि सिंहासन हो॥
गोद लिहे कौसल्या बैठी रामहि बर हो।
सोभित दूलह राम सीस पर आँचर हो॥ ९॥
नाउनि अति गुनखानि तौ बेगि बोलाई हो।
करि सिंगार अति लोन तौ बिहसति आई हो॥
कनक-चुनिन सों लसित नहरनी लिय कर हो।
आनँद हिय न समाइ देखि रामहि बर हो॥ १०॥
कानन कनक तरीवन, बेसरि सोहइ हो।
गजमुकुता कर हार कंठमनि मोहइ हो॥
कर कंकन, कटि किंकिनि, नूपुर बाजइ हो।
रानि कै दीन्हीं सारी अधिक बिराजइ हो॥ ११॥
काहे रामजिउ साँवर, लछिमन गोर हो।
कीदहुँ रानि कौसिलहि परिगा भोर हो॥
राम अहहिं दसरथ कै लछिमन आन क हो।
भरत सत्रुहन भाइ तौ श्रीरघुनाथ क हो॥ १२॥
आजु अवधपुर आनँद नहछू राम क हो।
चलहु नयन भरि देखिय सोभाधाम क हो॥
अति बड़भाग नउनियाँ छुऐ नख हाथ सों हो।
नैनन्ह करति गुमान तौ श्रीरघुनाथ सों हो॥ १३॥
जो पगु नाउनि धोवइ राम धोवावइँ हो।
सो पगधूरि सिद्ध मुनि दरस न पावइँ हो॥
अतिसय पुहुप क माल राम-उर सोहइ हो।
तिरछी चितवनि आनँद मुनि मुख जोहइ हो॥ १४॥

नख काटत मुसुकाहिं बरनि नहिं जातहि हो ।
पदुमराग-मनि मानहुँ कोमल गातहि हो ॥
जावक रचि क अँगुरियन्ह मृदुल सुठारी हो ।
प्रभु कर चरन पछालत अति सुकुमारी हो ॥ १५ ॥
भइ निवछावरि बहु बिधि जो जस लायक हो ।
तुलसिदास बलि जाउँ देखि रघुनायक हो ॥
राजन दीन्हें हाथी, रानिन्ह हार हो ।
भरि गे रतनपदारथ सूप हजार हो ॥ १६ ॥
भरि गाड़ी निवछावरि नाऊ लावइ हो ।
परिजन करहिं निहाल असीसत आवइ हो ॥
तापर करहिं सुमौज बहुत दुख खोवहिं हो ।
होइ सुखी सब लोग अधिक सुख सोवहिं हो ॥ १७ ॥
गावहिं सब रनिवास देहिं प्रभु गारी हो ।
रामलला सकुचाहिं देखि महतारी हो ॥
हिलिमिलि करत सवाँग सभा रसकेलि हो ।
नाउनि मन हरषाइ सुगंधन मेलि हो ॥ १८ ॥
दूलह कै महतारि देखि मन हरषइ हो ।
कोटिन्ह दीन्हेउ दान मेघ जनु बरखइ हो ॥
रामलला कर नहछू अति सुख गाइय हो ।
जेहि गाये सिधि होइ परम निधि पाइय हो ॥ १९ ॥
दसरथ राउ सिंहासन बैठि बिराजहिं हो ।
तुलसिदास बलि जाहि देखि रघुराजहिं हो ॥
जे यह नहछू गावैं गाइ सुनावइँ हो ।
ऋद्धि सिद्धि कल्यान मुक्ति नर पावइँ हो ॥ २० ॥

वैराग्य-संदीपिनी

वैराग्य-संदीपिनी

दोहा।

राम बाम दिसि जानकी, लषन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर॥ १॥
तुलसी मिटै न मोहतम, किये कोटि गुनग्राम।
हृदय-कमल फूलै नहीं, बिनु रवि-कुल-रवि राम॥ २॥
सुनत लखत श्रुति नयन बिनु, रसना बिनु रस लेत।
बास नासिका बिनु लहै, परसै बिना निकेत॥ ३॥

सोरठा।

अज अद्वैत अनाम, अलख रूप गुनरहित जो।
मायापति सोइ राम, दास-हेतु नर-तनु धरेउ॥ ४॥

दोहा।

तुलसी यह तनु खेत है, मन बच कर्म किसान।
पाप पुन्य द्वै बीज हैं, बवै सो लवै निदान॥ ५॥
तुलसी यह तन तवा है, तपत सदा त्रय ताप।
सांति होहि जब सांतिपद, पावै रामप्रताप॥ ६॥
तुलसी वेद-पुरान-मत, पूरन सास्त्र बिचार।
यह बिराग-संदीपिनी, अखिल ज्ञान को सार॥ ७॥

(संत-स्वभाव-वर्णन)

दोहा।

सरल बरन भाषा सरल, सरल अर्थमय मानि।
तुलसी सरलै संतजन, ताहि परी पहिचानि॥ ८॥

चौपाई।

अति सीतल अति ही सुखदाई। सम दम रामभजन अधिकाई॥
जड़ जीवन को करै सचेता। जग माहीं बिचरत एहि हेता॥ ९॥

दोहा ।

तुलसी ऐसे कहुँ कहूँ, धन्य धरनि बहु संत ।
परकाजै परमारथी, प्रीति लिये निबहंत ॥ १० ॥
की मुख पट दीन्हें रहै, यथा अर्थ भाषंत ।
तुलसी या संसार में, सो बिचारयुत संत ॥ ११ ॥
बोलै बचन बिचारि कै, लीन्हें संत सुभाव ।
तुलसी दुख दुर्बचन के, पंथ देत नहिं पाव ॥ १२ ॥
सत्रु न काहू करि गनै, मित्र गनै नहिं काहि ।
तुलसी यह मत संत को, बोलै ममता माहिं ॥ १३ ॥

चौपाई ।

अति अनन्य गति इंद्रीजीता । जाको हरि बिनु कतहुँ न चीता ॥
मृगतृष्ना सम जग जिय जानी । तुलसी ताहि संत पहिचानी ॥ १४ ॥

दोहा ।

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास ।
राम-रूप-स्वाती-जलद, चातक तुलसीदास ॥ १५ ॥
सो जन जगत-जहाज है, जाके राग न दोष ।
तुलसी तृष्ना त्यागि कै, गहेउ सील संतोष ॥ १६ ॥
सील गहनि सबकी सहनि, कहनि हीय मुख राम ।
तुलसी रहिए एहि रहनि, संत जनन को काम ॥ १७ ॥
निज संगी निज सम करत, दुर्जन मन दुख दून ।
मलयाचल हैं संत जन, तुलसी दोषबिहून ॥ १८ ॥
कोमल बानी संत की, स्रवै अमृतमय आइ ।
तुलसी ताहि कठोर मन, सुनत मैन होइ जाइ ॥ १९ ॥
अनुभव सुख-उत्पति करत, भवभ्रम धरै उठाइ ।
ऐसी बानी संत की, जो उर भेदै आइ ॥ २० ॥
सीतल बानी संत की, ससि हू ते अनुमान ।
तुलसी कोटि तपनि हरै, जो कोउ धारै कान ॥ २१ ॥

चौपाई ।

पाप ताप सब सूल नसावै । मोह-अंध रवि-बचन बहावै ॥
तुलसी ऐसे सद्‌गुरु साधू । बेद मध्य गुन बिदित अगाधू ॥ २२ ॥

दोहा।

तन करि मन करि बचन करि, काहू दूषत नाहिं।
तुलसी ऐसे संतजन, रामरूप जग माहिं ॥ २३ ॥
मुख देखत पातक हरै, परसत कर्म बिलाहिं।
बचन सुनत मन मोहगत, पूरब भाग मिलाहिं ॥ २४ ॥
अति कोमल अरु बिमल रुचि, मानस में मल नाहिं।
तुलसी रत मन होइ रहै, अपने साहिब माहिं ॥ २५ ॥
जाके मन ते उठि गई, तिल तिल तृष्ना चाहि।
मनसा बाचा कर्मना, तुलसी बंदत ताहि ॥ २६ ॥
कंचन काँचहि सम गनै, कामिनि काठ पषान।
तुलसी ऐसे संतजन, पृथ्वी ब्रह्म समान ॥ २७ ॥

चौपाई।

कंचन को मृतिका करि मानत। कामिनि काष्ठ सिला पहिचानत ॥
तुलसी भूलि गयो रस एहा। ते जन प्रगट राम की देहा ॥ २८ ॥

दोहा।

आकिंचन, इंद्रियदमन, रमन राम इकतार।
तुलसी ऐसे संतजन, बिरले या संसार ॥ २९ ॥
अहंबाद, 'मैं तैं' नहीं, दुष्टसंग नहिं कोइ।
दुख ते दुख नहि ऊपजै, सुख ते सुख नहिं होइ ॥ ३० ॥
सम कंचन काँचै गिनत, सत्रु मित्र सम दोइ।
तुलसी या संसार में, कहत संतजन सोइ ॥ ३१ ॥
बिरले बिरले पाइए, मायात्यागी संत।
तुलसी कामी कुटिल कलि, केकी काक अनंत ॥ ३२ ॥
"मैं तैं" मेट्यो मोह तम, ऊगो आतम-भानु।
संतराज सो जानिए, तुलसी या सहिदानु ॥ ३३ ॥

(संत-महिमा-वर्णन)

सोरठा।

को बरनै मुख एक, तुलसी महिमा संत की।
जिन्हके बिमल बिवेक, सेष महेस न कहि सकत ॥ ३४ ॥

दोहा ।

महि पत्री करि सिंधु मसि, तरु लेखनी बनाइ ।
तुलसी गनपति सों तदपि, महिमा लिखी न जाइ ॥ ३५ ॥
धन्य धन्य माता पिता, धन्य पुत्रबर सोइ ।
तुलसी जो रामहिं भजै, जैसेहु कैसेहु होइ ॥ ३६ ॥
तुलसी जाके बदन तें, धोखेउ निकसत राम ।
ताके पग की पगतरी, मेरे तनु को चाम ॥ ३७ ॥
तुलसी भगत सुपच भलो, भजै रैनि दिन राम ।
ऊँचो कुल केहि काम को, जहाँ न हरि को नाम ॥ ३८ ॥
अति ऊँचे भूधरनि पर, भुजगन के अस्थान ।
तुलसी अति नीचे सुखद, ऊख अन्न अरु पान ॥ ३९ ॥

चौपाई ।

अति अनन्य जो हरि को दासा । रटै नाम निसि दिन प्रति स्वासा ॥
तुलसी तेहि समान नहिं कोई । हम नीके देखा सब लोई ॥ ४० ॥
जदपि साधु सबही बिधि हीना । तद्यपि समता के न कुलीना ॥
यह दिन रैनि नाम उच्चरै । वह नित मान-अगिनि में जरै ॥ ४१ ॥

दोहा ।

दास रता एक नाम सों, उभय लोक सुख त्यागि ।
तुलसी न्यारे ह्वै रहै, दहै न दुख की आगि ॥ ४२ ॥

(शांति-वर्णन)

दोहा ।

रैनि को भूषन इंदु है, दिवस को भूषन भानु ।
दास को भूषन भक्ति है, भक्ति को भूषन ज्ञान ॥ ४३ ॥
ज्ञान को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन त्याग ।
त्याग को भूषन शांतिपद, तुलसी अमल अदाग ॥ ४४ ॥

चौपाई ।

अमल अदाग सांतिपद सारा । सकल कलेसन करत प्रहारा ॥
तुलसी उर धारै जौ कोई । रहै अनंदसिंधु महँ सोई ॥ ४५ ॥
बिबिध-पाप-संभव जो तापा । मिटहि दोष दुख दुसह कलापा ॥
परम सांति सुख रहै समाई । तहँ उतपात न भेदै आई ॥ ४६ ॥

तुलसी ऐसे सीतल संता। सदा रहै एहि भाँति एकंता॥
कहा करै खल लोग भुजंगा। कीन्ह्यौ गरलसील जो अंगा॥ ४७॥

दोहा।

अति सीतल अति ही अमल, सकल कामनाहीन।
तुलसी ताहि अतीत गनि, वृत्ति सांति लयलीन॥ ४८॥

चौपाई।

जो कोइ कोप भरै मुख बैना। सन्मुख हतै गिरा-शर पैना॥
तुलसी तऊ लेस रिस नाहीं। सो सीतल कहिए जग माहीं॥ ४९॥

दोहा।

सात दीप नव खंड लौं, तीनि लोक जग माहिं।
तुलसी सांति समान सुख, अपर दूसरो नाहिं॥ ५०॥

चौपाई।

जहाँ सांति सतगुरु की दई। तहाँ क्रोध की जर जरि गई॥
सकल कामबासना बिलानी। तुलसी यहै सांति सहिदानी॥ ५१॥
तुलसी सुखद सांति को सागर। संतन गायो करन उजागर॥
तामें तन मन रहै समोई। अहं-अगिनि नहिं दाहै कोई॥ ५२॥

दोहा।

अहंकार की अगिनि में, दहत सकल संसार।
तुलसी बाँचै संतजन, केवल सांति-अधार॥ ५३॥
महा सांतिजल परसि कै, सांत भए जन जोइ।
अहं-अगिनि ते नहिं दहैं, कोटि करै जो कोइ॥ ५४॥
तेज होत तन तरनि को, अचरज मानत लोइ।
तुलसी जो पानी भया, बहुरि न पावक होइ॥ ५५॥
जद्यपि सीतल, सम सुखद, जग मैं जीवन प्रान।
तदपि सांतिजल जनि गनौ, पावक तेज प्रमान॥ ५६॥

चौपाई।

जरै बरै अरु खीझि खिझावै। राग द्वेष महँ जनम गँवावै॥
सपनेहु सांति नहीं उन देही। तुलसी जहाँ जहाँ व्रत एही॥ ५७॥

दोहा।

सोइ पंडित सोइ पारखी, सोई संत सुजान।
सोई सूर सचेत सो, सोई सुभट प्रमान॥ ५८॥

सोइ ज्ञानी सोइ गुनी जन, सोई दाता ध्यानि ।
तुलसी जाके चित भई, रागद्वेष की हानि ।। ५९ ।।

चौपाई ।

राग द्वेष की अगिनि बुझानी । काम क्रोध बासना नसानी ।।
तुलसी जबहि सांति गृह आई । तब उर ही उर फिरी दोहाई ।। ६० ।।

दोहा ।

फिरी दोहाई राम की, गे कामादिक भाजि ।
तुलसी ज्यों रवि के उदय, तुरत जात तम लाजि ।। ६१ ।।
यह बिराग-संदीपिनी, सुजन सुचित सुनि लेहु ।
अनुचित बचन बिचारि कै, जस सुधारि तस लेहु ।। ६२ ।।

पार्वती-मंगल

पार्वती-मंगल

बिनइ गुरुहि, गुनिगनहि, गिरिहि, गननाथहि ।
हृदय आनि सियराम धरे धनु भाथहि ॥ १ ॥
गावउँ, गौरि-गिरीस-विवाह सुहावन ।
पापनसावन, पावन, मुनि-मन-भावन ॥ २ ॥
कबितरीति नहिं जानउँ, कबि न कहावउँ ।
शंकर-चरित-सुसरित मनहिं अन्हवावउँ ॥ ३ ॥
पर अपवाद-विवाद-विदूषित बानिहि ।
पावनि करउँ सो गाइ भवेस-भवानिहि ॥ ४ ॥
जय संवत फागुन, सुदि पाँचै, गुरु दिनु ।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल, सुनि सुख छिनु छिनु ॥ ५ ॥
गुननिधान हिमवान धरनिधर धुरधनि ।
मैना तासु घरनि घर त्रिभुवन तियमनि ॥ ६ ॥
कहहु सुकृत केहि भाँति सराहिय तिन्ह कर ।
लीन्ह जाइ जगजननि जनम जिन्ह के घर ॥ ७ ॥
मंगलखानि भवानि प्रकट जब तें भइ ।
तब तें ऋधि सिधि संपति गिरिगृह नित नइ ॥ ८ ॥
नित नव सकल कल्यान मंगल मोदमय मुनि मानहीं ।
ब्रह्मादि सुर नर नाग अति अनुराग भाग बखानहीं ॥
पितु, मातु, प्रिय परिवार हरषहिं निरखि पालहिं लालहीं ।
सित पाख बाढ़ति चंद्रिका जनु चंद्रभूषन भालहीं ॥ ९ ॥
कुँवरि सयानि बिलोकि मातु पितु सोचहिं ।
गिरिजा-जोग जुरिहि बर अनुदिन लोचहिं ॥ १० ॥
एक समय हिमवान भवन नारद गए ।
गिरिवर मैना मुदित मुनिहि पूजत भए ॥ ११ ॥
उमहिं बोलि ऋषि-पगन मातु मेलति भइ ।
मुनि मन कीन्ह प्रनाम, बचन आसिष दइ ॥ १२ ॥
कुँवरि लागि पितु काँध ठाढ़ि भइ सोहइ ।
रूप न जाइ बखानि, जान जोइ जोहइ ॥ १३ ।

अति सनेह सतिभाय पाँय परि पुनि पुनि ।
कह मैना मृदु बचन "सुनिय बिनती, मुनि ! ॥ १४ ॥
तुम तिभुवन तिहुँकाल बिचारबिसारद ।
पारबती-अनुरूप कहिय बर, नारद" ॥ १५ ॥
मुनि कह "चौदह भुवन फिरउँ जग जहँ जह ।
गिरिवर सुनिय सरहना राउरि तहँ तहँ ॥ १६ ॥
भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिंन ।
कछु न अगम, सब सुगम, भयो बिधि दाहिन ॥ १७ ॥
दाहिन भए बिधि, सुगम सब, सुनि तजहु चित चिंता नई ।
बर प्रथम बिरवा बिरँचि बिरचो मंगला मंगलमई ॥
बिधिलोक चरचा चलति राउरि चतुर चतुरानन कही ।
हिमवानकन्या जोग बर बाउर बिबुध बंदित सही ॥ १८ ॥
मोरेंहु मन अस आव मिलिहि बर बाउर" ।
लखि नारद-नारदी उमहिं सुख भा उर ॥ १९ ॥
सुनि सहमे परि पाइँ, कहत भए दंपति—
"गिरिजहि लागि हमार जिवन सुख संपति ॥ २० ॥
नाथ ! कहिय सोइ जतन मिटइ जेहि दूषनु ।"
"दोषदलनु" मुनि कहेउ "बाल बिधुभूषनु ॥ २१ ॥
अवसि होइ सिधि, साहस फलै सुसाधन ।
कोटि कल्पतरु सरिस संभु-अवराधन ॥ २२ ॥
तुम्हरे आस्रम अबहिं ईस तप साधहिं ।
कहिय उमहिं मनु लाइ जाइ अवराधहि" ॥ २३ ॥
कहि उपाउ दंपतिहि मुदित मुनिबर गए ।
अति सनेह पितु मातु उमहिं सिखवत भए ॥ २४ ॥
सजि समाज गिरिराज दीन्ह सबु गिरिजहिं ।
बदति जननि, "जगदीस जुवति जिनि सिरजहि" ॥ २५ ॥
जननि-जनक-उपदेस महेसहि सेवहि ।
अति आदर अनुराग भगति मन भेवहि ॥ २६ ॥
भेवहि भगति मन, बचन करम अनन्य गति हरचरन की ।
गौरव सनेहु सँकोच सेवा जाइ केहि बिधि बरन की ॥
गुनरूप जोबनसींव सुंदरि निरखि छोभ न हर हिए ।
ते धीर अछत बिकारहेतु जे रहत मनसिज बस किए ॥ २७ ॥

देव देखि भल समउ मनोज बुलायउ ।
कहेउ करिय सुरकाजु, साजु सजि धायउ ॥ २८ ॥
बामदेव सन काम बाम होइ बरतेउ ।
जग-जय-मद निदरेसि, पायेसि फर तेउ ॥ २९ ॥
रति पतिहीन मलीन बिलोकि बिसूरति ।
नीलकंठ मृदु सील कृपामय मूरति ॥ ३० ॥
आसुतोष परितोष कीन्ह वर दीन्हेउ ।
सिव उदास तजि बास अनत गम कीन्हेउ ॥ ३१ ॥
उमा नेहबस बिकल देह सुधि बुधि गइ ।
कलपबेलि बन बढ़त बिषम हिम जनु दइ ॥ ३२ ॥
समाचार सब सखिन जाइ घर घर कहे ।
सुनत मातु पितु परिजन दारुन दुख दहे ॥ ३३ ॥
जाइ देखि अति प्रेम उमहिं उर लावहिं ।
बिलपहिं बाम बिधातहिं दोष लगावहिं ॥ ३४ ॥
जो न होहिं मंगलमग सुर बिधि बाधक ।
तौ अभिमत फल पावहिं करि स्रमु साधक ॥ ३५ ॥

साधक कलेस सुनाइ सब गौरिहि निहोरत धाम कों ।
को सुनइ काहि सोहाइ घर, चित चहत चंद्रललाम कों ॥
समुझाइ सबहिं दृढ़ाइ मन, पितु मातु आयसु पाइ कै ।
लागी करन पुनि अगमु तपु, तुलसी कहै किमि गाइ कै ॥ ३६ ॥

फिरेउ मातु पितु परिजन लखि गिरिजा-पन ।
जेहि अनुरागु लागु, चितु सोइ हितु आपन ॥ ३७ ॥
तजेउ भोग जिमि रोग, लोग अहिगन जनु ।
मुनि-मनसहु ते अगम तपहि लायउ मनु ॥ ३८ ॥
सकुचहिं बसन बिभूषन परसत जो बपु ।
तेहि सरीर हर-हेतु अरंभेउ बड़ तपु ॥ ३९ ॥
पूजहि सिवहि, समय तिहुँ करहि निमज्जन ।
देखि प्रेम ब्रतु नेमु सराहहिं सज्जन ॥ ४० ॥
नींद न भूख पियास, सरिस निसि बासरु ।
नयन नीर, मुख नाम, पुलक तनु, हिय हरु ॥ ४१ ॥
कंद मूल फल असन, कबहुँ जल पवनहिं ।
सूख बेल के पात खात दिन गवनहिं ॥ ४२ ॥

नाम अपरना भयो परन जब परिहरे।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे ॥ ४३ ॥
देखि सराहहिं गिरजहि मुनिबरु मुनि बहु।
अस तप सुना न दीख कबहुँ काहू कहुँ ॥ ४४ ॥
काहू न देख्यो कहहिं यह तपु योगु फल फलचारिका।
नहिं जानि जाइ, न कहति, चाहति काहि कुधर-कुमारिका ॥
बटुबेष पेषन पेम पन ब्रत नेम ससिसेखर गए।
मनसहि समरपेउ आपु गिरिजहि, बचन मृदु बोलत भए ॥ ४५ ॥
देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ।
मोर कठोर सुभाय, हृदय खसि आयउ ॥ ४६ ॥
बंस प्रसंसि, मातु पितु कहि सब लायक।
अमिअ बचन बटु बोलेउ सुनि सुखदायक ॥ ४७ ॥
"देवि! करौं कछु बिनय सो बिलगु न मानब।
कहौं सनेह सुभाय साँच जिय जानब ॥ ४८ ॥
जनमि जगत जस प्रगटिहु मातु-पिता कर।
तीयरतन तुम उपजिहु भव-रतनाकर ॥ ४९ ॥
अगम न कछु जग तुम कहँ, मोहिं अस सूझइ।
बिनु कामना कलेस कलेस न बूझइ ॥ ५० ॥
जौ बर लागि करहु तपु तौ लरिकाइय।
पारस जौ घर मिलै तौ मेरु कि जाइय? ॥ ५१ ॥
मोरे जान कलेस करिय बिनु काजहि।
सुधा कि रोगिहि चाहहि, रतन कि राजहि?" ॥ ५२ ॥
लखि न परेउ तपकारन बटु हिय हारेउ।
सुनि प्रिय बचन सखीमुख गौरि निहारेउ ॥ ५३ ॥
गौरी निहारेउ सखीमुख, रुख पाइ तेहि कारन कहा।
"तप करहि हरहितु" सुनि बिहँसि बटु कहत "मुरुखाई महा ॥
जेहि दीन्ह अस उपदेस बरेहु कलेस करि बर बावरो।
हित लागि कहौं सुभाय सो बड़ बिषम बैरी रावरो ॥ ५४ ॥
कहहु काह सुनि रीझिहु बरु अकुलीनहिं।
अगुन अमान अजाति मातु-पितु हीनहिं ॥ ५५ ॥
भीख माँगि भव खाहिं, चिता नित सोवहिं।
नाचहिं नगन पिसाच, पिसाचिनि जोवहिं ॥ ५६ ॥

भाँग धतूर अहार, छार लपटावहिं
जोगी, जटिल, सरोष, भोग नहि भावहिं ॥ ५७ ॥
सुमुखि सुलोचनि ! हर मुखपंच, तिलोचन ।
बामदेव फुर नाम, काम-मद-मोचन ॥ ५८ ॥
एकउ हरहिं न बर गुन, कोटिक दूषन ।
नरकपाल, गजखाल, ब्याल, बिष भूषन ॥ ५९ ॥
कहँ राउर गुन सील सरूप सुहावन ।
कहाँ अमंगल बेषु बिसेषु भयावन ॥ ६० ॥
जो सोचहि ससिकलहि सो सोचहि रौरेहि ? ।
कहा मोर मन धरि न बरिय बर बौरेहि ॥ ६१ ॥
हिये हेरि हठ तजहु, हठै दुख पैहहु ।
ब्याह-समय सिख मोरि समुझि पछितैहहु ॥ ६२ ॥
पछिताब भूत पिसाच प्रेत जनेत ऐहैं साजि कै ।
जमधार सरिस निहारि सब नर नारि चलिहहिं भाजि कै ॥
गजअजिन दिव्य दुकूल जोरत सखी हँसि मुख मोरि कै ।
कोउ प्रगट कोउ हिय कहहि 'मिलवत अमिअ माहुर घोरि कै' ॥६३॥
तुमहिं सहित असवार बसह जब होइहहिं ।
निरखि नगर नर नारि बिहँसि मुख गोइहहिं" ॥ ६४ ॥
बटु करि कोटि कुतर्क जथारुचि बोलइ ।
अचल-सुता-मन-अचल बयारि कि डोलइ ? ॥ ६५ ॥
साँच सनेह साँचि रुचि जो हठि फेरइ ।
सावनसरित सिंधुरुख सूप सों घेरइ ॥ ६६ ॥
मनि बिनु फनि, जलहीन मीन तनु त्यागइ ।
सो कि दोष गुन गनइ जो जेहि अनुरागइ ॥ ६७ ॥
करनकटुक बटु बचन बिसिष सम हिय हुए ।
अरुन नयन चढ़ि भ्रुकुटि, अधर फरकत भए ॥ ६८ ॥
बोली फिरि लखि सखिहि काँपु तनु थरथर ।
"आलि ! बिदा करु बटुहि बेगि, बड़ बरबर ॥ ६९ ॥
कहुँ तिय होहिं सयानि सुनहिं सिख राउरि ? ।
बौरेहि के अनुराग भइउँ बड़ि बाउरि ॥ ७० ॥
दोसनिधान, इसानु सत्य सबु भाषेउ ।
मेटि को सकइ सो आँकु जो बिधि लिखि राखेउ ॥ ७१ ॥

बेगि बुलाइ बिरंचि बँचाइ लगन तब ।
कहेन्हि 'बियाहन चलहु बुलाइ अमर सब' ॥ १०० ॥
बिधि पठए जहँ तहँ सब सिवगन धावन ।
सुनि हरषहिं सुर कहहिं निसान बजावन ॥ १०१ ॥
रचहि बिमान बनाइ सगुन पावहिं भले ।
निज निज साजु समाजु साजि सुरगन चले ॥ १०२ ॥
मुदित सकल सिवदूत भूतगन गाजहिं ।
सूकर, महिष, स्वान, खर बाहन साजहिं ॥ १०३ ॥
नाचहिं नाना रंग, तरंग बढ़ावहिं ।
अज, उलूक, वृक नाद गीत गन गावहिं ॥ १०४ ॥
रमानाथ, सुरनाथ, साथ सब सुरगन ।
आए जहँ बिधि संभु देखि हरषे मन ॥ १०५ ॥
मिले हरिहि हर हरषि सुभाखि सुरेसहिं ।
सुर निहारि सनमानेउ, मोदु महेसहिं ॥ १०६ ॥
बहु बिधि बाहन जान बिमान बिराजहिं ।
चली बरात निसानु गहागह बाजहिं ॥ १०७ ॥
बाजहिं निसान, सुगान नभ, चढ़ि बसह बिधुभूषन चले ।
बरषहिं सुमन जय जय करहिं सुर, सगुन सुभ मंगल भले ॥
तुलसी बराती भूत प्रेत पिसाच पसुपति सँग लसे ।
गजछाल, ब्याल, कपालमाल बिलोकि बर सुर हरि हँसे ॥ १०८ ॥
बिबुध बोलि हरि कहेउ निकट पुर आयउ ।
आपन आपन साज सबहिं बिलगायउ ॥ १०९ ॥
प्रमथनाथ के साथ प्रमथगन राजहिं ।
बिबिध भाँति मुख, बाहन, बेष बिराजहिं ॥ ११० ॥
कमठ खपर मढ़ि खाल निसान बजावहिं ।
नरकपाल जल भरि भरि पियहिं पियावहिं ॥ १११ ॥
बर अनुहरित बरात बनी हरि हँसि कहा ।
सुनि हिय हँसत महेस, केलि कौतुक महा ॥ ११२ ॥
बड़ बिनोद मग मोद न कछु कहि आवत ।
जाइ नगर नियरानि बरात बजावत ॥ ११३ ॥
पुर खरभर, उर हरषेउ अचल-अखंडलु ।
परब उदधि उमगेउ जनु लखि बिधुमंडलु ॥ ११४ ॥

प्रमुदित गे अगवान बिलोकि बरातहि ।
भभरे, बनइ न रहत, न बनइ परातहि ॥ ११५ ॥
चले भाजि गज बाजि फिरहिं नहि फेरत ।
बालक भभरि भुलान फिरहि घर हेरत ॥ ११६ ॥
दीन्ह जाः जनवास सुपास किए सब ।
घर घर बालक बात कहन लागे तब ॥ ११७ ॥
"प्रेत बैताल बराती, भूत भयानक ।
बरद चढ़ा बर बाउर, सबइ सुबानक ॥ ११८ ॥
कुसल करइ करतार कहहिं हम साँचिय ।
देखब कोटि बियाह जियत जो बाँचिय" ॥ ११९ ॥
समाचार सुनि सोचु भयउ मन मैनहिं ।
नारद के उपदेस कवन घर गे नहिं ? ॥ १२० ॥
घरघाल चालक कलहप्रिय कहियत परम परमारथी ।
तैसी बरेखी कीन्हि पुनि मुनिसात स्वारथ सारथी ॥
उर लाइ उमहिं अनेक बिधि, जलपति जननि दुख मानई ।
हिमवान कहेउ "इसान महिमा अगम, निगम न जानई" ॥ १२१ ॥
सुनि मैना भइ सुमन, सखी देखन चली ।
जहँ तहँ चरचा चलइ हाट चौहट गली । १२२ ॥
श्रीपति सुरपति, बिबुध बात सब सुनि सुनि ।
हँसहिं कमलकर जोरि, मोरि मुख पुनि पुनि ॥ १२३ ॥
लखि लौकिक गति संभु जानि बड़ सोहर ।
भए सुंदर सतकोटि मनोज मनोहर ॥ १२४ ॥
नील निचोल छाल भइ, फनि मनिभूषन ।
रोम रोम पर उदित रूपमय पूषन ॥ १२५ ॥
गन भए मंगलवेष मदन-मनमोहन ।
सुनत चले हिय हरषि नारि नर जोहन ॥ १२६ ॥
संभु सरद राकेस, नखतगन सुरगन ।
जनु चकोर चहुँ ओर बिराजहिं पुरजन ॥ १२७ ॥
गिरिबर पठए बोलि लगन बेरा भई ।
मंगल अरघ पाँवड़े देत चले लई ॥ १२८ ॥
होहिं सुमंगल सगुन, सुमन बरषहिं सुर ।
गहगहे गान निसान मोद मंगल पुर ॥ १२९ ॥

पहिलिहि पँवरि सुसामध भा सुखदायक ।
इत बिधि उत हिमवान सरिस सब लायक ॥ १३० ॥
मनि चामीकर चारु थार सजि आरति ।
रति सिहाहिं लखि रूप, गान सुनि भारति ॥ १३१ ॥
भरी भाग अनुराग पुलकतनु मुदमन ।
मदनमत्त गजगवनि चलीं बर परिछन । १३२ ॥
बर बिलोकि बिधुगौर सु अंग उजागर ।
करति आरती सासु मगन सुखसागर ॥ १३३ ॥
सुखसिंधु मगन उतारि आरति करि निछावरि निरखि कै ।
मगु अरघ बसन प्रसून भरि लेइ चली मंडप हरषि कै ॥
हिमवान दीन्हेउ उचित आसन सकल सुर सनमानि कै ।
तेहि समय साज समाज सब राखे सुमंडपु आनि कै ॥ १३४ ॥
अरघ देइ मनिआसन बर बैठायउ ।
पूजि कीन्ह मधुपर्क, अमी अँचवायउ ॥ १३५ ॥
सपत ऋषिन्ह बिधि कहेउ, बिलंब न लाइय ।
लगन बेर भइ बेगि बिधान बनाइय ॥ १३६ ॥
थापि अनल हरबरहि बसन पहिरायउ ।
आनहु दुलहिनि बेगि समउ अब आयउ ॥ १३७ ।
सखी सुवासिनि संग गौरि सुठि सोहति ।
प्रगट रूपमय मूरति जनु जग मोहति ॥ १३८ ॥
भूषन बसन समय सम सोभा सो भली ।
सुखमा बेलि नवल जनु रूपफलनि फली । १३९ ॥
कहहु काहि पटतरिय गौरि गुनरूपहि ।
सिंधु कहिय केहि भाँति सरिस सर कूपहि ॥ १४० ॥
आवत उमहिं बिलोकि सीस सुर नावहिं ।
भये कृतारथ जनम जानि सुख पावहिं ॥ १४१ ॥
बिप्र बेद धुनि करहिं सुभासिष कहि कहि ।
गान निसान सुमन झरि अवसर लहि लहि ॥ १४२ ॥
बर दुलहिनिहि बिलोकि सकल मन रहसहिं ।
साखोच्चार समय सब सुर मुनि बिहँसहिं ॥ १४३ ॥
लोक-बेद-बिधि कीन्ह लीन्ह जल कुस कर ।
कन्यादान संकलप कीन्ह धरनिधर ॥ १४४ ॥

पूजे कुलगुरु देव, कलसु सिल सुभ धरी।
लावा होम बिधान बहुरि भाँवरि परी ॥ १४५ ॥
बंदन बंदि, ग्रंथिबिधि करि, ध्रुव देखेउ।
भा बिबाह सब कहहिं जनमफल पेखेउ।' १४६ ॥
पेखेउ जनमफल भा बियाह, उछाह उमगहिं दस दिसा।
नीसान गान प्रसून झरि तुलसी सुहावनि सो निसा ॥
दाइज बसन मनि धेनु धनु हय गय सुसेवक सेवकी।
दीन्हीं मुदित गिरिराज जे गिरिजहि पियारी पेव की ॥ १४७ ॥
बहुरि बराती मुदित चले जनवासहिं।
दूलह दुलहिनि गे तब हास-अवासहिं ॥ १४८ ॥
रोकि द्वार मैना तब कौतुक कीन्हेउ।
करि लहकौरि गौरि हर बड़ सुख दीन्हेउ ॥ १४९ ॥
जुआ खेलावत गारि देहिं गिरिनारिहि।
अपनी ओर निहारि प्रमोद पुरारिहि ॥ १५० ॥
सखी सुवासिनि, सासु पाउ सुख सब बिधि।
जनवासहिं बर चलेउ सकल मंगलनिधि ॥ १५१ ॥
भइ जेवनार बहोरि बुलाइ सकल सुर।
बैठाए गिरिराज धरम-धरनी धुर ॥ १५२ ॥
परुसन लगे सुवार, बिबुध जन सेवहिं।
देहिं गारि बर नारि मोद मन भेवहिं ॥ १५३ ॥
करहिं सुमंगल गान सुघर सहनाइन्ह।
जेइँ चले हर दुहिन सहित सुर भाइन्ह ॥ १५४ ॥
भूधर भोर बिदा करि साज सजायउ।
चले देव सजि जान निसान बजायउ।' १५५ ॥
सनमाने सुर सकल दीन्ह पहिरावनि।
कीन्हि बड़ाई बिनय सनेह-सुहावनि ॥ १५६ ॥
गहि सिवपद कह सासु बिनय मृदु मानबि।
गौरि-सजीवनि मूरि मोरि जिय जानबि ॥ १५७ ॥
भेंटि बिदा करि बहुरि भेंटि पहुँचावहिं।
हुँकरि हुँकरि सु लवाइ धेनु जनु धावहिं ॥ १५८ ॥
उमा मातुमुख निरखि नयन जल मोचहिं।
'नारि जनमु जग जाय' सखी कहि सोचहिं ॥ १५९ ॥

भेंटि उमहिं गिरिराज सहित सुत परिजन ।
बहु समुझाइ बुझाइ फिरे बिलखत मन ॥ १६० ॥
संकर गौरि समेत गए कैलासहि ।
नाइ नाइ सिर देव चले निज बासहि ॥ १६१ ॥
उमा महेस बियाह-उछाह भुवन भरे ।
सबके सकल मनोरथ बिधि पूरन करे ॥ १६२ ॥
प्रेमपाट पटडोरि गौरि-हर-गुन मनि ।
मंगल हार रचेउ कबि मति मृगलोचनि ॥ १६३ ॥
मृगनयनि बिधुबदनी रचेउ मनि मंजु मंगल हार सो ।
उर धरहु जुवती जन बिलोकि तिलोक सोभा-सार सो ॥
कल्यान काज उछाह ब्याह सनेह सहित जो गाइहै ।
तुलसी उमा-संकर-प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहै ॥ १६४ ॥

जानकी-मंगल

जानकी-मंगल

मंगल छंद

गुरु गनपति गिरिजापति गौरि गिरापति ।
सारद सेष सुकवि स्रुति संत सरल मति ॥ १ ॥
हाथ जोरि करि बिनय सबहि सिर नावौं ।
सिय-रघुबीर-बिबाहु जथामति गावौं ॥ २ ॥
सुभ दिन रच्यौ स्वयंबर मंगलदायक ।
सुनत स्रवन हिय बसहिं सीय-रघुनायक ॥ ३ ॥
देस सुहावन पावन बेद बखानिय ।
भूमितिलक सम तिरहुत त्रिभुवन जानिय ॥ ४ ॥
तहँ बस नगर जनकपुर परम उजागर ।
सीय लच्छि जहँ प्रगटी सब सुखसागर ॥ ५ ॥
जनक नाम तेहि नगर बसै नरनायक ।
सब गुनअवधि, न दूसर पटतर लायक ॥ ६ ॥
भयउ न होइहि, है न, जनक सम नरवइ ।
सीय सुता भै जासु सकल मंगलमइ ॥ ७ ॥
नृप लखि कुँवरि सयानि बोलि गुरु परिजन ।
करि मत रचेउ स्वयंबर सिवधनु धरि पन ॥ ८ ॥

पन धरेउ सिवधनु रचि स्वयंबर अति रुचिर रचना बनी ।
जनु प्रगटि चतुरानन देखाई चतुरता सब आपनी ॥
पुनि देस देस सँदेस पठयउ भूप सुनि सुख पावहीं ।
सब साजि साजि समाज राजा जनक-नगरहिं आवहीं ॥ ९ ॥

रूप सील बय बंस बिरुद बल दल भले ।
मनहुँ पुरंदरनिकर उतरि अवनी चले ॥ १० ॥
दानव देव निसाचर किन्नर अहिगन ।
सुनि धरि धरि नृपबेष चले प्रमुदित मन ॥ ११ ॥
एक चलहिं, एक बीच, एक पुर पैठहिं ।
एक धरहिं धनु धाय नाइ सिर बैठहिं । १२ ॥

रंगभूमि पुर कौतुक एक निहारहिं ।
ललकि लोभाहिं नयन मन, फेरि न पारहिं ॥ १३ ॥
जनकहि एक सिहाहिं देखि सनमानत ।
बाहर भीतर भीर न बनै बखानत ॥ १४ ॥
गान निसान कोलाहल कौतुक जहँ तहँ ।
सीय-बियाह-उछाह जाइ कहि का पहँ ? ॥ १५ ॥
गाधिसुवन तेहि अवसर अवध सिधायउ ।
नृपति कीन्ह सनमान भवन लै आयउ ॥ १६ ॥
पूजि पहुनई कीन्हि पाइ प्रिय पाहुन ।
कहेउ भूप 'मोहि सरिस सुकृत किए काहु न" ॥ १७ ॥
'काहू न कीन्हेउ सुकृत' सुनि मुनि मुदित नृपहि बखानहीं ।
महिपाल मुनि को मिलनसुख महिपाल मुनि मन जानहीं ॥
अनुराग भाग सोहाग सील सरूप बहु भूषन भरीं ।
हिय हरषि सुतन्ह समेत रानी आइ ऋषिपायन्ह परीं ॥ १८ ॥
कौसिक दीन्हि असीस सकल प्रमुदित भईं ।
सींची मनहुँ सुधारस कलपलता नईं ॥ १९ ॥
रामहिं भाइन्ह सहित जबहि मुनि जोहेउ ।
नैन नीर, तनु पुलक, रूप मन मोहेउ । २० ॥
परसि कमलकर सीस हरषि हिय लावहिं ।
प्रेमपयोधि मगन मुनि, पार न पावहि ॥ २१ ॥
मधुर मनोहर मूरति सादर चाहहि ।
बार बार दसरथ के सुकृत सराहहिं ॥ २२ ॥
राउ कहेउ कर जोरि सुबचन सुहावन ।
"भयउ कृतारथ आजु देखि पद पावन ॥ २३ ॥
तुम्ह प्रभु पूरनकाम, चारि-फल-दायक ।
तेहि ते बूझत काजु डरौं मुनिनायक" ॥ २४ ॥
कौसिक सुनि नृपबचन सराहेउ राजहि ।
धर्मकथा कहि कहेउ गयउ जेहि काजहि । २५ ॥
जबहि मुनीस महीसहि काज सुनायउ ।
भयउ सनेह-सत्य-बस उतर न आयउ ॥ २६ ॥
आयउ न उतरु बसिष्ठ लखि बहु भाँति नृप समुझायऊ ।
कहि गाधिसुत तपतेज कछु रघुपतिप्रभाउ जनायऊ ॥

धीरजु धरेउ गुरुबचन सुनि कर जोरि कह कोसलधनी ।
"करुनानिधान सुजान प्रभु सों उचित नहिं बिनती घनी ॥ २७ ॥
नाथ मोहिं बालकन्ह सहित पुर परिजन ।
राखनहार तुम्हार अनुग्रह घर बन" ॥ २८ ॥
दीन बचन बहु भाँति भूप मुनि सन कहे ।
सौंपि राम अरु लखन पाँयपंकज गहे ॥ २९ ॥
पाइ मातु-पितु-आयसु गुरु पाँयन परे ।
कटि निषंग पट पीत, करनि सर धनु धरे ॥ ३० ॥
पुरबासी नृप रानिन संग दिये मन ।
बेगि फिरेउ करि काज कुसल रघुनंदन ॥ ३१ ॥
ईस मनाइ असीसहिं जय जस पावहु ।
न्हात खसै जनि बार, गहरु जनि लावहु ॥ ३२ ॥
चलत सकल पुरलोग बियोग बिकल भए ।
सानुज भरत सप्रेम राम पाँयन नए ॥ ३३ ॥
होहिं सगुन सुभ मंगल जनु कहि दीन्हेउ ।
राम लषन मुनि साथ गवन तब कीन्हेउ ॥ ३४ ॥
स्यामल गौर किसोर मनोहरतानिधि ।
सुखमा सकल सकेलि मनहुँ बिरचे बिधि ॥ ३५ ॥
बिरचे बिरंचि बनाइ बाँची रुचिरता रंचौ नहीं ।
दसचारि भुवन निहारि देखि बिचारि नहिं उपमा कही ॥
ऋषि संग सोहत जात मगु छबि बसति सो तुलसी हिए ।
कियो गमन जनु दिननाथ उत्तर संग मधु माधव लिए ॥ ३६ ॥
गिरि तरु बेलि सरित सर बिपुल बिलोकहिं ।
धावहिं बाल सुभाय, बिहँग मृग रोकहिं ॥ ३७ ॥
सकुचहिं मुनिहि सभीत बहुरि फिरि आवहिं ।
तोरि फूल फल किसलय माल बनावहिं ॥ ३८ ॥
देखि बिनोद प्रमोद प्रेम कौसिक उर ।
करत जाहिं घन छाँह, सुमन बरषहिं सुर ॥ ३९ ॥
बधी ताड़का; राम जानि सब लायक ।
बिद्या-मंत्र-रहस्य दिए मुनिनायक ॥ ४० ॥
मग-लोगन्ह के करत सफल मन लोचन ।
गए कौसिक आस्रमहिं बिप्र-भय-मोचन ॥ ४१ ॥

मारि निसाचर-निकर यज्ञ करवायउ ।
अभय किए मुनिबृंद जगत जसु गायउ ॥ ४२ ॥
बिप्र साधु सुरकाज महामुनि मन धरि ।
रामहिं चले लिवाइ धनुषमख मिसु करि ॥ ४३ ॥
गौतमनारि उधारि पठै मतिधामहिं ।
जनकनगर लै गयउ महामुनि रामहिं ॥ ४४ ॥
लै गयउ रामहिं गाधिसुवन बिलोकि पुर हरषे हिए ।
सुनि राउ आगे लेन आयउ सचिव गुरु भूसुर लिए ॥
नृप गहे पाँय, असीस पाई मान आदर अति किए ।
अवलोकि रामहिं अनुभवत मनु ब्रह्मसुख सौगुन दिए ॥ ४५ ॥
देखि मनोहर मूरति मन अनुरागेउ ।
बँधेउ सनेह बिदेह, बिराग बिरागेउ ॥ ४६ ॥
प्रमुदित हृदय सराहत भल भवसागर ।
जहँ उपजहिं अस मानिक, बिधि बड़ नागर ॥ ४७ ॥
पुन्यपयोधि मातुपितु ए सिसु सुरतरु ।
रूप-सुधा-सुख देत नयन अमरनि बरु ॥ ४८ ॥
"केहि सुकृती के कुँवर" कहिय मुनिनायक ।
"गौर स्याम छबिधाम धरे धनुसायक ॥ ४९ ॥
बिषयबिमुख मन मोर सेइ परमारथ ।
इन्हहिं देखि भयो मगन जानि बड़ स्वारथ" ॥ ५० ॥
कहेउ सप्रेम पुलकि मुनि सुनि, "महिपालक !
ए परमारथरूप ब्रह्ममय बालक ॥ ५१ ॥
पूषन-बंस-बिभूषन दसरथनंदन ।
नाम राम अरु लषन सुरारिनिकंदन" ॥ ५२ ॥
रूप सील बय बंस राम परिपूरन ।
समुझि कठिन पन आपन लाग बिसूरन ॥ ५३ ॥
लागे बिसूरन समुझि पन मन बहुरि धीरज आनि कै ।
लै चले देखवन रंगभूमि अनेक बिधि सनमानि कै ॥
कौसिक सराही रुचिर रचना, जनक सुनि हरषित भए ।
तब राम लषन समेत मुनि कहँ सुभग सिंहासन दए ॥ ५४ ॥
राजत राजसमाज जुगल रघुकुलमनि ।
मनहुँ सरदबिधु उभय, नखत धरनीधनि ॥ ५५ ॥

काकपच्छ सिर, सुभग सरोरुहलोचन।
गौर स्याम सत-कोटि-काम-मद-मोचन॥ ५६॥
तिलक ललित सर, भ्रुकुटी काम-कमानै।
स्रवन बिभूषन रुचिर देखि मन मानै॥ ५७॥
नासा चिबुक कपोल अधर रद सुंदर।
बदन सरद-बिधु-निंदक सहज मनोहर॥ ५८॥
उर बिसाल वृषकंध सुभग भुज अति बल।
पीत बसन उपबीत, कंठ मुकुताफल। ५९॥
कटि निषंग, कर-कमलन्हि धरे धनुसायक।
सकल अंग मनमोहन जोहन लायक। ६०॥
राम-लषन-छबि देखि मगन भए पुरजन।
उर आनंद जल लोचन, प्रेम पुलक तन॥ ६१॥
नारि परस्पर कहहि देखि दुहुँ भाइन्ह।
"लहेउ जनम फल आजु जनमि जग आइन्ह॥ ६२॥
जग जनमि लोचनलाहु पाए" सकल सिवहि मनावहीं।
"बर मिलौ सीतहि साँवरो हम हरषि मंगल गावहीं"॥
एक कहहिं "कुँवर किसोर कुलिस-कठोर सिवधनु है महा।
किमि लेहि बाल मराल मंदर नृपहिं अस काहु न कहा"॥ ६३॥
भे निरा। सब भूप बिलोकत रामहिं।
"पन परिहरि सिय देब जनक बर श्यामहिं"॥ ६४॥
कहहिं एक "भलि बात, ब्याहु भल होइहि।
बर दुलहिनि लगि जनक अपन पन खोइहि"॥ ६५॥
सुचि सुजान नृप कहहिं "हमहिं अस सूझइ।
तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल बूझइ॥ ६६॥
चितइ न सकहु रामतन, गाल बजावहु।
बिधि बस बलउ लजान, सुमति न लजावहु॥ ६७॥
अवसि राम के उठत सरासन टूटिहि।
गवनिहि राजसमाज नाक अस फूटिहि॥ ६८॥
कस न पियहु भरि लोचन रूप-सुधा-रसु।
करहु कृतारथ जनम, होहु कस नरपसु"॥ ६९॥
दुहुँ दिसि राजकुमार बिराजत मुनिबर।
नील पीत पाथोज बीच जनु दिनकर॥ ७०॥

काकपच्छ ऋषि परसत पानि सरोजनि ।
लाल कमल जनु लालत बालमनोजनि ॥ ७१ ॥
"मनसिज मनोहर मधुर मूरति कस न सादर जोवहू ।
बिनु काज राजसमाज महँ तजि लाज आपु बिगोवहू" ॥
सिख देइँ भूपनि साधु भूप अनूप छबि देखन लगे ।
रघुबंस कैरवचंद चितइ चकोर जिमि लोचन ठगे ॥ ७२ ॥
पुर-नर-नारि निहारहिं रघुकुलदीपहिं ।
दोसु नेहबस देहिं बिदेह महीपहिं ॥ ७३ ॥
एक कहहिं "भल भूप, देहु जनि दूषन ।
नृप न सोह बिनु बचन, नाक बिनु भूषन ॥ ७४ ॥
हमरे जान जनेस बहुत भल कीन्हेउ ।
पन-मिस लोचनलाहु सबन्हि कहँ दीन्हेउ ॥ ७५ ॥
अस सुकृती नरनाहु जो मन अभिलाषिहि ।
सो पुरइहि जगदीस पैज पन राखिहि ॥ ७६ ॥
प्रथम सुनत जो राउ राम-गुन-रूपहि ।
बोलि ब्याहि सिय देत दोष नहि भूपहिं ॥ ७७ ॥
अब करि पैज पंच महँ जो पन त्यागै ।
बिधिगति जानि न जाइ, अजसु जग जागै ॥ ७८ ॥
अजहुँ अवसि रघुनंदन चाप चढ़ाउब ।
ब्याह उछाह सुमंगल त्रिभुवन गाउब" ॥ ७९ ॥
लागि झरोखन्ह झाँकहिं भूपतिभामिनि ।
कहत बचन रद लसहिं दमक जनु दामिनि ॥ ८० ॥
जनु दमक दामिनि, रूप रति मृदु निदरि सुंदरि सोहहीं ।
मुनि ढिग देखाए सखिन्ह कुँवर बिलोकि छबि मन मोहहीं ॥
सियमातु हरषी निरखि सुखमा अति अलौकिक राम की ।
हिय कहति "कहँ धनु कुँवर कहँ बिपरीत गति बिधि बाम की" ॥ ८१ ॥
कहि प्रिय बचन सखिन्ह सन रानि बिसूरति ।
"कहाँ कठिन सिवधनुष कहाँ मृदु मूरति ॥ ८२ ॥
जौ बिधि लोचनअतिथि करत नहिं रामहि ।
तौ कोउ नृपहि न देत दोसु परिनामहिं ॥ ८३ ॥
अब असमंजस भयउ न कछु कहि आवै" ।
रानिहि जानि ससोच सखी समुझावै ॥ ८४ ॥

"देवि ! सोच परिहरिय हरष हिय आनिय ।
चाप चढ़ाउब राम बचन फुर मानिय ॥ ८५ ॥
तीनि काल कर ज्ञान कौसिकहि करतल ।
सो कि स्वयंबर आनहि बालक बिनु बल ?" ॥ ८६ ॥
मुनिमहिमा सुनि रानिहि धीरजु आयउ ।
तब सुबाहु-सूदन-जसु सखिन सुनायउ ॥ ८७ ॥
सुनि जिय भयउ भरोस रानि हिय हरखइ ।
बहुरि निरखि रघुबरहि प्रेम मन करखइ ॥ ८८ ॥
नृप रानी पुरलोग रामतन चितवहि ।
मंजु मनोरथ-कलस भरहिं अरु रितवहि ॥ ८९ ॥
रितवहिं भरहिं धनु निरखि छिनु छिनु निरखि रामहि सोचहीं ।
नर नारि हरष-बिषाद-बस हिय सकल सिवहि सँकोचहीं ॥
तब जनक-आयसु पाइ कुलगुरु जानकिहि लै आयऊ ।
सिय रूपरासि निहारि लोचन-लाहु लोगन्हि पायऊ ॥ ९० ॥
मंगल भूषन बसन मंजु तन सोहहिं ।
देखि मूढ़ महिपाल मोहबस मोहहिं ॥ ९१ ॥
रूपरासि जेहि ओर सुभाय निहारइ ।
नील-कमल-सर-श्रेनि मयन जनु डारइ ॥ ९२ ॥
छिनु सीतहि छिनु रामहि पुरजन देखहिं ।
रूप सील वय बंस बिसेष बिसेखहि ॥ ९३ ॥
राम दीख जब सीय, सीय रघुनायक ।
दोउ तन तकि तकि मयन सुधारत सायक ॥ ९४ ॥
प्रेम प्रमोद परस्पर प्रगटत गोपहिं ।
जनु हिरदय गुन-ग्राम-थूनि थिर रोपहिं ॥ ९५ ॥
रामसीय बय, समौ, सुभाय सुहावन ।
नृप जोबन छबि पुरइ चहत जनु आवन ॥ ९६ ॥
सो छबि जाइ न बरनि देखि मन मानै ।
सुधापान करि मूक कि स्वाद बखानै ? ॥ ९७ ॥
तब बिदेहपन बंदिन्ह प्रगटि सुनायउ ।
उठे भूप आमरषि सगुन नहिं पायउ ॥ ९८ ॥
नहिं सगुन पायेउ रहे मिसु करि एक धनु देखन गए ।
टकटोरि कपि ज्यौं नारियरु सिर नाइ सब बैठत भए ॥

इक करहिं दाप, न चाप सज्जन-बचन-जिमि टारे टरै।
नृप नहुष ज्यों सब के बिलोकत बुद्धिबल बरबस हरै॥ ६६ ॥
देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ।
नृपसमाज जनु तुहिन बनजबन मारेउ॥ १०० ॥
कौसिक जनकहि कहेउ "देहु अनुसासन।
देखि भानु-कुल-भानु इसानु-सरासन"॥ १०१ ॥
"मुनिबर तुम्हरे बचन मेरु महि डोलहि।
तदपि उचित आचरत पाँच भल बोलहिं॥ १०२ ॥
बानु बानु जिमि गयउ, गवहिं दसकंधरु।
को अवनीतल इन्ह सम बीरधुरंधरु॥ १०३ ॥
पारबती-मन सरिस अचल धनुचालक।
हहिं पुरारि तेउ एक-नारिव्रत-पालक॥ १०४ ॥
सो धनु कहिय अवलोकन भूप-किसोरहि।
भेद कि सिरिस सुमन-कन कुलिस कठोरहि॥ १०५ ॥
रोम रोम छबि निंदति सोभ मनोजनि।
देखिय मूरति, मलिन करिय मुनि सो जनि"॥ १०६ ॥
मुनि हँसि कहेउ "जनक, यह मूरति सो हइ।
सुमिरत सकृत मोहमल सकल बिछोहइ॥ १०७ ॥
सब मल-बिछोहनि जानि मूरति जनक कौतुक देखहू।
धनुसिंधु नृप-बल-जल बढ़्यो रघुबरहिं कुंभज लेखहू॥"
सुनि सकुचि सोचहिं जनक, गुरु-पद बंदि रघुनंदन चले।
नहिं हरष हृदय बिषाद कछु भए सगुन सुभ मंगल भले॥ १०८ ॥
बरिसन लगे सुमन सुर, दुंदुभि बाजहिं।
मुदित जनक पुर-परिजन नृपगन लाजहिं॥ १०९ ॥
महि महिधरनि लषन कह बलहि बढ़ावन।
राम चहत सिव-चापहि चपरि चढ़ावन॥ ११० ॥
गए सुभाय राम जब चाप समीपहि।
सोच सहित परिवार बिदेह महीपहि॥ १११ ॥
कहि न सकति कछु सकुचनि, सिय हिय सोचइ।
गौरि गनेस गिरीसहि सुमिरि सँकोचइ॥ ११२ ॥
होति बिरह-सर-मगन देखि रघुनाथहिं।
फरकि बाम भुज नयन देहि जनु हाथहिं॥ ११३ ॥

धीरज धरति, सगुन बल रहत सो नाहिन ।
बर किसोर धनु घोर दइउ नहिं दाहिन ॥ ११४ ॥
अंतरजामी राम मरम सब जानेउ ।
धनु चढ़ाइ कौतुकहिं कान लगि तानेउ ॥ ११५ ॥
प्रेम परखि रघुबीर सरासन भंजेउ ।
जनु मृग-राज-किसोर महा गज गंजेउ ॥ ११६ ॥
गंजेउ सो गर्जेउ घोर धुनि सुनि भूमि भूधर लरखरे ।
रघुबीर जस-मुकुता बिपुल सब भुवन पटु पेटक भरे ॥
हिय मुदित, अनहित रुदित मुख, छबि कहत कबि धनुजाग की ।
जनु भोर चक्क चकोर कैरव सघन कमल तड़ाग की ॥ ११७ ॥
नभ पुर मंगल गान निसान गहागहे ।
देखि मनोरथ सुरतरु ललित लहालहे ॥ ११८ ॥
तब उपरोहित कहेउ, सखी सब गावत ।
चलीं लेवाइ जानकिहिं भा मनभावत ॥ ११९ ॥
कर-कमलनि जयमाल जानकी सोहइ ।
बरनि सकै छबि अतुलित अस कबि को हइ ? ॥ १२० ॥
सीय सनेह-सकुच-बस पियतन हेरइ ।
सुरतरु रुख सुरबेलि पवन जनु फेरइ ॥ १२१ ॥
लसत ललित करकमल माल पहिरावत ।
कामफंद जनु चंदहि बनज फंदावत ॥ १२२ ॥
राम-सीय-छबि निरुपम, निरुपम सो दिनु ।
सुखसमाज लखि रानिन्ह आनँद छिनु छिनु ॥ १२३ ॥
प्रभुहिं माल पहिराइ जानकिहिं लै चली ।
सखी मनहुँ बिधु-उदय मुदित कैरव-कली ॥ १२४ ॥
बरषहिं बिबुध प्रसून हरषि कहि जय जय ।
सुख सनेह भरे भुवन राम गुरु पहिं गय ॥ १२५ ॥
गए राम गुरु पहिं, राउ रानी नारि नर आनँद भरे ।
जनु तृषित करि-करिनी-निकर सीतल सुधासागर परे ॥
कौसिकहिं पूजि प्रसंसि आयसु पाइ नृप सुख पायऊ ।
लिखि लगन तिलक समाज सजि कुलगुरुहि अवध पठायऊ ॥१२६॥
गुनिगन बोलि कहेउ नृप माँड़व छावन ।
गावहिं गीत सुवासिनि, बाज बधावन ॥ १२७ ॥

सीय-राम-हित पूजहिं गौरि गनेसहिं ।
परिजन पुरजन सहित प्रमोद नरेसहि ॥ १२८ ॥
प्रथम हरदि बेदन करि मंगल गावहिं ।
करि कुलरीति, कलस थपि तेलु चढ़ावहिं ॥ १२९ ॥
गे मुनि अवध, बिलोकि सुसरित नहायउ ।
सतानंद सत-कोटि-नाम-फल पायउ ॥ १३० ॥
नृप सुनि आगे आइ पूजि मनमानेउ ।
दीन्हि लगन कहि कुसल राउ हरषानेउ ॥ १३१ ॥
सुनि पुर भयउ अनंद बधाव बजावहि ।
सजहिं सुमंगल कलस बितान बनावहि ॥ १३२ ॥
राउ छाँड़ि सब काज साज सब साजहि ।
चलेउ बरात बनाइ पूजि गनराजहि ॥ १३३ ॥
बाजहिं ढोल निसान सगुन सुभ पाइन्हि ।
सिय-नैहर जनकौर नगर नियराइन्हि ॥ १३४ ॥
नियरानि नगर बरात हरषी लेन अगवानी गए ।
देखत परस्पर मिलत, मानत, प्रेमपरिपूरन भए ॥
आनंद पुर कौतुक कोलाहल बनत सो बरनत कहाँ ।
लै दियो तहँ जनवास सकल सुपास नित नूतन जहाँ ॥ १३५ ॥
गे जनवासहिं कौसिक रामलषन लिए ।
हरषे निरखि बरात प्रेम प्रमुदित हिए ॥ १३६ ॥
हृदय लाइ लिए गोद मोद अति भूपहि ।
कहि न सकहिं सत सेष अनंद अनूपहि ॥ १३७ ॥
राय कौसिकहिं पूजि दान बिप्रन्ह दिए ।
राम सुमंगल हेतु सकल मंगल किए ॥ १३८ ॥
ब्याह-बिभूषन-भूषित भूषन-भूषन ।
बिश्वबिलोचन, बनजबिकासक पूषन ॥ १३९ ॥
मध्य बरात बिराजत अति अनुकूलेउ ।
मनहुँ काम आराम कल्पतरु फूलेउ ॥ १४० ॥
पठई भेंट बिदेह बहुत बहु भाँतिन्ह ।
देखत देव सिहाहि अनंद बरातिन्ह ॥ १४१ ॥
बेदबिहित कुलरीति कीन्हि दुहुँ कुलगुर ।
पठई बोलि बरात जनक प्रमुदित उर ॥ १४२ ॥

जाइ कहेउ "पगु धारिय" मुनि अवधेसहि ।
चले सुमिरि गुरु गौरि गिरीस गनेसहिं ॥ १४३ ॥
चले सुमिरि गुरु, सुर सुमन बरषहिं, परे बहु बिधि पाँवड़े ।
मनमानि सब बिधि जनक दसरथ किए प्रेम कनावड़े ॥
गुन सकल सम समधी परस्पर मिलत अति आनँद लहे ।
जय धन्य जय जय धन्य धन्य बिलोकि सुर नर मुनि कहे ॥१४४॥
तीनि लोक अवलोकहिं नहिं उपमा कोउ ।
दसरथ जनक समान जनक दसरथ दोउ ॥ १४५ ॥
सजहिं सुमंगल साज रहस रनिवासहिं ।
गान करहिं पिकबैनि सहित परिहासहिं ॥ १४६ ॥
उमा रमादिक सुरतिय सुनि प्रमुदित भइँ ।
कपट नारि-बर-बेष बिरचि मंडप गइँ । १४७ ॥
मंगल आरति साजि बरहिं परिछन चलीं ।
जनु बिगसीं रवि-उदय कनक-पंकज-कली ॥ १४८ ॥
नख सिख सुंदर रामरूप जब देखहिं ।
सब इंद्रिन्ह महँ इंद्रबिलोचन लेखहिं ॥ १४९ ॥
परम प्रीति कुलरीति करहिं गजगामिनि ।
नहिं अघाहिं अनुराग भाग भरि भामिनि ॥ १५० ॥
नेगचारु कहँ नागरि गहरु लगावहिं ।
निरखि निरखि आनंद सुलोचनि पावहि ॥ १५१ ॥
करि आरती निछावरि बरहिं निहारहिं ।
प्रेममगन प्रमदागन तनु न सम्हारहिं ॥ १५२ ॥
नहि तनु सम्हारहि, छबि निहारहि निमिष-रिपु जनु रन जए ।
चक्कवै-लोचन रामरूप-सुराज-सुख भोगी भए ॥
तब जनक सहित समाज राजहि उचित रुचिरासन दए ।
कौसिक बसिष्ठहिं पूजि पूजे राउ दै अंबर नए ॥ १५३ ॥
देन अरघ रघुबीरहिं मंडप लै चलीं ।
करहिं सुमंगल गान उमँगि आनँद अली ॥ १५४ ॥
बर बिराज मंडप महँ बिस्व बिमोहइ ।
ऋतु बसंत बनमध्य मदन जनु सोहइ ॥ १५५ ॥
कुल-बिवहार, बेदबिधि चाहिय जहँ जस ।
उपरोहित दोउ करहिं मुदित मन तहँ तस ॥ १५६ ॥

बरहिं पूजि नृप दीन्ह सुभग सिंहासन ।
चलीं दुलहिनिहिं ल्याइ पाइ अनुसासन ॥ १५७ ॥
जुवति जुत्थ महँ सीय सुभाइ बिराजइ ।
उपमा कहत लजाइ भारती भाजइ ॥ १५८ ॥
दुलह दुलहिनिन्ह देखि नारि नर हरषहिं ।
छिनु छिनु गान निसान सुमन सुर बरषहिं ॥ १५९ ॥
लै लै नाउँ सुआसिनि मंगल गावहिं ।
कुँवर कुँवरि हित गनपति गौरि पुजावहिं ॥ १६० ॥
अगिनि थापि मिथिलेस कुसोदक लीन्हेउ ।
कन्यादान बिधान संकलप कीन्हेउ ॥ १६१ ॥
संकल्पि सिय रामहिं समर्पी सील सुख सोभामई ।
जिमि संकरहिं गिरिराज गिरिजा, हरिहिं श्री सागर दई ॥
सिंदूरबंदन होम लावा होन लागीं भाँवरी ।
सिलपोहनी करि मोहनी मन हर्‌यो मूरति साँवरी ॥ १६२ ॥
यहि बिधि भयो बिबाह उछाह तिहूँ पुर ।
देहिं असीस मुनीस सुमन बरषहिं सुर ॥ १६३ ॥
मनभावत बिधि कीन्ह, मुदित भामिनि भईं ।
बर दुलहिनिहिं लेवाइ सखी कोहबर गईं ॥ १६४ ॥
निरखि निछावरि करहिं बसन मनि छिनु छिनु ।
जाइ न बरनि बिनोद मोदमय सो दिनु ॥ १६५ ॥
सियभ्राता के समय भौम तहँ आयउ ।
दुरीदुरा करि नेगु सुनात जनायउ ॥ १६६ ॥
चतुर नारिबर कुँवरिहिं रीति सिखावहिं ।
देहिं गारि लहकौरि समौ सुख पावहिं ॥ १६७ ॥
जुवा खेलावत कौतुक कीन्ह सयानिन्ह ।
जीति-हारि-मिस देहिं गारि दुहुँ रानिन्ह ॥ १६८ ॥
सीयमातु मन मुदित उतारति आरति ।
को कहि सकइ अनंद मगन भइ भारति ॥ १६९ ॥
जुवति जूथ रनिबास रहस-बस यहि बिधि ।
देखि देखि सिय राम सकल मंगलनिधि ॥ १७० ॥
मंगलनिधान बिलोकि लोयन-लाह लूटति नागरी ।
दइ जनक तीनिहु कुँवरि कुँवर बिबाहि सुनि आनँदभरी ॥

कल्यान मो कल्यान पाइ बितान छबि मन मोहई ।
सुरधेनु, ससि, सुरमनि सहित मानहुँ कलपतरु सोहई ॥ १७१ ॥

जनक-अनुज-तनया दुइ परम मनोरम ।
जेठि भरत कहँ ब्याहि रूप रति सय सम ॥ १७२ ॥
सिय लघु भगिनि लषन कहँ रूप-उजागरि ।
लषन-अनुज श्रुतिकीरति सब-गुन-आगरि ॥ १७३ ॥
रामबिवाह समान ब्याह तीनिउ भए ।
जीवनफल, लोचनफल बिधि सब कहँ दए ॥ १७४ ॥
दाइज भयउ बिबिध बिधि, जाइ न सो गनि ।
दासी, दास, बाजि, गज, हेम, बसन, मनि ॥ १७५ ॥
दान मान परमान प्रेम पूरन किए ।
समधी सहित बरात बिनय बस करि लिए ॥ १७६ ॥
गे जनवासेहि राउ, संग सुत सुतबहु ।
जनु पाए फल चारि सहित साधन चहुँ ॥ १७७ ॥
चहुँ प्रकार जेंवनार भई बहु भाँतिन्ह ।
भोजन करत अवधपति सहित बरातिन्ह ॥ १७८ ॥
देहिं गारि बर नारि नाम लै दुहुँ दिसि ।
जेंवत बढ़ेउ अनंद, सोहावनि सो निसि ॥ १७९ ॥

सो निसि सोहावनि, मधुर गावनि, बाजने बाजहिं भले ।
नृप कियो भोजन पान, पाइ प्रमोद जनवासहिं चले ॥
नट भाट मागध सूत जाचक जस प्रतापहिं बरनहीं ।
सानंद भूसुर-बृंद मनि गज देत मन करषै नहीं ॥ १८० ॥

करि करि बिनय कछुक दिन राखि बरातिन्ह ।
जनक कीन्ह पहुनाई अगनित भाँतिन्ह ॥ १८१ ॥
'प्रात बरात चलिहि' सुनि भूपतिभामिनि ।
परि न बिरहबस नींद, बीति गइ जामिनि ॥ १८२ ॥
खरभर नगर, नारि नर बिधिहि मनावहिं ।
बार बार ससुरारि राम जेहि आवहिं ॥ १८३ ॥
सकल चलन के साज जनक साजत भए ।
भाइन्ह सहित राम तब भूपभवन गए ॥ १८४ ॥
सासु उतारि आरती करहिं निछावरि ।
निरखि निरखि हिय हरषहिं मूरति साँवरि ॥ १८५ ॥

माँगेउ बिदा राम तब, सुनि करुना भरी ।
परिहरि सकुच सप्रेम पुलकि पायन्ह परी ॥ १८६ ॥
सीय सहित सब सुता सौंपि कर जोरहिं ।
बार बार रघुनाथहिं निरखि निहोरहिं ॥ १८७ ॥
"तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन ।
अनुचर जानब राउ सहित पुर परिजन ॥ १८८ ॥
जन जानि करब सनेह, बलि" कहि दीन बचन सुनावहीं ।
अति प्रेम बारहिं बार रानी बालकन्हि उर लावहीं ॥
सिय चलत पुरजन नारि हय गज बिहँग मृग ब्याकुल भए ।
सुनि बिनय सासु प्रबोधि तब रघुबंसमनि पितु पहिं गए ॥ १८९ ॥
परेउ निसानहिं घाउ राउ अवधहि चले ।
सुरगन बरषहिं सुमन सगुन पावहिं भले ॥ १९० ॥
जनक जानकिहिं भेंटि सिखाइ सिखावन ।
सहित सचिव गुरु बंधु चले पहुँचावन ॥ १९१ ॥
प्रेम पुलकि कह राय "फिरिय अब राजन ।"
करत परस्पर बिनय सकल गुनभाजन ॥ १९२ ॥
कहेउ जनक कर जोरि "कीन्ह मोहिं आपन ।
रघु-कुल-तिलक सदा तुम्ह उथपनथापन ॥ १९३ ॥
बिलग न मानब मोर जो बोलि पठायउँ ।
प्रभुप्रसाद जस जाति सकल सुख पायउँ" ॥ १९४ ॥
पुनि बसिष्ठ आदिक मुनि बंदि महीपति ।
गहि कौसिक के पाँय कीन्हि बिनती अति ॥ १९५ ॥
भाइन्ह सहित बहोरि बिनव रघुबीरहिं ।
गदगद कंठ, नयन जल, उर धरि धीरहि ॥ १९६ ॥
"कृपासिंधु सुखसिंधु सुजान-सिरोमनि ।
तात ! समय सुधि करबि छोह छाँड़ब जनि" ॥ १९७ ॥
जनि छोह छाँड़ब बिनय सुनि रघुबीर बहु बिनती करी ।
मिलि भेंटि सहित सनेह फिरेउ बिदेह मन धीरज धरी ॥
सो समौ कहत न बनत कछु सब भुवन भरि करुना रहे ।
तब कीन्ह कोसलपति पयान निसान बाजे गहगहे ॥ १९८ ॥
पंथ मिले भृगुनाथ हाथ फरसा लिए ।
डाँटहिं आँखि देखाइ कोप दारुन किए ॥ १९९ ॥

राम कीन्ह परितोष रोष रिस परिहरि ।
चले सौंपि सारंग सुफल लोचन करि ॥ २०० ॥
रघुबर-भुज-बल देखि उछाह बरातिन्ह ।
मुदित राउ लखि सन्मुख बिधि सब भाँतिन्ह ॥ २०१ ॥
एहि बिधि ब्याहि सकल सुत जग जस छायउ ।
मगलोगनि सुख देत अवधपति आयउ ॥ २०२ ॥
होहिं सुमंगल सगुन सुमन सुर बरषहिं ।
नगर कोलाहल भयउ नारि नर हरषहिं ॥ २०३ ॥
घाट बाट पुर द्वार बजार बनावहिं ।
बीथी सींचि सुगंध सुमंगल गावहिं ॥ २०४ ॥
चौकैं पूरैं चारु कलस ध्वज साजहिं ।
बिबिध प्रकार गहगहे बाजन बाजहिं ॥ २०५ ॥
बंदनवार बितान पताका घर घर ।
रोपैं सफल सपल्लव मंगल तरुवर ॥ २०६ ॥

मंगल बिटप मंजुल बिपुल दधि दूब अच्छत रोचना ।
भरि थार आरति सजहिं सब सारंग-सावक-लोचना ॥
मन मुदित कौसल्या सुमित्रा सकल भूपति-भामिनी ।
सजि साजि परिछन चलीं रामहिं मत्त-कुंजरगामिनी ॥ २०७ ॥

बधुन्ह सहित सुत चारिउ मातु निहारहि ।
बारहिं बार आरती मुदित उतारहिं ॥ २०८ ॥
करहिं निछावरि छिनु छिनु मंगल मुद भरी ।
दुलह दुलहिनिन्ह देखि प्रेम-पय-निधि परीं ॥ २०९ ॥
देत पाँवड़े अरघ चलीं लै सादर ।
उमगि चलेउ आनंद भुवन भुइँ बादर ॥ २१० ॥
नारि उहार उघारि दुलहिनिन्ह देखहिं ।
नैनलाहु लहि जनम सफल करि लेखहिं ॥ २११ ॥
भवन आनि सनमानि सकल मंगल किए ।
बसन कनक मनि धेनु दान बिप्रन्ह दिए ॥ २१२ ॥
जाचक कीन्ह निहाल असीसहिं जहँ तहँ ।
पूजे देव पितर सब राम-उदय कहँ ॥ २१३ ॥
नेगचार करि दीन्ह सबहि पहिरावनि ।
समधी सकल सुआसिनि गुरुतिय पावनि ॥ २१४ ॥

जोरी चारि मिहारि असीसत निकसहिं ।
मनहुँ कुमुद बिधु-उदय मुदित मन बिकसहिं ।। २१५ ।।
बिकसहि कुमुद जिमि देखि बिधु भइ अवध सुख सोभामई ।
एहि जुगुति राजबिवाह गावहिं सकल कबि कीरति नई ।।
उपबीत ब्याह उछाह जे सिय राम मंगल गावहीं ।
तुलसी सकल कल्यान ते नर नारि अनुदिनु पावहीं ।। २१६ ।।

रामाज्ञा-प्रश्न

रामाज्ञा-प्रश्न

अष्टोत्तर सत कमल फल, मुट्ठी तीनि प्रमान।
सप्त सप्त तजि सेष को, राखे सब बिलगान॥
प्रथम सर्ग जो सेष रह, दूजे सप्तक होइ।
तीजे दोहा जानिए, सगुन बिचारब सोइ॥

प्रथम सर्ग

सप्तक-१

बानि बिनायकु अंब रबि, गुरु हर रमा रमेस।
सुमिरि करहु सब काज सुभ मंगल देस बिदेस॥ १॥
गुरु सरसइ सिंधुरबदन, ससि सुरसरि सुरगाइ।
सुमिरि चलहु मग मुदित मन, होइहि सुकृत सहाइ॥ २॥
गिरा गौरि गुरु गनप हर, मंगल मंगलमूल।
सुमिरत करतल सिद्धि सब, होइ ईस अनुकूल॥ ३॥
भरत भारती रिपुदवनु, गुरु गनेस बुधवार।
सुमिरत सुलभ सुधरम फल, बिद्या बिनय बिचार॥ ४॥

सुरगुरु गुरु सिय राम गन राउ गिरा उर आनि।
जो कछु करिय सो होइ सुभ, खुलहि सुमंगल खानि ॥ ५ ॥
सुक्र सुमिरि गुरु सारदा, गनपु लषनु हनुमान।
करिय काज सबु साजु भल, निपटहि नीक निदान ॥ ६ ॥
तुलसी तुलसी राम सिय, सुमिरि लषन हनुमान।
काजु बिचारेहु सो करहु, दिनु दिनु बड़ कल्यान ॥ ७ ॥

सप्तक—२

दसरथ राज न ईति-भय, नहिं दुख दुरित दुकाल।
प्रमुदित प्रजा प्रसन्न सब, सब सुख सदा सुकाल ॥ १ ॥
कौसल्यापद नाइ सिर, सुमिरि सुमित्रापाय।
करहु काज मंगल कुसल, बिधि हरि संभु सहाय ॥ २ ॥
बिधिबस बन मृगया फिरत, दीन्ह अंध मुनि साप।
सो सुनि बिपति बिषाद बड़, प्रजहि सोकु संताप ॥ ३ ॥
सुतहित बिनती कीन्हि नृप, कुलगुरु कहा उपाउ।
होइहि भल संतान सुनि, प्रमुदित कोसलराउ ॥ ४ ॥
पुत्रजागु करवाइ ऋषि, राजहिं दीन्ह प्रसाद।
सकल-सुमंगल-मूल जग, भूसुर-आसिरबाद ॥ ५ ॥
रामजनम घर घर अवध, मंगल गान निसान।
सगुन सुहावन होइ सुत, मंगल-मोद-निधान। ६ ॥
राम भरतु सानुज लषनु, दसरथ बालक चारि।
तुलसी सुमिरत सगुन सुभ, मंगल कहब पचारि ॥ ७ ॥

सप्तक-३

भूप-भवन भाइन्ह सहित, रघुबर बाल-बिनोद।
सुमिरत सब कल्यान जग, पग पग मंगल मोद ॥ १ ॥
कनबेध चूड़ाकरन, श्रीरघुबर-उपबीन।
समय सकल कल्यानमय, मंजुल मंगल गीत ॥ २ ॥
भरतु सत्रुसूदनु लषनु, सहित सुमिरि रघुनाथ।
करहु काज सुभ साज सब, मिलहि सुमंगल साथ ॥ ३ ॥
रामु लषनु कौसिक सहित, सुमिरहु करहु पयान।
लच्छि-लाभ जय जगत जसु, मंगल सगुन प्रमान ॥ ४ ॥

मुनि मखपाल कृपाल प्रभु, चरनकमल उर आनु ।
तजहु सोच संकट मिटिहि, सत्य सगुन जिय जानु ॥ ५ ॥
हानि मीचु दारिद दुरित, आदि-अंत-गत बीच ।
राम बिमुख अघ आपने, गए निसाचर नीच ॥ ६ ॥
सिला-साप-मोचन चरन, सुमिरहु तुलसीदास ।
तजहु सोच संकट मिटिहि, पूजहि मन कै आस ॥ ७ ॥

सप्तक—४

सीय-स्वयंबर समउ भल, सगुन साध सब काज ।
कीरति बिजय बिबाह बिधि, सकल सुमंगल काज ॥ १ ॥
राजत राजसमाज महँ, राम भंजि भवचाप ।
सगुन सुहावन लाभु बड़, जय पर-सभा प्रताप ॥ २ ॥
लाभ-मोद-मंगल-अवधि, सिय रघुबीर बिवाहु ।
सकल सिद्धिदायक समउ, सुभ सब काज उछाहु ॥ ३ ॥
कोसलपालक-बाल-उर, सिय मेली जयमाल ।
समउ सुहावन सगुन भल, मुद-मंगल सब काल ॥ ४ ॥
हरषि बिबुध बरषहिं सुमन, मंगल गान निसान ।
जय जय रबिकुल-कमल-रबि, मंगल-मोद-निधान ॥ ५ ॥
सतानंद पठये जनक, दसरथ सहित समाज ।
आये तिरहुति सगुन सुभ, भए सिद्ध सब काज ॥ ६ ॥
दसरथ पूरन परब-बिधु, उदित समय संजोग ।
जनकनगर सर कुमुदगन, तुलसी प्रमुदित लोग ॥ ७ ॥

सप्तक—५

मन मलीन मानी महिप, कोक कोकनद बृंद ।
सुहृद-समाज चकोर चित, प्रमुदित परमानंद ॥ १ ॥
तेहि अवसर रावन-नगर, असगुन असुभ अपार ।
होहिं हानि-भय-मरन-दुख-सूचक बारहि बार ॥ २ ॥
मधु माधव दसरथ जनक, मिलब राज ऋतुराज ।
सगुन सुबन नव दल सुतरु, फूलत फलत सुकाज ॥ ३ ॥
बिनय-पराग सुप्रेम रस, सुमन सुभग संबाद ।
कुसुमित काज रसाल तरु, सगुन सुकोकिल-नाद ॥ ४ ॥

उदित भानुकुल-भानु लखि, लुके उलूक नरेस ।
गए गँवाइ गरूर पति, धनु मिस हये महेस ।। ५ ।।
चारि चारु दसरथ कुँवर, निरखि मुदित पुर लोग ।
कोसलेस मिथिलेस को, समउ सराहन जोग ।। ६ ।।
एक बितान बिवाहि सब, सुवन सुमंगल रूप ।
तुलसी सहित समाज सुख, सुकृत-सिंधु दोउ भूप ।। ७ ।।

सप्तक—६

दाइज भयउ अनेक बिधि, सुनि सिहाहिं दिसिपाल ।
सुख संपति संतोषमय, सगुन सुमंगल-माल ।। १ ।।
बर दुलहिनि सब परसपर, मुदित पाइ मनकाम ।
चारु चारि जोरी निरखि, दुहुँ समाज अभिराम ।। २ ।।
चारिउ कुँवर बियाहि पुर, गवने दसरथ राउ ।
भए मंजु मंगल सगुन, गुरु-सुर-संभु-पसाउ ।। ३ ।।
पंथ परसुधर आगमनु, समय सोच सब काहु ।
राजसमाज बिषाद बड़, भयबस मिटा उछाहु ।। ४ ।।
रोष कलुष लोचन भ्रुकुटि, पानि परसु धनु बान ।
काल कराल बिलोकि मुनि, सब समाज बिलखान ।। ५ ।।
प्रभुहिं सौंपि सारंग मुनि, दीन्ह सुआसिरबाद ।
जय मंगल सूचक सगुन, राम-राम-संबाद ।। ६ ।।
अवध अनंद बधावनो, मंगल गान निसान ।
तुलसी तोरन कलस पुर, चँवर पताक बितान ।। ७ ।।

सप्तक—७

साजि सुमंगल आरती, रहस बिबस रनिवासु ।
मुदित मातु परिछन चलीं, उमगत हृदय हुलासु ।। १ ।।
करहिं निछावरि आरती, उमगि उमगि अनुराग ।
बर दुलहिनि अनुरूप लखि, सखी सराहहिं भाग ।। २ ।।
मुदित नगर नर नारि सब, सगुन सुमंगल मूल ।
जय धुनि मुनि सुर दुंदुभी, बाजहिं बरषहिं फूल ।। ३ ।।
आए कोसलपाल पुर, कुसल समाज समेत ।
समउ सुमन सुमिरत सुखद, सकल सिद्धि सुभ देत ।। ४ ।।

रूप सील बय बंसगुन, सम बिवाह भये चारि ।
मुदित राउ रानी सकल, सानुकूल त्रिपुरारि ॥ ५ ॥
बिधि हरि हर अनुकूल अति, दसरथ राजहि आजु ।
देखि सराहत सिद्ध सुर, संपति समउ समाजु ॥ ६ ॥
सगुन प्रथम उनचास सुभ, तुलसी अति अभिराम ।
सब प्रसन्न सुर भूमिसुर, गोगन गंगा राम ॥ ७ ॥

द्वितीय सर्ग

सप्तक–१

समय राम-जुवराज कर, मंगल मोद-निकेतु ।
सगुन सुहावन संपदा, सिद्धि सुमंगल हेतु ॥ १ ॥
सुर-माया-बस केकयी, कुसमय कीन्हि कुचालि ।
कुटिल नारि मिस होइ छलु, अनभल आजु कि कालि ॥ २ ॥
कुसमय कुसगुन कोटि सम, राम-सीय-बनबास ।
अनरथ-अनभल-अवधि जग, जानब सरबस-नास ॥ ३ ॥
सोचत पुर-परिजन सकल, बिकल राउ-रनिवास ।
छल-मलीन मन तीयमिस, बिपति बिषाद बिनास ॥ ४ ॥
लषन-राम-सिय-बनगमनु, सकल अमंगल-मूल ।
सोच पोच संताप बस, कुसमय संसय-सूल ॥ ५ ॥
प्रथम बास सुरसरि-निकट, सेवा कीन्हि निषाद ।
कहब सुभासुभ सगुन फल, बिसमय हरष बिषाद ॥ ६ ॥
चले नहाइ प्रयाग प्रभु, लषन सीय रघुराज ।
तुलसी जानब सगुन फल, होइहि साधु समाज ॥ ७ ॥

सप्तक–२

सीय रामु लोने लषनु, तापस-बेष अनूप ।
तप तीरथ जप जाग हित, सगुन सुमंगल रूप ॥ १ ॥
सीता-लषन-समेत प्रभु, जमुना उतरि नहाइ ।
चले सकल संकट-समन, सगुन सुमंगल पाइ ॥ २ ॥

अवध सोक-संताप बस, बिकल सकल नर-नारि ।
बाम बिधाता राम-बिनु, माँगत मीचु पुकारि ॥ ३ ॥
लषन सीय रघुबंसमनि, पथिक पाय उर आनि ।
चलहु अगम मग सुगम सुभ, सगुन सुमंगल खानि ॥ ४ ॥
ग्राम-नारि-नर मुदित मन, लषन राम सिय देखि ।
होइ प्रीति पहिचान बिनु, मान बिदेस बिसेषि ॥ ५ ॥
बन मुनिगन रामहिं मिलहिं, मुदित सुकृत फल पाइ ।
सगुन सिद्ध साधक दरस, अभिमत होइ अघाइ ॥ ६ ॥
चित्रकूट पयतीर प्रभु, बसे भानुकुल-भानु ।
तुलसी तप जप जोग हित, सगुन सुमंगल जानु ॥ ७ ॥

सप्तक—३

हंसबंस-अवतंस जब, कीन्ह बास पय पास ।
तापस साधक सिद्ध मुनि, सब कहँ सगुन सुपास ॥ १ ॥
बिटप बेलि फूलहिं फलहिं, जल थल बिमल बिसेषि ।
मुदित किरात बिहंग मृग, मंगल-मूरति देखि ॥ २ ॥
सींचति सीय सरोज-कर, बये बिटप बट बेलि ।
समउ सुकालु किसानहित, सगुन सुमंगल केलि ॥ ३ ॥
हय हाँके फिरि दखिन दिसि, हेरि हेरि हिहिनात ।
भये निषाद बिषाद बस, अवध सुमंतहि जात ॥ ४ ॥
सचिव सोच ब्याकुल सुनत, असगुन अवध प्रवेस ।
समाचार सुनि सोकबस, माँगी मीचु नरेस ॥ ५ ॥
राम राम कहि राम सिय, रामसरन भये राउ ।
सुमिरहु सीता राम अब, नाहिंन आन उपाउ ॥ ६ ॥
रामबिरह दसरथमरनु, मुनि मन अगम सुमीचु ।
तुलसी मंगल मरन-तरु, सुचि सनेह जल सींचु ॥ ७ ॥

सप्तक—४

धीर बीर रघुबीर प्रिय, सुमिरि समीरकुमारु ।
अगम सुगम सब काज करु, करतल सिद्धि बिचारु ॥ १ ॥
सुमिरि सत्रुसूदन-चरन, सगुन सुमंगल मानि ।
परपुर बाद-बिबाद-जय, जूझ जुआ जय जानि ॥ २ ॥

सेवक सखा सुबंधु हित, सगुन बिचारु बिसेषि ।
भरत नाम गुनगन बिमल, सुमिरि सत्य सब लेषि ॥ ३ ॥
साहिब समरथ सीलनिधि, सेवत सुलभ सुजान ।
राम सुमिरि सेइय सुप्रभु, सगुन कहब कल्यान ॥ ४ ॥
सुकृत-सील-सोभा-अवधि, सीय सुमंगल-खानि ।
सुमिरि सगुन तियधरम हित, कहब सुमंगल जानि ॥ ५ ॥
ललित लषनमूरति हृदय आनि धरे धनुबान ।
करहु काज सुभ सगुन सब, मुद मंगल कल्यान ॥ ६ ॥
रामनाम पर रामते, प्रीति प्रतीति भरोस ।
सो तुलसी सुमिरत सकल, सगुन सुमंगल कोस ॥ ७ ॥

सप्तक-५

गुरु आयसु आए भरत, निरखि नगर-नर-नारि ।
सानुज सोचत पोच बिधि, लोचन मोचत बारि ॥ १ ॥
भूप-मरन प्रभु-बन-गवनु, सब बिधि अवध अनाथ ।
रोवत समुझि कुमातु-कृत, मींजि हाथ धुनि माथ ॥ २ ॥
बेद-बिहित पितु-करम करि, लिये संग सब लोग ।
चले चित्रकूटहिं भरत, ब्याकुल राम-बियोग ॥ ३ ॥
रामदरसु हिय हरषु बड़, भूपति-मरन-बिषादु ।
सोचत सकल समाज सुनि, राम-भरत-संबादु ॥ ४ ॥
सुनि सिष आसिष, पाँवरी, पाइ, नाइ पद माथ ।
चले अवध संतापबस बिकल लोग सब साथ ॥ ५ ॥
भरत-नेम ब्रत धरम सुभ, रामचरन-अनुराग ।
सगुन समुझि साहस करिय, सिद्ध होइ जप जाग ॥ ६ ॥
चित्रकूट सब दिन बसत, प्रभु सिय-लषन समेत ।
रामनाम-जप जापकहि, तुलसी अभिमत देत ॥ ७ ॥

सप्तक-६

पय पावनि, बनभूमि भलि, सैल सुहावन पीठ ।
रागिहि सीठ बिसेषि थलु, बिषय-बिरागिहि मीठ ॥ १ ॥
फटिक-सिला मंदाकिनी, सिय-रघुबीर-बिहार ।
रामभगत हित सगुन सुभ, भूतल भगतिभँडार ॥ २ ॥

सगुन सकल-संकट-समन, चित्रकूट चलि जाहु ।
सीता-राम-प्रसाद सुभ, लघु साधन बड़ लाहु ॥ ३ ॥
दिये अत्रितिय जानकिहिं, बसन बिभूषन भूरि ।
रामकृपा संतोष सुख, होहि सकल दुख दूरि ॥ ४ ॥
काककुचालि, बिराधबध, देह तजी सरभंग ।
हानि-मरन-सूचक सगुन, अनरथ-असुभ प्रसंग ॥ ५ ॥
राम लषन मुनिगन मिलन, मंजुल मंगल-मूल ।
संत समाज तब होइ जब, रमा राम अनुकूल ॥ ६ ॥
मिले कुंभसंभव मुनिहि, लषन सीय रघुराज ।
तुलसी साधु-समाज-सुख, सिद्ध दरस सुभ काज ॥ ७ ॥

सप्तक–७

सुनि मुनि आयसु प्रभु कियो, पंचवटी बसबास ।
भइ महि पावनि परसि पद, भा सब भाँति सुपास ॥ १ ॥
सरित सरोवर सजल सब, जलज बिपुल बहुरंग ।
समउ सुहावन सगुन सुभ, राजा प्रजा प्रसंग ॥ २ ॥
बिटप बेलि फूलहि फलहिं, सीतल सुखद समीर ।
मुदित बिहँग मृग मधुप गन बनपालक दोउ बीर ॥ ३ ॥
मोदाकर गोदावरी, बिपिन सुखद सब काल ।
निर्भय मुनि जप तप करहिं, पालक राम कृपाल ॥ ४ ॥
भेंट गीध रघुराज सन, दुहुँ दिसि हृदय हुलासु ।
सेवक पाइ सुसाहिबहि, साहिब पाइ सुदासु ॥ ५ ॥
पढ़हिं पढ़ावहिं मुनितनय, आगम निगम पुरान ।
सगुन सुबिद्या लाभहित, जानब समय समान ॥ ६ ॥
निज कर सींचति जानकी, तुलसी लाइ रसाल ।
सुभ दूती उनचास भलि, बरषा कृषी सुकाल ॥ ७ ॥

तृतीय सर्ग

सप्तक–१

दंडकबन पावन-करन, चरन-सरोज प्रभाउ।
ऊसर जामहिं खल तरहिं होइँ रंक तें राउ॥ १॥
कपटरूप मन-मलिन गइ, सूपनखा प्रभु पास।
कुसगुन कठिन कुनारि-कृत, कलह कलुष उपहास॥ २॥
नाक कान बिनु बिकल भइ, बिकट कराल कुरूप।
कुसगुन, पाउ न देब मग, पग पग कंटक कूप॥ ३॥
खर दूषन देखी दुखित चले साजि सब साज।
अनरथ असगुन अघ असुभ, अनभल अखिल अकाज॥ ४॥
कटु कुठाय करटा रटहिं, फेकरहिं फेरु कुभाँति।
नीच निसाचर मीचु-बस अनी मोह-मद-माति॥ ५॥
राम-रोष-पावक प्रबल, निसिचर सलभ समान।
लरत परत जरि जरि मरत, भय भसम जगु जान॥ ६॥
सीता लषन समेत प्रभु सोहत तुलसीदास।
हरषत सुर बरषत सुमन, सगुन सुमंगल बास॥ ७॥

सप्तक–२

सुभट सहस चौदह सहित, भाइ कालबस जानि।
सूपनखा लंकहि चली असुभ अमंगल-खानि॥ १॥
बसन सकल सोनित-समल, बिकट बदन गत गात।
रोवति रावन की सभा, तात मात, हा! भ्रात॥ २॥
काल कि मूरति कालिका, कालराति बिकराल।
बिनु पहिचाने लंकपति, सभा सभय तेहि काल॥ ३॥
सूपनखा सब भाँति गत, असुभ अमंगल-मूल।
समय साढ़साती सरिस, नृपहिं प्रजहिं प्रतिकूल॥ ४॥
बरबस गवनत रावनहिं, असगुन भए अपार।
नीचु गनत नहिं मीचुबस मिलि मारीच बिचार॥ ५॥

इत रावन, उत राम-कर, मीचु जानि मारीच ।
कपट कनक-मृग-बेष तब, कीन्ह निसाचर नीच ॥ ६ ॥
पंचबटी बट बिटपतर, सीता लषन समेत ।
सोहत तुलसीदास प्रभु, सकल सुमंगल देत ॥ ७ ॥

सप्तक-३

मायामृग पहिचानि प्रभु, चले सीय-रुचि जानि ।
बंचक चोर प्रपंचकृत, सगुन कहब हितहानि ॥ १ ॥
मोयहरन अवसर सगुन, भय संसय संताप ।
नारि-काज-हित निपट गत, प्रगट पराभव पाप ॥ २ ॥
गीधराज रावन समर, घायल बीर बिराज ।
सूर सुजसु संग्राम महि, मरनु सुसाहिब काज ॥ ३ ॥
राम लषनु बन बन बिकल, फिरत सीय सुधि लेत ।
सूचत सगुन बिषादु बड़, असुभ अरिष्ट अचेत ॥ ४ ॥
रघुबर बिकल बिहंग लखि, सो बिलोकि दोउ बीर ।
सिय सुधि कहि 'सिय राम' कहि, तजी देह मतिधीर ॥ ५ ॥
दसरथ ते दसगुन भगति, सहित तासु करि काज ।
सोचत बंधुसमेत प्रभु, कृपासिंधु रघुराज ॥ ६ ॥
तुलसी सहित सनेह नित, सुमिरहु सीताराम ।
सगुन सुमंगल सुभ सदा, आदि मध्य परिनाम ॥ ७ ॥

सप्तक-४

सकल काज सुभ समउ भल सगुन सुमंगल जानु ।
कीरति बिजय बिभूति भलि, हिय हनुमानहिं आनु ॥ १ ॥
सुमिरि सत्रुसूदन-चरन, चलहु करहु सब काज ।
सत्रु-पराजय नित बिजय, सगुन सुमंगल साज ॥ २ ॥
भरत नाम सुमिरत मिटहिं, कपट कलेस कुचालि ।
नीति प्रीति परतीति हित, सगुन सुमंगल सालि ॥ ३ ॥
रामनाम कलि कामतरु, सकल सुमंगल कंद ।
सुमिरत करतल सिद्धि जग, पग पग परमानंद ॥ ४ ॥
सीताचरन प्रनामु करि, सुमिरि सुनामु सनेम ।
सुतिय होहि पतिदेवता, प्राननाथ प्रिय प्रेम ॥ ५ ॥

लषन ललित मूरति मधुर, सुमिरहु सहित सनेह।
सुख संपति कीरति बिजय, सगुन सुमंगल गेह ॥ ६ ॥
तुलसी तुलसी मंजरी, मंगल मंजुल मूल।
देखत सुमिरत सगुन सुभ, कलपलता फल फूल ॥ ७ ॥

सप्तक–५

खलबल अंध कबंध बस, परे सुबंधु समेत।
सगुन सोच संकट कहब, भूत प्रेत दुख देत ॥ १ ॥
पाई नीच सुमीचु भलि, मिटा महामुनि साप।
बिहँग-मरन, सिय सोचु मन, सगुन सभय संताप ॥ २ ॥
कहि सबरी सब सीय-सुधि, प्रभु सराहि फल खात।
सोच समय संतोष सुनि, सगुन सुमंगल बात ॥ ३ ॥
पवनसुवन सन भेंट भइ, भूमिसुता सुधि पाइ।
सोचविमोचन सगुन सुभ, मिला सुसेवक आइ ॥ ४ ॥
राम लखन हनुमान मन, दुहुँ दिसि परम उछाहु।
मिला सुसाहिब सेवकहिं, प्रभुहिं सुसेवक लाहु ॥ ५ ॥
कीन्ह सखा सुग्रीव प्रभु, दीन्हि बाह रघुबीर।
सुभ सनेह हित सगुन फलु, मिटइ सोच भयभीर ॥ ६ ॥
बली बालि बलसालि दलि, सखा कीन्ह कपिराज।
तुलसी राम कृपालु को, बिरद गरीबनेवाज ॥ ७ ॥

सप्तक–६

बंधुबिरोध न कुसल कुल, कुसगुन कोटि कुचालि।
रावनरवि को राहु सो, भयो कालबस बालि ॥ १ ॥
कीन्ह बास बरषा निरखि, गिरिबर सानुज राम।
काज बिलंबित सगुन फल, होइहि भल परिनाम ॥ २ ॥
सीय-सोध कपि भालु सब, बिदा किये कपिनाथ।
जतन करहु आलस तजहु, नाइ रामपद माथ ॥ ३ ॥
हनूमान हिय हरषि तब, राम जोहारे जाइ।
मंगलमूरति मारुतिहिं, सादर लीन्ह बुलाइ ॥ ४ ॥
डाँटे बानर भालु सब, अवधि गये बिन काज।
जो आइहि सो कालबस, कोपि कहा कपिराज ॥ ५ ॥

जानि-सिरोमनि जानि जिय, कपि बल-बुद्धि-निधानु ।
दीन्हि मुद्रिका मुदित प्रभु, पाइ मुदित हनुमानु ॥ ६ ॥
तुलसी करतल सिद्धि सब, सगुन सुमंगल साज ।
करि प्रनाम रामहि चलहु, साहस सिद्ध सुकाज ॥ ७ ॥

सप्तक—७

नाथ हाथ माथे धरेउ, प्रभु-मुँदरी मुहँ मेलि ।
चलेउ सुमिरि सारंगधर, आनिहि सिद्धि सकेलि ॥ १ ॥
संग नील नल कुमुद गद, जामवंतु जुवराज ।
चले रामपद नाइ सिर, सगुन सुमंगल साज ॥ २ ॥
पैठि बिवर मिलि तापसिहि, अचइ पानि, फल खाइ ।
सगुन सिद्ध साधक दरस, अभिमत होइ अघाइ ॥ ३ ॥
बनचर बिकल बिपाद-बस, देखि उदधि अवगाह ।
असमंजस बड़ सगुन गत, बिधिबस होइ निबाह ॥ ४ ॥
सब सभीत संपाति लखि, हहरे हृदय हरास ।
कहत परस्पर गीध-गति, परिहरि जीवन-आस ॥ ५ ॥
नव तनु पाइ देखाइ प्रभु, महिमा कथा सुनाइ ।
धरहु धीर साहसु करहु, मुदित सीय-सुधि पाइ ॥ ६ ॥
तुलसी रामप्रभाउ कहि, मुदित चले संपाति ।
सुभ तीसर उनचास भल, सगुन सुमंगल पाँति ॥ ७ ॥

चतुर्थ सर्ग

सप्तक—१

रामजनम सुभ सगुन भल, सकल सुकृत सुखसारु ।
पुत्रलाभ कल्यानु बड़, मंगलचारु बिचारु ॥ १ ॥
दसरथ कुलगुरु की कृपा, सुतहित जाग कराइ ।
पायस पाइ बिभाग करि, रानिन्ह दीन्ह बुलाइ ॥ २ ॥
सब सगरभ सोहहिं सदन, सकल सुमंगलखानि ।
तेज प्रताप प्रसन्नता, रूप न जाहिं बखानि ॥ ३ ॥

देखि सुहावन सपन सुभ, सगुन सुमंगल पाइ।
कहहिं भूप सन मुदित मन, हर्ष न हृदय समाइ ॥ ४ ॥
सपन सगुन सुनि राउ कह, कुलगुरु-आसिरबाद।
पूजिहि सब मनकामना, संकर-गौरि-प्रसाद ॥ ५ ॥
मास पाख तिथि जोग सुभ, नखत लगन ग्रह वार।
सकल सुमंगल मूल जग, राम लीन्ह अवतार ॥ ६ ॥
भरत लषन रिपुदवन सब, सुवन सुमंगल मूल।
प्रगट भये नृप सुकृतफल, तुलसी बिधि अनुकूल ॥ ७ ॥

सप्तक—२

घर घर अवध बधावने, मुदित नगर-नर-नारि।
बरषि सुमन हरषहिं बिबुध, बिधि त्रिपुरारि मुरारि ॥ १ ॥
मंगलगान निसान नभ, नगर मुदित नरनारि।
भूप-सुकृत-सुरतरु निरखि फरे चारु फल चारि ॥ २ ॥
पुत्रकाज कल्यान नृप, दिये दान बहु भाँति।
सहस दिवस रनिवास सब, मुद मंगल दिन राति ॥ ३ ॥
अनुदिन अवध बधावने, नित नव मंगल मोद।
मुदित मातु पितु लोग लखि, रघुबर बालविनोद ॥ ४ ॥
करनवेध चूड़ाकरन, लौकिक वैदिक काज।
गुरु-आयसु भूपति करत, मंगल साज समाज ॥ ५ ॥
राज-अजिर राजत रुचिर, कोसलपालक बाल।
जानु-पानि-चर चरित बर, सगुन सुमंगल माल ॥ ६ ॥
बड़े मातु पितु भागबस, सुत जग जलधि ललाम।
पुत्र-लाभ-हित सगुन सुभ, तुलसी सुमिरहु राम ॥ ७ ॥

सप्तक—३

बाल बिभूषन-बसन-धर, धूरि-धूसरित अंग।
बालकेलि रघुबर करत, बालबंधु सब संग ॥ १ ॥
राम भरत लछिमन ललित, सत्रुसमन सुभ नाम।
सुमिरत दसरथसुवन सब, पूजिहि सब मनकाम ॥ २ ॥
नाम ललित, लीला ललित, ललित रूप रघुनाथ।
ललित बसन भूषन ललित, ललित अनुज-सिसु साथ ॥ ३ ॥

सुदिन साधि मंगल किये, दिये भूप व्रतबंध।
अवध बधाव बिलोकि सुर, बरपत सुमन सुगंध ॥ ४ ॥
भूपति भूसुर भाट नट, जाचक पुर-नर-नारि।
दिये दान सनमानि सब, पूजे कुल-अनुहारि ॥ ५ ॥
सखी सुआसिनि बिप्रतिय, सनमानी सब राय।
ईस मनाय असीस सुभ, देहिं सनेह सुभाय ॥ ६ ॥
रामकाज कल्यान सब, सगुन सुमंगल मूल।
चिरजीवहु तुलसीस सब, कहि सुर बरपहिं फूल ॥ ७ ॥

सप्तक–४

रामजनम सुभकाज सब, कहत देवऋषि आइ।
सुनि सुनि मन हनुमान के, प्रेम उमँग न अमाइ ॥ १ ॥
भरतु स्यामतन राम सम, सब गुन रूपनिधान।
सेवक सुखदायक सुलभ, सुमिरत सब कल्यान ॥ २ ॥
ललित लाहु लोने लपनु, लायन-लाहु निहारि।
सुत ललाम लालहु ललित, लेहु ललकि फल चारि ॥ ३ ॥
मंगलमूरति मोदनिधि, मधुर मनोहर बेप।
राम-अनुग्रह पुत्रफल, होइहि सगुन बिसेप ॥ ४ ॥
सोभत मख महि जनकपुर, सीय सुमंगलखानि।
भूपति पुन्य-पयोधि जनु, रमा प्रगट भइ आनि ॥ ५ ॥
नाम सत्रुसूदन सुभग, सुखमा-सील-निकेत।
सेवत सुमिरत सुलभ सुख, सकल सुमंगल देत ॥ ६ ॥
बालक कोसलपाल के सेवकपाल कृपाल।
तुलसी मनमानस बसत, मंगल मंजु मराल ॥ ७ ॥

सप्तक–५

जनकनंदिनी जनकपुर, जब तें प्रगटीं आइ।
तब तें सब सुख संपदा, अधिक अधिक अधिकाइ ॥ १ ॥
सीय स्वयंवर जनकपुर, सुनि सुनि सकल नरेस।
आए साज समाज सजि, भूपन बसन सुदेस ॥ २ ॥
चले मुदित कौसिक अवध, सगुन सुमंगल साथ।
आए सुनि सनमानि गृह, आने कोसलनाथ ॥ ३ ॥

सादर सोरह भाँति नृप पूजि पहुनई कीन्हि ।
बिनय बड़ाई देखि मुनि, अभिमत आसिष दीन्हि ॥ ४ ॥
मुनि माँगे दसरथ दिये, रामु लषनु दोउ भाइ ।
पाइ सगुन फल सुकृत-फल, प्रमुदित चले लेवाइ ॥ ५ ॥
स्यामल गौर किसोर बर, धरे तून धनु बान ।
सोहत कौसिक सहित मग, मुद मंगल कल्यान ॥ ६ ॥
सैल सरित सर बाग बन, मृग बिहंग बहुरंग ।
तुलसी देखत जात प्रभु, मुदित गाधिसुत संग ॥ ७ ॥

सप्तक–६

लेत बिलोचन-लाभु सब, बड़भागी मगलोग ।
रामकृपा दरसनु सुगम, अगम जाग जप जोग ॥ १ ॥
जलदछाँह मृदु मग अवनि, सुखद पवन अनुकूल ।
हरषत बिबुध बिलोकि प्रभु, बरषत सुरतरु-फूल ॥ २ ॥
दले मलिन खल, राखि मख, मुनि सिख आसिष दीन्हि ।
बिद्या बिस्वामित्र सब, सुथल समरपित कीन्हि ॥ ३ ॥
अभय किए मुनि राखि मखु धरे बान धनु भाथ ।
धनु मख कौतुक जनकपुर, चले गाधिसुत साथ ॥ ४ ॥
गौतमतिय-तारन चरन, कमल आनि उर देपु ।
सकल सुमंगल सिद्धि सब, करतल सगुन बिसेपु ॥ ५ ॥
जनक पाइ प्रिय पाहुने, पूजे पूजन जोगु ।
बालक कोसलपाल के, देखि मगन पुरलोगु ॥ ६ ॥
मनमाने आने सदन, पूजे अति अनुराग ।
तुलसी मंगल सगुन सुभ, भूरि भलाई भाग ॥ ७ ॥

सप्तक–७

कौसिक देखन धनुष मख, चले संग दोउ भाइ ।
कुँवर निरखि पुर नारि नर, मुदित नयनफल पाइ ॥ १ ॥
भूपसभा भवचाप दलि, राजत राजकिसोर ।
सिद्धि सुमंगल सगुन सुभ, जय जय जय सब ओर ॥ २ ॥
जयमय मंजुल माल उर, मंगलमूरति देपि ।
गान निसान प्रसून झरि, मंगल मोद बिसेषि ॥ ३ ॥

समाचार सुनि अवधपति, आए सहित समाज।
प्रीति परस्पर मिलत मुद, सगुन सुमंगल साज ॥ ४ ॥
गान निसान बितान बर, बिरचे बिबिध बिधान।
चारि बिबाह उछाह बड़, कुसल काज कल्यान ॥ ५ ॥
दाइज पाइ अनेक बिधि, सुत सुतबधुन समेत।
अवधनाथु आए अवध, सकल सुमंगल लेत ॥ ६ ॥
चौथ चारु उनचास पुर, घर घर मंगलचार।
तुलसिहि सब दिन दाहिने, दसरथ राजकुमार ॥ ७ ॥

पंचम सर्ग

सप्तक–१

रामनाम कलि-कामतरु, रामभगति सुरधेनु।
सगुन सुमंगल मूल जग, गुरु-पद-पंकज-रेनु ॥ १ ॥
जलधि-पार मानस अगम, रावन-पालित लंक।
सोच बिकल कपि भालु सब, दुहुँ दिसि संकट संक ॥ २ ॥
जामवंत हनुमंत बलु, कहा पचारि पचारि।
राम सुमिरि साहसु करिय, मानिय हिये न हारि ॥ ३ ॥
रामकाज लगि जनमु जग, सुनि हरषे हनुमान।
होइ पुत्र फलु सगुन सुभ, राम भगतु बलवान ॥ ४ ॥
कहत उछाहु बड़ाइ कपि, साथी सकल प्रबोधि।
लागत रामप्रसाद मोहिं, गोपद सरिस पयोधि ॥ ५ ॥
राखि तोपि सबु साथ सुभ, सगुन सुमंगल पाइ।
कूदि कुधर चढ़ि आनि उर, सीय सहित दोउ भाइ ॥ ६ ॥
हरषि सुमन बरषत बिबुध, सगुन सुमंगल होत।
तुलसी प्रभु लंघेउ जलधि, प्रभुप्रताप करि पोत ॥ ७ ॥

सप्तक–२

राहुमातु माया-मलिन, मारो मारुतपूत।
समय सगुन मारग मिलहिं, छल मलीन खल धूत ॥ १ ॥

पूजा पाइ मिनाक पहिं, सुरसा कपि संबादु ।
मारग अगम सहाय सुभ, होइहि रामप्रसादु ॥ २ ॥
लंका लोलुप लंकिनी, काली काल कराल ।
काल करालहि दीन्हि बलि, कालरूप कपिकाल ॥ ३ ॥
मसकरूप दसकंधपुर, निसि कपि घर घर देषि ।
सीय बिलोकि असोक तर, हरष बिषाद बिसेषि ॥ ४ ॥
फरकत मंगल अंग सिय, बाम बिलोचन बाहु ।
त्रिजटा सुनि कह सगुन फल, प्रिय सँदेस बड़ लाहु ॥ ५ ॥
सगुन समुझि त्रिजटा कहति, सुनु, सिय ! अबहीं आजु ।
मिलिहि रामसेवक कहिहि, कुसल लषनु रघुराजु ॥ ६ ॥
तुलसी प्रभु गुनगन बरनि, आपनि बात जनाइ ।
कुसल खेम सुग्रीवपुर, रामु लषनु दोउ भाइ ॥ ७ ॥

सप्तक—३

सुरुष जानकी जानि कपि, कहे सकल संकेत ।
दीन्हि मुद्रिका, लीन्हि सिय, प्रीति प्रतीति समेत ॥ १ ॥
पाइ नाथ कर मुद्रिका, सियहिय हरष बिषादु ।
प्राननाथ प्रिय सेवकहिं, दीन्ह सुआसिरबादु ॥ २ ॥
नाथ-सपथ पन रोपि कपि, कहत चरन सिरु नाइ ।
नहिं बिलंब, जगदंब ! अब आइ गये दोउ भाइ ॥ ३ ॥
समाचार कहि सुनत प्रभु, सानुज सहित सहाय ।
आए अब रघुबंसमनि, सोचु परिहरिय माय ॥ ४ ॥
गए सोच संकट सकल, भए सुदिन जिय जानु ।
कौतुक सागर सेतु करि, आये कृपानिधानु ॥ ५ ॥
सकुल सदल जमराजपुर, चलन चहत दसकंधु ।
काल न देखत कालबस, बीस-बिलोचन-अंधु ॥ ६ ॥
आसिष आयसु पाइ कपि, सीयचरनु सिर नाइ ।
तुलसी रावन-बाग-फल, खात बराइ बराइ ॥ ७ ॥

सप्तक–४

सूर-सिरोमनि साहसी, सुमति समीरकुमार ।
सुमिरत सब सुख संपदा, मुद-मंगल-दातार ॥ १ ॥

सत्रुसमन पद-पंकरुह, सुमिरि करहु सब काज ।
कुसल खेम कल्यान सुभ, सगुन सुमंगल साज ॥ २ ॥
भरत भलाई की अवधि, सील सनेह निधान ।
धरम भगति भायप समय, सगुन कहब कल्यान ॥ ३ ॥
सेवकपाल कृपालचित, रविकुल-कैरवचंद ।
सुमिरि करहु सब काज सुभ, पग पग परमानंद ॥ ४ ॥
सियपद सुमिरि सुतीय हित, सगुन सुमंगल जान ।
स्वामि सोहागिल, भाग बड़, पुत्रकाजु कल्यान ॥ ५ ॥
लछिमन पदपंकज सुमिरि सगुन सुमंगल पाइ ।
जय बिभूति कीरति कुसल, अभिमत लाभु अघाइ ॥ ६ ॥
तुलसी कानन कमलबन, सकल सुमंगल बास ।
राम-भगति-हित सगुन सुभ, सुमिरत तुलसीदास ॥ ७ ॥

सप्तक—५

रूख निपातत, खात फल रच्छक अच्छ निपाति ।
कालरूप बिकराल कपि, सभय निसाचर जाति ॥ १ ॥
बनु उजारि जारेउ नगर, कूदि कूदि कपिनाथ ।
हाहाकार पुकार सब, आरत मारत माथ ॥ २ ॥
पूँछ बुताइ प्रबोधि सिय, आइ गहे प्रभु पाय ।
खेम कुसल जय जानकी, जय जय जय रघुराय ॥ ३ ॥
सुनि प्रमुदित रघुबंसमनि, सानुज सेन समेत ।
चले सकल मंगल सगुन, बिजय सिद्धि कहि देत ॥ ४ ॥
रामपयान निसान नभ, बाजहिं गाजहिं बीर ।
सगुन सुमंगल समर जय, कीरति कुसल सरीर ॥ ५ ॥
कृपासिंधु प्रभु सिंधु सन, माँगेउ पंथु न देत ।
बिनय न मानहिं जीव जड़, डाँटे नवहिं अचेत ॥ ६ ॥
लाभु लाभु लोवा कहत, छेमकरी कह छेम ।
चलत बिभीषन सगुन सुनि, तुलसी पुलकत पेम ॥ ७ ॥

सप्तक—६

पाहि पाहि असरन-सरन, प्रनतपाल रघुराज ।
दियो तिलक लंकेसु कहि, राम गरीबनेवाज ॥ १ ॥

लंक असुभ चरचा चलति हाट, बाट, घर, घाट।
रावन सहित समाज अब, जाइहि बारह बाट ॥ २ ॥
ऊकपात, दिकदाह दिन, फेकरहि स्वान सियार।
उदित केतु, गतहेतु महि, कंपति बारहिं बार ॥ ३ ॥
रामकृपा कपि भालु करि, कौतुक सागर सेतु।
चले पार बरषत बिबुध, सुमन सुमंगल हेतु ॥ ४ ॥
नीच निसाचर मीचु बस, चले साजि चतुरंग।
प्रभु-प्रताप-पावक प्रबल, उड़ि उड़ि परत पतंग ॥ ५ ॥
साजि साजि बाहन चलहि, जातुधानु बलवानु।
असगुन असुभ न गनहि गत, आइ कालु नियरानु ॥ ६ ॥
लरत भालु कपि सुभट सब, निदरि निसाचर घोर।
सिर पर समरथ राम सो, साहिब, तुलसी तोर ॥ ७ ॥

सप्तक—७

मेघनादु, अतिकाय भट, परे महोदर खेत।
रावन भाइ जगाइ तब, कहा प्रसंगु अचेत ॥ १ ॥
उठि बिसाल बिकराल बड़, कुंभकरनु जमुहान।
लखि सुदेस कपि भालु दल, जनु दुकाल समुहान ॥ २ ॥
राम स्याम बारिद सघन, बसन सुदामिनि माल।
बरषत सर हरषत बिबुध, दला दुकालु दयाल ॥ ३ ॥
राम रावनहि परसपर, होति रारि रन घोर।
लरत पचारि पचारि भट, समर सोर दुहुँ ओर ॥ ४ ॥
बीस बाहु, दस सीस दलि, खंड खंड तनु कीन्ह।
सुभट-सिरोमनि लंकपति, पाछे पाउ न दीन्ह ॥ ५ ॥
बिबुध बजावत दुंदुभी, हरषत बरषत फूल।
राम बिराजत जीति रन, सुर सेवक अनुकूल ॥ ६ ॥
लंका थापि बिभीषनहिं, बिबुध बसाइ सुबास।
तुलसी जय मंगल कुसल, सुभ पंचम उनचास ॥ ७ ॥

रामनाम रति, नामगति, राम नाम बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, तुलसी तुलसीदास ॥ ७ ॥

सप्तक—५

बिप्र एक बालक मृतक, राखेउ रामदुआर ।
दंपति बिलपत सोक अति, आरत करत पुकार ॥ १ ॥
राम सोच संकोच सब, सचिव बिकल संताप ।
बालक-मीचु अकाल भइ, रामराज केहि पाप ॥ २ ॥
बिबुध बिमल बानी गगन, हेतु प्रजा अपचारु ।
रामराज परिनाम भल, कीजिय बेगि बिचारु ॥ ३ ॥
कोसलपाल कृपालु चित, बालक दीन्ह जिआइ ।
सगुन कुसल कल्यान सुभ. रोगी उठै नहाइ ॥ ४ ॥
बालकु जिया बिलोकि सब, कहत उठा जनु सोइ ।
सोच-बिमोचन सगुन सुभ, रामकृपा भल होइ ॥ ५ ॥
सिला सुतिय भइ, गिरि तरे. मृतक जिये जग जान ।
राम-अनुग्रह सगुन सुभ, सुलभ सकल कल्यान ॥ ६ ॥
केवट निसिचर बिहँग मृग. किये साधु सनमानि ।
तुलसी रघुबर की कृपा, सगुन सुमंगलखानि ॥ ७ ॥

सप्तक—६

रामराज राजत सकल, धरम-निरत नरनारि ।
राग न रोष न दोष दुख, सुलभ पदारथ चारि ॥ १ ॥
खग उलूक झगरत गये, अवध जहाँ रघुराउ ।
नीक सगुन, बिबरिहि झगर, होइहि धरम निआउ ॥ २ ॥
जती-स्वान संबाद सुनि, सगुन कहब जिय जानि ।
हंस-बंस-अवतंस-पुर, बिलग होत पय पानि ॥ ३ ॥
राम कुचरचा करहिं सब, सीतहि लाइ कलंक ।
सदा अभागी लोग जग, कहत सँकोचु न संक ॥ ४ ॥
सती-सिरोमनि सीय तजि, राखि लोगरुचि राम ।
सहे दुसह दुख सगुन गत, प्रियबियोगु परिनाम ॥ ५ ॥
बरन-धरम आस्रम-धरम, निरत सुखी सब लोग ।
रामराज मंगल सगुन, सुफल जाग जप जोग ॥ ६ ॥

बाजिमेध अगनित किए, दिए दान बहु भाँति ।
तुलसी राजा राम जग, सगुन सुमंगल पाँति ॥ ७ ॥

सप्तक—७

असमंजसु बड़ सगुन गत, सीता-राम-बियोग ।
गवन बिदेस, कलेस कलि, हानि, पराभव, रोग ॥ १ ॥
मानिय सिय अपराध बिनु, प्रभु परिहरि पछतात ।
रुचै समाज न राजसुख, मन मलीन, कृस गात ॥ २ ॥
पुत्र-लाभ, लव-कुस-जनम, सगुन सुहावन होइ ।
समाचार मंगल कुसल, सुखद सुनावइ कोइ ॥ ३ ॥
रामसभा लव-कुस ललित, किए राम-गुन-गान ।
राज-समागम सगुन सुभ, सुजस लाभ सनमान ॥ ४ ॥
बालमीकि लव-कुस सहित, आनी सिय मुनि राम ।
हृदय हरषु जानब प्रथम, सगुन सोक परिनाम ॥ ५ ॥
अनरथ असगुन अति असुभ, सीता-अवनि-प्रवेसु ।
समय सोक, संताप, भय, कलह, कलंक कलेसु ॥ ६ ॥
सुभग सगुन उनचास रस, रामचरितमय चारु ।
राम-भगत हित सफल सब, तुलसी बिमल बिचारु ॥ ७ ॥

सप्तम सर्ग

सप्तक—१

राम लषनु सानुज भरत, सुमिरत सुभ सब काज ।
सहित प्रीति परतीति हित, सगुन सकल सुभ काज ॥ १ ॥
सुख-मुद-मंगल-कुमुद-बिधु, सगुन-सरोरुह-भानु ।
करहु काज सब सिद्धि सुभ, आनि हिये हनुमान ॥ २ ॥
राजकाज, मनि, हेम, हय, रामरूप रविवार ।
कहब नीक जयलाभ सुभ, सगुन समय अनुहार ॥ ३ ॥
रस गोरस खेती सकल, बिप्र काज सुभ साज ।
राम-अनुग्रह सोमदिन, प्रमुदित प्रजा सुराज ॥ ४ ॥

मंगल मंगल भूमिहित, नृपहित जय संग्राम ।
सगुन बिचारब समय मम, करि गुरुचरन प्रनाम ॥ ५ ॥
बिपुल बनिज, बिद्या, बसन, बुध बिसेषि गृहकाजु ।
सगुन सुमंगल कहब सुभ, सुमिरि सीय रघुराजु ॥ ६ ॥
गुरुप्रसाद मंगल सकल, रामराज सब काज ।
जज्ञ, बिवाह-उछाह ब्रत, सुभ तुलसी सब साज ॥ ७ ॥

सप्तक–२

सुक्र सुमंगल काज सब कहब सगुन सुभ देखि ।
जंत्र मंत्र मनि औषधी, महसा सिद्धि बिसेषि ॥ १ ॥
रामकृपा थिर काज सुभ, मनि-बासर बिस्राम ।
लोह, महिष, गज, बनिज भल, सुख सुपास गृह ग्राम ॥ २ ॥
राहु केतु उलटे चलहि, असुभ अमंगल मूल ।
रुंड मुंड पाषंड-प्रिय, असुर अमर प्रतिकूल ॥ ३ ॥
समउ राहु रवि-गहनु-मत, राजहि प्रजहिं कलेस ।
सगुन सोच संकट बिकट, कलह कलुष दुख देस ॥ ४ ॥
राहु सोम संगमु बिषमु, असगुन उदधि अगाधु ।
ईति भीति खल दल प्रबल, सीदहिं भूसुर साधु ॥ ५ ॥
सात पाँच ग्रह एक थल, चलहिं बाम गति धाम ।
राज बिराजिय समउ गत, सुभहित सुमिरहु राम ॥ ६ ॥
खेती बनि बिद्या बनिज, सेवा सिलिप सुकाज ।
तुलसी सुरतरु सरिस सब, सुफल राम के राज ॥ ७ ॥

सप्तक–३

सुधा, साधु, सुरतरु, सुमन, सुफल सुहावनि बात ।
तुलसी सीतापति-भगति, सगुन सुमंगल सात ॥ १ ॥
सिद्ध समागम संपदा, सदन सरीर सुपास ।
सीतानाथ-प्रसाद सुभ, सगुन सुमंगल बास ॥ २ ॥
कौसल्या कल्यानमय, मूरति करत प्रनामु ।
सगुन सुमंगल काज सुभ, कृपा करहि सियरामु ॥ ३ ॥
सुमिरि सुमित्रा नाम जग, जे तिय लेहिं सुनेम ।
सुवन लखन रिपुदवनु से, पावहि पति-पद-प्रेम ॥ ४ ॥

दसरथ नाम सुकामतरु, फलइ सकल कल्यान।
धरनि धाम धन धरम सुख, सुत गुन-रूप-निधान॥ ५॥
कलह कपट कलि कैकई, सुमिरत काज नसाइ।
हानि मीचु दारिद दुरित, असगुन असुभ अघाइ॥ ६॥
राम बाम दिसि जानकी, लषनु दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर॥ ७॥

सप्तक—४

मध्यम दिन, मध्यम दसा, मध्यम सकल समाज।
नाइ माथ रघुनाथपद, जानब मध्यम काज॥ १॥
हित पर बढ़इ बिरोधु जब, अनहित पर अनुराग।
रामबिमुख बिधि बामगत, सगुन अघाइ अभाग॥ २॥
कृपनु देइ, पाइय परो, बिन साधन सिधि होइ।
सीतापति सनमुख समुझि, जो कीजिय सुभ सोइ॥ ३॥
पहिले हित परिनामगत, बीच बीच भल पोच।
सगुन कहब अस रामगति, कहबि समेत सँकोच॥ ४॥
रमा रमापति गौरि हरु, सीताराम सनेहु।
दंपति-हित, संपति सकल, सगुन सुमंगल गेहु॥ ५॥
प्रीति प्रतीति न रामपद, बड़ी आस, बड़ लोभ।
नहिं सपनेहुँ संतोष सुख, जहाँ तहाँ मन छोभ॥ ६॥
पय नहाइ, फल खाइ, जपु, रामनाम षट मास।
सगुन सुमंगल सिद्धि सब, करतल तुलसीदास॥ ७॥

सप्तक—५

बड़ कलेस, कारज अलप, बड़ी आस, लहु लाहु।
उदासीन सीतारमन, समय सरिस निरबाहु॥ १॥
दस दिसि दुख दारिद दुरित, दुसह दसा दिन दोष।
फेरे लोचन राम अब, सनमुख साज सरोष॥ २॥
खेती बनिज न, भीख भलि, अफल उपायकदंब।
कुसमय जानब, बाम बिधि, रामनाम अवलंब॥ ३॥
पुरुषारथ स्वारथ सकल, परमारथ परिनाम।
सुलभ सिद्धि सब सगुन सुभ, सुमिरत सीताराम॥ ४॥

भागु भाग तजि भालथलु, आलस ग्रसे उपाउ।
असुभ अमंगल सगुन सुनि, सरन राम के आउ ॥ ५ ॥
गइ बरषा करषक बिकल, सूखत सालि सुनाज।
कुसमउ कुसगुन कलह कलि, प्रजहिं कलेसु कुराज ॥ ६ ॥
तुलसी तुलसी राम सिय, सुमिरहु लपन समेत।
दिन दिन उदउ अनंद अब, सगुन सुमंगल देत ॥ ७ ॥

सप्तक-६

उदबस अवध नरेस बिनु, देस दुखी नर नारि।
राजभंग कुसमाज बड़, गत ग्रह-चालि बिचारि ॥ १ ॥
अवध-प्रवेस अनंदु बड़, सगुन सुमंगल माल।
राम-तिलक-अवसर कहब, सुख संतोष सुकाल ॥ २ ॥
राम-राज-बाधक बिबुध, कहब सगुन सति भाउ।
देखि देवकृत दोष दुख, कीजिय उचित उपाउ ॥ ३ ॥
मंद मंथरा मोहबस, कुटिल कैकई कीन्ह।
ब्याधि बिपति सब देवकृत, समय सगुन कहि दीन्ह ॥ ४
रामबिरह दसरथ दुखित, कहति कैकई काकु।
कुसमय जाय उपाय सब, केवल करमबिपाकु ॥ ५ ॥
लखन राम सिय बसत बन, बिरह-बिकल पुरलोग।
समय सगुन कह करमबस, दुख सुख जोग बियोग ॥ ६ ॥
तुलसी लाइ रसाल तरु निज कर सींचति सीय।
कृषी सफल भल सगुन सुभ, समउ कहब कमनीय ॥ ७ ॥

सप्तक-७

सुदिन साँझ पोथी नेवति, पूजि प्रभात सप्रेम।
सगुन बिचारब चारुमति, सादर सत्य सनेम ॥ १ ॥
मुनि गनि, दिन गनि, धातु गनि, दोहा देखि बिचारि।
देस, करम, करता, बचन, सगुन समय अनुहारि ॥ २ ॥

हनूमान सानुज भरत, राम सीय उर आनि ।
लषन सुमिरि तुलसी कहत, सगुन बिचारु बखानि ॥ ४ ॥
जो जेहि काजहि अनुहरइ, सो दोहा जब होइ ।
सगुन समय सब सत्य सब, कहब रामगति गाइ ॥ ६ ॥
गुन बिस्वास, बिचित्र मनि, सगुन मनोहर हारु ।
तुलसी रघुबर-भगत-उर, बिलसत बिमल बिचारु ॥ ७ ॥

दोहावली

दोहावली

दोहा

राम बाम दिसि जानकी लषन दाहिनी ओर ।
ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर ॥ १ ॥
सीता लषनु समेत प्रभु, सोहत तुलसीदास ।
हरषत सुर, बरषत सुमन सगुन सुमंगलबास ॥ २ ॥
पंचबटी बटबिटप-तर सीता-लषन-समेत ।
सोहत तुलसीदास प्रभु सकल सुमंगल देत ॥ ३ ॥
चित्रकूट सब दिन बसत, प्रभु सिय-लषन-समेत ।
रामनाम-जप जापकहिं तुलसी अभिमत देत ॥ ४ ॥
पय अहार फल खाइ जपु रामनाम षट मास ।
सकल सुमंगल सिद्धि सब करतल तुलसीदास ॥ ५ ॥
रामनाम-मनि-दीप धरु जीह-देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरौ जौ चाहसि उजियार ॥ ६ ॥
हिय निर्गुन, नयननि्ह सगुन, रसना राम सुनाम ।
मनहुँ पुरट-संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ॥ ७ ॥
सगुन ध्यान रुचि सरस नहिं, निर्गुन मन तें दूरि ।
तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवन-मूरि ॥ ८ ॥
एक छत्र, इक मुकुटमनि, सब बरनन पर जोउ ।
तुलसी रघुबर-नाम के बरन बिराजत दोउ ॥ ९ ॥
रामनाम को अंक है सब साधन है सून ।
अंक गये कछु हाथ नहिं अंक रहे दसगून ॥ १० ॥
नाम राम को कलपतरु कलि कल्यान निवास ।
जो सुमिरत भयो भाग तें तुलसी तुलसीदास ॥ ११ ॥

१—पुरट = सोना ।

रामनाम जपि जीह जन भए सुकृत सुखसालि ।
तुलसी इहाँ जो आलसी गयो आजु की कालि ॥ १२ ॥
नाम गरीबनिवाज को राज देत जन जानि ।
तुलसी मन परिहरत नहिं घुरबिनिआ की बानि ॥ १३ ॥
कासी बिधि बसि तनु तजे हठि तन तजे प्रयाग ।
तुलसी जो फल सो सुलभ रामनाम अनुराग ॥ १४ ॥
मीठो अरु कठवति भरो रौताई अरु खेम ।
स्वारथ परमारथ सुलभ रामनाम के प्रेम ॥ १५ ॥
रामनाम सुमिरत सुजस भाजन भए कुजाति ।
कुतरु कुसरपुर-राजमग लहत भुवन-बिख्याति ॥ १६ ॥
स्वारथ सुख सपनेहुँ अगम परमारथ न प्रवेस ।
रामनाम सुमिरत मिटहिं तुलसी कठिन कलेस ॥ १७ ॥
'मोर मोर' सब कहँ कहसि तू को ? कहु निज नाम ।
कै चुप साधहि सुनि समुझि कै तुलसी जपु राम ॥ १८ ॥
हम लखि, लखहि हमार, लखि हम हमार के बीच ।
तुलसी अलखहि का लखहि ? रामनाम जपु नीच ॥ १९ ॥
रामनाम-अवलंब बिनु परमारथ की आस ।
बरषत बारिद-बूँद गहि चाहत चढ़न अकास ॥ २० ॥
तुलसी हठि हठि कहत नित चित सुनि हित करि मानि ।
लाभ राम सुमिरत बड़ो बड़ी बिसारे हानि ॥ २१ ॥
बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु ।
होहि राम को, नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु ॥ २२ ॥
प्रीति प्रतीति सुरीति सों रामनाम जपु राम ।
तुलसी तेरो है भलो आदि मध्य परिनाम ॥ २३ ॥
संपति रस रसना, दसन परिजन, बदन सुगेह ।
तुलसी हरहित बरन सिसु संपति सहज सनेह ॥ २४ ॥
बरषाऋतु रघुपति-भगति तुलसी सालि सुदास ।
रामनाम बर बरन जुग सावन भादों मास ॥ २५ ॥
रामनाम नर-केसरी कनककसिपु कलिकालु ।
जापकजन प्रह्लाद जिमि पालहि दलि सुरसालु ॥ २६ ॥

१३—घुरबिनिआ = घूर (कूड़ाखाने) में पड़े दाने चुननेवाली ।
२४—हरहित बरन = रामनाम । २६—सुरसाल = राक्षस ।

रामनाम कलि कामतरु सकल सुमंगल कंद ।
सुमिरत करतल सिद्धि सब पग पग परमानंद ॥ २७ ॥
रामनाम कलि कामतरु रामभगति सुरधेनु ।
सकल सुमंगल मूल जग गुरुपद-पंकज-रेनु ॥ २८ ॥
जथा भूमि सब बीज मै नखत-निवास अकास ।
रामनाम सब धरम मै जानत तुलसीदास ॥ २९ ॥
सकल कामनाहीन जे रामभगति-रसलीन ।
नाम प्रेम-पीयूष-ह्रद तिनहुँ किए मन मीन ॥ ३० ॥
ब्रह्म राम तें नाम बड़ बरदायक बरदानि ।
रामचरित सतकोटि महँ लिय महेस जिय जानि ॥ ३१ ॥
सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्हि रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल बेद-बिदित गुनगाथ ॥ ३२ ॥
रामनाम पर राम तें प्रीति प्रतीति भरोस ।
सो तुलसी सुमिरत सकल सगुन-सुमंगल-कोस ॥ ३३ ॥
लंक बिभीषन, राज कपि, पति मारुति, खग मीच ।
लही राम सों नामरति चाहत तुलसी नीच ॥ ३४ ॥
हरन अमंगल अघ अखिल करन सकल कल्यान ।
रामनाम नित कहत हर गावत बेद पुरान ॥ ३५ ॥
तुलसी प्रीति प्रतीति सों रामनाम-जप-जाग ।
किए होय बिधि दाहिनो देइ अभागेहिं भाग ॥ ३६ ॥
जल थल नभ गति अमित अति, अग जग जीव अनेक ।
तुलसी तोसे दीन कहँ रामनाम-गति एक ॥ ३७ ॥
राम भरोसो, राम बल, रामनाम बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल माँगत तुलसीदास ॥ ३८ ॥
रामनाम रति, राम गति, रामनाम बिस्वास ।
सुमिरत सुभ मंगल कुसल, दुहुँ दिसि तुलसीदास ॥ ३९ ॥
रसना साँपिन, बदन बिल, जे न जपहिं हरिनाम ।
तुलसी प्रेम न राम सों ताहि बिधाता बाम ॥ ४० ॥
हिय फाटहु, फूटहु नयन, जरउ सो तन केहि काम ।
द्रवहिं, स्रवहि, पुलकहि नहीं तुलसी सुमिरत राम ॥ ४१ ॥

*१ रामचरित = रामायण ।

रामहि सुमिरत, रन भिरत, देत, परत गुरु पाय ।
तुलसी जिनहि न पुलक तनु ते जग जीवत जाय ॥ ४२ ॥

सोरठा

हृदय सो कुलिस समान जो न द्रवहि हरिगुन सुनत ।
कर न रामगुन-गान जीह सो दादुर-जीह सम ॥ ४३ ॥
स्रवै न सलिल सनेह तुलसी सुनि रघुबीर-जस ।
ते नयना जनि देहु, राम करहु बरु आँधरो ॥ ४४ ॥
रहै न जल भरि पूरि, राम ' सुजस सुनि रावरो ।
तिन आँखिन में धूरि भरि भरि मूठी मेलिए ॥ ४५ ॥
बारक सुमिरत तोहिं होहि तिनहिं सन्मुख सुखद ।
क्यों न सँभारहि मोहि, दयासिंधु दसरत्थ के ? ॥ ४६ ॥
साहिब होत सरोष सेवक को अपराध सुनि ।
अपने देखे दोष सपनेहु राम न उर धरेउ ॥ ४७ ॥

दोहा

तुलसी रामहि आपु तें सेवक की रुचि मीठि ।
सीतापति से साहिबहि कैसे दीजै पीठि ॥ ४८ ॥
तुलसी जाके होयगी अंतर बाहिर दीठि ।
सो कि कृपालुहि देइगो केवटपालहिं पीठि ? ॥ ४९ ॥
प्रभु तरुतर, कपि डार पर, ते किए आपु समान ।
तुलसी कहूँ न राम सो साहिब सीलनिधान ॥ ५० ॥
रे मन ! सबसों निरस ह्वै सरस राम सों होहि ।
भलो सिखावन देत है निसि दिन तुलसी तोहि ॥ ५१ ॥
हरे चरहि, तापहि बरत, फरे पसारहि हाथ ।
तुलसी स्वारथ मीत सब, परमारथ रघुनाथ ॥ ५२ ॥
स्वारथ सीताराम सो, परमारथ सियराम ।
तुलसी तेरो दूसरे द्वार कहा कहु काम ॥ ५३ ॥
स्वारथ परमारथ सकल सुलभ एक ही ओर ।
द्वार दूसरे दीनता उचित न तुलसी तोर ॥ ५४ ॥
तुलसी स्वारथ रामहित, परमारथ रघुबीर ।
सेवक जाके लपन से पवनपूत रनधीर ॥ ५५ ॥
ज्यों जग बैरी मीन को, आपु सहित, बिनु बारि ।
त्यों तुलसी रघुबीर बिनु गति आपनी बिचारि ॥ ५६ ॥

रामप्रेम बिनु दूबरो, रामप्रेम ही पीन ।
रघुबर कबहुँक करहुगे, तुलसी ज्यों जल मीन ॥ ५७ ॥
राम सनेही, राम गति, रामचरन-रति जाहि ।
तुलसी फल जग-जनम को दियो बिधाता ताहि ॥ ५८ ॥
आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम ।
तेहिके पग की पानहीं तुलसी-तनु को चाम ॥ ५९ ॥
स्वारथ-परमारथ-रहित सीताराम-सनेह ।
तुलसी सो फल चारि को फल हमार मत एह ॥ ६० ॥
जे जन रूखे बिषयरस, चिकने रामसनेह ।
तुलसी ते प्रिय राम को, कानन बसहि कि गेह ॥ ६१ ॥
जथा लाभ संतोष सुख, रघुबर-चरन-सनेह ।
तुलसी जो मन खूँद सम कानन बसहु कि गेह ॥ ६२ ॥
तुलसी जौपै राम सों, नाहिंन सहज सनेह ।
मूँड़ मुड़ायो बादि ही, भाँड़ भयो तजि गेह ॥ ६३ ॥
तुलसी श्रीरघुबीर तजि करै भरोसो और ।
सुख संपति की का चली नरकहु नाहीं ठौर ॥ ६४ ॥
तुलसी परिहरि हरि हरहि पाँवर पूजहिं भूत ।
अंत फजीहति होहिंगे गनिका के से पूत ॥ ६५ ॥
सेए सीताराम नहिं, भजे न शंकर गौरि ।
जनम गँवायो बादि ही परत पराई पौरि ॥ ६६ ॥
तुलसी हरि अपमान तें होइ अकाज समाज ।
राज करत रज मिलि गए सदल, सकुल कुरुराज ॥ ६७ ॥
तुलसी रामहिं परिहरे निपट हानि सुनु ओझ ।
सुरसरिगत सोई सलिल, सुरा सरिस गंगोझ ॥ ६८ ॥
राम दूरि माया बढ़ति, घटति जानि मन माँह ।
भूरि होति रबि दूरि लखि सिरपर पगतर छाँह ॥ ६९ ॥
साहिब सीतानाथ सों जब घटिहै अनुराग ।
तुलसी तबहीं भाल तें भभरि भागिहै भाग ॥ ७० ॥
करिहौ कोसलनाथ तजि जबहिं दूसरी आस ।

६२-खूँद=घोड़े की उछल कूद की चाल ।
६८- ओझ=ओझा । गंगोझ=गंगोदक, गंगाजल ।

जहाँ तहाँ दुख पाइहौ तब हीं तुलसीदास ॥ ७१ ॥
बिंध न ईंधन पाइए, सायर जुरै न नीर ।
परै उपास कुबेरघर जो बिपच्छ रघुबीर ॥ ७२ ॥
बरषा को गोबर भयो, को चहै, को करै प्रीति ?
तुलसी तू अनुभवहि अब राम-बिमुख की रीति ॥ ७३ ॥
सबहि समरथहि सुखद प्रिय, अच्छम प्रिय हितकारि ।
कबहुँ न काहुहि राम प्रिय तुलसी कहा बिचारि ॥ ७४ ॥
तुलसी उत्तम करम जग जब जेहि राम सुडीठि ।
होइ सुफल सोइ, ताहि सब सनमुख, प्रभु तन पीठि ! ॥ ७५ ॥
राम-कामतरु परिहरत, सेवत कलितरु ठूठ ।
स्वारथ परमारथ चहत, सकल मनोरथ झूठ ॥ ७६ ॥
निज दूषनु, गुन राम के समुझे तुलसीदास ।
होय भलो कलिकाल हू उभय लोक अनयास ॥ ७७ ॥
कै तोहि लागहि राम प्रिय, कै तू प्रभु-प्रिय होहि ।
दुई महँ रुचै जो सुगम सो कीबे तुलसी तोहि ॥ ७८ ॥
तुलसी दुइ महँ एक ही खेल, छाँड़ि छल, खेलु ।
कै करु ममता राम सों, कै ममता परहेलु ॥ ७९ ॥
निगम अगम, साहेब सुगम, राम साँचिली चाह ।
अंबु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माह ॥ ८० ॥
सनमुख आवत पथिक ज्यों दिए दाहिनो बाम ।
तैसोइ होत सु आपकी, त्यों ही तुलसी राम ॥ ८१ ॥
राम-प्रेम-पथ पेखिये दिये बिषय तनु पीठि ।
तुलसी केंचुरि परिहरे होत साँपहू डीठि ॥ ८२ ॥
तुलसी जौलों बिषय की, मुधा माधुरी मीठि
तौलो सुधा सहस्र सम रामभगति सुठि मीठि ॥ ८३ ॥
जैसो तैसो रावरो केवल कोसलपाल ।
तौ तुलसी को है भलो तिहूँ लोक तिहुँ काल ॥ ८४ ॥
है तुलसी के एक गुन अवगुननिधि कहै लोग ।
भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग ॥ ८५ ॥

---

७९ परहेलु = तिरस्कार कर ।
८३ मुधा = व्यर्थ । मीठि = मीठा, नीरस ।

प्रीति राम सोँ, नीतिपथ चलिय राग रिस जीति ।
तुलसी संतन के मते इहै भगति की रीति ॥ ८६ ॥
सत्य बचन, मानस बिमल, कपटरहित करतूति ।
तुलसी रघुबर सेवकहिं, सकै न कलिजुग धूति ॥ ८७ ॥
तुलसी सुखी जो राम सों, दुखी सो निज करतूति ।
करम बचन मन ठीक जेहि तेहि न सकै कलि धूति ॥ ८८ ॥
नातो नाते राम के, रामसनेह सनेहु ।
तुलसी माँगत जोरि कर जनम जनम सिव देहु ॥ ८९ ॥
सब साधन को एक फल, जेहि जान्यो सोइ जान ।
ज्यों त्यों मन-मंदिर बसहिं राम धरे धनु बान ॥ ९० ॥
जौ जगदीस तौ अति भलो, जौ महीस तौ भाग ।
तुलसी चाहत जनम भरि रामचरन-अनुराग ॥ ९१ ॥
परहुँ नरक, फलचारि-सिसु, मीच डाँकिनी खाउ ।
तुलसी राम सनेह को, जो फल सो जरि जाउ ॥ ९२ ॥
हित सों हित, रति राम सों, रिपु सों बैर बिहाउ ।
उदासीन सब सों सरल, तुलसी सहज सुभाउ ॥ ९३ ॥
तुलसी ममता राम सों, समता सब संसार ।
राग न रोष न दोष दुख, दास भये भवपार ॥ ९४ ॥
रामहिं डरु, करु राम सों ममता, प्रीति, प्रतीति ।
तुलसी निरुपधि राम को भये हारेहू जीति ॥ ९५ ॥
तुलसी राम कृपालु सों कहि सुनाउ गुन दोष ।
होय दूबरी दीनता, परम पीन सतोष ॥ ९६ ॥
सुमिरन सेवा राम सों, साहब सों पहिचानि ।
ऐसेहु लाभ न ललक जो तुलसी नित हित हानि ॥ ९७ ॥
जाने जानत जोइये, बिनु जाने को जान ? ।
तुलसी यह सुनि समुझि हिय आनु धरे धनुबान ॥ ९८ ॥
करमठ कठमलिया कहैं, ज्ञानी ज्ञानबिहीन ।
तुलसी त्रिपथ बिहाय गो, रामदुआरे दीन ॥ ९९ ॥
बाधक सब सब के भए, साधक भए न कोइ ।
तुलसी राम कृपालु तें भलो होइ सो होइ ॥ १०० ॥

८७ धूती सकै = धोखा दे सकता है ।
९९ त्रिपथ = कर्म, ज्ञान और उपासना कांड ।

संकरप्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही मम दास ।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महँ बास ॥ १०१ ॥
बिलग बिलग सुख संग दुख, जनम मरन सोइ रीति ।
रहियत राखे राम के, गए ते उचित अनीति ॥ १०२ ॥
जाय कहब करतूति बिनु, जाय जोग बिनु छेम ।
तुलसी जाय उपाय सब बिना रामपद-प्रेम ॥ १०३ ॥
लोग मगन सब जोग ही, जोग जाय बिनु छेम ।
त्यों तुलसी के भावगत रामप्रेम बिनु नेम । १०४ ॥
राम निकाईं रावरी है सब ही को नीक ।
जो यह साँची है सदा तौ नीको तुलसीक ॥ १०५ ॥
तुलसी राम जो आदर्‍यो खोटो खरो खरोइ ।
दीपक काजर सिर धर्‍यो, धर्‍यो सु धर्‍यो धरोइ ॥ १०६ ॥
तनु बिचित्र, कायर बचन, अहि अहार, मन घोर ।
तुलसी हरि भए पच्छधर, ताते कह सब मोर ॥ १०७ ॥
लहै न फूटी कौड़िहू, को चाहै, केहि काज ?
सो तुलसी महँगो कियो राम गरीबनिवाज ॥ १०८ ॥
घर घर माँगे टूक, पुनि भूपति पूजे पाय ।
ते तुलसी तब राम बिनु, ते अब राम सहाय ॥ १०९ ॥
तुलसी राम सुदीठि तें निबल होत बलवान ।
बैर बालि सुग्रीव के कहा कियो हनुमान ? ॥ ११० ॥
तुलसी रामहु तें अधिक रामभक्त जिय जान ।
रिनिया राजा राम भे, धनिक भए हनुमान ॥ १११ ॥
कियो सुसेवक-धरम कपि, प्रभु कृतज्ञ जिय जानि ।
जोरि हाथ ठाढ़े भए बरदायक बरदानि ॥ ११२ ॥
भगत-हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ तनु भूप ।
किए चरित पावन परम प्राकृत-नर-अनुरूप ॥ ११३ ॥
ज्ञान-गिरा-गोतीत, अज, माया-गुन-गोपार ।
सोइ सच्चिदानंदघन करत चरित्र उदार ॥ ११४ ॥
हिरन्याच्छ भ्राता सहित, मधुकैटभ बलवान ।
जेहि मारे सोइ अवतरे कृपासिंधु भगवान ॥ ११५ ॥
सुद्ध सच्चिदानंदमय कंद भानु-कुलकेतु ।
चरित करत नर अनुहरत संसृति-सागरसेतु ॥ ११६ ॥

बाल-बिभूषन बसन बर, धूरि धूसरित अंग ।
बालकेलि रघुबर करत, बाल-बंधु सब संग ॥ ११७ ॥
अनुदिन अवध बधावने, नित नव मंगल मोद ।
मुदित मातु-पितु लोग लखि रघुबर बाल-बिनोद ॥ ११८ ॥
राज-अजिर राजत रुचिर कोसलपालक-बाल ।
जानु-पानि-चर चरित बर, सगुन-सुमंगल-माल ॥ ११९ ॥
नाम ललित, लीला ललित, ललित रूप रघुनाथ ।
ललित बसन, भूषन ललित, ललित अनुज सिसु साथ ॥ १२० ॥
राम, भरत, लछिमन ललित, सत्रुसमन सुभनाम ।
सुमिरत दसरथ-सुवन सब पूजहिं सब मनकाम ॥ १२१ ॥
बालक कोसलपाल के सेवकपाल कृपाल ।
तुलसी मन-मानस बसत मंगल मंजु मराल ॥ १२२ ॥
भगत, भूमि, भूसुर, सुरभि, सुर हित लागि कृपाल ।
करत चरित धरि मनुज-तनु, सुनत मिटहिं जगजाल ॥ १२३ ॥
निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर, महि, गो, द्विज लागि ।
सगुन-उपासक संग तहँ रहहिं मोक्ष सब त्यागि ॥ १२४ ॥
परमानंद कृपायतन, मन परिपूरन-काम ।
प्रेमभगति अनपायनी देहु हमहिं श्रीराम ॥ १२५ ॥
बारि मथें घृत होइ बरु सिकता तें बरु तेल ।
बिनु हरि-भजन न भव तरिय, यह सिद्धांत अपेल ॥ १२६ ॥
हरिमाया-कृत दोष गुन बिनु हरिभजन न जाहिं ।
भजिय राम सब काम तजि अस बिचारि मन माहिं ॥ १२७ ॥
जो चेतन कहँ जड़ करइ, जड़हि करइ चैतन्य ।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ॥ १२८ ॥
श्रीरघुबीर-प्रताप तें सिंधु तरे पाषान ।
ते मतिमंद जे राम तजि भजहिं जाय प्रभु आन ॥ १२९ ॥
लव निमेष परमानु जुग, बरष कलप सर चंड ।
भजहि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदंड ॥ १३० ॥
तब लगि कुसल न जीव कहँ, सपनेहुँ मन बिस्राम ।
जब लगि भजत न राम कहँ सोकधाम तजि काम ॥ १३१ ॥
बिनु सतसंग न हरिकथा, तेहि बिनु मोह न भाग ।
मोह गए बिनु रामपद होय न दृढ़ अनुराग ॥ १३२ ॥

बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहि न राम।
रामकृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिस्राम॥ १३३॥

सोरठा

अस बिचारि मन धीर तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद॥ १३४॥
भाववस्य भगवान, सुखनिधान करुनाभवन।
तजि ममता, मद, मान, भजिय सदा सीतारमन॥ १३५॥
कहहिं बिमलमति संत, बेद पुरान बिचारि अस।
द्रवै जानकीकंत, तब छूटै संसारदुख॥ १३६॥
बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ बिराग बिनु?
गावहि बेद पुरान, सुख कि लहिय हरिभगति बिनु?॥ १३७॥

दोहा

रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ज्ञानवंत अपि सोइ नर पसु बिनु पूँछ बिखान॥ १३८॥
जरउ सो संपति, सदन, सुख, सुहृद, मातु, पितु, भाइ।
सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ॥ १३९॥
सेइ साधु गुरु, समुझि, सिखि, रामभगति थिरताइ।
लरिकाईं को पैरिबो तुलसी बिसरि न जाइ॥ १४०॥
सबै कहावत राम के, सबहिं राम की आस।
राम कहैं जेहि आपनो, तेहि भजु तुलसीदास॥ १४१॥
जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरैं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेह-बस बानर भे हनुमान॥ १४२॥
जानि रामसेवा सरस, समुझि करब अनुमान।
पुरुखा ते सेवक भए, हर ते भे हनुमान॥ १४३॥
तुलसी रघुबर-सेवकहिं खल डाँटत मन माखि।
बाजराज के बालकहि लवा दिखावत आँखि॥ १४४॥
रावनरिपु के दास तें कायर करहिं कुचालि।
खर दूषन मारीच ज्यों, नीच जाहिंगे कालि॥ १४५॥
पुन्य, पाप, जस, अजस, के भावी भाजन भूरि।
संकट तुलसीदास को राम करहिंगे दूरि॥ १४६॥
खेलत बालक ब्याल सँग, मेलत पावक हाथ।
तुलसी सिसु पितु-मातु ज्यों राखत सिय रघुनाथ॥ १४७॥

तुलसी दिन भल साहु कहँ, भली चोर कहँ राति ।
निसि बासर ताकहँ भलो मानै राम-इताति ॥ १४८ ॥
तुलसी जानै सुनि समुझि कृपासिंधु रघुराज ।
महँगे मनि कंचन किए, सौंघे जग, जल नाज ॥ १४९ ॥
सेवा, सील, सनेह, बस करि, परिहरि प्रिय लोग ।
तुलसी ते सब राम सों सुखद सँजोग बियोग ॥ १५० ॥
चारि चहत मानस अगम, चनक चारि को लाहु ।
चारि परिहरें चारि को दानि चारि चख चाहु ॥ १५१ ॥
सूधे मन, सूधे बचन, सूधी सब करतूति ।
तुलसी सूधी सकल बिधि रघुबर-प्रेम-प्रसूति ॥ १५२ ॥
बेष बिसद, बोलनि मधुर, मन कटु, करम मलीन ।
तुलसी राम न पाइए भए बिषय-जल मीन ॥ १५३ ॥
बचन-बेष तें जो बनै सो बिगरै परिनाम ।
तुलसी मन तें जो बनै बनी बनाई राम ॥ १५४ ॥
नीच मीचु लै जाइ जो राम-रजायसु पाइ ।
तो तुलसी तेरो भलो, नतु अनभलो अघाइ ॥ १५५ ॥
जातिहीन, अघ-जनम महि, मुकुत कीन्हि असि नारि ।
महामंद मन सुख चहसि ऐसे प्रभुहि बिसारि ? ॥ १५६ ॥
बंधु-बधू-रत कहि कियो बचन निरुत्तर बालि ।
तुलसी प्रभु सुग्रीव की चितइ न कछू कुचालि ॥ १५७ ॥
बालि बली बलसालि दलि सखा कीन्ह कपिराज ।
तुलसी राम कृपालु को बिरुद गरीबनिवाज ॥ १५८ ॥
कहा बिभीषन लै मिल्यो, कहा बिगार्‍यो बालि ?
तुलसी प्रभु सरनागतहि, सब दिन आए पालि ॥ १५९ ॥
तुलसी कोसलपाल सो, को सरनागत-पाल ?
भंज्यो बिभीषन बंधु-भय, भंज्यो दारिद-काल ॥ १६० ॥
कुलिसहु चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि ।
चित खगेस अस राम कर, समुझि परै कहु काहि ? ॥ १६१ ॥
बलकल भूषन, फल असन, तृन सज्या, द्रुम प्रीति ।

१४८-इताति = इताअत, अनुशासन, आज्ञा ।

१४९ सौंघे = समर्घ, सस्ते । १६१ चाहि = अपेक्षा । उससे (बढ़कर) ।

तिन्ह समयन लंका दई, यह रघुबर की रीति ॥ १६२ ॥
जो संपति सिव रावनहिं दीन्हि दिए दस माथ ।
सोइ संपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्हि रघुनाथ ॥ १६३ ॥
अबिचल राज बिभीषनहि दीन्ह राम रघुराज ।
अजहुँ बिराजत लंक पर तुलसी सहित समाज ॥ १६४ ॥
कहा बिभीषन लै मिल्यो, कहा दियो रघुनाथ ।
तुलसी यह जाने बिना मूढ़ मीजिहैं हाथ ॥ १६५ ॥
बैरिबंधु निसिचर अधम, तज्यो न भरे कलंक ।
झूठे अघ सिय परिहरी तुलसी साइँ ससंक ॥ १६६ ॥
तेहि समाज कियो कठिन पन जेहि तौल्यो कैलास ।
तुलसी प्रभु-महिमा कहौं, सेवक को बिस्वास ॥ १६७ ॥
सभा सभासद निरखि पट पकरि, उठायो हाथ ।
तुलसी कियो इगारहो बसनबेष जदुनाथ ॥ १६८ ॥
त्राहि तीन कह्यो द्रौपदी तुलसी राजसमाज ।
प्रथम बढ़े पट, बिय बिकल, चहत चकित निज काज ॥ १६९ ॥
सुखजीवन सब कोउ चहत, सुखजीवन हरिहाथ ।
तुलसी दाता माँगनेउ देखियत अबुध अनाथ ॥ १७० ॥
कृपिन देइ पाइय परो, बिनु साधे सिधि होइ ।
सीतापति सनमुख समुझि जो कीजै सुभ सोइ ॥ १७१ ॥
दंडकबन-पावन-करन चरन-सरोज प्रभाउ ।
ऊसर जामहि, खल तरहि, होइ रंक ते राउ ॥ १७२ ॥
बिन ही ऋतु तरुबर फरत, सिला द्रवति जलजोर ।
राम लपन सिय करि कृपा जब चितवत जेहि ओर ॥ १७३ ॥
सिला सुतिय भइ, गिरि तरे, मृतक जिए जग जान ।
राम-अनुग्रह सगुन सुभ, सुलभ सकल कल्यान ॥ १७४ ॥
सिलासाप-मोचन चरन सुमिरहु तुलसीदास ।
तजहु सोच, संकट मिटहि, पूजिहि मन की आस ॥ १७५ ॥
मुए जिआए भालु कपि, अवध बिप्र को पूत ।
सुमिरहु तुलसी ताहि तू जाको मारुति दूत ॥ १७६ ॥

---

१६८ इगारहो = दस अवतारों के अतिरिक्त ग्यारहवाँ वस्त्र का रूप
१६९ बिय = दूसरा ।

काल करम गुन दोष जग जीव तिहारे हाथ।
तुलसी रघुबर रावरो, जान जानकीनाथ॥ १७७॥
रोगनिकर तनु, जरठपनु तुलसी संग कुलोग।
रामकृपा लै पालिये, दीन पालिबे जोग॥ १७८॥
मो सम दीन न, दीनहितु तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि, रघुबंसमनि, हरहु बिषम भवभीर॥ १७९॥
भवभुवंग तुलसी नकुल, डसत ज्ञान हरि लेत।
चित्रकूट इक औषधी, चितवत होइ सचेत॥ १८०॥
होहुँ कहावत, सब कहत, राम सहत उपहास।
साहब सीतानाथ से सेवक तुलसीदास॥ १८१॥
रामराज राजत सकल धरम-निरत नर-नारि।
राग न रोष न दोष दुख, सुलभ पदारथ चारि॥ १८२॥
रामराज संतोष सुख घर बन सकल सुपास।
तरु सुरतरु, सुरधेनु महि, अभिमत भोग बिलास॥ १८३॥
खेती, बनि, बिद्या, बनिज, सेवा, सिलिपि सुकाज।
तुलसी सुरतरु सरिस सब सुफल राम के राज॥ १८४॥
दंड जतिन कर भेद जह नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिय अस, रामचंद्र के राज॥ १८५॥
कोपे सोच न पोच कर, करिय निहोर न काज।
तुलसी परमिति प्रीति की रीति राम के राज॥ १८६॥
मुकुर निरखि मुख रामभ्रू, गनत गुनहि दै दोष।
तुलसी से सठ सेवकनि लखि, जनि परहि सरोष॥ १८७॥
सहसनाम मुनि-भनित सुनि, तुलसी-बल्लभ नाम।
सकुचत हिय हँसि, निरखि सिय, धरमधुरंधर राम॥ १८८॥
गौतम-तिय-गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
हिय हरषे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥ १८९॥
तुलसी बिलसत नखत निसि सरद-सुधाकर साथ।
मुकुता झालरि झलक जनु रामसुजस-सिसु हाथ॥ १९०॥
रघुपति कीरति-कामिनी क्यों कहै तुलसीदासु?
सरद-अकास प्रकास ससि चारु चिबुक-तिल जासु॥ १९१॥
प्रभु गुनगन भूषन बसन, बिसद बिसेष सुदेस।
राम-सुकीरति-कामिनी, तुलसी करतब केस॥ १९२॥

रामचरित राकेसकर सरिस सुखद सब काहु ।
सज्जन-कुमुद चकोर चित, हित बिसेष बड़ लाहु ॥ १९३ ॥
रघुबरकीरति सज्जननि सीतल, खलनि सुताति ।
ज्यों चकोर-चय चक्कवनि तुलसी चाँदनि राति ॥ १९४ ॥
रामकथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु ।
तुलसी सुभग सनेह बन, सिय-रघुबीर-बिहारु ॥ १९५ ॥
स्याम-सुरभि-पय बिसद अति, गुनद करहिं तेहि पान ।
गिरा ग्राम्य सियराम जस गावहि सुनहि सुजान ॥ १९६ ॥
हरि-हर-जस सुर-नर-गिरहु, बरनहि सुकबि-समाज ।
हाँड़ी हाटक घटित चरु राँधे स्वाद सुनाज ॥ १९७ ॥
तिल पर राखेउ सकल जग बिदित, बिलोकत लोग ।
तुलसी महिमा राम की कौन जानिबे जोग ? ॥ १९८ ॥

सोरठा

राम ! स्वरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर ।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह ॥ १९९ ॥

दोहा

माया, जीव, सुभाव, गुन काल, करम, महदादि ।
ईस-अंक तें बढ़त सब ईस-अंक बिनु बादि ॥ २०० ॥
हित उदास रघुबर-बिरह, बिकल सकल नर-नारि ।
भरत-लषन-सियगति समुझि प्रभु-चख सदा सुबारि ॥ २०१ ॥
सीय, सुमित्रासुवन-गति, भरत-सनेह सुभाउ ।
कहिबे को सारद सरस, जनिबे को रघुराउ ॥ २०२ ॥
जानी राम, न कहि सके भरत लषन सियप्रीति ।
सो सुनि गुनि तुलसी कहत, हठ सठता की रीति ॥ २०३ ॥
सब बिधि समरथ सकल कह, सहि साँसति दिन राति ।
भलो निबाहेउ सुनि समुझि स्वामिधरम सब भाँति ॥ २०४ ॥
भरतहि होइ न राजमद, बिधि-हरि-हर-पद पाइ ।
कबहुँक काँजी सीकरनि छीरसिंधु बिनसाइ ॥ २०५ ॥
संपति चकई, भरत चक, मुनि आयसु खिलवार ।
तेहि निसि आस्रम-पींजरा राखे भा भिनुसार ॥ २०६ ॥
सघन चोर मग मुदित मन धनी गही ज्यों फेंट ।
त्यों सुग्रीव बिभीषनहि भई भरत की भेंट ॥ २०७ ॥

राम सराहे, भरत उठि मिले राम सम जानि ।
तदपि बिभीषन कीसपति, तुलसी गरत गलानि ॥ २०८ ॥
भरत स्यामतन रामसम, सब गुन-रूप-निधान ।
सेवक-सुखदायक सुलभ, सुमिरत सब कल्यान ॥ २०९ ॥
ललित लषन मूरति मधुर सुमिरहु सहित सनेह ।
सुख-संपति-कीरति-बिजय-सगुन-सुमंगलगेह ॥ २१० ॥
नाम सत्रुसूदन सुभग, सुखमासील-निकेत ।
सेवत सुमिरत सुलभ सुख, सकल सुमंगल देत ॥ २११ ॥
कोसल्या कल्यानमयि मूरति करत प्रनाम ।
सगुन सुमंगल काज सुभ, कृपा करहि सियराम ॥ २१२ ॥
सुमिरि सुमित्रानाम जग जे तिय लेहिं सुनेम ।
सुवन लषन रिपुदवन से, पावहिं पति-पद-प्रेम ॥ २१३ ॥
सीता-चरन प्रनाम करि सुमिरि सुनाम सनेम ।
होहिं तीय पतिदेवता प्राननाथ प्रिय प्रेम ॥ २१४ ॥
तुलसी केवल कामतरु रामचरित-आराम ।
कलितरु कपि निसिचर कहत, हमहि किए बिधि बाम ॥ २१५
मातु सकल, सानुज भरत, गुरु पुरलोग सुभाउ ।
देखत, देख न कैकइहि लंकापति कपिराउ ॥ २१६ ॥
सहज सरल रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान ।
चलै जोंक जल बक्रगति जद्यपि सलिल समान ॥ २१७ ॥
दसरथ नाम सुकामतरु, फलइ सकल कल्यान ।
धरनि, धाम, धन, धरमसुत, सद्गुन रूपनिधान ॥ २१८ ॥
तुलसी जान्यो दसरथहि 'धरमु न सत्य समान' ।
रामु तजे जेहि लागि, बिनु राम परिहरे प्रान ॥ २१९ ॥
रामबिरह दसरथ-मरन, मुनिमन अगम सु मीचु ।
तुलसी मंगल-मरन-तरु, सुचि सनेह-जल सींचु ॥ २२० ॥

सोरठा

जीवन मरन सुनाम जैसे दसरथ राय को ।
जियत खिलाये राम, रामबिरह तनु परिहरेउ ॥ २२१ ॥

दोहा

प्रभुहि बिलोकत गोदगत, सिय-हित घायल नीचु ।
तुलसी पाई गीधपति मुकुति मनोहर मीचु ॥ २२२ ॥

बिरत, करमरत, भगत, मुनि, सिद्ध ऊँच अरु नीचु।
तुलसी सकल सिहात सुनि गीधराज की मीचु॥ २२३॥
मुए, मरत, मरिहैं सकल घरी पहर के बीच।
लही न काहू आजु लौं गीधराज की मीच॥ २२४॥
मुये मुकुत, जीवत मुकुत, मुकुत मुकुतहूँ बीच।
तुलसी सबही तें अधिक गीधराज की मीच॥ २२५॥
रघुबर बिकल बिहंग लखि, सो बिलोकि दोउ बीर।
सिय-सुधि कहि, सियराम कहि, देह तजी मतिधीर॥ २२६॥
दसरथ तें दसगुन भगति सहित तासु कर काजु।
सोचत बंधु समेत प्रभु कृपासिंधु रघुराजु॥ २२७॥
केवट निसिचर बिहँग मृग किये साधु सनमानि।
तुलसी रघुबर की कृपा सकल सुमंगलखानि॥ २२८॥
मंजुल मंगल मोदमय मूरति मारुतपूत।
सकल सिद्धि कर-कमल-तल सुमिरत रघुबर-दूत॥ २२९॥
धीर, बीर, रघुबीर-प्रिय, सुमिरि समीरकुमार।
अगम सुगम सब काज करु, करतल सिद्धि बिचार॥ २३०॥
सुख-मुद-मंगल-कुमुद-बिधु, सुगुन-सरोरुह-भानु।
करहु काज सब सिद्धि सुभ आनि हिये हनुमानु॥ २३१॥
सकल काज सुभ समउ भल, सगुन सुमंगल जानु।
कीरति बिजय बिभूति भलि, हिय हनुमानहि आनु॥ २३२॥
सूर-सिरोमनि, साहसी, सुमति समीरकुमार।
सुमिरत सब सुख-संपदा-मुदमंगल-दातार॥ २३३॥
तुलसी-तनु सर, सुख-जलज, भुज-रुज-गज बरजोर।
दलत दयानिधि देखिए कपि केसरीकिसोर॥ २३४॥
भुज-तरु-कोटर रोग-अहि बरबस कियो प्रबेस।
बिहगराज-बाहन तुरत काढ़िय, मिटइ कलेस॥ २३५॥
बाहु-बिटप सुख-बिहँग-थलु लगी कुपीर कुआगि।
रामकृपा जल सींचिये, बेगि दीनहित लागि॥ २३६॥

सोरठा

मुकुति जनम महि जानि, ज्ञानखानि, अघहानिकर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइय कस न?॥ २३७

जरत सकल सुरबृंद, बिषम गरल जेहि पान किय ।
तेहि न भजसि मतिमंद, को कृपालु संकर सरिस ॥ २३८ ॥

दोहा

बासर ढासनि के ढका, रजनी चहुँ दिसि चोर ।
संकर निज पुर राखिए चितै सुलोचन-कोर ॥ २३९ ॥
अपनी बीसी आपुही पुरिहि लगाये हाथ ।
केहि बिधि बिनती बिस्व की करौं बिस्व के नाथ ॥ २४० ॥
और करै अपराध कोउ, और पाव फल-भोग ।
अति बिचित्र भगवंतगति, कोउ न जानिबे जोग ॥ २४१ ॥
प्रेमसरीर प्रपंच-रुज, उपजी अधिक उपाधि ।
तुलसी भली सुबैदई बेगि बाँधिये ब्याधि ॥ २४२ ॥
हम हमार आचार बड़, भूरि भार धरि सीस ।
हठि सठ परबस परत जिमि कीर, कोस-कृमि, कीस ॥ २४३ ॥
केहि मग प्रबिसति जाति केहि कहु दरपन में छाँह ।
तुलसी त्यों जग-जीवगति करी जीव के नाँह ॥ २४४ ॥
सुखसागर सुखनींद बस, सपने सब करतार ।
माया मायानाथ की को जग जाननहार ? ॥ २४५ ॥
जीव सीव सम सुख सयन, सपने कछु करतूति ।
जागत दीन मलीन सोइ बिकल बिषाद बिभूति ॥ २४६ ॥
सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ ।
जागे लाभ न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिय जोइ ॥ २४७ ॥
तुलसी देखत, अनुभवत, सुनत न समुझत नीचु ।
चपरि चपेटे देत नित केस गहे कर मीचु ॥ २४८ ॥
करम खरी कर, मोह थल, अंक चराचर-जाल ।
हनत गुनत, गुनि गुनि हनत जगत ज्योतिषी-काल ॥ २४९ ॥
कहिबे कहँ रसना रची, सुनिबे कहँ किय कान ।
धरिबे कहँ चित हित सहित परमारथहि सुजान ॥ २५० ॥
ज्ञान कहै अज्ञान बिनु, तम बिनु कहै प्रकास ।
निरगुन कहै जो सगुन बिनु सो गुरु, तुलसी दास ॥ २५१ ॥
अंक अगुन, आखर सगुन समुझि उभय प्रकार ।

२३९-ढासनि = डाकू ।

चढ़त न चातक-चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख ।
तुलसी प्रेमपयोधि की ताते नाप न जोख ॥ २८१ ॥
बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक ।
तुलसी परी न चाहिये चतुर चातकहिं चूक ॥ २८२ ॥
उपल बरषि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ? । २८३ ॥
पवि, पाहन, दामिनि, गरज, झरि झकोर खरि खीझि ।
रोष न प्रीतम-दोष लखि, तुलसी, रागहि रीझि ॥ २८४ ॥
मान राखिबो, माँगिबो, पिय सों नित नव नेहु ।
तुलसी तीनिउ तब फबै, जो चातक मत लेहु ॥ २८५ ॥
तुलसी चातक ही फबै मान राखिबो प्रेम ।
बक्र बुंद लखि स्वातिहू निदरि निबाहत नेम ॥ २८६ ॥
तुलसी चातक माँगनो एक, सबै घन दानि ।
देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि ॥ २८७ ॥
तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही के माथ ।
तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ ॥ २८८ ॥
प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि ।
जाचक जगत कनाउड़ो किया कनौड़ो दानि ॥ २८९ ॥
नहि जाचत, नहि संग्रही, सीस नाइ नहि लेइ ।
ऐसे मानी माँगनेहि को बारिद बिन देइ ॥ २९० ॥
को को न ज्यायो जगत में जीवन-दायक दानि ।
भयो कनौड़ो जाचकहि पयद प्रेम पहिचानि ॥ २९१ ॥
साधन साँसति सब सहत, सबहि सुखद फल लाहु ।
तुलसी चातक जलद की रीझि-बूझि बुध काहु ॥ २९२ ॥
चातक जीवन-दायकहिं, जीवन समय सुरीति ।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति ॥ २९३ ॥
जीव चराचर जहँ लगे है सबका हित मेह ।
तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह ॥ २९४ ॥
डोलत बिपुल बिहंग बन, पियत पोखरिन बारि ।
सुजस-धवल, चातक नवल ! तुही भुवन दसचारि ॥ २९५ ॥
मुख-मीठे, मानस-मलिन कोकिल मोर चकोर ।
सुजस-धवल, चातक नवल ! रह्यो भुवन भरि तोर ॥ २९६ ॥

का न करै अबला प्रबल, केहि जग काल न खाइ ? ।। २६७ ।।
जनम-पत्रिका बरनि कै देखहु मनहिं बिचारि ।
दारुन बैरी मीचु के बीच बिराजत नारि ।। २६८ ।।
दीपसिखा सम जुबति-तन, मन जनि होसि पतंग ।
भजहि राम तजि काममद, करहि सदा सतसंग ।। २६९ ।।
काम-क्रोध-मद-लोभरत, गृहासक्त दुखरूप ।
ते किमि जानहिं रघुपतिहि, मूढ़ पड़े भवकूप ।। २७० ।।
गहगृहीत पुनि बातबस, तेहि पुनि बीछी मार ।
ताहि पियाई बारुनी, कहहु कौन उपचार ? ।। २७१ ।।
ताहि कि संपति सगुन सुभ, सपनेहु मन बिस्राम ।
भूतद्रोहरत, मोहबस, रामबिमुख, रतकाम ।। २७२ ।।
कहत कठिन, समुझत कठिन, साधत कठिन बिबेक ।
होइ घुनाच्छरन्याय जौं, पुनि प्रत्यूह अनेक ।। २७३ ।।
खल प्रबोध, जगसोध, मन को निरोध, कुल सोध ।
करहिं ते फोकट पचि मरहिं, सपनेहु सुख न सुबोध ।। २७४ ।।

सोरठा

कोउ बिस्राम कि पाव, तात, सहज संतोष बिनु ?
चलै कि जल बिनु नाव, कोटि जतन पचि पचि मरिय ।। २७५ ।।
सुर नर मुनि कोउ नाहिं जेहि न मोह माया प्रबल ।
अस बिचारि मन माहिं भजिय महा मायापतिहिं ।। २७६ ।।

दोहा

एक भरोसो, एक बल, एक आस बिस्वास ।
एक राम-घनस्याम हित चातक तुलसीदास ।। २७७ ।।
जौं घन बरषै समय सिर, जौं भरि जनम उदास ।
तुलसी या चित चातकहिं तऊ निहारी आस ।। २७८ ।।
चातक तुलसी के मते स्वातिहु पियै न पानि ।
प्रेमतृषा बाढ़ति भली, घटे घटैगी आनि ।। २७९ ।।
रटत रटत रसना लटी, तृषा सूखि गे अंग ।
तुलसी चातक-प्रेम को नित नूतन रुचिरंग ।। २८० ।।

२६८—जन्मकुंडली में छठाँ, सातवाँ और आठवाँ स्थान क्रमशः शत्रु, स्त्री और मृत्यु का माना जाता है ।

२७८—समय सिर = ठीक समय पर ।

चढ़त न चातक-चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोख ।
तुलसी प्रेमपयोधि की ताते नाप न जोख ॥ २८१ ॥
बरषि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक ।
तुलसी परी न चाहिये चतुर चातकहिं चूक ॥ २८२ ॥
उपल बरषि गरजत तरजि, डारत कुलिस कठोर ।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर ? ॥ २८३ ॥
पवि, पाहन, दामिनि, गरज, झरि झकोर खरि खीझि ।
रोष न प्रीतम-दोष लखि, तुलसी, रागहि रीझि ॥ २८४ ॥
मान राखिबो, माँगिबो, पिय सों नित नव नेहु ।
तुलसी तीनिउ तब फबैं, जौ चातक मत लेहु ॥ २८५ ॥
तुलसी चातक ही फबै मान राखिबो प्रेम ।
बक्र बुंद लखि स्वातिहू निदरि निबाहत नेम ॥ २८६ ॥
तुलसी चातक माँगनो एक, सबै घन दानि ।
देत जो भूभाजन भरत, लेत जो घूँटक पानि ॥ २८७ ॥
तीनि लोक तिहुँ काल जस चातक ही के माथ ।
तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ ॥ २८८ ॥
प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि ।
जाचक जगत कनाउड़ो कियो कनौड़ो दानि ॥ २८९ ॥
नहिं जाचत, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ ।
ऐसे मानी माँगनेहि को बारिद बिन देइ ॥ २९० ॥
को को न ज्यायो जगत में जीवन-दायक दानि ।
भयो कनौड़ो जाचकहि पयद प्रेम पहिचानि ॥ २९१ ॥
साधन साँसति सब सहत, सबहिं सुखद फल लाहु ।
तुलसी चातक जलद की रीझि-बूझि बुध काहु ॥ २९२ ॥
चातक जीवन-दायकहिं, जीवन समय सुरीति ।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति ॥ २९३ ॥
जीव चराचर जहँ लगे है सबका हित मेह ।
तुलसी चातक मन बस्यो घन सों सहज सनेह ॥ २९४ ॥
डोलत बिपुल बिहंग बन, पियत पोषरिन बारि ।
सुजस-धवल, चातक नवल ! तुही भुवन दसचारि ॥ २९५ ॥
मुख-मीठे, मानस-मलिन कोकिल मोर चकोर ।
सुजस-धवल, चातक नवल ! रह्यो भुवन भरि तोर ॥ २९६ ॥

बास, बेष, बोलनि, चलनि मानस मंजु मराल ।
तुलसी चातक-प्रेम की कीरति बिसद बिसाल ॥ २९७ ॥
प्रेम न परखिय परुषपन, पयद-सिखावन एह ।
जग कह चातक पातकी, ऊसर बरसै मेह ॥ २९८ ॥
होइ न चातक पातकी, जीवनदानि न मूढ़ ।
तुलसी गति प्रहलाद की समुझि प्रेम-पथ गूढ़ ॥ २९९ ॥
गरज आपनी सबन को, गरज करत उर आनि ।
तुलसी चातक चतुर भो जाचक जानि सुदानि ॥ ३०० ॥
चरग चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर ।
तुलसी परबस हाड़ पर परिहैं पुहुमी नीर ॥ ३०१ ॥
बध्यो बधिक पर्‌यो पुन्यजल, उलटि उठाई चोंच ।
तुलसी चातक प्रेमपट मरतहु लगी न खोंच ॥ ३०२ ॥
अंड फोरि कियो चेटुवा, तुष पर्‌यो नीर निहारि ।
गहि चंगुल चातक चतुर डार्‌यो बाहिर बारि ॥ ३०३ ॥
तुलसी चातक देत सिख सुतहि बार ही बार ।
तात न तर्पन कीजियो बिना बारिधर-धार ॥ ३०४ ॥

सोरठा

जियत न नाई नारि चातक घन तजि दूसरहि ।
सुरसरि हू को बारि मरत न माँगेउ अरध जल ॥ ३०५ ॥
सुनु रे तुलसीदास, प्यास पपीहहि प्रेम की ।
परिहरि चारिउ मास, जो अचवै जल स्वाति को ॥ ३०६ ॥
जाँचै बारहमास, पियै पपीहा स्वातिजल ।
जान्यो तुलसीदास, जोगवत नेही नेह-मन ॥ ३०७ ॥

दोहा

तुलसी के मत चातकहि केवल प्रेमपियास ।
पियत स्वातिजल जान जग, जाचक बारह मास ॥ ३०८ ॥
आलबाल मुकुताहलनि हिय सनेह-तरु-मूल ।
होइ हेतु चित चातकहि, स्वाति सलिल अनुकूल ॥ ३०९ ॥
बिबि रसना, तनु स्याम है, बंक चलनि, बिषखानि ।

३०५—नारि = नार, गरदन ।
३११—ऊख = तपा हुआ । उष्ण । अन = अन्य, दूसरा ।

तुलसी जस स्रवननि सुन्यो सीस समरप्यो आनि ॥ ३१० ॥
उष्णकाल अरु देह खिन, मगपंथी, तन ऊख।
चातक बतियाँ ना रुचीं अन जल सींचे रूख ॥ ३११ ॥
अन जल सींचे रूख की छाया तें बरु घाम।
तुलसी चातक बहुत हैं यह प्रबीन को काम ॥ ३१२ ॥
एक अंग सो स्नेहता निसि दिन चातकनेह।
तुलसी जासों हित लगै वहि अहार, वहि देह ॥ ३१३ ॥
आपु व्याध को रूप धरि, कुहौ कुरंगहि राग।
तुलसी जो मृगमन मुरै परै प्रेमपट दाग ॥ ३१४ ॥
तुलसी मनि निज दुति फनिहि ब्याधहि देउ दिखाइ।
बिछुरत होइ न आँधरो ताते प्रेम न जाइ ॥ ३१५ ॥
जरत तुहिन लखि बनजबन रबि दै पीठि पराउ।
उदय बिकस, अथवत सकुच, मिटै न सहज सुभाउ ॥ ३१६ ॥
देउ आपने हाथ जल मीनहि माहुर घोरि।
तुलसी जियै जो बारि बिनु तौ तु देहि कबि खोरि ॥ ३१७ ॥
मकर, उरग, दादुर, कमठ जलजीवन जलगेह।
तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह ॥ ३१८ ॥
तुलसी मिटै न मरि मिटेहु साँचो सहज सनेह।
मोरसिखा बिनु मूरि हू पलुहत गरजत मेह ॥ ३१९ ॥
सुलभ प्रीति प्रीतम सबै कहत, करत सब कोइ।
तुलसी मीन पुनीत ते त्रिभुवन बड़ो न कोइ ॥ ३२० ॥
तुलसी जप तप नेम व्रत सब सब ही तें होइ।
लहै बड़ाई देवता इष्टदेव जब होइ ॥ ३२१ ॥
कुदिन हितू सो हित सुदिन, हित अनहित किन होइ।
ससिछबि हर रबिसदन तउ मित्र कहत सब कोइ ॥ ३२२ ॥
कै लघु कै बड़ मीत भल, सम सनेह दुख सोइ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस मिले महाबिष होइ ॥ ३२३ ॥
मान्य मीत सों सुख चहै सो न छुवै छलछाँह।

३१४—कुहो = (चाहे) मारे।

३१९—मोरसिखा = मयूरशिखा नाम की घास या बूटी जो बरसात आने ही पनप जाती है। इसमें जड़ नहीं होती। पलुहना = पनपना।

ससि, त्रिसंकु, कैकेइ गति लखि तुलसी मन माँह ॥ ३२४ ॥
कहिय कठिन कृत कोमलहु हित हठि होइ सहाइ ।
पलक पानि पर ओड़िअत समुझि कुघाइ सुघाइ ॥ ३२५ ॥
तुलसी बैर सनेह दोउ रहित बिलोचन चारि ।
सुरा सेवरा आदरहिं निंदहिं सुरसरि-बारि ॥ ३२६ ॥
रुचै माँगनेहि माँगिबो, तुलसी दानिहि दानु ।
आलस, अनख न आचरज, प्रेम पिहानी जानु ॥ ३२७ ॥
अमिय गारि गारेउ गरल, गारि कीन्ह करतार ।
प्रेम बैर की जननि जुग, जानहिं बुध, न गवार ॥ ३२८ ॥
सदा न जे सुमिरत रहहिं, मिलि न कहहिं प्रिय बैन ।
ते पै तिन्हके जाहिं घर जिनके हिये न नैन ॥ ३२९ ॥
हित पुनीत सब स्वारथहि, अरि असुद्ध बिनु चाड़ ।
निज मुख मानिक सम दसन, भूमि परे ते हाड़ ॥ ३३० ॥
माखी, काक, उलूक, बक, दादुर से भए लोग ।
भले ते सुक, पिक, मोर से, कोउ न प्रेमपथ जोग ॥ ३३१ ॥
हृदय कपट, बर बेष धरि बचन कहैं गढ़ि छोलि ।
अब के लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिए मन खोलि ॥ ३३२ ॥
चरन चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल ।
छीर-नीर-बिबरन समय बक उघरत तेहि काल ॥ ३३३ ॥
मिलै जो सरलहि सरल ह्वै कुटिल न सहज बिहाइ ।
सो सहेतु, ज्यों बक्रगति ब्याल न बिलै समाइ ॥ ३३४ ॥
कृसधन सखहिं न देत दुख, मुयहु न माँगत नीच ।
तुलसी सज्जन की रहनि पावक पानी बीच ॥ ३३५ ॥
संग सरल कुटिलहि भए हरि हर करहिं निबाहु ।
ग्रह गनती गनि चतुर बिधि कियो उदर-बिनु राहु ॥ ३३६ ॥
नीच निचाई नहिं तजै सज्जन हू के संग ।
तुलसी चंदन-बिटप बसि बिनु बिष भये न भुअंग ॥ ३३७ ॥
भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीचु ।
सुधा सराहिय अमरता, गरल सराहिय मीचु ॥ ३३८ ॥
मिथ्या माहुर सज्जनहिं, खलहिं गरल सम साँच ।

३२७—पिहानी = ढक्कन, छिपानेवाली वस्तु ।

तुलसी छुवत पराइ ज्यों पारद पावक-आँच ॥ ३३९ ॥
संत-संग अपवर्गकर, कामी भवकर पंथ।
कहहिं साधु, कवि, कोविद, स्रुति, पुरान, सद्ग्रंथ ॥ ३४० ॥
सुकृत न सुकृती परिहरै, कपट न कपटी नीच।
मरत सिखावन देइ चले गीधराज मारीच ॥ ३४१ ॥
सुजन सुतरु बन, ऊख सम, खल टंकिका रुखान।
परहित अनहित लागि सब साँसति सहत समान ॥ ३४२ ॥
पियहिं सुमन-रस अलि, बिटप काटि कोल फल खात।
तुलसी तरुजीवी जुगल, सुमति कुमति की बात ॥ ३४३ ॥
अवसर कौड़ी जो चुकै बहुरि दिए का लाख।
दुइज न चंदा देखिये, उदौ कहा भरि पाख ॥ ३४४ ॥
ग्यान अनभले को सबहि, भले भलेहू काउ।
सींग, सूँड़, रद, लूम, नख करत जीव जड़ घाउ ॥ ३४५ ॥
तुलसी जग जीवन अहित, कतहुँ कोउ हित जानि।
सोषक भानु कृसानु महि पवन, एक घन दानि ॥ ३४६ ॥
सुनिय सुधा देखिय गरल, सब करतूति कराल।
जहँ तहँ काक उलूक बक, मानस सकृत मराल ॥ ३४७ ॥
जलचर, थलचर, गगनचर, देव, दनुज, नर, नाग।
उत्तम मध्यम अधम खल, दस गुन बढ़त बिभाग ॥ ३४८ ॥
बलि मिस देखे देवता, कर मिस मानवदेव।
मुए-मार सुबिचार-हत स्वारथ साधन एव ॥ ३४९ ॥
सुजन कहत भल पोच पथ, पापि न परखै भेद।
करमनास सुरसरित मिस बिधि निषेध बद बेद ॥ ३५० ॥
मनि भाजन मधु, पारई पूरन अमी निहारि।
का छाँड़िय का संग्रहिय कहहु बिबेक बिचारि ॥ ३५१ ॥
उत्तम मध्यम नीच गति पाहन, सिकता, पानि।
प्रीति परिच्छा तिहुँन की बैर बितिक्रम जानि ॥ ३५२ ॥

३४२—बन = कपास।
३४९—मानवदेव = राजा।
३५१—मधु = मद्य। पारई = मिट्टी का कटोरा। परई।
३५२—पत्थर पर की, बालू पर की और पानी पर की लकीर की सी प्रीति क्रम से उत्तम, मध्यम और नीच है। बैर का क्रम इसका उलटा है।

पुन्य, प्रीति, पति, प्रापतिउ, परमारथ-पथ पाँच ।
लहहिं सुजन, परिहरहिं खल, सुनहु सिखावन साँच ॥ ३५३ ॥
नीच निरादर ही सुखद, आदर सुखद बिसाल ।
कदली बदली बिटप गति, पेखहु पनस रसाल ॥ ३५४ ॥
तुलसी अपनो आचरन भलो न लागत कासु ।
तेहि न बसात जो खात नित लहसुनहू को बासु ॥ ३५५ ॥
बुध सो बिबेकी बिमलमति जिनके रोष न राग ।
सुहृद सराहत साधु जेहि तुलसी ताको भाग ॥ ३५६ ॥
आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ ॥ ३५७ ॥
तुलसी भलो सुसंग तें, पोच कुसंगति होइ ।
नाउ, किंनरी, तीर, असि लोह बिलोकहु लोइ ॥ ३५८ ॥
गुरु-संगति गुरु होइ सो, लघु-संगति लघु नाम ।
चार पदारथ में गनै नरकद्वार हू काम ॥ ३५९ ॥
तुलसी गुरु लघुता लहत लघु-संगति परिनाम ।
देवी देव पुकारियत नीच नारिनर-नाम ॥ ३६० ॥
तुलसी किये कुसंग-थिति होहिं दाहिने बाम ।
कहि सुनि सकुचिय सूम खल गत हरि-शंकर-नाम ॥ ३६१ ॥
बसि कुसंग चह सुजनता ताकी आस निरास ।
तीरथहू को नाम भो 'गया' मगह के पास ॥ ३६२ ॥
राम-कृपा तुलसी सुलभ गंग सुसंग समान ।
जो जल परै जो जन मिलै कीजै आपु समान ॥ ३६३ ॥
ग्रह, भेषज, जल, पवन, पट पाइ कुजोग सुजोग ।
होइ कुबस्तु सुबस्तु जग, लखहिं सुलच्छन लोग ॥ ३६४ ॥
जनम जोग तें जानियत, जग बिचित्र गति देखि ।
तुलसी आखर, अंक, रस, रंग बिभेद बिसेखि ॥ ३६५ ॥
आखर जोरि बिचार करु, सुमति अंक लिखि लेखु ।
जोग-कुजोग-सुजोग-मय जगगति समुझि बिसेखु ॥ ३६६ ॥
करु बिचार, चलु सुपथ, भल आदि मध्य परिनाम ।
उलटि जपे 'जारा मरा', सूधे 'राजा राम' ॥ ३६७ ॥

३५४—बिसाल = बड़ा ।

होइ भले के अनभलो, होइ दानि के सूम।
होइ कुपूत सपूत के, ज्यों पावक में धूम। ३६८॥
जड़ चेतन गुन-दोष-मय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि-बिकार॥ ३६९॥

सोरठा

पाट कीट तें होइ, ताते पाटंबर रुचिर।
कृमि पालै सब कोइ परम अपावन प्रान सम॥ ३७०॥

दोहा

जो जो जेहि जेहि रसमगन तहँ सो मुदित मन मानि।
रसगुन-दोष बिचारिबो रसिकरीति पहिचानि॥ ३७१॥
सम प्रकास-तम पाख दुहुँ नामभेद बिधि कीन्ह।
ससि पोषक सोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह॥ ३७२॥
लोक बेद हूँ लौं दगो नाम भले को पोच।
धर्मराज जम, गाज पवि कहत सकोच न सोच॥ ३७३॥
बिरुचि परखिए सुजन जन, राखि परखिये मंद।
बड़वानल सोषत उदधि, हरष बढ़ावत चंद॥ ३७४॥
प्रभु सनमुख भए नीच नर निपट होत बिकराल।
रबि-रुख लखि दरपन फटिक उगिलत ज्वालाजाल॥ ३७५॥
प्रभु-समीप-गत सुजन जन होत सुखद सुबिचारि।
लवन-जलधि-जीवन जलद, बरषत सुधा सुबारि॥ ३७६॥
नीच निरावहिं निरस तरु, तुलसी सींचहिं ऊख।
पोषद पयद समान सब बिष पियूष के रूख॥ ३७७॥
बरखि बिस्व हरषित करत, हरत ताप अघ प्यास।
तुलसी दोष न जलद को जो जल जरै जवास॥ ३७८॥
अमर दानि, जाचक मरहिं, मरि मरि फिरि फिरि लेहिं।
तुलसी जाचक पातकी दातहिं दूषन देहिं॥ ३७९॥
लखि गयंद लै चलत भजि स्वान सुखानो हाड़।
गज-गुन, मोल, अहार, बल महिमा जान कि राड़?॥ ३८०॥

३७३—दगो = अंकित है, प्रसिद्ध है।
३७४—बिरुचि = अपनी रुचि या प्रसन्नता से जो देखते ही हों।
३८०—राड़ = जड़, दुष्ट।

कै निदरहु कै आदरहु सिंहहिं स्वान सियार ।
हरष बिषाद न केसरिहि कुंजर-गंजनिहार ॥ ३८१ ॥
ठाढ़ो द्वार न दै सकैं तुलसी जे नर नीच ।
निंदहिं बलि हरिचंद को 'का कियो करन दधीच ?' ॥ ३८२ ॥
ईस-सीस बिलसत बिमल, तुलसी तरल तरंग ।
स्वान सरावग के कहे लघुता लहै न गंग ॥ ३८३ ॥
तुलसी देवल देव को लागे लाख करोरि ।
काक अभागे हगि भरयो महिमा भई कि थोरि ? ॥ ३८४ ॥
निज गुन घटत न नागनग परखि परिहरत कोल ।
तुलसी प्रभु भूषन किए गुंजा बढ़ न मोल ॥ ३८५ ॥
राकापति षोड़स उवहिं, तारागन समुदाइ ।
सकल गिरिन्ह दव लाइए बिनु रबि राति न जाइ ॥ ३८६ ॥
भलो कहै बिन जानेहू, बिनु जाने अपवाद ।
ते नर गादुर जानि जिय करिय न हरष बिषाद ॥ ३८७ ॥
पर-सुख-संपति देखि सुनि जरहिं जे जड़ बिनु आगि ।
तुलसी तिनके भाग तें चलै भलाई भागि ॥ ३८८ ॥
तुलसी जे कीरति चहहिं पर की कीरति खोइ ।
तिनके मुँह मसि लागिहै, मिटिहि न मरिहै धोइ ॥ ३८९ ॥
तनु, गुन, धन, महिमा, धरम, तेहि बिनु जेहि अभिमान ।
तुलसी जियत बिडंबना, परिनामहु गत जान ॥ ३९० ॥
सासु, ससुर, गुरु, मातु, पितु, प्रभु भयो चह सब कोइ ।
होनी दूजी ओर को, सुजन सराहिय सोइ ॥ ३९१ ॥
सठ सहि साँसति पति लहत, सुजन कलेस न काय ।
गढ़ि गुढ़ि पाहन पूजिए, गंडकि-सिला सुभाय ॥ ३९२ ॥
बड़े बिबुध-दरबार में भूमि-भूप-दरबार ।
जापक पूजक पेखियत, सहत निरादर भार ॥ ३९३ ॥
बिनु प्रपंच छल भीख भलि, लहिय न दिए कलेस ।
बावन बलि सो छल कियो, दियो उचित उपदेस ॥ ३९४ ॥
भलो भले सो छल किए जनम कनौड़ो होइ ।
श्रीपति सिर तुलसी लसति, बलि-बावनगति सोइ ॥ ३९५ ॥
बिबुध-काज बावन बलिहि छलो भलो जिय जानि ।
प्रभुता तजि बस भे, तदपि मन की गइ न गलानि ॥ ३९६ ॥

सरल-बक्रगति पंचग्रह, चपरि न चितवत काहु ।
तुलसी सूधे सूर ससि, समय बिडंबित राहु ॥ ३९७ ॥
खल-उपकार बिकार-फल तुलसी जान जहान ।
मेंडुक मर्कट बनिक बक कथा सत्य-उपखान ॥ ३९८ ॥
तुलसी खल-बानी मधुर सुनि समुझिय हिय हेरि ।
रामराज बाधक भई मूढ़ मंथरा चेरि ॥ ३९९ ॥
जोंक सूधि मन कुटिल गति, खल बिपरीत बिचारु ।
अनहित सोनित सोष सो, सो हित सोषनहारु ॥ ४०० ॥
नीच गुडी ज्यों जानिबो, सुनि लखि तुलसीदास ।
ढीलि दिये गिरि परत महि, खैंचत चढ़त अकास ॥ ४०१ ॥
भरदर बरसत कोससत बचैं जे बूँद बराइ ।
तुलसी तेउ खल-बचन-सर हये, गए न पराइ ॥ ४०२ ॥
पेरत कोल्हू मेलि तिल तिली सनेही जानि ।
देखि प्रीति की रीति यह, अब देखिबी रिसान ॥ ४०३ ॥
सहवासी काचो गिलहिं, पुरजन पाक-प्रबीन ।
कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन ? ॥ ४०४ ॥
जासु भरोसे सोइए राखि गोद में सीस ।
तुलसी तासु कुचाल तें रखवारो जगदीस ॥ ४०५ ॥
मार खोज लै सौंह करि, करि मत, लाज न त्रास ।
मुए नीच ते मीच बिनु जे इनके बिस्वास ॥ ४०६ ॥
परद्रोही, परदार-रत, परधन, परअपवाद ।
ते नर पाँवर पापमय देह धरे मनुजाद ॥ ४०७ ॥
बचन बेष क्यों जानिए मन मलीन नर नारि ।
सूपनखा, मृग, पूतना, दसमुख प्रमुख बिचारि ॥ ४०८ ॥
हसनि, मिलनि, बोलनि मधुर कटु करतब मन माँह ।
छुवत जो सकुचै सुमति सो तुलसी तिन्हकी छाँह ।
कपट सार सूची सहस, बाँधि बचन-परवास ।
कियो दुराउ चहै चातुरी सो सठ तुलसीदास ॥ ४१० ॥

३९७—चपरि = तेजी से, सहसा ।
३९८—सत्य-उपखान = सत्योपाख्यान नाम का ग्रंथ ।
४०६—मार = मारते है ।
४१०—परवास = प्रवास, आच्छादन अर्थात् प्रबंध ।

बचन बिचार अचार तन, मन, करतब छल छूति ।
तुलसी क्यों सुख पाइए अंतर्जामिहि धूति ? ॥ ४११ ॥
सारदूल को स्वाँग करि, कूकर की करतूति ।
तुलसी तापर चाहिए कीरति बिजय बिभूति ॥ ४१२ ॥
बड़े पाप बाढ़े किए, छोटे किए लजात ।
तुलसी तापर सुख चहत, बिधि सों बहुत रिसात ॥ ४१३ ॥
देस-काल-करता-करम-बचन-बिचार-बिहीन ।
ते सुरतरु-तर दारिदी, सुरसरि-तीर मलीन ॥ ४१४ ॥
साहसही, कै कोपबस किए कठिन परिपाक ।
सठ संकट-भाजन भए हठि कुजाति कपि काक ॥ ४१५ ॥
राज करत बिनु काजही करैं कुचालि कुसाज ।
तुलसी ते दसकंध ज्यों जइहैं सहित समाज ॥ ४१६ ॥
राज करत बिनु काज ही ठटहिं जे कूर कुठाट ।
तुलसी ते कुरुराज ज्यों जइहैं बारहबाट ॥ ४१७ ॥
सभा सुजोधन की सकुनि, सुमति सराहन जोग ।
द्रोन बिदुर भीषम हरिहि कहैं प्रपंची लोग ॥ ४१८ ॥
पांडुसुवन कौरव मदसि, नीको रिपु हित जानि ।
हरि हर सम सब मानियत, ज्ञान मोह की बानि ॥ ४१९ ॥
हित पर बढ़ै बिरोध जब, अनहित पर अनुराग ।
राम-बिमुख बिधि बामगति, सगुन अघाय अभाग ॥ ४२० ॥
सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख जो न करै सिर मानि ।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हितहानि ॥ ४२१ ॥
भरुहाए नट भाट के चपरि चढ़े संग्राम ।
कै वै भाजे आइहैं, कै बाँधे परिनाम ॥ ४२२ ॥
लोकरीति फूटी सहैं, आँजी सहै न कोइ ।
तुलसी जो आँजी सहै सो आँधरो न होइ ॥ ४२३ ॥
भागे भल, ओड़ेहु भलो, भलो न घाले घाउ ।
तुलसी सबके सीस पर रखवारो रघुराउ ॥ ४२४ ॥
सुमति बिचारहिं, परिहरहिं दल-सुमनहु संग्राम ।
सकुल गए, तनु बिनु भए, साखी जादौ काम ॥ ४२५ ॥
कलह न जानब छोट करि, कलह कठिन परिनाम ।

४२२—भरुहाए = बढ़ावा देने से ।

लगति अगिनि लघु नीचगृह जरत धनिक-धन धाम ॥ ४२६ ॥
छमा रोष के दोष गुन सुनि मनु ! मानहिं सीख।
अबिचल श्रीपति हरि भए, भूसुर लहै न भीख। ४२७॥
कौरव पांडव जानिए क्रोध छमा के सीम।
पाँचहि मारि न सौ सके, सओ सँहारे भीम ॥ ४२८ ॥
बोल न मोटे मारिये, मोटी रोटी मारु।
जीति सहस सम हारिबो, जीते हारि निहारु ॥ ४२९ ॥
जो परि पायँ मनाइए तासों रूठि बिचारि।
तुलसी तहाँ न जीतिये जहँ जीतेहू हारि ॥ ४३० ॥
जूझे ते भल बूझिबो, भली जीति तें हारि।
डहके से डहकाइबो भलो, जो करिय बिचारि ॥ ४३१ ॥
जा रिपु सों हारेहु हँसी, जिते पाप परितापु।
तासों रारि निवारिए, समय सँभारिय आपु ॥ ४३२ ॥
जो मधु मरै न मारिये माहुर देइ सो काउ।
जग जिति हारे परसुधर, हारि जिते रघुराउ ॥ ४३३ ॥
बैर-मूल-हर हित-बचन, प्रेममूल उपकार।
दो हा' सुभ-संदोह सो, तुलसी किये बिचार ॥ ४३४ ॥
रोष न रसना खोलिए, बरु खोलिय तरवारि।
सुनत मधुर, परिनाम हित, बोलिय बचन बिचारि ॥ ४३५ ॥
मधुर बचन कटु बोलिबो, बिनु स्रम भाग अभाग।
कुहू कुहू कलकंठ रव, काँकाँ कररत काग ॥ ४३६ ॥
पेट न फूलत बिनु कहे, कहत न लागै ढेर।
सुमति बिचारे बोलिये समुझि कुफेर सुफेर ॥ ४३७ ॥
छिद्यो न तरुनि-कटाछ सर, करेउ न कठिन सनेहु।
तुलसी तिनकी देह को जगत कवच करि लेहु ॥ ४३८ ॥
सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आपु।
बिद्यमान रन पाय रिपु कायर करहिं प्रलापु ॥ ४३९ ॥
बचन कहे अभिमान के पारथ पेपत सेतु।
प्रभुतिय लूटत नीच भर जय न मीचु तेहि हेतु ॥ ४४० ॥

४३४—दो'हा' = 'हा हा' अर्थात् हा हा खाना; विनती करना।

४४०—एक बार समुद्र में बँधे सेतु को देख अर्जुन ने हनुमान से गर्व से

राम लषन बिजयी भए बनहु गरीबनिवाज ।
मुखर बालि रावन गए घर ही सहित समाज ॥ ४४१ ॥
खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल ।
कुमति बालि दसकंठ घर सुहृद बंधु कियो काल ॥ ४४२ ॥
लखै अघानो भूख में, लखै जीति में हारि ।
तुलसी सुमति सराहिए, मग पग धरै बिचारि ॥ ४४३ ॥
लाभ समय को पालिबो, हानि समय की चूक ।
सदा बिचारहिं चारुमति सुदिन कुदिन दिन दूक ॥ ४४४ ॥
सिंधुतरन कपि गिरिहरन काज साइँ हित दोउ ।
तुलसी समयहि सब बड़ो, बूझत कहुँ कोउ कोउ ॥ ४४५ ॥
तुलसी मीठी अमी तें माँगी मिलै जो मीच ।
सुधा सुधाकर समय बिनु कालकूट तें नीच ॥ ४४६ ॥
तुलसी असमय के सखा धीरज, धरम, बिबेक ।
साहित, साहस, सत्यव्रत रामभरोसो एक ॥ ४४७ ॥
समरथ कोउ न राम सो, तीय-हरन अपराधु ।
समयहि साधे काज सब, समय सराहहिं साधु ॥ ४४८ ॥
तुलसी तीरहु के चले समय पाइबी थाह ।
धाइ न जाइ थहाइबी सर सरिता अवगाह ॥ ४४९ ॥
तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलै सहाय ।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय ॥ ४५० ॥
कै जूझिबो कै बूझिबो, दान कि काय-कलेस ।
चारि चारु परलोक-पथ, जथाजोग उपदेस ॥ ४५१ ॥
पात पात को सींचिबो न करु सरग-तरु हेत ।
कुटिल कटुक फर फरैगो तुलसी करत अचेत ॥ ४५२ ॥
गाठिबँध तें परतीति बड़ि, जेहि सब को सब काज ।
कहब थोर समुझब बहुत, गाड़े बढ़त अनाज । ४५३ ॥
अपनो ऐपन निजहथा, तिय पूजहि निज भीति ।
फलै सकल मनकामना, तुलसी प्रीति प्रतीति ॥ ४५४ ॥

कहा, "मैं तो बाणों का पुल बाँध सकता था।" अर्जुन ने पुल बाँधा, पर वह हनुमान जी के पैर रखते ही बैठ गया।

४४४—दूक = दोनों।

बरषत करषत आपु जल, हरषत अरघनि भानु।
तुलसी चाहत साधु सुर सब सनेह मनमानु॥ ४५५॥
स्रुति-गुन कर-गुन, पु-जुग मृग, हय, रेवती, सखाउ।
देहि लेहि धन धरनि धरु, गएहु न जाइहि काउ॥ ४५६॥
ऊगुन पूगुन वि अज कृ म, आ भ अ मू गुनु साथ।
हरो धरो गाड़ो दियो धन फिर चढ़ै न हाथ॥ ४५७॥
रबि हर दिसि गुन रस नयन, मुनि प्रथमादिक बार।
तिथि सब-काज-नसावनी, होइ, कुजोग बिचार॥ ४५८॥
ससि सर नव दुइ छ दस गुन, मुनि फल बसु हर भानु।
मेषादिक क्रम तें गनहिं घात चंद्र जिय जानु॥ ४५९॥
नकुल सुदरसन दरसनी, छेमकरी चक चाष।
दस दिसि देखत सगुन सुभ, पूजहि मन अभिलाष॥ ४६०॥

४५६—स्रुति-गुन = श्रवण से तीन नक्षत्र अर्थात श्रवण, धनिष्ठा और शतभिक्।

कर गुन = हस्त से तीन नक्षत्र अर्थात् हस्त, चित्रा और स्वाती।

पु-जुग = दोनों प अर्थात् 'पु' से आरंभ होनेवाले पुष्य और पुनर्वसु।

सखा = अनुराधा। स्वात्यादित्य मृदुद्विदैव गुरुभे कर्णत्रयाश्वे चरे।

४५७—ऊ-गुन = उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्रपद।

पू गुन = पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़, पूर्वाभाद्रपद।

वि = विशाखा। अज = रोहिणी। कृ = कृत्तिका। म = मघा। आ = आर्द्रा। भ = भरणी। अ = अश्लेषा। मू = मूल।

तीक्ष्ण मिश्र ध्रुवोग्रैर्यत् द्रव्यंदत्तं निवेशितं।
प्रयुक्तंच, विनष्टंच, विष्ट्यापाते च नाप्यते॥

४५८—रवि = द्वादशी। हर = एकादशी। दिसि = दसमी। गुन = तीज। रस = षष्ठी। नयन = दूज। मुनि = सप्तमी—ये यदि क्रम से रवि, सोम, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र और शनि को पड़े तो।

४५९—चंद्रमा को इन इन स्थानों पर घातक समझो—

मेष का १, वृष का ५, मिथुन का ९, कर्क का २, सिंह का ६, कन्या का १०, तुला का ३, वृश्चिक का ७, धन का ४, मकर का ८, कुंभ का ११, मीन का १२।

४६०—सुदरसन = मछली। दरसनी = दर्पण। चक = चक्रवाक।

सुधा साधु सुरतरु सुमन, सुफल सुहावनि बात ।
तुलसी सीतापति भगति सगुन सुमंगल सात ॥ ४६१ ॥
भरत सत्रुसूदन लषन सहित सुमिरि रघुनाथ ।
करहु काज सुभ साज सब, मिलिहि सुमंगल साथ ॥ ४६२ ॥
राम लषन कौसिक सहित सुमिरहु करहु पयान ।
लच्छिलाभ लै जगत जसु मंगल सगुन प्रमान ॥ ४६३ ॥
अतुलित महिमा बेद की तुलसी किए बिचार ।
जो निंदत निंदित भयो बिदित बुद्ध अवतार ॥ ४६४ ॥
बुध किसान सर-बेद निज मते खेत सब सींच ।
तुलसी कृषि लखि जानिबो उत्तम, मध्यम, नीच ॥ ४६५ ॥
सहि कुबोल, साँसति सकल, अँगइ अनट अपमान ।
तुलसी धरम न परिहरिय, कहि करि गए सुजान ॥ ४६६ ॥
अनहित-भय परहित किये, पर-अनहित हितहानि ।
तुलसी चारु बिचार भल, करिय काज सुनि जानि ॥ ४६७ ॥
पुरुषारथ, पूरब करम, परमेस्वर परधान ।
तुलसी पैरत सरित ज्यों सबहि काज अनुमान ॥ ४६८ ॥
चलब नीतिमग, रामपग नेह निबाहब नीक ।
तुलसी पहिरिय सो बसन जो न पखारे फीक ॥ ४६९ ॥
दो‘हा’ चारु बिचारु चलु परिहरि बाद बिबाद ।
सुकृत-सींव, स्वारथ-अवधि, परमारथ-मरजाद ॥ ४७० ॥
तुलसी सो समरथ सुमति, सुकृती, साधु, सयान ।
जो बिचारि ब्यवहरइ जग, खरच लाभ अनुमान ॥ ४७१ ॥
जाय जोग जग छेम बिनु, तुलसी के हित राखि ।
बिनु ऽपराध भृगुपति, नहुष, बेनु, बृकासुर साखि ॥ ४७२ ॥
बड़ि प्रतीति गठिबंध तें, बड़ो जोग तें छेम ।
बड़ो सुसेवक साइँ तें, बड़ो नेम तें प्रेम ॥ ४७३ ॥
सिष्य, सखा, सेवक, सचिव, सुतिय सिखावन साँच ।
सुनि समुझिय, पुनि परिहरिय परमनरंजन पाँच ॥ ४७४ ॥
नगर, नारि, भोजन, सचिव, सेवक, सखा, अगार ।
सरस, परिहरे रंगरस निरस बिषाद बिकार ॥ ४७५ ॥

४७२—जाय = व्यर्थ ।

तूठहिं निज रुचि काज करि, रूठहिं काज बिगारि ।
तीय, तनय, सेवक, सखा, मन के कंटक चारि ॥ ४७६ ॥
दीरघ रोगी, दारिदी, कटुबच लोलुप लोग ।
तुलसी प्रान समान तउ होहिं निरादर-जोग ॥ ४७७ ॥
पाही खेती, लगनवट, ऋन कुब्याज, मग खेत ।
बैर बड़े सों आपने, किये पाँच दुख-हेत ॥ ४७८ ॥
धाय लगे लोहा ललकि खैंचि लेइ नइ नीचु ।
समरथ पापी सों बयर, जानि बिसाही मीचु ॥ ४७९ ॥
सोचिय गृही जो मोहबस, करै करमपथ-त्याग ।
सोचिय जती प्रपंच-रत, बिगत बिबेक बिराग ॥ ४८० ॥
तुलसी स्वारथ सामुहो, परमारथ तनु पीठि ।
अंध कहे दुख पाइहौ, डिठियारो केहि डीठि ? ॥ ४८१ ॥
बिनु आँखिन की पानहीं पहिचानत लखि पाय ।
चारि नयन के नारि नर सूझत मीचु न माय ॥ ४८२ ॥
जुपै मूढ़ उपदेस के होते जोग जहान ।
क्यों न सुजोधन बोध कै आए स्यामसुजान ? ॥ ४८३ ॥

सोरठा

फूलै फरै न बेत, जदपि सुधा बरषहिं जलद ।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलैं बिरंचि सिव ॥ ४८४ ॥

दोहा

रीझि आपनी बूझिपर, खीझि बिचार-बिहीन ।
ते उपदेस न मानहीं मोह-महोदधि-मीन ॥ ४८५ ॥
अनसमुझे अनुसोचनो, अवसि समुझिए आपु ।
तुलसी आपु न समुझिए पलपल पर परितापु ॥ ४८६ ॥
कूप खनत मंदिर जरत, आए धारि बबूर ।
बवहिं, नवहिं निज काज सिर कुमति-सिरोमनि कूर ॥ ४८७ ॥

४७८—पाही खेती = जिस गाँव में बसे हों उससे दूर दूसरे गाँव में खेत। लगनवट = प्रेम ।

४८०—मछली और काँटया का दृष्टांत ।

४८७—आए धारि बबूर बवहिं = कहावत अर्थात् जब सेना ने गढ़ घेर लिया तब चारों ओर रोक के लिए चले बबूल बोने ।

निडर ईस ते बीसकै बीसबाहु सो होइ।
गयो गयो कहै सुमति सब, भयो कुमति कह कोइ॥ ४८८॥
जो सुनि समुझि अनीति रत, जागत रहै जु सोइ।
उपदेसिबो जगाइबो तुलसी उचित न होइ। ४८९॥
बहु सुख, बहु रुचि, बहु बचन, बहु अचार ब्यवहार।
इनको भलो मनाइबो यह अज्ञान अपार॥ ४९०॥
लोगनि भलो मनाव जो भलो होन की आस।
करत गगन को गेंडुआ सो सठ तुलसीदास॥ ४९१॥
अपजस-जोग कि जानकी, मनिचोरी की कान्ह?।
तुलसी लोग रिझाइबो करषि कातिबो नान्ह॥ ४९२॥
तुलसी जुपै गुमान को होतो कछू उपाउ।
तौ कि जानिकिहि जानि जिय परिहरते रघुराउ?॥ ४९३॥
माँगि मधुकरी खात ते, सोवत गोड़ पसारि।
पाप-प्रतिष्ठा बढ़ि परी, ताते बाढ़ी रारि॥ ४९४॥
तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़-जनता-सनमान।
उपजतही अभिमान भो, खोवत मूढ़ अपान॥ ४९५॥
लही आँख कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याय?
कब कोढ़ी काया लही? जग बहराइच जाइ॥ ४९६॥
तुलसी निरभय होत नर सुनियत सुरपुर जाइ।
सो गति देखियत अछत तनु, सुख संपति गति पाइ॥ ४९७॥

४८८—बीसकै = बीस बिस्वे, निश्चय।

४९१—गेंडुआ = तकिया।

४९२—नान्ह = महीन।

४९३—गुमान = बुरी धारणा, शंका, लोकापवाद।

४९४—खात ते = खाते थे।

४९६—बहराइच में सालार मसऊद गाजी (गाजी मियाँ) की दरगाह है, जहाँ कई हज़ार यात्री जाया करते हैं। यह महमूद ग़ज़नवी का भानजा था, जो महमूद के कन्नौज से आगे न बढ़ने पर भी ग़ाज़ी होने के हौसले से अवध की ओर कुछ सेना लेकर आया। वहाँ श्रावस्ती (आधु० सहेतमहेत जो बलरामपुर के पास है) के जैन राजा सुहृददेव के हाथ से मारा गया।

तुलसी तोरत तीरतरु, बकहित हंस बिडारि ।
बिगत नलिन-अलि, मलिन जल, सुरसरिहू बढ़ियारि ॥ ४९८ ॥
अधिकारी बस औसरा भलेउ जानिबे मंद ।
सुधासदन बसु, बारहें, चउथे, चउथिउ चंद ॥ ४९९ ॥
त्रिबिध एक बिधि प्रभु-अनुग अवसर करहिं कुठाट ।
सूधे टेढ़े, सम बिषम, सब महँ बारहबाट ॥ ५०० ॥
प्रभु तें प्रभु-गन दुखद लखि प्रजहिं सँभारै राउ ।
कर तें होत कृपान को कठिन घोर घन घाउ ॥ ५०१ ॥
ब्यालहु तें बिकराल बड़ ब्यालफेन जिय जानु ।
वहि के खाए मरत है, वह खाये बिनु प्रानु ॥ ५०२ ॥
कारन ते कारज कठिन, होइ दोष नहिं मोर ।
कुलिस अस्थि तें, उपल ते लोह कराल कठोर ॥ ५०३ ॥
काल बिलोकत ईस-रुख, भानु काल-अनुहारि ।
रविहि राउ, राजहि प्रजा, बुध ब्यवहरहिं बिचारि ॥ ५०४ ॥
जथा अमल पावन पवन पाइ कुसंग सुसंग ।
कहिय कुबास सुबास तिमि काल महीस-प्रसंग ॥ ५०५ ॥
भलेहु चलत पथ पोच भय, नृप-नियोग-नय-नेम ।
सुतिय सुभूपति भूषियत लोह-सँवारित हेम ॥ ५०६ ॥
माली भानु किसान सम नीतिनिपुन नरपाल ।
प्रजा-भागबस होहिंगे कबहुँ कबहु कलिकाल ॥ ५०७ ॥
बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ ।
तुलसी प्रजा-सुभाग ते भूप भानु सो होइ ॥ ५०८ ॥
सुधा, सुनाज, कुनाज, पल, आम असन सम जानि ।
सुप्रभु प्रजाहित लेहिं कर सामादिक अनुमानि ॥ ५०९ ॥
पाके, पकये, बिटप-दल उत्तम मध्यम नीच ।
फल नर लहै, नरेस त्यों करि बिचार मन बीच ॥ ५१० ॥
रीझि खीझि गुरु देत सिख, सखा सुसाहिब साधु ।
तोरि खाय फल होइ भल, तरु काटे अपराधु ॥ ५११ ॥

४९९—चउथिउ = भादों सुदी चौथ का चंद्रमा ।
५०२—वहि के खाए = उसके काटने से ।
५०९—सुधा = दूध रस आदि पीने के उत्तम पदार्थ ।

धरनि-धेनु चारितु चरत, प्रजा सुबच्छ पेन्हाइ ।
हाथ कछू नहिं लागिहै किए गोड़ की गाइ ॥ ५१२ ॥
चढ़े बघूरे चंग ज्यों, ज्ञान ज्यों सोक-समाज ।
करम, धरम, सुख-संपदा त्यों जानिबे कुराज ॥ ५१३ ॥
कंटक करि करि परत गिरि साखा सहस खजूरि ।
मरहिं कुनृप करि करि कुनय सो कुचालि भव भूरि ॥ ५१४ ॥
काल तोपची, तुपक महि, दारू अनय कराल ।
पाप पलीता, कठिन गुरु गोला पुहुमीपाल ॥ ५१५ ॥
भूमि रुचिर रावन-सभा, अंगद-पद महिपाल ।
धरम राम, नय सील बल अचल होत सुभ काल ॥ ५१६ ॥
प्रीति-रामपद नीतिरति, धरम प्रतीति सुभाइ ।
प्रभुहिं न प्रभुता परिहरै कबहुँ बचन मन काइ ॥ ५१७ ॥
कर के कर, मन के मनहि, बचन बचन गुन जानि ।
भूपहि भूलि न परिहरै बिजय बिभूति सयानि ॥ ५१८ ॥
गोली बान सुमंत्र सर समुझि उलटि मन देखु ।
उत्तम मध्यम नीच प्रभु बचन बिचारि बिसेखु ॥ ५१९ ॥
सत्रु सयाना सलिल ज्यों राख सीस रिपुनाउ ।
बूड़त लखि, पग डगत लखि, चपरि चहूँ दिसि धाउ ॥ ५२० ॥
रैयत, राज-समाज, घर, तन, धन, धरम, सुबाहु ।
शांत सुसचिवन सौंपि सुख बिलसहि नित नरनाहु ॥ ५२१ ॥
मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान को एक ।
पालै पोषै सकल अँग तुलसी सहित बिबेक ॥ ५२२ ॥
सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि सुकबि सराहहिं सोइ ॥ ५२३ ॥
मंत्री, गुरु अरु बैद जो प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज, धरम, तन तीनि कर होइ बेगिहीं नास ॥ ५२४ ॥
रसना मंत्री, दसन जन, तोष पोष निज काज ।
प्रभु-कर सेन पदादिका, बालक राज-समाज ॥ ५२५ ॥

५१२—चारितु = चारा। गोड़ की करना = दूध दूहते समय गाय के पैर बाँधना।
५१९—बान = बाना, फेंक कर मारा जाने वाला अस्त्र ।
५२१—सुबाहु = सेना ।

लकड़ी डौआ करछुली सरस काज अनुहारि।
सुप्रभु संग्रहहिं परिहरहिं सेवक सखा बिचारि ॥ ५२६ ॥
प्रभु समीप छोटे, बड़े, निबल, होत बलवान।
तुलसी प्रगट बिलोकिये कर अँगुली अनुमान ॥ ५२७ ॥
साहब तें सेवक बड़ो जो निज धरम सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि, लाँघि गए हनुमान ॥ ५२८ ॥
तुलसी भल बरतरु बढ़त, निज मूलहि अनुकूल।
सबहि भाँति सब कहँ सुखद दलनि-फलनि बिनु फूल ॥ ५२९ ॥
सधन, सगुन, सधरम, सगन, सबल सुसाईं महीप।
तुलसी जे अभिमान बिनु ते त्रिभुवन के दीप ॥ ५३० ॥
तुलसी निज करतूति बिनु मुकत जात जब कोइ।
गयो अजामिल लोकहरि, नाम सक्यो नहि धोइ ॥ ५३१ ॥
बड़ो गहे ते होत बड़, ज्यों बावन-कर-दंड।
श्रीप्रभु के संग सो बढ़ो, गयो अखिल ब्रह्मंड ॥ ५३२ ॥
तुलसी दान जो देत है जल में हाथ उठाय।
प्रतिग्राही जीवै नहीं, दाता नरकै जाय ॥ ५३३ ॥
आपन छोड़ो साथ जब ता दिन हितू न कोइ।
तुलसी अंबुज अंबु-बिनु तरनि तासु रिपु होइ ॥ ५३४ ॥
उरबी परि कलहीन होइ, ऊपर कलाप्रधान।
तुलसी देखु कलापगति, साधन-धन पहिचान ॥ ५३५ ॥
तुलसी संगति पोच की सुजनहि होत मदानि।
ज्यों हरि रूप सुताहि तें कीन गुहारी आनि ॥ ५३६ ॥

५३३—जल में हाथ उठाय = गंगा में खड़े होकर जो गंगापुत्र आदि को दान दिया जाता है वह ऐसा ही है जैसा जल में मछली पकड़ने के लिए फेंका हुआ चारा जिसे लेनेवाला भी मर जाता है और देनेवाला भी नरक में जाता है।

५३६—मदानि = कल्याणदायिनी। ज्यों...आनि = भक्तमाल में कथा है कि एक बढ़ई ने काठ के दो हाथ जोड़ कर विष्णु का रूप बनाया और एक राजकन्या पर मोहित होकर उससे विवाह कर लिया। एक बार कन्या के पिता पर कोई आपत्ति आई। उसने अपनी कन्या से अपने पति विष्णु से सहायता माँगने के लिए कहा। अपने रूप की मर्यादा का ध्यान करके विष्णु ने सचमुच रक्षा की।

कलि-कुचालि सुभमति-हरनि, सरलै दंडै चक्र।
तुलसी यह निहचय भई, बाढ़ि लेति नव बक्र॥ ५३७॥
गोखग, खेखग, बारिखग तीनों माहि बिसेक।
तुलसी पीवैं, फिरि चलै, रहै फिरैं सँग एक॥ ५३८॥
साधन, समय, सुसिद्धि लहि, उभय मूल अनुकूल।
तुलसी तीनिउ समय सम ते महि मंगल-मूल॥ ५३९॥
मातु-पिता-गुरु स्वामि-सिख सिर धरि करहि सुभाय।
लहेउ लाभ तिन जनम कर, न तरु जनम जग जाय॥ ५४०॥
अनुचित उचित बिचार तजि, जे पालहिं पितुबैन।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति-ऐन॥ ५४१॥

सोरठा

सहज अपावनि नारि, पति सेवत सुभगति लहै।
जस गावत स्रुति चारि, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥ ५४२॥

दोहा

सरनागत कहँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिनहिं बिलोकत हानि॥ ५४३॥
तुलसी तृन जल-कूल को निरधन, निपट निकाज।
कै राखै, कै सँग चलै, बाँह गहे की लाज॥ ५४४॥
रामायन-अनुहरत सिख जग भयो भारत रीति।
तुलसी सठ की को सुनै? कलि-कुचालि पर प्रीति॥ ५४५॥
पात पात के सींचिबो, बरी बरी के लोन।
तुलसी खोटे चतुरपन कलि डहके कहु को न?॥ ५४६॥
प्रीति, सगाई, सकल गुन, बनिज, उपाय अनेक।
कल बल छल कलिमल-मलिन डहकत एकहि एक॥ ५४७॥
दंभ सहित कलिधरम सब, छल समेत ब्यवहार।
स्वारथ सहित सनेह सब, रुचि-अनुहरत अचार॥ ५४८॥
चोर, चतुर, बटपार, नट, प्रभुप्रिय भँडुआ, भंड।
सब-भच्छक परमारथी, कलि सुपथ पाषंड॥ ५४९॥
असुभ बेष भूषन धरैं, भच्छ अभच्छ जे खाहिं।
ते जोगी, ते सिद्ध नर, पूजित कलिजुग माहि॥ ५५०॥

५३७—चक्र = राजचक्र, अर्थात् राजा अपने राजपुरुषों के सहित। बाढ़ि लेति नव = नित नई नई बढ़ती है। बक्र = बक्रता।

सोरठा

जे अपकारी चार, तिनकर गौरव, मान्य तेइ ।
मन बच करम लबार ते बकता कलिकाल महँ ॥ ५५१ ॥

दोहा

ब्रह्म-ज्ञान बिनु नारि-नर कहहिं न दूसरि बात ।
कौड़ी लागि ते मोहबस करहिं बिप्र-गुरु-घात ॥ ५५२ ॥
बादहि सूद्र द्विजन सन "हम तुम तें कछु घाटि ? ।
जानहि ब्रह्म सो बिप्रबर", आँखि दिखावहिं डाँटि ॥ ५५३ ॥
साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान ।
भगति निरूपहिं भगत कलि, निंदहिं बेद पुरान ॥ ५५४ ॥
स्रुति-संमत हरि-भक्तिपथ, संजुत-बिरति-बिबेक ।
तेहि परिहरिहि बिमोहबस, कल्पहिं पंथ अनेक ॥ ५५५ ॥
सकल धरम बिपरीत कलि, कल्पित कोटि कुपंथ ।
पुन्य पराय पहार बन, दुरे पुरान सुभ ग्रंथ ॥ ५५६ ॥
धातुबाद, निरुपाधि बर, सदगुरु-लाभ, सुमीत ।
देव-दरस कलिकाल में पोथिन दुरे सभीत ॥ ५५७ ॥
सुर-सदननि, तीरथ, पुरिन, निपट कुचालि कुसाज ।
मनहुँ मवासे मारि कलि राजत सहित समाज ॥ ५५८ ॥
गोंड़ गँवार नृपाल महि, यमन महा-महिपाल ।
साम न दाम न भेद कलि, केवल दंड कराल ॥ ५५९ ॥
फोरहि सिल लोढ़ा सदन लागे अढुक पहार ।
कायर क्रूर कुपूत कलि घर घर सहस डहार ॥ ५६० ॥
प्रगट चारि पद धरम के, कलि महँ एक प्रधान ।
येन केन बिधि दीन्हे हो दान करै कल्यान ॥ ५६१ ॥
कलिजुग सम जुग आन नहिं, जो नर कर बिस्वास ।
गाइ रामगुन-गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास ॥ ५६२ ॥
स्रवन घटहु, पुनि दृग घटहु, घटहु सकल बल देह ।
इते घटे घटिहै कहा जो न घटै हरि-नेह ? ॥ ५६३ ॥

५५७—धातुबाद = रसायन ।
५५८—मवासे मारि = क़िला बाँध कर ।
५६०—डहार = डालनेवाले । तंग करनेवाले ।

तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन ।
अब तौ दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन ? ॥ ५६४ ॥
कुपथ कुतर्क कुचालि कलि, कपट दंभ पाषंड ।
दहन रामगुन-ग्राम जिमि ईधँन अनल प्रचण्ड ॥ ५६५ ॥

सोरठा

कलि पाषंड-प्रचार, प्रबल पाप पाँवर पतित ।
तुलसी उभय अधार, रामनाम, सुरसरि-सलिल ॥ ५६६ ॥

दोहा

रामचंद्र-मुख-चंद्रमा चित चकोर जब होइ ।
रामराज सब काज सुभ समय सुहावन सोइ ॥ ५६७ ॥
बीज राम-गुनगन, नयन जल, अंकुर पुलकालि ।
सुकृती-सुतन सुखेत बर, बिलसत तुलसी सालि ॥ ५६८ ॥
तुलसी सहित सनेह नित सुमिरहु सीताराम ।
सगुन सुमंगल सुभ सदा आदि मध्य परिनाम ॥ ५६९ ॥
पुरुषारथ स्वारथ सकल, परमारथ परिनाम ।
सुलभ सिद्धि सब साहिबी सुमिरत सीताराम ॥ ५७० ॥
मनिमय दोहा दीप जहँ, उरघर प्रगट प्रकास ।
तहँ न मोह भय-तम तमी, कलि कज्जली बिलास ॥ ५७१ ॥
का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच ।
काम जु आवै कामरी, का लै करै कुमाच ॥ ५७२ ॥
मनि मानिक महँगे किए, सहँगे तृन जल नाज ।
तुलसी एतो जानिये राम गरीब-नेवाज ॥ ५७३ ॥

५७२—कुमाच = एक प्रकार का रेशमी कपड़ा ।

"कीजै कहा, जीजी जू !" सुमित्रा परि पायँ कहै
"तुलसी सहावै बिधि सोई सहियतु है।
रावरो सुभाव राम-जन्म ही तें जानियत,
भरत की मातु को कि ऐसो चहियतु है ? ॥
जाई राजघर, ब्याहि आई राजघर माहँ,
राज-पूत पाए हूँ न सुख लहियतु है।
देह सुधागेह ताहि मृगहू मलीन कियो,
ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है" ॥ ४ ॥

सवैया

नाम अजामिल से खलकोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े।
जो सुमिरे गिरि-मेरु सिला-कन, होत अजाखुर बारिधि बाढ़े ॥
तुलसी जेहि के पदपंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े।
सो प्रभु स्वै सरिता तरिबे कहँ माँगत नाव करारे ह्वै ठाढ़े ॥ ५ ॥
एहि घाट तें थोरिक दूर अहै कटि लौं जल-थाह देखाइहौं जू।
परसे पगधूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समुझाइहौं जू ? ॥
तुलसी अवलंब न और कछू, लरिका केहि भाँति जिआइहौं जू ?।
बरु मारिए मोहि बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू ॥ ६ ॥
रावरे दोष न पायँन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है।
पाहन तें बन-बाहन काठ को कोमल है, जल खाइ रहा है ॥
पावन पायँ पखारि कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु होत कहा है ?।
तुलसी सुनि केवट के बर बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा है ॥ ७ ॥

घनाक्षरी

पात भरी सहरी, सकल सुत बारे बारे,
केवट की जाति कछू बेद ना पढ़ाइहौं।
सब परिवार मेरो याही लागि, राजा जू !
हौं दीन बित्तहीन कैसे दूसरी गढ़ाइहौं ? ॥
गौतम की घरनी ज्यों तरनी तरैगी मेरी,
प्रभु सों निषाद ह्वैके बाद न बढ़ाइहौं।

४—सुधागेह =(१) चंद्रमा, (२) कहते हैं कि कैकेयी के मुख में अमृत था।
५—स्वै = सोई, वही।
७—बन-बाहन = नाव।

तुलसी के ईस राम रावरे सों साँची कहौं,
बिना पग धोए नाथ नाव न चढ़ाइहौं ॥ ८ ॥
जिनको पुनीत बारि धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनि-जसु बेद कहै गाइ कै।
जिनको जोगींद्र मुनिवृंद देव देह भरि
करत बिराग जप जोग मन लाइ कै॥
तुलसी जिनकी धूरि परसि अहिल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो सो लिवाइ कै।
तेई पायँ पाइकै चढ़ाइ नाव धोए बिनु
ख्वैहौ न पठावनी[१] कै ह्वैहौं न हँसाइ कै ? ॥ ९ ॥
प्रभुरुख पाइ कै बोलाइ बाल घरनिहिं
बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगाजू को
धोइ पाँय पीयत पुनीत बारि फेरि फेरि॥
तुलसी सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।
बिबुध-सनेह-सानी बानी असयानी सुनी,
हँसे राघौ जानकी लषन तन हेरि हेरि॥ १० ॥

सवैया

पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै॥
फिरि बूझति है "चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै ?"।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै*॥ ११ ॥

१—पठावनी = मजदूरी।

* लाला छक्कनलाल की छपाई प्रति में इसके आगे यह सवैया और है—
जल सूखि गए रसनाधर मंजुल कंज से लोचन चारु चुवैं।
करुनानिधि कंत तुरंत कह्यौ कि 'दुरंत महावन है इतवैं' ?
सरसीरुह-लोचन मोचत नीर चितै रघुनायक सीय पै है।
"अब हीं बन, भामिनि ! पूछति हौ तजि कोसलराज पुरी दिन द्वै"।
इस सवैया में कहीं 'तुलसी' शब्द नहीं आया है, इससे संदेह है।

"जल को गए लक्खन हैं लरिका, परिखौ, पिय ! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पायँ पखारिहौं भूभुरि डाढ़े" ॥
तुलसी रघुबीर प्रिया स्रम जानि कै बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े।
जानकी नाह को नेह लख्यौ, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े ॥ १२ ॥
ठाढ़े हैं नौ द्रुम डार गहे; धनु कांधे धरे, कर सायक लै।
बिकटी भ्रुकुटी बड़री अँखियाँ, अनमोल कपोलन की छबि है ॥
तुलसी असि मूरति आनि हिये जड़ डारिहौं प्रान निछावरि कै।
स्रम-सीकर साँवरि देह लसै मनो रासि महा तम तारक मै ॥ १३ ॥

घनाक्षरी

जलजनयन, जलजानन, जटा है सिर,
जोबन उमंग अंग उदित उदार है।
साँवरे गोरे के बीच भामिनी सुदामिनी सी,
मुनिपट धारे, उर फूलनि के हार हैं ॥
करनि सरासन सिलीमुख, निषंग कटि,
अतिही अनूप काहू भूप के कुमार हैं।
तुलसी बिलोकि कै तिलोक के तिलक तीनि
रहे नरनारि ज्यों चितेरे चित्रसार हैं ॥ १४ ॥
आगे सोहै साँवरो कुवँर, गोरो पाछे पाछे,
आछे मुनि बेष धरे लाजत अनंग हैं।
बान बिसिषासन, बसन बन ही के कटि
कसे हैं बनाइ, नीके राजत निषंग हैं ॥
साथ निसिनाथमुखी पाथनाथ-नंदिनी सी,
तुलसी बिलोक चित लाइ लेत संग है।
आनँद उमंग मन, जोबन उमंग तन,
रूप की उमंग उमगत अंग अंग हैं ॥ १५ ॥

कवित्त

सुंदर बदन, सरसीरुह सुहाए नैन,
मंजुल प्रसून माथे मुकुट जटनि के।

१२—भूभुरि = गरम धूल।
१४—चितेरा = चित्र।
१५—बनाइ = अच्छी तरह, खूब।

अंसनि सरासन लसत, सुचि कर सर,
तून कटि, मुनिपट लूटक पटनि के ॥
नारि सुकुमारि संग जाके अंग उबटि कै
बिधि बिरचे बरूथ बिद्युतछटनि के ।
गोरे को बरन देखे सोनो न सलोनो लागै,
साँवरे बिलोके गर्ब घटत घटनि के ॥ १६ ॥

बल्कल बसन, धनुबान पानि, तून कटि,
रूप के निधान, घन-दामिनी-बरन है ।
तुलसी सुतीय संग सहज सुहाए अंग,
नवल कवँल हू ते कोमल चरन है ॥
औरै सो बसंत, औरै रति, औरै रतिपति,
मूरति बिलोके तन मन के हरन है ।
तापस बेषै बनाइ, पथिक पथैं सुहाइ
चले लोक-लोचननि सुफल करन है ॥ १७ ॥

सवैया

बनिता बनी स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु, री सखी ! मोहि सी ह्वै
मग जोग न, कोमल क्यों चलिहै ? सकुचात मही पदपंकज छ्वै ॥
तुलसी सुनि ग्रामबधू बिथकीं, पुलकीं तन औ चले लोचन च्वै ।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप है भूप के बालक द्वै ॥ १८ ॥

साँवरे गोरे सलोने सुभाय, मनोहरता जिति मैन लियो है ।
बान कमान निषंग कसे, सिर सोहैं जटा, मुनिबेष कियो है ॥
संग लिये बिधु-बैनी बधू रति को जेहि रंचक रूप दियो है ।
पाँयन तौ पनहीं न, पयादेहि क्यों चलिहै ? सकुचात हियो है ॥ १६ ॥

रानी मै जानी अजानी महा, पबि पाहन हू ते कठोर हियो है ।
राज हु काज अकाज न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो है ॥
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरे कैसे प्रीतम लोग जियो है ? ।
आँखिन में, सखि ! राखिबे जोग, इन्हैं किमि कै बनबास दियो है ? ॥ २० ॥

१६—लूटक पटनि के = वस्त्रों की शोभा को लूटने या हरनेवाले । घटनि= घटाओं ।

१९—बिधुबैनी = चंद्रवदनी ।

सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल, तिरीछीसी भौंहैं ।
तून सरासन बान धरे, तुलसी बन-मारग में सुठि सोहैं ॥
सादर बारहिं बार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं ।
पूछति ग्रामबधू सिय सों "कहो साँवरे से, सखि रावरे को हैं ?" ॥२१॥
सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने, सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसुकाइ चली ॥
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु अली ।
अनुराग-तड़ाग में भानु उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली ॥ २२ ॥
धरि धीर कहैं "चलु देखिय जाइ जहाँ सजनी रजनी रहिहैं ।
कहिहै जग पोच, न सोच कछू, फल लोचन आपन तौ लहिहैं ॥
सुख पाइहैं कान सुने बतियाँ, कल आपुस में कछु पै कहिहैं" ।
तुलसी अति प्रेम लगीं पलकैं, पुलकीं लखि राम हिये महि है ॥ २३ ॥
पद कोमल, स्यामल गौर कलेवर, राजत कोटि मनोज लजाए ।
कर बान सरासन, सीस जटा, सरसीरुह लोचन सोन सुहाए ॥
जिन देखे सखी ! सत भायहु तें, तुलसी तिन तौ मन फेरि न पाए ।
यहि मारग आजु किसोर बधू बिधुबैनी समेत सुभाय सिधाए ॥ २४ ॥
मुखपंकज, कंज बिलोचन मंजु मनोज-सरासन सी बनी भौंहैं ।
कमनीय कलेवर, कोमल स्यामल गौर किसोर, जटा सिर सोहैं ॥
तुलसी कटि तून, धरे धनु बान, अचानक दीठि परी तिरछौहैं ।
केहि भाँति कहौं, सजनी ! तोहि सों मृदु मूरति द्वै निवसीं मन मोहैं ॥२५
प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चितु दै, चले लै चित चोरे ।
स्याम सरीर पसेउ लसै, हुलसै तुलसी छबि सो मन मोरे ॥
लोचन लोल चलैं भ्रकुटी, कल काम-कमानहु सो तृन तोरे ।
राजत राम कुरंग के संग, निषंग कसे, धनु सों सर जोरे ॥ २६ ॥
सर चारिक चारु बनाइ कसे कटि, पानि सरासन सायक लै ।
बन खेलत राम फिरैं मृगया, तुलसी छबि सो बरनै किमि कै ? ॥
अवलोकि अलौकिक रूप मृगी मृग चौंकि चकैं चितवैं चित दै ।
न डगैं, न भगैं जिय जानि सिलीमुख पंच धरे रतिनायक है ॥ २७ ॥

२१—त्यों = तन, ओर ।
२३—महि = मह, में ।
२४—सोन = शोण, लाल ।
२७—सिलीमुख पंच = चार तूनीर में और एक हाथ में ।

बिन्ध्य के बासी उदासी तपोब्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे।
गौतमतीय तरी, तुलसी, सो कथा सुनि भे मुनिबृंद सुखारे॥
ह्वैहैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद-मंजुल-कंज तिहारे।
कीन्हीं भली रघुनायकजू करुना करि कानन को पगु धारे॥ २८॥

अरण्य कांड

सवैया

पंचबटी बर पर्नकुटी तर बैठे हैं राम सुभाय सुहाए।
सोहै प्रिया, प्रिय बंधु लसै, तुलसी सब अंग घने छबिछाए॥
देखि मृगा मृगनैनी कहे प्रिय बैन, ते प्रीतम के मन भाए।
हेमकुरंग के संग सरासन सायक लै रघुनायक धाए॥ १॥

किष्किंधा कांड

कवित्त

जब अंगदादिन की मति गति मंद भई,
पवन के पूत को न कूदिबे को पलु गो।
साहसी ह्वै सैल पर सहसा सकेलि आइ
चितवत चहूँ ओर, औरन को कलु गो॥
तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो,
कोल कलमल्यो, अहि कमठ को बलु गो।
चारिहू चरन के चपेट चाँपे चिपिट गो,
उचके उचकि चारि अंगुल अचलु गो॥ १॥

१—सकेलि = क्रीड़ा सहित, खेल ही खेल में।

सुंदर कांड

कवित्त

बासव बरुन बिधि बन तें सुहावनो,
दसानन को कानन बसंत को सिंगारु सो।
समय पुराने पात परत डरत बात,
पालत, ललात रति मार को बिहारु सो॥
देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाव
रागबस भो बिरागी पवनकुमार सो।
सीय की दसा बिलोकि बिटप असोक तर,
तुलसी बिलोक्यो सो तिलोक सोक-सारु सो॥ १॥
माली मेघमाल बनपाल बिकराल भट
नीकें सब काल सींचै सुधासार नीर को।
मेघनाद तें दुलारो प्रान तें पियारो बाग,
अति अनुराग जिय जातुधान धीर को॥
तुलसी सो जानि सुनि, सीय को दरस पाइ
पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को।
बिद्यमान देखत दसानन को कानन सो
तहस-नहस कियो साहसी समीर को॥ २॥
बसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर
खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लँगूर हैं।
तैसो कपि कौतुकी डरात ढीलो गात कै कै,
लात के अघात सहै जी में कहै 'कूर हैं'॥
बाल किलकारी कै कै, तारी दै दै गारी देत,
पाछे लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं।
बालधी बढ़न लागी, ठौर ठौर दीन्हीं आगि,
बिंध की दवारि, कैधों कोटिसत सूर हैं॥ ३॥
लाइ लाइ आगि भागे बाल-जाल जहाँ तहाँ,
लघु ह्वै निबुकि गिरिमेरु तें बिसाल भो।

२—बजाइ = घोषित करके।
३—बालधी = पूँछ।

कौतुकी कपीस कूदि कनककँगूरा चढ़ि,
रावन भवन जाइ ठाढ़ो तेहि काल भो ।।
तुलसी बिराज्यो ब्योम बालधी पसारि भारी,
देखे हहरात भट काल तें कराल भो ।
तेज को निधान मानो कोटिक कृसानु भानु,
नख बिकराल, मुख तैसो रिस-लाल भो ।। ४ ।।

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल-जाल मानो,
लंक लीलिबे को काल रसना पसारी है ।
कैधौं ब्योमबीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु,
बीररस बीर तरवारि सी उघारी है ।।
तुलसी सुरेस-चाप, कैधौं दामिनी कलाप,
कैधौं चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है ।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहैं
"कानन उजारयो अब नगर प्रजारी है" ।। ५ ।।

जहाँ तहाँ बुबुक बिलोकि बुबुकारी देत,
"जरत निकेत धाओ धाओ लागि आगि रे ।
कहाँ तात, मात, भ्रात, भगिनी, भामिनी, भाभी,
ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोरे भागि रे ।।
हाथी छोरो, घोरा छोरो, महिष बृषभ छोरो,
छेरी छोरो, सोवै सो जगावो जागि जागि रे" ।
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं,
"बार बार कह्यो पिय कपि सों न लागि रे !" ।। ६ ।।

देखि ज्वालजाल, हाहाकार दसकंध सुनि
कह्यो 'धरो धरो' धाए बीर बलवान हैं ।
लिये सूल, सेल, पास, परिघ, प्रचंड दंड,
भाजन सनीर, धीर धरे धनुबान हैं ।।
तुलसी समिध सौंज लंक-जज्ञकुंड लखि,
जातुधान पुंगीफल, जव, तिल, धान हैं ।
स्रुवा सो लँगूल बलमूल, प्रतिकूल हवि
स्वाहा महा हाँकि हाँकि हुनैं हनुमान हैं ।। ७ ।।

७—सौंज = सामग्री । प्रतिकूल हवि = अद्भुत हवि ।

गाज्यो कपि गाज ज्यों, बिराज्यो ज्वालजाल-जुत,
भाजे बीर धीर, अकुलाइ उठ्यो रावनो ।
'धाओ धाओ धरो' सुनि धाए जातुधानधारि,
बारिधारा उलदैं जलद ज्यों न सावनो ॥
लपट झपट झहराने, हहराने बात
भहराने भट पर्‍यो प्रबल परावनो ।
ढकनि ढकेलि पेलि सचिव चले लै ठेलि
"नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो" ॥ ८ ॥
बड़ो बिकराल बेष देखि, सुनि सिंहनाद,
उठ्यो मेघनाद सबिषाद कहै रावनो ।
बेग जीत्यो मारुत, प्रताप मारतंड कोटि,
कालऊ करालता बड़ाई जीतो बावनो ॥
तुलसी सयाने जातुधान पछिताने मन,
"जाको ऐसो दूत सो साहब अबै आवनो" ।
काहे को कुसल रोषे राम बामदेवहू के,
बिषम बली सों बादि बैर को बढ़ावनो ॥ ९ ॥
'पानी पानी पानी' सब रानी अकुलानी कहैं,
जाति हैं परानी, गति जानि गजचालि है ।
बसन बिसारैं, मनि भूषन सँभारत न,
आनन सुखाने कहैं "क्योंहूँ कोऊ पालिहै ?" ॥
तुलसी मँदोवै मींजि हाथ, धुनि माथ कहै
"काहू कान कियो न मैं कह्यो केतो कालि है" ।
बापुरो बिभीषन पुकारि बार बार कह्यो,
"बानर बड़ी बलाइ घने घर घालिहै" ॥ १० ॥
"कानन उजार्‍यो तो उजार्‍यो न बिगारेउ कछू,
बानर बिचारो बाँधि आन्यो हठि हार सों ।
निपट निडर देखि काहू ना लख्यो बिसेषि,
दीन्हों ना छुड़ाइ कहि कुल के कुठार सों ॥
छोटे औ बड़ेरे मेरे पूतऊ अनेरे सब,
साँपिन सों खेलैं, मेलैं गरे छुराधार सों" ।

१०—मंदोवै = मंदोदरी ।

तुलसी मँदोवै रोइ रोइ कै बिगोवै आपु,
"बार बार कह्यो मैं पुकारि दाढ़ीजार सों" ॥ ११ ॥
रानी अकुलानी सब डाढ़त परानी जाहिं,
सकै ना बिलोकि बेष केसरीकुमार को।
मींजि मींजि हाथ, धुनैं माथ दसमाथ-तिय,
तुलसी तिलौ न भयो बाहिर अगार को ॥
सब असबाब डाढ़ो, मैं न काढ़ो तैं न काढ़ो,
जिय की परी सँभार, सहन भँडार को? ।
खीझति मँदोवै सबिषाद देखि मेघनाद,
"बयो लुनियत सब याही दाढ़ीजार को" ॥ १२ ॥
रावन की रानी जातुधानी बिलखानी कहै
"हा हा! कोऊ कहै बीसबाहु दसमाथ सों।
काहे मेघनाद, काहे काहे, रे महोदर! तू
धीरज न देत, लाइ लेत क्यों न हाथ सों? ॥
काहे अतिकाय, काहे काहे रे अकंपन!
अभागे तिय त्यागे भोंड़े भागे जात साथ सों।
तुलसी बढ़ाय बादि साल तें बिसाल बाहैं,
याही बल, बालिसो! बिरोध रघुनाथ सों!" ॥ १३ ॥
हाट, बाट, कोट ओट, अट्टनि, अगार, पौरि,
खोरि खोरि दौरि दौरि दीन्ही अति आगि है।
आरत पुकारत, सँभारत न कोऊ काहू,
ब्याकुल जहाँ सों तहाँ लोग चले भागि हैं ॥
बालधी फिरावै बार बार झहरावै, झरैं
बूँदिया सी, लंक पघिलाइ पाग पागिहै।
तुलसी बिलोकि अकुलानी जातुधानी कहैं
"चित्रहू के कपि सों निसाचर न लागिहै" ॥ १४ ॥
'लागि लागि आगि', भागि भागि चले जहाँ तहाँ,
धीय को न माय, बाप पूत न सँभारहीं।
छूटे बार, बसन उघारे, धूमधुंधअंध;
कहैं बारे बूढ़े 'बारि बारि' बार बार हीं ॥

११—हार = बन। अनेरे = व्यर्थ, निकम्मे। बिगोवै = विहीन दशा करती है।
१३—बालिस = बालिश, मूर्ख, छोकड़ा।

हय हिहिनात भागे जात, घहरात गज,
भारी भीर ठेलि पेलि रौंदि खौंदि डारहीं।
नाम लै चिलात, बिललात अकुलात अति
"तात तात! तौंसियत, झौंसियत झारहीं" ॥ १५ ॥

लपट कराल ज्वालजालमाल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे?
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, "भ्रात! तू निबाहि रे॥
प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ! तू पराहि, बाप,
बाप! तू पराहि, पूत पूत, तू पराहि रे"।
तुलसी बिलोकि लोग व्याकुल बिहाल कहैं
"लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे" ॥ १६ ॥

बीथिका बजार प्रति, अटनि अगार प्रति,
पँवरि पगार प्रति बानर बिलोकिए।
अध ऊर्द्ध बानर, बिदिस दिसि बानर है,
मानहु रह्यो है भरि बानर तिलोकिए।
मूँदे आँखि हीय में, उघारे आँखि आगे ठाढ़ो,
धाइ जाइ जहाँ तहाँ और कोउ को किए?।
"लेहु अब लेहु, तब कोऊ न सिखाओ मानो,
सोई सतराइ जाइ जाहि जाहि रोकिए" ॥ १७ ॥

एक करै धौज, एक कहै काढ़ो सौज,
एक औंजि पानी पी कै कहै 'बनत न आवनो'।
एक परे गाढ़े, एक डाढ़त हीं काढ़े, एक
देखत है ठाढ़े, कहै 'पावक भयावनो'॥
तुलसी कहत एक "नीके हाथ लाए कपि,
अजहूँ न छाँड़ै बाल गाल को बजावनो।
धाओ रे, बुझाओ रे कि बावरे हो रावरे, या
औरै आगि लागी, न बुझावै सिंधु सावनो" ॥ १८ ॥

१५—तौंसियत = तपे जाते हैं।
१६—पाइमाल जात = पामाल होते हैं, नष्ट हुए जाते हैं।
१७—सतराइ जाइ = चिढ़ जाता था।
१८—धौज = दौड़ धूप। सौंज = सामान। औंजि = ऊमस से घबराकर

कोपि दसकंध तब प्रलयपयोद बोले,
रावनरजाइ धाइ आए जूथ जोरि कै।
कह्यो लंकपति "लंक बरत बुताओ बेगि,
बानर बहाइ मारौ महा बारि बोरि कै"॥
"भले नाथ!" नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ,
बरषैं मुसलधार बार बार घोरि कै।
जीवन तें जागी आगी, चपरि चौगुनी लागी,
तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै॥ १९॥

इहाँ ज्वाल जरे जात, उहाँ ग्लानि गरे गात,
सूखे सकुचात सब कहत पुकार हैं।
"जुग-षट भानु देखे, प्रलयकृसानु देखे,
सेषमुखअनल बिलोके बार बार हैं॥
तुलसी सुन्यो न कान सलिल सर्पी समान,
अति अचरज कियो केसरीकुमार है"।
बारिद बचन सुनि धुने सीस सचिवन्ह,
कहैं "दससीस ईसबामताबिकार है"॥ २०॥

"पावक, पवन, पानी, भानु, हिमवान, जम,
काल, लोकपाल मेरे डर डाँवाडोल हैं।
साहिब महेस सदा, संकित रमेस मोहि,
महातपसाहस बिरंचि लीन्हे मोल हैं॥
तुलसी तिलोक आजु दूजो न बिराजै राजा,
बाजे बाजे राजनि के बेटा बेटी ओल हैं।
को है ईस नाम? को जो बाम होत मोहू सों को?
मालवान? रावरे के बावरे से बोल हैं"॥ २१॥

"भूमि भूमिपाल, ब्यालपालक पताल, नाकपाल,
लोकपाल जेते सुभट समाज हैं।"

१९—घोरि कै = गरज कर। जीवन = जल।

२०—सर्पी = घृत, घी।

२१—हिमवान = चंद्रमा। ओल = किसी का अपने किसी प्रिय प्राणी को दूसरे के पास इसलिए रख छोड़ना कि यदि वह प्रतिज्ञा न पूरी करे तो दूसरा उस प्राणी के साथ जो चाहे सो करे।

कहै मालवान "जातुधानपति रावरे कों
मनहूँ अकाज आनै ऐसो कौन आज है ? ॥
रामकोह-पावक, समीरसीयस्वास, कीस-
ईस-बामता बिलोकु बानर को ब्याज है ।
जारत प्रचारि फेरि फेरि सो निसंक लंक,
जहाँ बाँको बीर तोसो सूर सिरताज है" ॥ २२ ॥

पान, पकवान बिधि नाना को, सँधानो, सीधो,
बिबिध बिधान धान बरत बखारहीं ।
कनककिरीट कोटि, पलँग, पेटारे, पीठ
काढ़त कहार, सब जरे भरे भारहीं ॥
प्रबल अनल बाढ़ै, जहाँ काढ़ै तहाँ डाढ़ै,
झपट लपट भरे भवन भँडारहीं ।
तुलसी अगार न पगार न बजार बच्यो,
हाथी हथिसार जरे, घोरे घोरसारहीं ॥ २३ ॥

हाट बाट हाटक पिघिलि चलो घी सो घनो,
कनक-कराही लंक तलफति ताय सों ।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब
पागि पागि ढेरी कीन्ही भली भाँति भाय सों ।
पाहुने कृसानु पवमान सों परोसो,
हनुमान सनमानि कै जेंवाये चित चाय सों ।
तुलसी निहारि अरिनारि दै दै गारि कहै,
"बावरे सुरारि बैर कीन्हों रामराय सों" ॥ २४ ॥

रावन सो राजरोग बाढ़त बिराट उर
दिन दिन बिकल सकलसुखराँक सो ।
नाना उपचार करि हारे सुर सिद्ध मुनि,
होत न बिसोक, ओत पावै न मनाक सो ॥
राम की रजाय तें रसायनी समीरसूनु
उतरि पयोधिपार सोधि सरवाक सो ।

२३—सँधाना = अचार, चटनी । पीठ = पाठा, पीढ़ा, काष्ठासन । पगार = प्राकार, चारदीवारी ।

जातुधान बुट, पुटपाक लंक जातरूप,
रतन जतन जारि कियो है मृगांक सो ॥ २५ ॥
जारि बारि कै बिधूम, बारिधि बुताइ लूम,
नाइ माथो, पगनि भो ठाढ़ो कर जोरि कै।
"मातु ! कृपा कीजै, सहदानि दीजै" सुनि सीय
दीन्हीं है असीस चारु चूड़ामनि छोरि कै ॥
"कहा कहौं, तात ! देखे जात ज्यों बिहात दिन,
बड़ी अवलंब ही सो चले तुम तोरि कै"।
तुलसी सनीर नैन, नेह सों सिथिल बैन,
बिकल बिलोकि कपि कहत निहोरि कै ॥ २६ ॥
"दिवस छ सात जात जानिबे न, मातु धरु
धीर, अरि अंत की अवधि रही थोरि कै।
बारिधि बँधाय सेतु ऐहैं भानुकुलकेतु,
सानुज कुसल कपिकटक बटोरि कै" ॥
बचन बिनीत कहि सीता को प्रबोध करि,
तुलसी त्रिकूट चढ़ि कहत डफोरि कै।
"जै जै जानकीस दससीसकरिकेसरी"
कपीस कूद्यो बातघात बारिधि हलोरि कै ॥ २७ ॥
साहसी समीरसूनु नीरनिधि लंघि, लखि
लंक सिद्धिपीठ निसि जागो है मसान सो।
तुलसी बिलोकि महा साहस प्रसन्न भई
देवी सिय सारिषी, दियो है बरदान सो ॥
बाटिका उजारि, अच्छ-धारि मारि, जारि गढ़,
भानुकुलभानु को प्रतापभानु भानु सो।
करत बिसोक लोककोकनद, कोक-कपि,
कहै जामवंत आयो आयो हनुमान सो ॥ २८ ॥

२५—अोत = बीमारी में कुछ आराम, चैन। मनाक = थोड़ा। बुट = बूटी।

२६—सहदानी = पहचान का चिह्न, निशान। अवलंब ही = अवलंब थी।

२७—डफोरि कै = हाँक देकर, ललकार कर।

२८—धारि = समूह, सेना।

गगन निहारि, किलकारी भारी सुनि,
हनुमान पहिचानि भये सानंद सचेत हैं।
बूड़त जहाज बच्यो पथिकसमाज, मानो
आजु जाये जानि सब अंकमाल देत हैं॥
'जै जै जानकीस, जै जै लषन कपीस' कहि
कूदैं कपि कौतुकी, नचत रेत रेत हैं।
अंगद मयंद नल नील बलसील महा,
बालधी फिरावैं, मुख नाना गति लेत हैं॥ २९॥
आयो हनुमान प्रानहेतु, अंकमाल देत,
लेत पगधूरि एक चूमत लँगूल हैं।
एक बूझैं बार बार सीय समाचार कहे,
पवनकुमार भो बिगतस्रमसूल है॥
एक भूखे जानि आगे आने कंद मूल फल,
एक पूजे बाहुबल तोरि मूल फूल हैं।
एक कहैं तुलसी 'सकल सिधि ताके जाके
कृपापाथनाथ सीतानाथ सानुकूल है॥ ३०॥
सीय को सनेहसील, कथा तथा लंक की
चले कहत चाय सों, सिरानो पथ छन में।
कह्यो जुवराज बोलि बानर समाज "आजु,
खाहु फल" सुनि पेलि पैठे मधुबन में॥
मारे बागवान, ते पुकारत देवान गे,
'उजारे बाग अंगद', दिखाए घाय तन में।
कहैं कपिराज "करि काज आये कीस,
तुलसीस की सपथ महामोद मेरे मन में"॥ ३१॥
नगर कुबेर को सुमेरु की बराबरी,
बिरंचि बुद्धि को बिलास लंक निरमान भो।
ईसहि चढ़ाय सीस बीसबाहु बीर तहाँ,
रावन सो राजा रजतेज को निधान भो॥
तुलसी त्रिलोककी समृद्धि सौंज संपदा
सकेलि चाकि राखी रासि, जाँगर जहान भो।

२९—बालधी = पूँछ, दुम।

तीसरे उपास बनबास सिंधुपास सो
समाज महराजजू को एक दिन दान भो ॥ ३२ ॥

लंका कांड

कवित्त

बड़े बिकराल भालु, बानर बिसाल बड़े,
तुलसी बड़े पहार लै पयोधि तोपिहैं।
प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड खंड,
मंडि मेदिनी को मंडलीक-लीक लोपिहैं॥
लंकदाहु देखे न उछाहु रह्यो काहुन का,
कहै सब सचिव पुकारि पाँव रोपि है।
"बाचिहै न पाछे त्रिपुरारि हू मुरारिहू के,
को है रन रारि को जौं कोसलेस कोपिहै?" ॥ १ ॥
त्रिजटा कहत बार बार तुलसीस्वरी सों,
"राघौ बान एक ही समुद्र सातौ सोषिहैं।
"सकुल सँघारि जातुधानधारि, जंबुकादि
जोगिनीजमाति कालिकाकलाप तोषिहैं॥
राज दै निवाजिहैं बजाइ कै बिभीषनै,
बजैंगे ब्योम बाजने बिबुध प्रेम पोषिहैं।
कौन दसकंध, कौन मेघनाद बापुरो, को
कुंभकर्न कीट जब राम रन रोषिहैं" ॥ २ ॥
बिनय सनेह सों कहति सीय त्रिजटा सों
"पाये कछु समाचार आरजसुवन के?"।
"पाये जू! बँधायो सेतु, उतरे कटक कुलि×,
आये देखि देखि दूत दारुन दुवन के॥

३२—चाकि राखी = अन्न की राशि को जैसे किसान गोबर की रेखा से घेर देते हैं (जिससे चुराने से पता चल जाय) उसी प्रकार उसने घेर रखना। जाँगर = अन्न झाड़ा हुआ डंठल।

× पाठा०—भानुकुलकेतु।

बदनमलीन बलहीन दीन देखि मानो
मिटै घटै तमीचरतिमिर भुवन के।
लोकपतिसोक कोक, मूँदे कपि-कोकनद,
दंड द्वै रहे हैं रघु आदित उवन के" ॥ ३ ॥

झूलना

सुभुज मारीच खर त्रिसिर दूषन बालि
दलत जेहि दूसरो सर न साँध्यो।
आनि परबाम बिधिबाम तेहि राम सों
सकत संग्राम दसकंध काँध्यो ॥
समुझि तुलसीस कपिकर्म घर घर घैरु,
बिकल सुनि सकल पाथोधि बाँध्यो।
बसत गढ़ लंक लंकेस नायक अछत
लंक नहि खात कोउ भात राँध्यो ॥ ४ ॥

सवैया

बिस्वजयी भृगुनायक से बिनु हाथ भये हनि हाथ-हजारी।
बातुल मातुल की न सुनी सिख, का तुलसी कपि लंक न जारी ॥
अजहूँ तौ भलो रघुनाथ मिलें, फिरि बूझिहै को गज कौन गजारी।
कीर्त्ति बड़ी, करतूति बड़ी जन, बात बड़ी, सो बड़ोई बजारी ॥ ५ ॥
जब पाहन भे बनबाहन से, उतरे बनरा 'जय राम' रढ़ै।
तुलसी लिये सैल-सिला सब सोहत, सागर ज्यों बलबारि बढ़ै ॥
करि कोप करैं रघुबीर को आयसु, कौतुक ही गढ़ कूदि चढ़ै।
चतुरंग चमू पल में दलि कै रन रावन राढ़ के हाड़ गढ़ै ॥ ६ ॥

घनाक्षरी

बिपुल बिसाल बिकराल कपि भालु मानो
काल बहु बेष धरे धाये किये करषा।
लिये सिला सैल, साल ताल औ तमाल तोरि
तोपैं तोयनिधि, सुर को समाज हरषा ॥

३—लोकपति-सोक-कोक = सशोक लोकपति-कोक।
५—कीर्त्ति बड़ी = कीर्त्ति में बड़ा।
६—रढ़ै = रटा, बोले।

डगे दिगकुंजर, कमठ कोल कलमले,
डोले धराधर-धारि, धराधर धरषा।
तुलसी तमकि चलैं, राघौ की सपथ करैं,
को करै अटक कपि-कटक अमरषा ? ॥ ७ ॥

आए सुक सारन बोलाए, ते कहन लागे,
पुलक सरीर सेना करत फहम हीं।
महाबली बानर बिसाल भालु काल से
कराल हैं, रहे कहाँ, समाहिंगे कहाँ मही।
हँस्यो दसमाथ रघुनाथ को प्रताप सुनि,
तुलसी दुरावै मुख सूखत सहमही॥
राम के बिरोधे बुरो बिधि हरि हरहू को,
सबको भलो है राजा राम के रहम ही॥ ८॥

"आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि', भयो
सोर चहुँ ओर लंका आए जुबराज के।
एक काढ़ैं सौंज, एक धौंज करैं कहा ह्वैहै,
'पोच भई महा' सोच सुभट समाज के॥
गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि,
मूँदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के।
सहमि सुखात बातजात की सुरति करि,
लवा ज्यों लुकात तुलसी झपेटे बाज के॥ ९॥

तुलसीस-बल रघुबीर जू के बालिसुत
वाहि न गनत, बात कहत करेरी सी।
"बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत,
रिस काहें लागति कहत हौं तो तेरी सो॥
चढ़ि गढ़ मढ़ दृढ़ कोट के कँगूरे कोपि,
नेकु धका देहैं ढैहैं ढेलन की ढेरी सी।
सुनु दसमाथ ! नाथ-साथ के हमारे कपि
हाथ लंका लाइहैं तो रहैगी हथेरी सी॥ १०॥

७—धराधर = (१) पर्वत (२) शेष। धरषा = धर्षित हुआ।

९—बातजात = हनुमान्।

१०—खीस होत = नष्ट होती। मढ़ = मंडप। हाथ की हथेली सी = समतल, सपाट।

दूषन बिराध खर त्रिसिर कबंध बधे,
तालऊ बिसाल बेधे, कौतुक है कालि को।
एक ही बिसिष बस भयो बीर बाँकुरो जो,
तोहू है बिदित बल महाबली बालि को ॥
तुलसी कहत हित, मानतो न नेकु संक,
मेरो कहा जैहै, फल पैहै तू कुचालि को।
बीर-करि-केसरी कुठारपानि मानी हारि,
तेरी कहा चली, बिड ! तो सो गनै घालि को ॥ ११ ॥

सवैया

तोसों कहौं दसकंधर रे, रघुनाथ-बिरोध न कीजिय बौरे।
बालि बली खरदूषन और अनेक गिरे जे जे भीति में दौरे ॥
ऐसिय हाल भई तोहिं धौं, नतु लै मिलु सीय चहै सुख जौ रे।
राम के रोष न राखि सकैं तुलसी बिधि श्रीपति, संकर सौ रे ॥ १२ ॥

तू रजनीचरनाथ महा, रघुनाथ के सेवक को जन हौं हौं।
बलवान है स्वान गली अपनी, तोहि लाज न गाल बजावत सौंहों ॥
बीस भुजा दससीस हरौं न डरौं प्रभु आयसुभंग ते जौं हौं।
खेत में केहरि ज्यों गजराज दलौं दल बालि को बालक तौ हौं ॥ १३ ॥

कोसलराज के काज हौं आज त्रिकूट उपारि लै बारिधि बोरौं।
महाभुज-दंड द्वै अंडकटाह चपेट की चोट चटाक दै फोरौं ॥
आयसुभंग तें जौं न डरौं सब मींजि सभासद सोनित खोरौं।
बालि को बालक जौ तुलसी दसहूमुख के रन में रद तोरौं" ॥ १४ ॥

अति कोप सों रोप्यो है पाँव सभा, सब लंक ससंकित सोर मचा।
तमके घननाद से बीर पचारि के, हारि निसाचर सैन पचा ॥
न टरै पग मेरुहु तें गरु भो, सो मनों महि संग बिरंचि रचा।
तुलसी सब सूर सराहत है "जगमें बलसालि है बालि-बचा" ॥ १५ ॥

११—कुठारपानि = परशुराम। बिड = विट, नीच, खल। घालि गनै = चलुए या पतंगे बराबर समझता है। कुछ समझता है।

१२—धौं = ज़ोर देने के लिये प्रयुक्त शब्द, तो।

१४—खोरौं = स्नान करूँ, नहाऊँ।

घनाक्षरी

रोप्यो पाँव पैज कै बिचारि रघुबीरबल,
लागे भट सिमिटि न नेकु टसकतु है।
तज्यो धीर धरनि, धरनिधर धसकत,
धराधर धीर भार सहि न सकतु है॥
महाबली बालि को दबत दलकतु भूमि,
तुलसी उछरि सिंधु मेरु मसकतु है।
कमठ कठिन पीठि, घटा परो मंदर को,
आयो सोई काम, पै करेजो कसकतु है॥ १६॥

झूलना

कनकगिरिस्रृंग चढ़ि देखि मर्कट कटक,
बदति मंदोदरी परम भीता।
"सहसभुज-मत्त-गजराज-रनकेसरी
परसुधर-गर्व जेहि देखि बीता॥
दास तुलसी समरसूर कोसलधनी
ख्याल ही बालि बलसालि जीता।
कंत! तृन दंत गहि सरन श्रीराम कहि,
अजहुँ यहि भाँति लै सौंपु सीता॥ १७॥
नीच मारीच बिचलाइ, हति ताड़का
भंजि सिवचाप सुख सबहि दीन्ह्यो।
सहस-दसचारि खल सहित खर-दूषनहि,
पठै जमधाम, तैं तउ न चीन्ह्यो॥
मैं जु कहौं कंत सुनु संत भगवंत सों,
बिमुख ह्वै बालि फल कौन लीन्ह्यो?।
बीस भुज सीस दस खीस गए तबहिं जब
ईस के ईस सों बैर कीन्ह्यो॥ १८॥
बालि दलि काल्हि जलजान पाषान किय,
कंत! भगवंत तैं तउ न चीन्हे।

१६ घटा = लागातार बहुत दिनों तक दाब पड़ते रहने से कड़ा पड़ा हुआ चमड़ा जिसमें वेदना कम होती है। घट्ठा।

१८— पठै = पठए, भेजे।

विपुल बिकराल भट भालु कपि काल से,
संग तरु तुंग गिरिसृंग लीन्हे ॥
आइगे कोसलाधीस तुलसीस जेहि
छत्रमिस मौलि दस दूरि कीन्हे ।
ईस-बकसीस जनि खीस करु ईस ! सुनु,
अजहुँ कुल कुसल बैदेहि दीन्हे ॥ १६ ॥
सैन के कपिन को को गनै अर्बुदै,
महाबलबीर हनुमान जानी ।
भूलिहै दसदिसा सेस पुनि डोलिहै
कोपि रघुनाथ जब बान तानी ॥
बालिहू गर्ब जिय माहि ऐसो कियो,
मारि दहपट कियो जम की घानी ।
कहति मंदोदरी सुनहि, रावन ! मतो,
बेगि लै देहि बैदेहि रानी ॥ २० ॥
गहन उज्जारि पुर जारि सुत मारि तव,
कुसल गो कीस बरबेर जाको ।
दूसरो दूत पन रोपि कोप्यो सभा,
खर्ब कियो सर्ब को गर्ब थाको ॥"
दास तुलसी सभय बदति मयनंदिनी,
"मंदमति कंत ! सुनु मंत म्हाको ।
तौलौं मिलु बेगि नहिं जौलौं रन रोष भयो,
दासरथि बीर बिरुदैत बाँको" ॥ २१ ॥

घनाक्षरी

"कानन उजारि, अच्छ मारि, धारि धूरि कीन्हीं,
नगर प्रजाख्यो सो बिलोक्यो बल कीस को ।
तुम्हैं विद्यमान जातुधान-मंडली मैं कपि
कोपि रोप्यो पाँउ, सो प्रभाव तुलसीस को ।

२०—दहपट कियो = ध्वस्त किया ।

२१—बरबेर = बड़े शरीरवाला। थाको = (१) तुम्हारा या (२) ढीलापड़ा। म्हाको = मेरा ।

कंत ! सुनु मंत, कुल अंत किये अंत हानि,
हातो कीजै हीय तें भरोसो भुज बीस को ।
तौलौं मिलु बेगि जौलौं चाप न चढ़ायो राम,
रोषि बान काढ़्यो न दलैया दससीस को ॥ २२ ॥
पवन को पूत देख्यौ दूत बीर बाँकुरो जो
बंक गढ़ लंक सो ढका ढकेलि ढाहिगो ।
बालि बलसालि को, सो कालि्ह दाप दलि, कोपि
रोप्यो पाँउ, चपरि चमू को चाउ चाहिगो ॥
सोई रघुनाथ कपि साथ पाथनाथ बाँधि,
आए नाथ ! भागे तें खिरिरि खेह खाहिगो ।
तुलसी गरब तजि, मिलिबे को साज सजि,
देहि सीय नतो, पिय ! पाइमाल जाहिगो ॥ २३ ॥
उदधि अपार उतरत नहिं लागी बार,
केसरीकुमार सो अदंड कैसो डाँड़िगो ।
बाटिका उजारि अच्छ रच्छकनि मारि, भट
भारी भारी रावरे के चाउर से काँड़िगो ॥
तुलसी तिहारे विद्यमान जुवराज आजु,
कोपि पाँव रोपि, बस कै छोहाइ छाँड़िगो ।
कहे को न लाज, पिय ! अजहूँ न आए बाज,
सहित समाज गढ़ राँड़ के सो भाँड़िगो ॥ २४ ॥
जाके रोष दुसह त्रिदोष दाह दूरि कीन्हे,
पैयत न छत्रीखोज खोजत खलक में ।
महिपमती को नाथ साहसी सहसबाहु
समर समर्थ, नाथ ! हेरिए हलक में ॥
सहित समाज महाराज सो जहाजराज
बूड़ि गयो जाके बलबारिधिछलक में ।
टूटत पिनाक के मनाक बाम राम से, ते
नाक बिनु भये भृगुनायक पलक में ॥ २५ ॥

२२—हातो कीजै = दूर दीजिए ।

२३—खिरिरि = खरोंच कर ।

२५—खलक = [अ० खलक़] संसार । हलक = [अ० हलक़] कंठ अर्थात् हृदय । नाक = प्रतिष्ठा ।

कीन्हीं छोनी छत्री बिनु, छोनिपछ्पनहार
कठिन कुठारपानि बीर बानि जानि कै।
परम कृपाल जो नृपाल लोकपालन पै,
जब धनु हाई ह्वैहै मन अनुमानि कै॥
नाक में पिनाक मिस बामता बिलोकि राम
रोक्यो परलोक, लोक भारी भ्रम भानि कै।
नाइ दस माथ महि, जोरि बीस हाथ, पिय!
मिलिए पै नाथ रघुनाथ पहिचानि कै॥ २६॥
कह्यो मत मातुल बिभीषनहु बार बार,
आँचर पसारि पिय पाँइ लै लै हौं परी।
बिदित बिदेहपुर, नाथ! भृगुनाथगति,
समय सयानी कीन्ही जैसी आइ गौं परी॥
बायस, बिराध, खर, दूषन, कबंध, बालि,
बैर रघुबीर के न पूरी काहु की परी।
कंत बीस लोचन बिलोकिए कुमंत-फल,
ख्याल लंका लाई कपि राँड़ की सी झोपरी॥ २७॥

सवैया

राम सों साम किये नित है हित, कोमल काज न कीजिए टाँटे।
आपनि सूझि कहौं, पिय! बूझिए, जूझिबे जोग न ठाहरु नाठे॥
नाथ! सुनी भृगुनाथकथा, बलि बालि गए चलि बात के साँटे।
भाइ बिभीषन जाइ मिल्यो प्रभु आइ परे सुनी सायर-काँठे॥ २८॥
पालिबे को कपि-भालु-चमू जमकाल करालहु को पहरी है।
लंक से बंक महागढ़ दुर्गम ढाहिबे दाहिबे कोक हरी है॥
तीतर-तोम तमीचर-सेन समीर को सूनु बड़ो बहरी है॥
नाथ भलो रघुनाथ मिले, रजनीचर-सेन हिये हहरी है॥ २९॥

२६—पै = अवश्य, निश्चय। हाई ह्वैहै = टूटेगा।
२७—लाई = जलाई।
२८—साँटे = पकड़े रहने से। सायर = सागर। काँठे = किनारे, तट पर।
२९—कहरी = [अ० कहर] क्रोधी, आफ़त ढानेवाला। बहरी = एक
[illegible]

घनाक्षरी

गाज्यो रन रावन, बोलाए बीर बानइत,
जानत जे रीति सब संजुग समाज की।
चली चतुरंग चमू चपरि हने निसान,
सेना सराहन जोग रातिचर-राज की॥
तुलसी बिलोकि कपि भालु किलकत,
ललकत लखि ज्यों कँगाल पातरी सुनाज की।
राम रुख निरखि हरषे हिय हनुमान,
मानों खेलवार खोली सीसताज बाज की॥ ३० ॥
साजिकै सनाह गजगाह सउछाह दल,
महाबली धाये बीर जातुधान धीर के।
इहाँ भालु बंदर बिसाल मेरु मंदर से,
लिये सैल साल तोरि नीरनिधि-तीर के॥
तुलसी तमकि ताकि भिरे भारी जुद्ध क्रुद्ध,
सेनप सराहे निज निज भट भीर के।
रुंडन के झुंड झूमि झूमि झुकरे से नाचैं,
समर सुमार सूर मारे रघुबीर के॥ ३१ ॥

सवैया

तीखे तुरंग कुरंग सुरंगनि साजि चढ़े छँटि छैल छबीले।
भारी गुमान जिन्हैं मन में, कबहूँ न भये रन में तनु ढीले॥
तुलसी गज से लखि केहरि लौं झपटे पटके सब सूर सलीले।
भूमि परे भट घूमि कराहत, हाँकि हने हनुमान हठीले॥ ३२ ॥
सूर सँजोइल साजि सुबाजि, सुसेल धरे बगमेल चले हैं।
भारी भुजा भरी, भारी सरीर, बली बिजयी सब भाँति भले हैं॥
तुलसी जिन्हे धाये धुकै धरनीधर, धौर धकानि सों मेरु हले हैं।
ते रन-तीर्थनि लक्खन लाखन-दानि ज्यों दारिद दाबि दले हैं॥३३॥
गहि मंदर बंदर भालु चले सो मनो उनये घन सावन के।
तुलसी उत झुंड प्रचंड झुके, झपटैं भट जे सुरदावन के॥

३१—सनाह=कवच। गजगाह=झूल, पाखर। झुकरे से=झुँझलाए से। सुमार सूर=चुने हुए वीर।

३२—सलीले=लीला से, खेल में।

बिरुझे बिरुदैत जे खेत अरे, न टरे हठि बैर बढ़ावन के।
रन मारि मची उपरी उपरा, भले बीर रघुप्पति-रावन के ॥ ३४ ॥
सर तोमर सेल समूह पँवारत, मारत बीर निसाचर के।
इत तें तरु ताल तमाल चले, खर खंड प्रचंड महीधर के ॥
तुलसी करि केहरि-नाद भिरे, भट खग्ग खगे खपुवा खरके।
नख दंतन सों भुजदंड बिहंडत, मुंड सों मुंड परे झर के ॥ ३५ ॥
रजनीचर मत्तगयंद-घटा बिघटै मृगराज के साज लरै।
झपटै, भट कोटि मही पटकै, गरजै रघुबीर की सौंह करै ॥
तुलसी उत हाँक दसानन देत, अचेत भे बीर को धीर धरै ?।
बिरुझो रन मारुत को बिरुदैत, जो कालहु काल सो बूझि परै ॥ ३६ ॥
जे रजनीचर बीर बिसाल कराल बिलोकत काल न खाए।
ते रन रौर कपीस-किसोर बड़े बरजोर परे फँग पाए ॥
लूम लपेटि अकास निहारि कै हाँक हठी हनुमान चलाए।
सूखि गे गात चले नभ जात, परे भ्रम-बातन भूतल आए ॥ ३७ ॥
जो दससीस महीधर-ईस को, बीस भुजा खुलि खेलनहारो।
लोकप दिग्गज दानव देव सबै सहमैं सुनि साहस भारो ॥
बीर बड़ो बिरुदैत बली, अजहूँ जग जागत जासु पँवारो।
सो हनुमान हनी मुठिका, गिरिगो गिरिराज ज्यों गाज को मारो ॥ ३८ ॥
दुर्गम दुर्ग पहार तें भारे प्रचंड महा भुजदंड बने है।
लक्ख में पक्खर तिक्खन तेज जे सूर समाज में गाज गने हैं ॥
ते बिरुदैत बली रन-बाँकुरे हाँकि हठी हनुमान हने हैं।
नाम लै राम दिखावत बंधु को, घूमत घायल घाय घने है ॥ ३९ ॥

घनाक्षरी

हाथिन सों हाथी मारे, घोड़े घोड़े सों सँहारे,
रथनि सों रथ बिदरनि बलवान की।

३५—खपुवा = भगोड़े भरती के, निकम्मे। खगे = धँसे।
३६—साज = समान, तरह।
३७—फँग = फंदा, पंजा। भ्रम-बातन = चक्कर में।
३८—पँवारा = लंबी कथा, वीर गाथा।
३९—पक्खर = लड़ाई की झूल, कवच।

चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहे,
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की ॥
बारबार सेवक-सराहना करत राम,
तुलसी सराहै रीति साहेब सुजान की ।
लाँबी लूम लसत लपेटि पटकत भट,
देखौ देखौ लखन ! लरनि हनुमान की ॥ ४० ॥

दबकि दबोरे एक, बारिधि में बोरे एक,
मगन मही में एक गगन उड़ात है ।
पकरि पछारे कर चरन उखारे एक
चीरि फारि डारे, एक मींजि मारे लात हैं ॥
तुलसी लखत राम, रावन बिबुध, बिधि,
चक्रपानि, चंडीपति, चंडिका सिहात है ।
बड़े बड़े बानइत बीर बलवान बड़े,
जातुधान जूथप निपाते बातजात है ॥ ४१ ॥

प्रबल प्रचंड बरिबंड बाहुदंड बीर,
धाये जातुधान हनुमान लियो घेरि कै ।
महाबल-पुंज कुंजरारि ज्यों गरजि भट
जहाँ तहाँ पटके लँगूर फेरि फेरि कै ॥
मारे लात, तोरे गात, भागे जात, हाहा खात,
कहैं 'तुलसीस राखि राम की सौं' टेरि कै ।
ठहर ठहर परे कहरि कहरि उठैं,
हहरि हहरि हर सिद्ध हँसे हेरि कै ॥ ४२ ॥

जाकी बाँकी बीरता सुनत सहमत सूर,
जाकी आँच अबहूँ लसत लंक लाह सी ।
सोई हनुमान बलवान बाँके बानइत,
जोहि जातुधान-सेना चले लेत थाह सी ॥
कंपत अकंपन, सुखाय अतिकाय काय,
कुंभऊकरन आइ रह्यो पाइ आह सी ।
देखे गजराज मृगराज ज्यों गरजि धायो
बीर रघुबीर को समीरसूनु साहसी ॥ ४३ ॥

४२—तुलसीस = हनुमान्

झूलना

मत्तभट-मुकुट-दसकंध-साहस-सइल-
सृंग-बिद्दरनि जनु बज्रटाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ,
सेष संकुचित, संकित पिनाकी।
चलित महि मेरु, उच्छलित सायर सकल,
बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिसि झाँकी।
रजनीचर-घरनि घर गर्भ-अर्भक स्रवत
सुनत हनुमान की हाँक बाँकी॥ ४४॥
कौन की हाँक पर चौंक चंडीस बिधि,
चंडकर थकित फिरि तुरँग हाँके
कौन के तेज बलसीम भट भीम से
भीमता निरखि कर नयन ढाँके॥
दास तुलसीस के बिरुद बरनत बिदुष,
बीर बिरुदैत बर बैरि धाँके।
नाक नरलोक पाताल कोउ कहत किन
कहाँ हनुमान से बीर बाँके॥ ४५॥
जातुधानावली-मत्त-कुंजर-घटा
निरखि मृगराज जनु गिरि तें टूट्यो।
बिकट चटकन चपट, चरन गहि पटकि महि,
निघटि गए सुभट, सत सब को छूट्यो॥
दास तुलसी परत धरनि, धरकत झुकत,
हाट सी उठति जंबुकनि लूट्यो।
धीर रघुबीर को बीर रन-बाँकुरो
हाँकि हनुमान कुलि कटक कूट्यो॥ ४६॥

छप्पय

कतहुँ बिटप भूधर उपारि परसेन बरक्खत।
कतहुँ बाजि सों बाजि, मर्दि गजराज करक्खत॥
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत।
बिकट कटक बिद्दरत बीर बारिद जिमि गज्जत॥

४५—धाँके = धाक जमा दी।

लँगूर लपेटत पटकि भट, 'जयति राम जय' उच्चरत।
तुलसीस पवननंदन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ॥४७॥

घनाक्षरी

अंग अंग दलित ललित फूले किंसुक से,
हने भट लाखन लषन जातुधान के।
मारि कै पछारे कै उपारि भुजदंड चंड,
खंड खंड डारे ते बिदारे हनुमान के॥
कूदत कबंध के कदंब बंब सी करत,
धावत दिखावत हैं लाघौ राघौ बान के।
तुलसी महेस, बिधि, लोकपाल, देवगन
देखत बिमान चढ़े कौतुक मसान के॥ ४८॥

लोथिन सों लोहू के प्रवाह चले जहाँ तहाँ,
मानहुँ गिरिन गेरु-झरना झरत हैं।
सोनित सरित घोर, कुंजर करारे भारे,
कूल तें समूल बाजि-बिटप परत हैं॥
सुभट सरीर नीरचारी भारी भारी तहाँ,
सूरनि उछाह, कूर कादर डरत हैं।
फेकरि फेकरि फेरु फारि फारि पेट खात,
काक कंक-बालक कोलाहल करत हैं॥ ४९॥

ओझरी की झोरी काँधे, आँतनि की सेल्ही बाँधे,
मूँड़ के कमंडलु, खपर किये कोरि कै।
जगिनी झुटुंग झुंड झुंड बनी तापसी सी
तीर तीर बैठीं सो समरसरि खोरि कै॥
सोनित सों सानि सानि गूदा खात सतुआ से,
प्रेत एक पियत बहोरि घोरि घोरि कै।
तुलसी बैताल भूत साथ लिए भूतनाथ
हेरि हेरि हँसत हैं हाथ हाथ जोरि कै॥ ५०॥

४९—फेरु = गीदड़।

५०—कोरिकै = खुरच कर गड्ढा करके। खोरिकै = नहा करके। झुटुंग = एक प्रकारकी योगिनी।

सवैया

राम सरासन तें चले तीर, रहे न सरीर, हड़ावरि फूटी।
रावन धीर न पीर गनी, लखि लै कर खप्पर जोगिनि जूटी॥
सोनित छींटि-छटानि-जटे तुलसी प्रभु सोहैं, महाछबि छूटी।
मानौ मरक्कत-सैल बिसाल मे फैलि चली बर बीरबहुटी॥ ५१॥

घनाक्षरी

मानी मेघनाद सों प्रचारि भिरे भारी भट,
आपने अपन पुरुषारथ न ढील की।
घायल लषनलाल लखि बिलखाने राम,
भई आस सिथिल जगन्निवास दील की॥
भाई को न मोह, छोह सीय को न, तुलसीस
कहै "मैं बिभीषन की कछु न सबील की"।
लाज बाँह बोले की, नेवाजे की सँभार सार,
साहेब न राम से, बलैया लेउँ सील की॥ ५२॥

सवैया

कानन बास, दसानन सो रिपु, आननश्री ससि जीति लियो है।
बालि महाबलसालि दल्यो, कपि पालि, बिभीषन भूप कियो है॥
सीय हरी, रन बंधु पर्यो, पै भर्यो सरनागत-सोच हियो है।
बाँह-पगार उदार कृपालु, कहाँ रघुबीर सो बीर बियो है?॥ ५३॥
लीन्हो उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल बिलंब न लायो।
मारुतनंदन मारुत को, मन को, खगराज को बेग लजायो॥
तीखी तुरा तुलसी कहतो, पै हिये उपमा को समाउ न आयो।
मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ लीक लसी कपि यों धुकि धायो॥ ५४॥

घनाक्षरी

चल्यो हनुमान सुनि जातुधान कालनेमि
पठयो, सो मुनि भयो, पायो फल छलि कै।

५२—दील = दिल, मन। सबील = प्रबंध। बाँह बोले की = शरण में लेने की।

५३—बियो = दूसरा।

५४—धुकि = झपटकर, झोंके से चलकर।

सहसा उखारो है पहार बहु जोजन को,
रखवारे मारे भारे भूरि भट दलि कै ॥
बेग बल साहस सराहत कृपानिधान,
भरत की कुसल अचल ल्यायो चलि कै ।
हाथ हरिनाथ के बिकाने रघुनाथ जनु,
सीलसिंधु तुलसीस भलो मान्यो भलि कै ॥ ५५ ॥
बापु दियो कानन, भो आनन सुभानन सो,
बैरी भो दसानन सो, तीय को हरन भो ।
बालि बलसालि दलि, पालि कपिराज को,
बिभीषन नेवाजि, सेतुसागर तरन भो ॥
घोर रारि हेरि त्रिपुरारि बिधि हारे हिये,
घायल लखन बीर बानर बरन भो ।
ऐसे सोक में तिलोक कै बिसोक पलही में,
सबही को तुलसी को साहिब सरन भो ॥ ५६ ॥

सवैया

कुंभकरन्न हन्यो रन राम, दल्यो दसकंधर, कंधर तोरे ।
पूषन-बंस-बिभूषन-पूषन तेज प्रताप गरे अरि-ओरे ॥
देव निसान बजावत गावत, सावँत गो, मनभावत भो रे !
नाचत बानर भालु सबै तुलसी कहि "हा रे ! हहा भइ, हो रे ! ॥ ५७ ॥

घनाक्षरी

मारे रन रातिचर, रावन सकुल दल,
अनुकूल देव मुनि फूल बरषतु हैं ।
नाग नर किन्नर बिरंचि हरि हर हेरि,
पुलक सरीर, हिये हेतु, हरषतु हैं ॥
बाम ओर जानकी कृपानिधान के बिराजैं,
देखत बिषाद मिटै मोद करषतु हैं ।
आयसु भो लोकनि सिधारे लोकपाल सबै,
तुलसी निहाल कै कै दियो सरषतु हैं ॥ ५८ ॥

५५— हरिनाथ = कपिपति, हनुमान ।
५७—ओरे = ओले । सावँत = सामतपना, अधीनता ।
५८—सरखत = परवाना ।

उत्तर कांड

सवैया

बालि से बीर बिदारि सुकंठ थप्यो, हरषे सुर बाजने बाजे ।
पल में दल्यो दासरथी दसकंधर, लंक बिभीषन राज बिराजे ॥
राम सुभाव सुने तुलसी हुलसै अलसी, हम से गलगाजे ।
कायर क्रूर कपूतन की हद तेउ गरीबनेवाज नेवाजे ॥ १ ॥
बेद पढ़ैं बिधि संभु सभीत, पुजावन रावन सों नित आवैं ।
दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि तें सिर नावैं ॥
ऐसेउ भाग भगे दसभाल तें जो प्रभुता कवि कोविद गावैं ।
राम से बाम भए तेहि बामहि बाम सबै सुख संपति लावैं ॥ २ ॥
बेद-बिरुद्ध, मही मुनि साधु ससोक किए, सुरलोक उजारो ।
और कहा कहौं तीय हरी, तबहूँ करुनाकर कोप न धारो ॥
सेवक-छोह तें छाँड़ी छमा, तुलसी लख्यो राम सुभाव तिहारो ।
तौलौं न दाप दल्यो दसकंधर जौलौं बिभीषन लात न मारो ॥ ३ ॥
सोक-समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीस कियो जग जानत जैसो ।
नीच निसाचर बैरी को बंधु बिभीषन कीन्ह पुरंदर कैसो ॥
नाम लिए अपनाइ लियो, तुलसी सों कहौ जग कौन अनैसो ।
आरत-आरति-भंजन राम, गरीबनेवाज न दूसर ऐसो ॥ ४ ॥
मीत पुनीत कियो कपि भालु को, पाल्यो ज्यों काहु न बाल तनूजो ।
सज्जन-सींव बिभीषन भो, अजहूँ बिलसै बर बंधु-बधू जो ॥
कोसलपाल बिना तुलसी सरनागतपाल कृपालु न दूजो ।
क्रूर कुजाति कुपूत अघी सब की सुधरै जो करै नर पूजो ॥ ५ ॥
तीय-सिरोमनि सीय तजी जेहि पावक की कलुषाई दही है ।
धर्म-धुरंधर बंधु तज्यो, पुरलोगनि की बिधि बोलि कही है ॥
कीस निसाचर की करनी न सुनी, न बिलोकी, न चित्त रही है ।
राम सदा सरनागत की अनखौंही अनैसी सुभाय सही है ॥ ६ ॥
अपराध अगाध भए जन तें अपने उर आनत नाहिंन जू ।
गनिका गज गीध अजामिल के गनि पातक-पुंज सिराहिं न जू ॥

२—बाम लावैं = बायें दे जाते हैं, दूर हटते है ।
३—उजारो = उजाड़ा ।

नाम-ओट लेत ही निखोट होत खोटे खल,
　　चोट बिनु मोट पाइ भयो न निहाल को ? ।
तुलसी की बार बड़ी ढीलि होति, सीलसिंधु !
　　बिगरी सुधारिबे को दूसरो दयालु को ? ।। १७ ।।
नाम लिये पूत को पुनीत कियो पातकीस,
　　आरति निवारि प्रभु पाहि कहे पील की ।
छलिन की छोंड़ी सी निगोड़ी छोटी जाति पाँति,
　　कीन्हीं लीन आपु में सुनारी भोंड़े भील की ।।
तुलसीऔ तारिबो बिसारिबो न अंत, मोहिं
　　नीके है प्रतीत रावरे सुभाव सील की ।
देव तौ दयानिकेत, देत दादि दीनन की,
　　मेरी बार मेरे ही अभाग नाथ ढील की ।। १८ ।।
आगे परे पाहन कृपा; किरात, कोलनी,
　　कपीस, निसिचर अपनाए नाए माथ जू ।
साँची सेवकाई हनुमान की सुजानराय,
　　ऋनियाँ कहाये हौ बिकानो ताके हाथ जू ।।
तुलसी से खोटे खरे होत ओट नाम ही की,
　　तेजी माटी मगहू की मृगमद साथ जू ।
बात चले बात को न मानिबो बिलग, बलि,
　　काकी सेवा रीझि कै नेवाजो रघुनाथजू ? ।। १९ ।।
कौसिक की चलत, पषान की परस पायँ,
　　टूटत धनुष बनि गई है जनक की ।
कोल पसु सबरी बिहंग भालु रातिचर,
　　रतिन के लालचिन प्रापति मनक की ।।
कोटि-कला-कुसल कृपालु नतपाल, बलि,
　　बातहू कितिक तिन तुलसी तनक की ।
राइ दसरत्थ के समर्त्थ राम राजमनि,
　　तेरे हेरे लोपै लिपि बिधिहू गनक की ।। २० ।।

१७—चोट बिनु मोह पाइ = बिना कष्ट वा श्रम के गठरी पाकर ।
१८—छोंड़ी = लड़की ।
१९—तेजी = महँगी ।
२०—मनक = मन भर । तिन = तृण ।

घनाक्षरी

सिला-साप-पाप, गुह गीध को मिलाप,
सबरी के पास आप चलि गये हौ सो सुनी मैं।
सेवक सराहे कपिनायक बिभीषन,
भरत सदा सादर सनेह सुरधुनी मैं ॥
आलसी-अभागी-अघी-आरत-अनाथपाल,
साहेब समत्थ एक नीके मन गुनी मैं।
दोष दुख दारिद दलैया दीनबंधु राम,
तुलसी न दूसरो दयानिधान दुनी मैं ॥ २१ ॥
मीत बालि-बंधु, पूत दूत, दसकंध-बंधु,
सचिव सराध कियो सबरी जटाइ को।
लंक जरी जोहे जिय सोच सो बिभीषन को,
कहौ ऐसे साहेब की सेवा न खटाइ को ? ॥
बड़े एक एक तें अनेक लोक लोकपाल,
अपने अपने को तो कहैगो घटाइ को ?।
साँकरे के सेइबे, सराहिबे सुमिरबे को
राम सो न साहिब, न कुमति-कटाइको ॥ २२ ॥
भूमिपाल, ब्यालपाल, नाकपाल, लोकपाल
कारन-कृपालु, मैं सबै के जी की थाह ली।
कादर को आदर काहू के देखियत,
सबनि सोहात है सेवा-सुजानि टाहली ॥
तुलसी सुभाय कहै नाहीं कछु पच्छपात,
कौने ईस किये कीस भालु खास माहली।
राम ही के द्वारे पै बोलाइ सनमानियत,
मोसे दीन दूबरे कुपूत कूर काहली ॥ २३ ॥
सेवा अनुरूप फल देत भूप कूप ज्यों,
बिहूनेगुन पथिक पियासे जात पथ के।
लेखे जोखे चोखे चित तुलसी स्वारथहित,
नीके देखे देवता देवैया घने गथ के ॥

२१—सुरधुनीमैं = गंगामय, पवित्र
२२—कटाइको = कटायक, काटनेवाला भी।
२३—टाहली = टहलुवा, सेवक। माहली = रनिवास का सेवक।

गीध मानो गुरु, कपि भालु मानो मीत कै,
पुनीत गीत साके सब साहेब समत्थ के।
और भूप परखि सुलाखि तौलि ताइ लेत,
लसम के खसम तुही पै दसरत्थ के ॥ २४ ॥
रीति महाराज की नेवाजिये जो माँगनो सो
दोष-दुख-दारिद-दरिद्र कै कै छोड़िये।
नाम जाको कामतरु देत फल चारि, ताहि
तुलसी बिहाइ कै बबूर रेंड़ गोड़िये॥
जाँचै को नरेस, देसदेस को कलेस करै?
देहै तौ प्रसन्न ह्वै बड़ी बड़ाई बौंडिये।
कृपापाथनाथ लोकनाथ नाथ सीतानाथ,
तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िये? ॥ २५ ॥

सवैया

जाके बिलोकत लोकप होत बिसोक, लहैं सुरलोग सुठौरहि।
सो कमला तजि चंचलता करि कोटि कला रिझवै सुरमौरहि॥
ताको कहाय, कहै तुलसी, तू लजाहि न माँगत कूकुर कौरहि।
जानकीजीवन को जन ह्वै जरि जाउ सो जीह जो जाँचत औरहि॥२६॥
जड़ पंच मिलै जेहि देह करी, करनी लखु धौं धरनीधर की।
जन की कहु क्यों करिहै न सँभार, जो सार करै सचराचर की॥
तुलसी कहु राम समान को आन है सेवकि जासु रमा घर की।
जग में गति जाहि जगत्पति की, परवाह है ताहि कहा नर की॥ २७॥
जग जाँचिये कोऊ न; जाँचिये जौ जिय जाँचिये जानकी-जानहि रे।
जेहि जाँचक जाचकता जरि जाइ जो जारति जोर जहानहि रे॥
गति देखु बिचारि बिभीषन की, अरु आनु हिये हनुमानहि रे।
तुलसी भजु दारिद-दोष-दवानल, संकट-कोटि-कृपानहि रे॥ २८॥

२४—सुलाखि = सूराख करके। लसम = खोटा।

२५—बड़ी बड़ाई = बहुत बढ़कर। बौंडियै = दमड़ी ही।

२७—सार करना = सँभाल करना।

२८—जानकी-जान = जानकी-जानि (स्त्री); अर्थात् जिनकी स्त्री जानकी हैं, रामचंद्र।

सुनु कान दिए नित नेम लिये रघुनाथहि के गुनगाथहि रे।
सुख-मंदिर सुंदर रूप सुधा उर आनि धरे धनुभाथहि रे॥
रसना निसि बासर सादर सों तुलसी जपु जानकीनाथहि रे।
करु संग सुसील सुसंतन सों, तजि कूर कुपंथ कुसाथहि रे॥ २९॥
सुत, दार, अगार, सखा, परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे।
सबकी ममता तजिकै, समता सजि संतसभा न बिराजहि रे॥
नरदेह कहा, करि देखु बिचार, बिगारु गँवार न काजहि रे।
जनि डोलहि लोलुप कूकर ज्यों, तुलसी भजु कोसलराजहि रे॥ ३०॥
बिषया परनारि निसा-तरुनाई, सु पाइ पर्यौ अनुरागहि रे।
जम के पहरू दुख रोग बियोग बिलोकत हू न बिरागहि रे॥
ममताबस तैं सब भूलि गयो, भयो भोर महा भय भागहि रे।
जरठाइ दिसा, रबिकाल उग्यो, अजहूँ जड़ जीव न जागहि रे॥ ३१॥
जनम्यो जेहि जोनि अनेक क्रिया सुख लागि करी, न परै बरनी।
जननी जनकादि हितू भये भूरि, बहोरि भई उर की जरनी॥
तुलसी अब राम को दास कहाइ हिये धरु चातक की धरनी।
करि हंस को बेष बड़ो सब सों, तजि दे बक बायस की करनी॥ ३२॥
भलि भारतभूमि, भले कुल जन्म, समाज सरीर भलो लहि कै।
करषा तजि कै परुषा बरषा, हिम मारुत घाम सदा सहि कै॥
जो भजै भगवान सयान सोई तुलसी हठ चातक ज्यों गहि कै।
नतु और सबै बिष बीज बये हर-हाटक कामदुहा नहि कै॥ ३३॥
सो सुकृती, सुचिमंत, सुसंत, सुजान, सुसील-सिरोमनि स्वै।
सुर तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत है ता तन छ्वै॥
गुनगेह, सनेह को भाजन सो, सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सति भाय सदा छल छाँड़ि सबै तुलसी जो रहै रघुबीर को ह्वै॥ ३४॥
सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुत, सो हित मेरो।
सोई सगो, सो सखा, सोइ सेवक, सो गुरु, सो सुर, साहिब चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्रानसमान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि देह को गेह सनेह सों राम को सेवक होइ सबेरो॥ ३५॥
राम है मातु पिता गुरु बंधु औ संगी सखा सुत स्वामि सनेही।
राम की सौंह भरोसो है राम को, रामरँग्यो रुचि राच्यो न केही॥

३२—धरनी = धरन। टेक।
३३—कामदुहा = कामधेनु। नहि कै = नाधकर, जोतकर।

जीयत राम, मुये पुनि राम, सदा रघुनाथहि की गति जेही।
सोई जियै जगमें तुलसी, नतु डोलत और मुये धरि देही ॥ ३६ ॥
सियराम-सरूप अगाध अनूप बिलोचन-मीनन को जलु है।
श्रुति रामकथा, मुख राम को नाम, हिये पुनि रामहि को थलु है ॥
मति रामहिं सों, गति रामहिं सों, रति राम सों, रामहि को बलु है।
सब की न कहैं, तुलसी के मते इतनो जग जीवन को फलु है ॥ ३७ ॥
दसरत्थ के दानि-सिरोमनि राम, पुरान-प्रसिद्ध सुन्यो जसु मैं।
नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सों मनभावत पायो न कै ॥
तुलसी कर जोरि करै बिनती जो कृपा करि दीनदयालु सुनैं।
जेहि देह सनेह न रावरे सों अस देह धराइ कै जाय जियैं ॥ ३८ ॥
'झूठो है, झूठो है, झूठो सदा जग' संत कहंत जे अंत लहा है।
ताको सहै सठ संकट कोटिक, काढ़त दंत, करंत हहा है ॥
जानपनी को गुमान बड़ो तुलसी के बिचार गँवार महा है।
जानकीजीवन जान न जान्यो तौ जान कहावत जान्यो कहा है ॥ ३९ ॥
तिन्ह तें खर सूकर स्वान भले, जड़ताबस ते न कहै कछु वै।
तुलसी जेहि राम सों नेह नहीं सो सही पसु पूँछ बिखान न द्वै ॥
जननी कत भार मुई दस मास, भई किन बाँझ, गई किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन, जानकीनाथ ! जियै जग में तुम्हरो बिन ह्वै ॥४०॥
गज-बाजि-घटा, भले भूरि भटा, बनिता सुत भौंह तकैं सब वै।
धरनी धन धाम सरीर भलो, सुरलोकहु चाहि इहै सुख स्वै ॥
सब फोकट साटक है तुलसी, अपनो न कछू सपनो दिन द्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ ! जियै जग में तुम्हरो बिनु ह्वै ॥४१॥
सुरराज सो राज-समाज, समृद्धि बिरंचि धनाधिप सो धन भो।
पवमान सो, पावक सो, जम-सोम सो, पूषन सो, भवभूषन भो ॥
करि जोग, समीरन साधि, समाधि कै, धीर बड़ो, बसहू मन भो।
सब जाय सुभाय कहै तुलसी जो न जानकीजीवन को जन भो ॥ ४२ ॥
काम से रूप, प्रताप दिनेस से, सोम से सील, गनेस से माने।
हरिचंद्र से साँचे, बड़े बिधि से, मघवा से महीप बिषै-सुखसाने ॥
सुक से मुनि, सारद से बकता, चिरजीवन लोमस तें अधिकाने।
ऐसे भए तौ कहा तुलसी जु पै राजिवलोचन राम न जाने ॥ ४३ ॥

४१—चाहि = अपेक्षाकृत । बढ़कर ।

झूमत द्वार अनेक मतंग जँजीर जरे मदअंबु चुचाते ।
तीखे तुरंग मनोगति चंचल, पौन के गौनहुँ तें बढ़ि जाते ॥
भीतर चंद्रमुखी अवलोकति, बाहर भूप खरे न समाते ।
ऐसे भए तौ कहा तुलसी जुपै जानकीनाथ के रंग न राते ॥ ४४ ॥
राज सुरेस पचासक को, बिधि के कर को जो पटो लिखि पाए ।
पूत सुपूत, पुनीत प्रिया निज सुंदरता रति को मद नाए ॥
संपति सिद्धि सबै तुलसी, मन की मनसा चितवैं चित लाए ।
जानकीजीवन जाने बिना जग ऐसेऊ जीव न जीव कहाए ॥ ४५ ॥
कृसगात ललात जो रोटिन को घरवात घरे खुरपा खरिया ।
तिन सोने के मेरु से ढेरु लहे मन तौ न भरो घर पै भरिया ॥
तुलसी दुख दूनो दसा दुहूँ देखि, कियो मुख दारिद को करिया ।
तजि आस भो दास रघुप्पति को, दशरत्थ को दानि दया-दरिया ॥४६॥
को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जौं भरिहै ।
उथपै तेहि को जेहि राम थपै ? थपिहै तेहि को हरि जौं टरिहै ?
तुलसी यह जानि हिये अपने सपने नहि कालहु तें डरिहै ।
कुमया कछु हानि न औरन की जोपै जानकीनाथ मया करिहै ॥ ४७ ॥
ब्याल कराल, महाबिष, पावक, मत्तगयंदहु के रद तोरे ।
साँसति संकि चली, डरपे हुते किंकर, ते करनी मुख मोरे ॥
नेकु बिषाद नहीं प्रहलादहि, कारन केहरि केवल हो रे ।
कौन की त्रास करै तुलसी, जोपै राखिहै राम तौ मारिहै को रे ? ॥४८॥
कृपा जिनकी कछु काज नहीं, न अकाज कछू जिनके मुख मोरे ।
करैं तिनकी परवाहि ते जो बिनु पूँछ बिषान फिरैं दिन दौरे ॥
तुलसी जेहिके रघुनाथ से नाथ, समर्थ सु सेवत रीझत थोरे ।
कहा भव-भीर परी तेहि धौं, बिचरै धरनी तिन सों तिन तोरे ॥ ४९ ॥
कानन, भूधर, बारि, बयारि, महाबिष, ब्याधि, दवा, अरि घेरे ।
संकट कोटि जहाँ तुलसी, सुत मातु पिता हित बंधु न नेरे ॥
राखिहैं राम कृपालु तहाँ, हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे ।
नाक, रसातल, भूतल में रघुनायक एक सहायक मेरे ॥ ५० ॥

४६—घरवात = घर का सामान ।

४८—कारन हो = कारण था ।

४९—तिन तोरे = नाता तोड़े हुए ।

जबै जमराज रजायसु तें मोहि लै चलिहै भट बाँधि नटैया।
तात न मात न स्वामि सखा सुत बंधु बिसाल बिपत्ति बँटैया॥
साँसति घोर, पुकारत आरत, कौन सुनै चहुँ ओर डटैया।
एक कृपालु तहाँ तुलसी दसरत्थ को नंदन बंदि कटैया॥ ५१॥
जहाँ जमजातना, घोर-नदी, भट कोटि जलच्चर दंत टेवैया।
जहँ धार भयंकर वार न पार, न बोहित नाव, न नीक खेवैया॥
तुलसी जहँ मातु पिता न सखा, नहिं कोऊ कहूँ अवलंब देवैया।
तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ़ि लेवैया॥ ५२॥
जहाँ हित, स्वामि, न संग सखा, बनिता सुत बंधु न, बापु न मैया।
काय गिरा मन के जन के अपराध सबै छल छाँड़ि छमैया॥
तुलसी तेहि काल कृपालु बिना दूजो कौन है दारुन दुःख दमैया।
जहाँ सब संकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहब राखै रमैया॥ ५३॥
तापस को बरदायक देव, सबै पुनि बैर बढ़ावत बाढ़े।
थोरेहि कोप कृपा पुनि थोरेहि, बैठिकै जोरत तोरत ठाढ़े॥
ठोंकि बजाय लखे गजराज, कहाँ लौं कहौं केहिसों रद काढ़े?।
आरत के हित नाथ अनाथ के राम सहाय सही दिन गाढ़े॥ ५४॥
जप, जोग, बिराग, महा मख-साधन, दान, दया, दम कोटि करै।
मुनि सिद्ध, सुरेस, गनेस, महेस मे सेवत जन्म अनेक मरै॥
निगमागम, ज्ञान पुरान पढ़ै, तपसानल में जुग-पुंज जरै।
मन सो पन रोपि कहै तुलसी रघुनाथ बिना दुख कौन हरै?॥ ५५॥
पातक पीन, कुदारिद दीन, मलीन धरे कथरी करवा है।
लोक कहै बिधिहू न लिख्यो सपनेहूँ नहीं अपने बर बाहै॥
राम को किंकर सो तुलसी समुझेहि भलो कहिबो न रवा है।
ऐसे को ऐसो भयो कबहूँ न भजे बिन, बानर के चरवाहै॥ ५६॥
मातु पिता जग जाय तज्यो, बिधिहू न लिखी कछु भाल भलाई।
नीच, निरादर-भाजन, कादर, कूकर टूकन लागि ललाई॥
राम-सुभाउ सुन्यो तुलसी, प्रभु सों कह्यो बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहब खोरि न लाई॥ ५७॥
पाप हरे, परिताप हरे, तन पूजि भो सीतल सीतलताई।
हंस कियो बक तें बलि जाउँ, कहाँ लौं कहौं करुना अधिकाई॥

५६—रवा = [फा०] उचित।
५७—जाय = उत्पन्न करके।

काल बिलोकि कहै तुलसी मन में प्रभु की परतीति अघाई ।
जन्म जहाँ तहँ रावरे सों निबहै भरि देह सनेह सगाई ॥ ५८ ॥
लोग कहैं अरु हौं हूँ कहौं 'जन खोटो खरो रघुनायक ही को' ।
रावरी राम बड़ी लघुता जस मेरो भयो सुखदायक ही को ॥
कै यह हानि सहौं बलि जाउँ कि मोहूँ करो निज लायक ही को ।
आनि हिये हित जानि करौं ज्यों हौं ध्यान धरौं धनुसायक ही को ॥ ५९ ॥
आपु हौं आपुको नीके कै जानत, रावरो राम ! भरायो गढ़ायो ।
कीर ज्यों नाम रटै तुलसी सो कहै जग जानकीनाथ पढ़ायो ॥
सोई है खेद जो बेद कहै, न घटै जन जो रघुबीर बढ़ायो ।
हौं तौ सदा खर को असवार, तिहारोई नाम गयंद चढ़ायो ॥ ६० ॥

घनाक्षरी

छार ते सँवारिकै पहार हू तें भारी कियो,
गारो भयो पंच में पुनीत पच्छ पाइकै ।
हौं तौ जैसो तब तैसो अब, अधमाई कै कै
पेट भरौं राम रावरोई गुन गाइकै ॥
आपने निवाजे की पै कीजे लाज, महाराज !
मेरी ओर हेरिकै न बैठिए रिसाइकै ।
पालिकै कृपालु ब्याल-बाल को न मारिये
औ काटिये न, नाथ ! बिषहू को रूख लाइकै ॥ ६१ ॥
बेद न पुरान गान, जानौं न बिज्ञान ज्ञान,
ध्यान, धारना, समाधि, साधन-प्रवीनता ।
नाहिन बिराग, जोग, जाग भाग तुलसी के,
दया-दान-दूबरो हौं, पाप ही की पीनता ॥
लोभ-मोह-काम-कोह-दोषकोष मोसो कौन ?
कलि हू जो सीखि लई मेरियै मलीनता ।
एक ही भरोसो राम रावरो कहावत हौं,
रावरे दयालु दीनबंधु, मेरी दीनता ॥ ६२ ॥
रावरो कहावौं, गुन गावौं राम रावरोई,
रोटी द्वै हौं पावौं राम रावरी ही कानि हौं ।
जानत जहान, मन मेरे हू गुमान बड़ो,
मान्यो मैं न दूसरो, न मानत, न मानिहौं ॥

आँच की प्रतीति न, भरोसो मोहिं आपनोई,
तुम अपनायो हौं तबैहीं परि जानिहौं।
गढ़ि गुढ़ि, छोलि छालि कुंद की सी भाई बातैं
जैसी मुख कहौं तैसी जीय जब आनिहौं ॥ ६३ ॥
बचन बिकार, करतबऊ खुआर, मन,
बिगत-बिचार, कलि मल को निधानु है।
राम को कहाइ, नाम बेंचि बेंचि खाइ, सेवा
संगति न जाइ पाछिले को उपखानु है ॥
तेहू तुलसी को लोग भलो भलो कहै, ताको
दूसरो न हेतु, एक नीके कै निदानु है।
लोकरीति बिदित बिलोकियत जहाँ तहाँ,
स्वामी के सनेह स्वान हू को सनमानु है ॥ ६४ ॥
स्वारथ को साज न समाज परमारथ को,
मोसों दगाबाज दूसरो न जगजाल है।
कै न आयों, करौं न करौंगो करतूति भली,
लिखी न बिरंचि हू भलाई भूलि भाल है ॥
रावरी सपथ, राम ! नाम ही की गति मेरे,
इहाँ झूठो झूठो सो तिलोक तिहूँ काल है।
तुलसी को भलो पै तुम्हारे ही किये, कृपालु !
कीजे न बिलंब, बलि, पानी भरी खाल है ॥ ६५ ॥
राग को न साज, न बिराग जोग जाग जिय,
काया नहिं छाँड़ि देत ठाटिबो कुठाट को।
मनोराज करत अकाज भयो आजु लगि,
चाहै चारु चीर पै लहै न टूक टाट को ॥
भयो करतार बड़े कूर को कृपालु, पायो
नाम-प्रेम-पारस हौं लालची बराट को।
तुलसी बनी है राम रावरे बनाए, ना तौ,
धोबी कैसो कूकर न घर को न घाट को ॥ ६६ ॥
ऊँचो मन, ऊँची रुचि, भाग नीचो निपट ही,
लोकरीति-लायक न, लंगर लबारु है।

६३—कुंद की भाई = खराद पर चढ़ाई हुई।
६६—बराट = कौड़ी।

स्वारथ अगम, परमारथ की कहा चली,
पेट की कठिन, जग जीव को जवारु है ।।
चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीख,
जानत न कूर कछु कसब कबारु है ।
तुलसी को बाजो राखो राम ही के नाम, नतु
भेंट पितरन कों न मूड़ हू में बारु है ।। ६७ ।।
अपत, उतार, अपकार को अगार जग,
जाकी छाँह छुए सहमत ब्याध बाधको ।
पातक पुहुमि पालिबे को सहसानन सो,
कानन कपट को, पयोधि अपराध को ।।
तुलसी से बाम को भी दाहिनो दयानिधान,
सुनत सिहात सब सिद्ध साधु साधको ।
रामनाम ललित ललाम कियो लाखनि को
बड़ो कूर कायर कपूत कौड़ी आध को ।। ६८ ।।
सब-अंग-हीन, सब-साधन-बिहीन, मन
बचन मलीन, हीन कुल करतूति हौं ।
बुधि-बल-हीन, भाव-भगति-बिहीन, हीन
गुन, ज्ञानहीन, हीन भाग हू बिभूति हौं ।।
तुलसी गरीब की गई-बहोर रामनाम,
जाहि जपि जीह राम हू को बैठो धूति हौं ।
प्रीति रामनाम सों, प्रतीति रामनाम की,
प्रसाद रामनाम के पसारि पायँ सूतिहौं ।। ६९ ।।
मेरे जान जब तें हौं जीव ह्वै जनम्यो जग,
तब तें बेसाह्यो दाम लोह कोह काम को ।
मन तिनहीं की सेवा, तिनहीं सों भाव नीको,
बचन बनाइ कहौं 'हौं गुलाम राम को' ।।

६७—लंगर = नटखट । जवारु [फा० जवाल] = जंजाल, झंझट । आकरी= खान खोदने का काम । कसब [अ०] = कारीगरी । कबारु = कबाड़, व्यवसाय, रोजगार ।

६८—अपत = अपात्र, खोटा । उतार = सबसे उतरा हुआ, अधम । ललाम = भूषण ।

नाथहू न अपनायो, लोक झूठी ह्वै परी, पै
प्रभु हू तें प्रबल प्रताप प्रभु नाम को।
आपनी भलाई भलो कीजै तौ भलोई, न तौ
तुलसी को खुलैगो खजानो खोटे दाम को॥ ७० ॥
जोग न बिराग जप जाग तप त्याग व्रत,
तीरथ न धर्म जानौं बेदविधि किमि है।
तुलसी सो पोच न भयो है, नहिं ह्वैहै कहूँ,
सोचैं सब याके अघ कैसे प्रभु छमिहै॥
मेरे तौ न डरु रघुबीर सुनौ साँची कहौं,
खल अनखैहैं, तुम्हे सज्जन न गमिहै।
भले सुकृती के संग मोहि तुला तौलिये तौ,
नाम के प्रसाद भार मेरी ओर नमिहै॥ ७१ ॥
जाति के, सुजाति के, कुजाति के, पेटागिबस,
खाए टूक सबके बिदित बात दुनी सो।
मानस बचन काय किए पाप सति भाय,
राम को कहाय दास दगाबाज पुनी सो॥
रामनाम को प्रभाउ, पाउ महिमा प्रताप,
तुलसी से जग मनियत महामुनी सो।
अतिही अभागो अनुरागत न रामपद,
मूढ़ एतो बड़ो अचरज देखि सुनी सो॥ ७२ ॥
जायो कुल मंगन, बधावनो बजायो सुनि,
भयो परिताप पाप जननी जनक को।
बारे तें ललात बिललात द्वार द्वार दीन,
जानत हो चारि फल चारि ही चनक को॥
तुलसी सो साहिब समर्थ को सुसेवक है,
सुनत सिहात सोच बिधिहू गनक को।
नाम, राम ! रावरो सयानो किधौं बावरो,
जो करत गिरी तें गरु तृन तें तनक को॥ ७३ ॥

७०—लोह = लोभ या लोहा।
७१—गमिहै = ग़म न करेंगे, परवा न करेंगे, ध्यान न देंगे।
७२—पुनी = पुनः, फिर।
७३—जानत हो = जानता था।

बेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
        रामनाम ही सों रीझे सकल भलाई है।
कासी हू मरत उपदेसत महेस सोई,
        साधना अनेक चितई न चित लाई है॥
छाछी को ललात जे ते राम-नाम के प्रसाद
        खात खुनसात सोंधे दूध की मलाई है।
रामराज सुनियत राजनीति की अवधि,
        नाम राम! रावरो तो चाम की चलाई है॥ ७४॥

सोच संकटनि सोच संकट परत, जर
        जरत, प्रभाव नाम ललित ललाम को।
बूड़ियौ तरति, बिगरीयौ सुधरति बात,
        होत देखि दाहिनो सुभाव बिधि बाम को॥
भागत अभाग अनुरागत बिराग, भाग
        जागत, आलसि तुलसी हू से निकाम को।
धाई धारि फिरि कै गोहारि हितकारी होति,
        आई मिचु मिटति जपत रामनाम को। ७५॥

आँधरो, अधम, जड़, जाजरो जरा जवन,
        सूकर के सावक ढका ढकेल्यो मग में।
गिरो हिये हहरि, 'हराम हो हराम हन्यो'
        हाय हाय करत परीगो कालफँग में॥
तुलसी बिसोक ह्वै त्रिलोकपति-लोक गयो
        नाम के प्रताप, बात बिदित है जग में।
सोई रामनाम जो सनेह सों जपत जन
        ताकी महिमा क्यों कहीहै जाति अगमें॥ ७६॥

जापकी न, तप खप कियो न तमाई जोग,
        जाग न, बिराग त्याग तीरथ न तनको।
भाई को भरोसो न खरो सो बैर बैरीहू सों,
        बल अपनो न, हितू जननी न जनको॥
लोक को न डर, परलोक को न सोच,
        देवसेवा न सहाय, गर्व धाम को न धन को।

७५—धारि = झुंड (लुटरों का)।
७६—जाजरो = जर्जर।

रामही के नाम तें जो होइ सोई नीको लागै,
ऐसोई सुभाव कछु तुलसी के मन को ॥ ७७ ॥
ईस न, गनेस न दिनेस न, धनेस न,
सुरेस सुर गौरि गिरापति नहिं जपने ।
तुम्हरेई नाम को भरोसो भव तरिबे को,
बैठे उठे जागत बागत सोए सपने ॥
तुलसी है बावरो सो रावरोई, रावरी सौं,
रावरेऊ जानि जिय कीजिये जु अपने ।
जानकी-रमन मेरे ! रावरे बदन फेरे,
ठाउँ न समाउँ कहाँ सकल निरपने ॥ ७८ ॥
जाहिर जहान में जमानो एक भाँति भयो,
बेंचिये बिबुधधेनु रासभी बेसाहिए ।
ऐसेऊ कराल कलिकाल में कृपालु तेरे
नाम के प्रताप न त्रिताप तन दाहिए ॥
तुलसी तिहारो मन बचन करम, तेहि
नाते नेह-नेम निज ओर तें निबाहिए ।
रंक के निवाज रघुराज राजा राजनि के,
उमरि दराज महाराज तेरी चाहिए ॥ ७९ ॥
स्वारथ सयानप, प्रपंच परमारथ,
कहायो राम रावरो हौं, जानत जहानु है ।
नाम के प्रताप, बाप ! आजु लौं निबाही नीके,
आगे को गोसाइँ स्वामी सबल सुजानु है ॥
कलि की कुचालि देखि दिन दिन दूनी देव !
पाहरूई चोर हेरि हिय हहरानु है ।
तुलसी की, बलि, बार बार ही सँभार कीबी,
जद्यपि कृपानिधान सदा सावधानु है ॥ ८० ॥
दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुख
दुरित दुराज, सुख सुकृत सकोचु है ।
माँगे पैंत पावत पचारि पातकी प्रचंड,
काल की करालता भले को होत पोचु है ॥

७७—खप = खप कर, पच कर । तमाइ = तमअ, लालच ।
७८—निरपने = अपने नहीं, बेगाने ।

आपने तौ एक अवलंब अंग डिंभ ज्यों,
समर्थ सीतानाथ सब संकट-बिमोचु है ।
तुलसी की साहसी सराहिये कृपालु, राम !
नाम के भरोसे परिनाम को निसोचु है ॥ ८१ ॥

मोह-मद-मात्यो, रात्यो कुमति कुनारि सों,
बिसारि बेद लोक-लाज, आँकुरो अचेतु है ।
भावै सो करत, मुँह आवै सो कहत कछु,
काहू की सहत नाहिं, सरकस हेतु है ।
तुलसी अधिक अधमाई हू अजामिल तें,
ताहू में सहाय कलि कपट-निकेतु है ।
जैबे को अनेक टेक, एक टेक ह्वैबे की, जो
पेट-प्रिय-पूत-हित रामनाम लेतु है ॥ ८२ ॥

जागिए न सोइए बिगोइए जनम जाय,
दुख रोग रोइए कलेस कोह काम को ।
राजा, रंक, रागी औ बिरागी, भूरि भागी ये
अभागी जीव जरत, प्रभाव कलि बाम को ॥
तुलसी कबंध कैसो धाइबो बिचारु, अंध !
धंध देखियत जग सोच परिनाम को ।
सोइबो जो राम के सनेह की समाधि-सुख,
जागिबो जो जीह जपै नीके रामनाम को ॥ ८३ ॥

बरन धरम गयो, आस्रम निवास तज्यो,
त्रासन चकित सो परावनो परो सो है ।
करम उपासना कुबासना बिनास्यो, ज्ञान
बचन, बिराग बेष जगत हरो सो है ॥
गोरख जगायो जोग, भगति भगायो लोग,
निगम नियोग तें सो केलि ही छरो सो है ।
काय मन बचन सुभाय तुलसी है जाहि
रामनाम को भरोसो ताहि को भरोसो है ॥ ८४ ॥

८१—पैंत = दाँव । घात ।

८२—आँकरो = आँकरा । गहरा । सरकस = सरकश, प्रबल ।

सवैया

बेद पुरान बिहाइ सुपंथ कुमारग कोटि कुचाल चली है।
काल कराल नृपाल कृपालन राजसमाज बड़ोई छली है॥
बर्न-बिभाग न आस्रम-धर्म, दुनी दुख-दोष-दरिद्र-दली है।
स्वारथ को परमारथ को कलि राम को नाम-प्रताप बली है॥ ८५॥
न मिटै भवसंकट दुर्घट है तप तीरथ जन्म अनेक अटो।
कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ, सब लागत फोकट झूँठ-जटो॥
नट ज्यों जनि पेट-कुपेटक कोटिक चेटक कौतुक ठाट ठटो।
तुलसी जो सदा सुख चाहिय तौ रसना निसि बासर राम रटो॥ ८६॥
दम दुर्गम, दान दया मख कर्म सुधर्म अधीन सबै धन को।
तप तीरथ साधन जोग बिराग सों होइ नहीं दृढ़ता तनको॥
कलिकाल कराल में, राम कृपालु! यहै अवलंब बड़ो मन को।
तुलसी सब संजमहीन सबै, इक नाम अधार सदा जन को॥ ८७॥
पाइ सुदेह बिमोह-नदी-तरनी न लही, करनी न कछू की।
रामकथा बरनी न बनाइ, सुनी न कथा प्रहलाद न ध्रू की॥
अब जोर जरा जरि गात गयो, मन मानि गलानि कुबानि न मूकी।
नीके कै ठीक दई तुलसी, अवलंब बड़ो उर आखर दू की॥ ८८॥
राम बिहाय 'मरा' जपते बिगरी सुधरी कबि-कोकिल हू की।
नामहि ते गज की, गनिका की, अजामिल की चलि गै चल-चूकी॥
नाम-प्रताप बड़े कुसमाज बजाइ रही पति पांडुबधू की।
ताको भलो अजहूँ तुलसी जेहि प्रीति प्रतीति है आखर दू की॥ ८९॥
नाम अजामिल से खल तारन, तारन बारन बारबधू को।
नाम हरे प्रहलाद बिषाद, पिता भय साँसति सागर सूको॥
नाम सों प्रीति-प्रतीति बिहीन गिल्यो कलिकाल कराल न चूको।
राखिहैं राम सो जासु हिये तुलसी हुलसै बल आखर दू को॥ ९०॥
जाव जहान में जायो जहाँ सो तहाँ तुलसी तिहुँ दाह दहो है।
दोस न काहू, कियो अपनो, सपनेहु नहीं सुख-लेस लहो है॥

८६—जटो = जटित, जड़ा हुआ।
कुपेटक = बुरे पिटारे से (जैसा बाज़ीगर रखते हैं)।
८८—मूकी = छोड़ी।
८९—बजाइ रही पति = इज्जत बनी रही।

ाम के नाम तें होउ सो होउ, न सोऊ हिये, रसना ही कहो है ।
केयो न कछू, करिबो न कछू, कहिबो न कछू, मरिबोई रहो है ॥६१॥
ती जै न ठाँउ, न आपन गाँउ, सुरालयहू को न संबल मेरे ।
ाम रटो, जमबास क्यों जाउँ, को आइ सकै जम-किंकर नेरे ? ॥
ुम्हरो सब भाँति, तुम्हारिय सौं, तुम्हही, बलि, हौं मोकों ठाहरु हेरे ।
ैरष बाँह बसाइए पै, तुलसी-घरु ब्याध अजामिल खेरे ॥ ६२ ॥
का कियो जोग अजामिल जू, गनिका कबहीं मति पेम पगाई ? ।
्याध को साधुपनो कहिए, अपराध अगाधनि मैं ही जनाई ॥
करुनाकर की करुना करुना-हित नाम-सुहेत जो देत दगाई ।
काहे को खीझिय ? रीझिय पै, तुलसीहु सो है बलि सोइ सगाई ॥ ६३ ॥
जे मद-मार-विकार भरे ते अचार विचार समीप न जाहीं ।
है अभिमान तऊ मन में 'जन भाषिहै दूसरे दीनन पाहीं' ? ॥
जौ कछु बात बनाइ कहौं तुलसी तुममें तुमहूँ उर माहीं ।
जानकी-जीवन जानत हौ हम हैं तुम्हरे, तुममें, सक नाहीं ॥ ६४ ॥
दानव देव अहीस महीस महा मुनि तापस सिद्ध समाजी ।
जग जाचक दानि दुतीय नहीं तुमही सब की सब राखत बाजी ॥
एते बड़े तुलसीस तऊ सबरी के दिए बिनु भूख न भाजी ।
राम गरीबनेवाज ! भये हौं गरीबनेवाज गरीब नेवाजी ॥ ६५ ॥

घनाक्षरी

किसबी, किसान कुल, बनिक, भिखारी, भाँट,
चाकर, चपल नट, चोर, चार, चेटकी ।
पेट को पढ़त, गुन गढ़त, चढ़त गिरि,
अटत गहन-बन अहन अखेट की ॥
ऊँचे नीचे करम धरम अधरम करि,
पेट ही को पचत बेंचत बेटा बेटकी ।
तुलसी बुझाइ एक राम घनस्याम ही तें,
आगि बड़वागि तें बड़ी है आगि पेट की ॥ ६६ ॥
खेती न किसान को, भिखारी को न भीख, बलि,
बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी ।

१२— बैरष — [सं० वरक] पताका ।

जीविका-बिहीन लोग सीद्यमान सोच-बस,
कहैं एक एकन सों "कहाँ जाई, का करी ?" ॥
बेद हू पुरान कही, लोकहू बिलोकियत,
साँकरे सबै पै राम रावरे कृपा करी ।
दारिद-दसानन दबाई दुनी, दीनबंधु !
दुरित-दहन देखि तुलसी हहा करी ॥ ९७ ॥

कुल, करतूति, भूति, कीरति, सुरूप गुन,
जोबन जरत जुर, परै न कल कहीं ।
राजकाज कुपथ कुसाज, भोग रोगही के,
बेद-बुध बिद्या पाइ बिबस बलकहीं ॥
गति तुलसीस की लखै न कोउ जो करत,
पब्बइ तें छार, छारै पब्बइ पलक ही ।
कासों कीजै रोष ? दोष दीजै काहि ? पाहि राम !
कियो कलिकाल कुलि खलल खलक ही ॥ ९८ ॥

बबुर बहेरे को बनाय बाग लाइयत,
रूंधिबे को सोइ सुरतरु काटियत है !
गारी देत नीच हरिचंद हू दधीचि हू को,
आपने चना चबाइ हाथ चाटियत है ॥
आप महापातकी हँसत हरि हर हू को,
आपु है अभागी भूरिभागी डाटियत है ।
कलि को कलुष मन मलिन किये महत,
मसक की पाँसुरी पयोधि पाटियत है ॥ ९९ ॥

सुनिये कराल कलिकाल भूमिपाल तुम !
जाहि घालो चाहिए कहौ धौं राखै ताहि को ? ।
हौं तौ दीन दूबरो, बिगारो ढारो रावरो न,
मैं हू तै हू ताहि को सकल जग जाहि को ॥
काम कोह लाइ कै देखाइयत आँखि मोहिं,
एते मान अकस कीबे को आपु आहि को ? ॥
साहिब सुजान जिन स्वानहू को पच्छ कियो,
रामबोला नाम, हौं गुलाम राम-साहि को ॥ १०० ॥

सवैया

साँची कहौं कलिकाल कराल मैं, ढारो बिगारो तिहारो कहा है ? ।
काम को, कोह को, लोभ को, मोह को, मोहि सों आनि प्रपंच रहा है ॥
हौ जगनायक लायक आजु, पै मेरियौ टेव कुटेव महा है ।
जानकीनाथ बिना, तुलसी, जग दूसरे सों करिहौं न हहा है ॥ १०१ ॥
भागीरथी जलपान करौं अरु नाम द्वै राम के लेत निते हौं ।
मोको न लेनो न देनो कछू, कलि ! भूलि न रावरी ओर चितैहौं ॥
जानिकै जोर करौ परिनाम, तुम्है पछितैहौ पै मैं न भितैहौं ।
ब्राह्मन ज्यों उगिल्यो उरगारि हौं त्योंही तिहारे हिये न हितैहौं ॥ १०२ ॥
राजमराल के बालक पेलिकै, पालत लालत खूसर को ।
सुचि सुंदर सालि सकेलि सुवारि कै बीज बटोरत ऊसर को ॥
गुन-ज्ञान-गुमान भभेरि बड़ी, कलपद्रुम काटत मूसर को ।
कलिकाल बिचार अचार हरो, नहिं सूझै कछू धमधूसर को ॥ १०३ ॥
कीबे कहा, पढ़िबे को कहा ? फल बूझि न बेद को भेद बिचारै ।
स्वारथ को परमारथ को कलि कामद राम को नाम बिसारै ॥
बाद बिबाद बिषाद बढ़ाइ कै छाती पराई औ आपनी जारै ।
चारिहु को छहु को नव को दस आठ को पाठ कुकाठ ज्यों फारै ॥ १०४ ॥
आगम बेद पुरान बखानत, मारग कोटिन जाहिं न जाने ।
जे मुनि ते पुनि आपुहि आपु को ईस कहावत सिद्ध सयाने ॥
धर्म सबै कलिकाल ग्रसे, जप जोग बिराग लै जीव पराने ।
को करि सोच मरै, तुलसी, हम जानकीनाथ के हाथ बिकाने ॥ १०५ ॥
धूत कहौ, अवधूत कहौ, रजपूत कहौ, जोलहा कहौ कोऊ ।
काहू की बेटी सों बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बिगार न सोऊ ॥
तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ ।
माँगि कै खैबो मसीत को सोइबो, लैबे को एक न दैबे को दोऊ ॥ १०६ ॥

घनाक्षरी

मेरे जाति पाँति, न चहौं काहू की जाति पाँति,
मेरे कोऊ काम को, न हौं काहू के काम को ।

१०४—नव = नौ व्याकरण—इंद्र, चंद्र, काशकृत्स्न, शाकटायन, पिशालि, पाणिनि, अमर, जैनेंद्र, सरस्वती । दसआठ = अष्टादश पुराण ।

१०६—मसीत = मसजिद ।

लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब,
भारी है भरोसो तुलसी के एक नाम को ॥
अति ही अयाने उपखानो नहिं बूझैं लोग,
'साह ही को गोत गोत होत है गुलाम को।'
साधु कै असाधु, कै भलो कै पोच, सोच कहा,
का काहू के द्वार परौं, जो हौं सो हौं राम को ॥१०७॥

कोऊ कहै करत कुसाज दगाबाज बड़ो,
कोऊ कहै राम को गुलाम खरो खूब है।
साधु जानैं महा साधु, खल जानैं महा खल.
बानी झूँठी साँची कोटि उठत हबूब है॥
चहत न काहू सों, न कहत काहू की कछु,
सबकी सहत उर अंतर न ऊब है।
तुलसी को भलो पोच हाथ रघुनाथ ही के,
राम की भगति भूमि, मेरी मति दूब है ॥ १०८ ॥

जागैं जोगी जंगम जती जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ मोह कोह काम के।
जागैं राजा राजकाज, सेवक समाज साज,
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के॥
जागैं बुध बिद्याहित पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि धन धाम के।
जागैं भोगी भोगही, बियोगी रोगी सोगबस,
सोवै सुख तुलसी भरोसे एक राम के ॥ १०९ ॥

छप्पय

राम मातु पितु बंधु सुजन गुरु पूज्य परम हित।
साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित ॥
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति*।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहिं हमारि पति ॥

१०७—उपखनो = उपाख्यान, कहावत।

१०८—हबूब = बुलबुले।

* छक्कन लाल की प्रति में इस चरण के स्थान पर यह पाठ है—"निसि दिन रघुपति चरन-सरन, सपनेहु न आन गति।

परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम तें सकल फल ।
कह तुलसिदास अब जब कबहुँ एक राम तें मोर भल ॥ ११० ॥

महाराज बलि जाउँ रामसेवक सुखदायक ।
महाराज बलि जाउँ राम सुंदर सब लायक ॥
महाराज बलि जाउँ राम सब संकट-मोचन ।
महाराज बलि जाउँ राम राजीव-बिलोचन ॥
बलि जाउँ राम करुनायतन प्रनतपाल पातकहरन ।
बलि जाउँ राम कलि-भय-बिकल तुलसिदास राखिय सरन ॥ १११ ॥

जय ताड़का-सुबाहु-मथन, मारीच-मानहर ।
मुनिमख-रच्छन-दच्छ, सिलातारन-करुनाकर ॥
नृपगन-बलमदसहित संभु कोदंड-बिहंडन ।
जय कुठारधर-दर्पदलन, दिनकरकुल-मंडन ॥
जय जनकनगर-आनंदप्रद, सुखसागर सुखमाभवन ।
कह तुलसिदास सुर मुकुटमनि जय जय जय जानकिरवन ॥ ११२ ॥

जय जयंत-जयकर, अनंत, सज्जनजनरंजन ।
जय बिराध-बध-बिदुष, बिबुध-मुनिगन-भयभंजन ।
जय निसिचरी-बिरूप-करन रघुबंसबिभूषन ।
सुभट चतुर्दस-सहस-दलन त्रिसिरा खर दूषन ॥
जय दंडकबन-पावन-करन तुलसिदास संसय-समन ।
जगबिदित जगतमनि जयति जय जय जय जय जानकिरमन ॥११३॥

जय मायामृगमथन गीध-सबरी-उद्धारन ।
जय कबंधसूदन बिसाल-तरुताल-बिदारन ॥
दवन बालि बलसालि, थपन सुग्रीव संतहित ।
कपि-कराल-भट-भालुकटक-पालन, कृपालु-चित ॥
जय सियबियोग-दुखहेतु कृत सेतुबंध बारिधि-दमन ।
दससीस बिभीपन-अभयप्रद जय जय जय जानकिरमन ॥ ११४ ॥

कनककुधर-केदार, बीज सुंदर सुरमनिवर ।
सींचि कामधुक धेनु सुधामय पय बिसुद्धतर ॥
तीरथपति अंकुर-सरूप, यच्छेस रच्छ तेहि ।
मरकतमय साखा, सुपत्र मंजरिय लच्छ जेहि ॥

कैवल्य सकल फल कल्पतरु सुभ सुभाव सब सुख बरिस।
कह तुलसिदास रघुबंसमनि तौ कि होहि तुव कर सरिस ? ॥ ११५ ॥
जाय सो सुभट समर्थ पाइ रन रारि न मंडै।
जाय सो जती कहाय बिषय-बासना न छंडै॥
जाय धनिक बिनु दान, जाय निर्धन बिनु धर्महि।
जाय सो पंडित पढ़ि पुरान जो रत न सुकर्महिं॥
सुत जाय मातु-पितु-भक्ति बिनु, तिय सो जाइ जेहि पति न हित।
सब जाय दास तुलसी कहैं जौ न रामपद नेह नित॥ ११६ ॥
को न क्रोध निरदह्यो, काम बस केहि नहि कीन्हों ?।
को न लोभ दृढ़ फंद बाँधि त्रासन करि दीन्हों ?॥
कौन हृदय नहि लाग कठिन अति नारिनयनसर ?।
लोचनजुत नहिं अंध भयो श्री पाइ कौन नर ?॥
सुर-नाग-लोक महिमंडलहु को जु मोह कीन्हों जय न ?।
कह तुलसिदास सो ऊबरै जेहि राख राम राजिवनयन॥ ११७ ॥

सवैया

भौंह कमान सँधान सुठान जे नारि-बिलोकनि-बान तें बाँचे।
कोप-कृसानु गुमान-अवाँ घट ज्यों जिनके मन आँच न आँचे॥
लोभ सबै नट के बस ह्वै कपि ज्यों जग में बहु नाच न नाचे।
नीके है साधु सबै तुलसी पै तेई रघुबीर के सेवक साँचे॥ ११८ ॥

कबित्त

भेष सुबनाइ, सुचि बचन कहैं चुवाइ,
जाइ तौ न जरनि धरनि धन धाम की।
कोटिक उपाय करि लालि पालियत देह,
मुख कहियत गति राम ही के नाम की॥
प्रगटै उपासना, दुरावै दुरबासनाहि,
मानस निवास-भूमि लोभ मोह काम को।
राग रोष ईरषा कपट कुटिलाई भरे
तुलसी से भगत भगति चहैं राम की!॥ ११९ ॥
कालिहही तरुन तन, कालि ही धरनि धन,
कालि ही जितौंगो रन कहत कुचालि है।

११५—केदार = थाला, आलबाल।

कालिहही साधौंगो काज, कालि ही राजा समाज,
मसक ह्वै कहै 'भार मेरे मेरु हालिहै' ॥
तुलसी यही कुभाँति घने घर घालि आई,
घने घर घालति है, घने घर घालिहै
देखत सुनत समुझत हू न सूझै सोई,
कबहूँ कह्यो न 'कालहू को काल कालि है' ॥ १२० ॥
भयो न तिकाल तिहूँ लोक तुलसी सो मंद,
निंदै सब साधु, सुनि मानौं न सकोचु हौं।
जानत न जोग हिय हानि मानौं, जानकीस !
काहे को परेखो पातकी प्रपंची पोचु हौं॥
पेट भरिबे के काज महाराज को कहायों,
महाराज हू कह्यो है प्रनत-बिमोचु हौं।
निज अघ जाल, कलिकाल की करालता
बिलोकि होत ब्याकुल, करत सोई सोचु हौं ॥ १२१ ॥
धरम के सेतु जगमंगल के हेतु,
भूमि भार हरिबे को अवतार लियो नर को।
नीति औ प्रतीति-प्रीति-पाल चालि प्रभु मान,
लोक बेद राखिबे को पन रघुबर को॥
बानर बिभीषन की ओर के कनावड़े है,
सो प्रसंग सुने अंग जरै अनुचर को।
राखे रीति आपनी जो होइ सोई कीजे, बलि,
तुलसी तिहारो घरजायउ है घर को ॥ १२२ ॥
नाम महाराज के निबाह नीको कीजै उर,
सबही सोहात, मैं न लोगनि सोहात हौं।
कीजै राम बार यहि मेरी ओर चखकोर,
ताहि लगि रंक ज्यों सनेह को ललात हौं॥
तुलसी बिलोकि कलिकाल की करालता,
कृपालु को सुभाव समुझत सकुचात हौं।
लोक एक भाँति को, तिलोकनाथ लोकबस,
आपनो न सोच, स्वामी सोच ही सुखात हौं ॥ १२३ ॥

१२२—घरजायउ = घरजाया, गुलाम।

तौलों लोभ, लोलुप ललात लालची लबार
बार बार, लालच धरनि धन धाम को।
तब लौं बियोग रोग सोग भोग जातना को,
जुग सम लगत जीवन जाम जाम को।।
तौलों दुख दारिद दहत अति नित तनु,
तुलसी है किंकर बिमोह कोह काम को।
सब दुख आपने, निरापने सकल सुख,
जौलों जन भयो न बजाइ राजा राम को।। १२४।।

तब लौं मलीन हीन दीन, सुख सपने न,
जहाँ तहाँ दुखी जन भाजन कलेस को।
तब लौं उबैने पायँ फिरत पेटै खलाय,
बाये मुँह सहत पराभौ देस देस को।।
तब लौं दयावनो दुसह दुख दारिद को,
साथरी को सोइबो, ओढ़िबो झूने खेस को।
जब लौं न भजै जीह जानकी-जीवन राम,
राजन को राजा सो तौ साहब महेस को।। १२५।।

ईसन के ईस, महाराजन के महाराज,
देवन के देव, देव! प्रानहूँ के प्रान हौ।
कालहूके काल, महाभूतन के महाभूत,
कर्म हू के करम, निदान के निदान हो।।
निगम को अगम, सुगम तुलसीहू से को,
एते मान सीलसिंधु करुनानिधान हौ।
महिमा अपार, काहू बोल को न वारापार,
बड़ी साहिबी में नाथ बड़े सावधान हौ।। १२६।।

सवैया

आरतपालु कृपालु जो राम, जेहीं सुमिरे तेहि को तहँ ठाढ़े।
नामप्रताप महा महिमा, अकरे किये खोटेउ, छोटेउ बाढ़े।।

१२४—बजाइ = डंके की चोट, खुल्लमखुल्ला।

१२५—उबैने = नंगे (पाँव)। झूने = झीने, झाँझरे। खेस = पुरानी रुई के पहले का बुना हुआ खुरदुरा कपड़ा।

१२६—बोल = वाक्य, वर्णन। निदान = कारण। एते मान = इतने।

[ब]विक एक तें एक अनेक भए तुलसी तिहुँ तापन डाढ़े ।
[रा]म बदौ प्रह्लादहि को जिन पाहन तें परमेस्वर काढ़े ॥ १२७ ॥
[क]ाढ़ि कृपान, कृपा न कहूँ, पितु काल कराल बिलोकि न भागे ।
राम कहाँ' 'सब ठाँउ है' 'खंभ में ?' 'हाँ' सुनि हाँक नृकेहरि जागे ॥
[ब]ैरी बिदारि भए बिकराल, कहे प्रह्लादहि के अनुरागे ।
[प्र]ीति प्रतीति बढ़ी तुलसी तब तें सब पाहन पूजन लागे ॥ १२८ ॥
अंतरजामिहु तें बड़ बाहरजामि हैं राम, जे नाम लिये तें ।
धावत धेनु पन्हाइ लवाइ ज्यों बालक बोलनि कान किये तें ॥
आपनि बूझि कहै तुलसी, कहिबे की न बावरि बात बिये तें ।
पैज परे प्रह्लादहु को प्रगटे प्रभु पाहन तें, न हिये तें ॥ १२९ ॥
बालक बोलि दिये बलि काल को, कायर कोटि कुचाल चलाई ।
पापी है बाप बड़े परिताप तें आपनी ओर तें खोरि न लाई ॥
भूरि दई बिषमूरि भई प्रहलाद सुधाई सुधा की मलाई ।
रामकृपा तुलसी जन को जग होत भले को भलाई भलाई ॥ १३० ॥
कंस करी ब्रजबासिन सों करतूति कुभाँति, चली न चलाई ।
पांडु के पूत सपूत, कुपूत सुजोधन भो कलि छोटो छलाई ॥
कान्ह कृपालु बड़े नतपालु, गए खल खेचर खीस खलाई ।
ठीक प्रतीति कहै तुलसी जग होइ भले को भलाई भलाई ॥ १३१ ॥
अवनीस अनेक भए अवनी जिनके डर तें सुर सोच सुखाहीं ।
मानव-दानव-देव-सतावन रावन घाटि रच्यो जग माहीं ॥
ते मिलये धरि धूरि सुजोधन जे चलते बहु छत्र की छाहीं ।
बेद पुरान कहै जग जान, गुमान गोबिंदहि भावत नाहीं ॥ १३२ ॥
जब नयनन प्रीति ठई ठग स्याम सों स्यानी सखी हठि हौं बरजी ।
नहिं जान्यो बियोग सो रोग है आगे झुकी तब हौं, तेहि सों तरजी ॥
अब देह भई पट नेह के घाले सों, ब्योंत करै बिरहा दरजी ।
ब्रजराज-कुमार बिना सुनु, भृंग ! अनंग भयो जिय को गरजी ॥ १३३ ॥

१२७—अकरा = महँगा, चोखा (अक्रय) ।

१२९—अंतर्जामी = अंतस् ही में जानने योग्य निर्गुण । बाहरजामी = बाह्य जगत् में जानने योग्य सगुण रूप । बावरी = बुरी । बिये = दूसरे ।

१३१—कलि-छोटो = कलि का छोटा भाई । छलाई = छल में । खेचर = राक्षस ।

१३२—घाटि रच्यो = बुराई का आयोजन किया ।

जोगकथा पठई ब्रज को, सब सो सठ चेरी की चाल चलाकी ।
ऊधो जू ! क्यों न कहैं कुबरी जो बरी नटनागर हेरि हलाकी ।।
जाहि लगै पर जानै सोई, तुलसी सो सुहागिनि नंदलला की ।
जानी है जानपनी हरि की, अब बाँधियैगो कछु मोटि कला की ।।१३४।।

कवित्त

पठयो है छपद छबीले कान्ह कैहू कहूँ
खोजि कै खवास खासो कूबरी सी बाल को ।
ज्ञान को गढ़ैया, बिनु गिरा को पढ़ैया, बार
खाल को कढ़ैया सो बढ़ैया उरसाल को ।।
प्रीति को बधिक, रसरीति को अधिक, नीति-
निपुन, बिबेक है निदेस देसकाल को ।
तुलसी कहे न बनै, सहेही बनैगी सब,
जोग भयो जोग को, बियोग नंदलाल को ।। १३५ ।।
हनूमान ह्वै कृपालु, लाडिले लषन लाल,
भावते भरत कीजै सेवक सहाय जू ।
बिनती करत दीन दूबरो दयावनो सो,
बिगरे तें आपही सुधारि लीजै भाय जू ।।
मेरी साहिबिनि सदा सीस पर बिलसति,
देवि ! क्यों न दास को देखाइयत पाय जू ।
खीझहू में रीझबे की बानि, राम रीझत हैं,
रीझे ह्वैहें राम की दुहाई रघुराय जू ।। १३६ ।।

सवैया

बेष बिराग को, राग भरो मनु, माय ! कहौं सतिभाव हौं तोसों ।
तेरे ही नाथ को नाम लै बेंचिहौं पातकी पामर प्राननि पोसों ।।
एते बड़े अपराधी अघी कहँ, तैं कहु अंब को मेरो तु मोसों ।
स्वारथ को परमारथ को, परिपूरन भो फिरि घाटि न हो सों ।। १३७ ।।

१३४—हलाकी = मार डालने वाला, घातक । मोटि = गठरी । बाँधियैगी= बाँधैहीगी अथवा "बाँधिहैगी" भविष्य का दोहरा रूप जैसा देव, मुबारक आदि लाए हैं; जैसे, हौं कहौं रंग न फाबिहैगो—मुबारक ।

१३५—जोग = अवसर, संयोग, नौबत ।

घनाक्षरी

जहाँ बालमीकि भए ब्याध तें मुनींद्र साधु,
 'मरा मरा' जपे सुनि सिप ऋषि सात की।
सीय को निवास लव-कुस को जनमथल,
 तुलसी छुवत छाँह ताप गरै गात की॥
बिटप महीप सुरसरित समीप सोहै,
 सीताबट पेखत पुनीत होत पातकी।
बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि,
 अंकित जो जानकी चरन जलजात की॥ १३८॥

मरकत बरन परन, फल मानिक से,
 लसै जटाजूट जनु रूख बेष हरु है।
सुखमा को ढेरु कैधौं सुकृत-सुमेरु कैधौं
 संपदा सकल मुद मंगल को घरु है॥
देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइए,
 प्रतीति मानि तुलसी बिचारि काको थरु है।
सुरसरि निकट सोहावनी अवनि सोहै,
 रामरमनी को बट कलि कामतरु है॥ १३९॥

देवधुनी पास मुनिबास श्रीनिवास जहाँ,
 प्राकृत हूँ बट बूट बसत पुरारि हैं।
जोग जप जाग को बिराग को पुनीत पीठ,
 रागिन पै सीठि, डीठि बाहरी निहारिहैं॥
'आयसु', 'आदेस' 'बाबा' 'भलो भलो' 'भाव सिद्ध',
 तुलसी बिचारि जोगी कहत पुकारि हैं।
रामभगतन को तौ कामतरु तें अधिक,
 सियबट सेए करतल फल चारि हैं॥ १४०॥

जहाँ बन पावनो सुहावनो बिहंग मृग,
 देखि अति लागत अनंद खेत खूँट सो।
सीताराम-लखन-निवास, बास मुनिन को,
 सिद्ध साधु साधक सबै बिबेक बूट सो॥

१४०—'आयसु'...'भाव सिद्ध' = साधु संतों की बोलचाल के वाक्य। अर्थात् वहाँ के रहनेवाले इसी प्रकार के शिष्ट और मधुर शब्दों का व्यवहार करते हैं।

झरना झरत झारि सीतल पुनीत बारि,
मंदाकिनी मंजुल महेस जटाजूट सो।
तुलसी जौ राम सों सनेह साँचो चाहिए
तौ सेइए सनेह सों बिचित्र चित्रकूट सो ॥ १४१ ॥
मोह-बन कलिमल-पल-पीन जानि जिय,
साधु गाय बिप्रन के भय सो नेवारिहै।
दीन्हीं है रजाइ राम पाइ सो सहाइ लाल,
लषन समर्थ बीर हेरि हेरि मारिहै ॥
मंदाकिनी मंजुल कमान असि, बान जहाँ,
बारि-धार धीर धरि सुकर सुधारिहै।
चित्रकूट अचल अहेरि बैठ्यो घात मानों,
पातक के व्रात घोर सावज सँहारिहै ॥ १४२ ॥

सवैया

लागि दवारि पहार ठही लहकी कपिलंक जथा खर-खौकी।
चारु चुवा चहुँ ओर चलैं, लपटैं झपटैं सो तमीचर तौंकी ॥
क्यों कहि जात महा सुखमा, उपमा तकि ताकत है कवि कौ की।
मानों लसी तुलसी हनुमान हिये जगजीति जराय की चौकी ॥ १४३ ॥
देव कहैं अपनी अपना अवलोकन तीरथराज चलो रे।
देखि मिटैं अपराध अगाध, निमज्जत साधु समाज भलो रे ॥
सोहै सितासित को मिलिबो, तुलसी हुलसै हिय हेरि हलोरे।
मानों हरे तृन चारु चरैं बगरे सुरधेनु के धौल कलोरे ॥ १४४ ॥
देवनदी कहँ जो जन जान किये मनसा कुल कोटि उधारे।
देखि चले झगरैं सुरनारि, सुरेस बनाइ बिमान सँवारे ॥
पूजा को साज बिरंचि रचैं, तुलसी जे महातम जाननहारे।
ओक की नींव परी हरिलोक बिलोकत गंग तरंग तिहारे ॥ १४५ ॥
ब्रह्म जो व्यापक बेद कहैं, गम-नाहिं गिरा गुनज्ञान गुनी को।
जो करता भरता हरता सुर साहिब, साहब दीन दुनी को ॥

१४३—ठही = ठह कर, जम कर, अच्छी तरह। लहकी = लहकाई। खरखौकी = तृण खानेवाली अर्थात् आग। चुवा = चौवा, चतुष्पद मृग। तौंकी = तौंक कर, आँच से तप कर। कौ की = कब की, बड़ी देर से।

१४४—कलोरे = बछड़े।

सोई भयो द्रव रूप सही जु है नाथ बिरंचि महेस मुनी को ।
मानि प्रतीति सदा तुलसी जल काहे न सेवत देवधुनी को ? ॥ १४६ ॥
बारि तिहारो निहारि मुरारि भए परसे पद पाप लहौंगो ।
ईस ह्वै सीस धरौं पै डरौं, प्रभु की समता बड़ दोष दहौंगो ॥
बरु बारहि बार सरीर धरौं, रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो ।
भागीरथी ! बिनवौं करजोरि, बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो ॥ १४७ ॥

कवित्त

लालची ललात, बिललात द्वार द्वार दीन,
बदन मलीन, मन मिटै न बिसूरना ।
ताकत सराध कै बिबाह कै उछाह कछू,
डोलै लोल बूझत सबद ढोल तूरना ॥
प्यासे हू न पावै बारि, भूखे न चनक चारि,
चाहत अहारन पहार दारि कूरना ।
सोक को अगार दुख-भार-भरो तौलों जन
जौलों देवी द्रवै न भवानी अन्नपूरना ॥ १४८ ॥

छप्पय

भस्म अंग, मर्दन अनंग, संतत असंग हर ।
सीस गंग, गिरिजा अधंग, भूषन भुजंगबर ॥
मुंड माल, बिधु बाल भाल, डमरू कपाल कर ।
बिबुध-बृंद-नवकुमुद-चंद, सुखकंद, सूलधर ।
त्रिपुरारि त्रिलोचन दिग्बसन बिष-भोजन भव-भय-हरन ।
कह तुलसिदास सेवत सुलभ सिव सिव सिव संकर सरन ॥ १४९ ॥
गरल-असन, दिग्बसन, ब्यसन-भंजन, जनरंजन ।
कुंद-इंदु-कर्पूर-गौर, सच्चिदानंदघन ॥
बिकट बेष, उर शेष, सीस सुरसरित सहज सुचि ।
सिव अकाम, अभिराम धाम, नित रामनाम रुचि ॥
कंदर्पदर्प-दुर्गम-दवन, उमारवन गुनभवन हर ।
तुलसीस त्रिलोचन, त्रिगुन-पर, त्रिपुरमथन जय त्रिदसबर ॥ १५० ॥
अर्ध-अंग अंगना, नाम जोगीस जोगपति ।
बिषम असन, दिगबसन, नाम बिस्वेस बिस्वगति ॥

१४८—दारि कूरना = दाल के कूर भरे हुए अच्छे पकवानों का ढेर ।

कर कपाल, सिर माल ब्याल, बिष-भूति-बिभूषन ।
नाम सुद्ध, अबिरुद्ध, अमर, अनवद्य, अदूषन ॥
बिकराल भूत-बैताल-प्रिय, भीम नाम भवभय-दमन ।
सब बिधि समर्थ महिमा अकथ तुलसिदास संसयसमन ॥ १५१ ॥
भूतनाथ भयहरन, भीम, भय-भवन, भूमिधर ।
भानुमंत भगवंत, भूति भूषन भुजंगवर ॥
भव्य-भाव-वल्लभ, भवेस, भवभार-बिभंजन ।
भूरि भोग, भैरव, कुजोग-गंजन, जन-रंजन ॥
भारती बदन, बिष-अदन सिव, ससि-पतंग-पावकनयन ।
कह तुलसिदास किन भजसि मन भद्रसदन मर्दनमयन ॥ १५२ ॥

सवैया

नाँगो फिरै कहै माँगतो देखि "न खाँगो कछू, जनि माँगिए थोरो" ।
राँकनि नाकप रीझि करै तुलसी जग जो जुरै जाचक जोरो ॥
"नाक सवाँरत आयो हौं नाकहि, नाहिं पिनाकिहि नेकु निहोरो" ।
ब्रह्म कहै "गिरिजा ! सिखवो, पति रावरो दानि है बावरो भोरो" ॥१५३॥
बिष-पावक, ब्याल कराल गरे, सरनागत तौ तिहुँ ताप न डाढ़े ।
भूत बैताल सखा, भव नाम, दलै पल मे भव के भय गाढ़े ॥
तुलसीस दरिद्र-सिरोमनि सो सुमिरे दुखदारिद होहिं न ठाढ़े ।
भौन में भाँग, धतूरोई आँगन, नाँगे के आगे हैं माँगने बाढ़े ॥ १५४ ॥
सीस बसै बरदा, बरदानि, चढ़्यो बरदा, धरन्यो बरदा है ।
धाम धतूरो बिभूति को कूरो, निवास तहाँ शव लै मरे दाहै ॥
ब्याली कपाली है ख्याली, चहूँ दिसि भाँग की टाटिन को परदा है ।
राँकसिरोमनि काकिनिभाग बिलोकत लोकप को करदा है ॥ १५५ ॥
दानी जो चारि पदारथ को त्रिपुरारि तिहूँ पुर में सिर-टीको ।
भारो भलो भले भाय को भूखो, भलोई कियो सुमिरे तुलसी को ॥
ता बिनु आस को दास भयो, कबहूँ न मिट्यो लघु लालच जी को ।
साधो कहा करि साधन तें जोपै राधो नहीं पति पारबती को ? ॥१५६॥
जात जरे सब लोक बिलोकि त्रिलोचन सो बिष लोकि लियो है ।
पान कियो बिष-भूषन भो, करुना-बरुनालय साइँ-हियो है ॥

१५६—राधो = आराधना की ।

मेरोई फोरिबे जोग कपार, किधौं कछु काहू लखाइ दियो है।
काहे न कान करौ बिनती, तुलसी कलिकाल बिहाल कियो है॥ १५७॥

कवित्त

खायो कालकूट भयो अजर अमर तनु,
भवन मसान, गथ गाँठरी गरद की।
डमरू कपाल कर, भूषन कराल व्याल,
बावरे बड़े की रीझ बाहन-बरद की॥
तुलसी बिसाल गोरे गात बिलसति भूति,
मानों हिमगिरि चारु चाँदनी सरद की।
अर्थ धर्म काम मोक्ष बसत बिलोकनि में,
कासी करामाति जोगी जागत मरद की॥ १५८॥
पिंगल जटा कलाप, माथे पै पुनीत आप,
पावक नयना, प्रताप भ्रू पर बरत हैं।
लोचन बिसाल लाल, सोहै बालचंद्र भाल
कंठ कालकूट, व्याल भूषन धरत हैं॥
सुंदर दिगंबर बिभूति गात, भाँग खात,
रूरे सृंगी पूरे काल कंटक हरत हे।
देत न अघात, रीझि जात पात आक ही के,
भोलानाथ जोगी जब औढर ढरत हैं॥ १५९॥
देत संपदा समेत श्रीनिकेत जाचकनि,
भवन बिभूति भाँग बृषभ बहनु है।
नाम बामदेव, दाहिनो सदा असंग रंग,
अर्द्ध अंग अंगना, अनंग को महनु है॥
तुलसी महेस को प्रभाव भाव ही सुगम,
निगम अगम हू को जानिबो गहनु है।
बेष तौ भिखारि को, भयंक रूप संकर,
दयालु दीनबंधु दानि दारिद-दहनु है॥ १६०॥
चाहै न अनंग-अरि एकौ अंग मंगन को,
देबोई पै जानिए सुभाव-सिद्ध बानि सो।

१६०—भयंक = भयंकर।

बारिबुंद चारि त्रिपुरारि पर डारिए तौ
देत फल चारि, लेत सेवा साँची मानि सो ॥
तुलसी भरोसो न भवेस भोलानाथ को तौ
कोटिक कलेस करौ मरौ छार छानि सो ।
दारिद-दमन, दुख-दोष-दाह-दावानल,
दुनी न दयालु दूजो दानि सूलपानि सो ॥ १६१ ॥
काहे को अनेक देव सेवत जागै मसान,
खोवत अपान, सठ होत हठि प्रेत रे ! ।
काहे को उपाय कोटि करत मरत धाय,
जाचत नरेस देस देस के, अचेत रे ! ॥
तुलसी प्रतीति बिनु त्यागै तैं प्रयाग तनु,
धन ही के हेतु दान देत कुरुखेत रे ।
पात द्वै धतूरे के दै भोरे कै भवेस सों
सुरेस हू की संपदा सुभाय सों न लेत, रे ॥ १६२ ॥
स्यंदन, गयंद, बाजिराजि, भले भले भट,
धन-धाम-निकर, करनि हू न पूजै क्वै ।
बनिता बिनीत, पूत पावन सोहावन, औ
बिनय बिबेक बिद्या सुभग सरीर ज्वै ॥
इहाँ ऐसो सुख, परलोक सिवलोक ओक,
ताको फल तुलसी सों सुनौ सावधान ह्वै ।
जाने, बिनु जाने कै रिसाने, केलि कबहुँक,
सिवहि चढ़ाये ह्वैहैं बेल के पतौवा द्वै ॥ १६३ ॥
रति सी रवनि, सिंधु-मेखला-अवनिपति,
औनिप अनेक ठाढ़े हाथ जोरि हारि कै ।
संपदा समाज देखि लाज सुरराज हू के,
सुख सब बिधि बिधि दीन्हें हैं सँवारि कै ॥
इहाँ ऐसो सुख, सुरलोक सुरनाथ-पद,
ताको फल तुलसी सो कहैगो बिचारि कै ।
आक के पतौवा चारि, फूल द्वै धतूरे के
दीन्हें ह्वैहैं बारक पुरारि पर डारि कै ॥ १६४ ॥

१६३—क्वै = कोई । ज्वै = जो कुछ ।

देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरे ही,
नाम राम ही के माँगि उदर भरत हौं ।
दीबे जोग तुलसी न लेत काहू को कछुक,
लिखी न भलाई भाल, पोच न करत हौं ॥
एते पर हू जो कोऊ रावरो ह्वै जोर करै,
ताको जोर, देवे दीन द्वारे गुदरत हौं ।
पाइकै उराहनो उराहनो न दीजै मोहि,
काल-कला कासीनाथ कहे निबरत हौं ॥ १६५ ॥

चेरो राम राय को सुजस सुनि तेरो, हर !
पाइँ तर आइ रह्यों सुरसरि तीर हौं ।
बामदेव, राम को सुभाव सील जानि जिय,
नातो नेह जानियत रघुबीर भीर हौं ॥
अबिभूत, बेदन बिपम होत, भूतनाथ !
तुलसी बिकल पाहि पचत कुपीर हौं ।
मारिए तो अनायास कासीबास खास फल,
ज्याइए तौ कृपा करि निरुज सरीर हौं ॥ १६६ ॥

जीबे की न लालसा, दयालु महादेव ! मोहिं,
मालुम है तोहि मरिबेइ को रहतु हौं ।
कामरिपु राम के गुलामनि को कामतरु,
अवलंब जगदंब सहित चहतु हौं ॥
रोग भयो भूत सो, कुसूत भयो तुलसी को,
भूतनाथ पाहि पदपंकज गहतु हौं ।
ज्याइए तौ जानकी-रमन जन जानि जिय,
मारिए तौ माँगी मीचु सूधियै कहतु हौं ॥ १६७ ॥

भूतभव ! भवत पिसाच-भूत-प्रेत-प्रिय,
आपनो समाज, सिव ! आपु नीके जानिए ।
नाना बेष बाहन बिभूषन बसन, बास,
खान पान, बलि पूजा बिधि को बखानिए ॥
राम के गुलामनि की रीति प्रीति सूधी सब,
सब सों सनेह सबही को सनमानिए ।

१६७—कुसूत = कुपास, सुभीता न रहना ।

तुलसी की सुधरै सुधारे भूतनाथही के,
मेरे माय बाप गुरु संकर भवानिए ॥ १६८ ॥
गौरीनाथ भोलानाथ भवत भवानीनाथ,
बिस्वनाथ-पुर फिरी आन कलिकाल की।
संकर से नर, गिरिजा सी नारी कासीबासी,
बेद कही, सही ससिसेषर कृपाल की॥
छमुख गनेस तें महेस के पियारे लोग,
बिकल बिलोकियत, नगरी बिहाल की।
पुरी-सुरबेलि केलि काटत किरात कलि,
निठुर निहारिए उघारि दीठि भाल की॥ १६९ ॥
ठाकुर महेस, ठकुराइनि उमा सी जहाँ,
लोक बेद हू बिदित महिमा ठहर की।
भट रुद्रगन, भूतगनपति, सेनापति,
कलिकाल की कुचाल काहू तौ न हरकी॥
बीसी बिस्वनाथ की बिषाद बड़ो बारानसी,
बूझिए न ऐसी गति संकर-सहर की।
कैसे कहै तुलसी, बृषासुर के बरदानि!
बानि जानि सुधा तजि पियनि जहर की॥ १७० ॥
लोक बेद हू बिदित बारानसी की बड़ाई,
बासी नरनारि ईस अंबिका-सरूप हैं।
कालनाथ कोतवाल, दंडकारि दंडपानि,
सभासद गनप से अमित अनूप हैं॥
तहाँऊँ कुचालि कलिकाल की कुरीति, कैधौं
जानत न मूढ़, इहाँ भूतनाथ भूप हैं।
फलैं फूलैं फैलैं खल, सीदैं साधु पल पल,
खाती दीपमालिका ठठाइयत सूप हैं॥ १७१ ॥
पंचकोस पुन्यकोस स्वारथ परारथ को,
जानि आप आपने सुपास बास दियो है।

१६८—भूतभव = पंचभूतों के कारणस्वरूप। भवत = आप।

१७०—हरकी = मना की। बीसी बिस्वनाथ की-रुद्रबीसी जो संवत् १६६५ से १६८५ तक रही।

नीच नर नारि न सँभारि सकैं आदर,
लहत फल कादर बिचारि जो न कियो है ॥
बारी बारानसी बिनु कहे चक्र चक्रपानि,
मानि हित हानि सो मुरारि मन भियो है ।
रोष मैं भरोसो एक आसुतोष कहि जात
बिकल बिलोकि लोक कालकूट पियो है । १७२ ॥

रचत बिरंचि, हरि पालत, हरत हर,
तेरेही प्रसाद जग अगजगपालिके ।
तोहि में बिकास बिस्व, तोहि में बिलास सब,
तोहि में समात मातु भूमिधरबालिके ॥
दीजै अवलंब जगदंब न बिलंब कीजै,
करुना-तरंगिनी कृपातरंग-मालिके ।
रोष महामारी परितोष, महतारी ! दुनी,
देखिए दुखारी मुनि-मानस-मरालिके ॥ १७३ ॥

निपट बसेरे अघ औगुन घनेरे नर,
नारिऊ अनेरे जगदंब चेरी चेरे हैं ।
दारिदी दुखारी देखि भूसुर भिखारी भीरु
लोभ मोह काम कोह कलिमल-घेरे हैं ॥
लोकरीति राखी, राम साखी बामदेव जान,
जन की बिनति मानि मातु कही 'मेरे है' ।
महामारी महेशानि महिमा की खानि,
मोद मंगल की रासि, दास कासी-बासी तेरे है ॥१७४॥

लोगन के पाप, कैधों सिद्ध-सुर-साप, कैधों
काल के प्रताप कासी तिहूँ-ताप-तई है ।
ऊँचे, नीचे, बीच के, धनिक रंक राजा राय,
हठनि बजाय करि डीठि पीठि दई है ॥
देवता निहोरे महामारिन्ह सों कर जोरे,
भोरानाथ जानि भोरे आपनी सी ठई है ।

१७२—बारी......चक्र = मिथ्या वासुदेव को दंड देने के लिए कृष्ण के चक्र ने उसकी सेना का तो संहार किया ही पर बिना आज्ञा के उसकी पुरी काशी को भी भस्म कर डाला । भियो है = डरा है ।

करुनानिधान हनुमान बीर बलवान,
जसरासि जहाँ तहाँ तैहीं लूटि लई है ॥ १७५ ॥
संकर-सहर सर, नरनारि बारिचर,
बिकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगत, जल-थल मीचुमई है।
देव न दयालु महिपाल न कृपालुचित,
बारानसी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,
रामहू की बिगरी तुहीं सुधारि लई है ॥ १७६ ॥
एक तो कराल कलिकाल सूल-मूल तामैं,
कोढ़ मैं की खाजु सी सनीचरी है मीन की।
बेद धर्म दूरि गए, भूमिचोर भूप भए,
साधु सीद्यमान जानि रीति पाप-पीन की ॥
दूबरे को दूसरो न द्वार, राम दया-धाम !
रावरी ही गति बल-बिभव-बिहीन की।
लागैगी पै लाज वा बिराजमान बिरुदहिं,
महाराज आजु जौं न देत दादि दीन की ॥ १७७ ॥
रामनाम मातुपितु, स्वामि समरथ हितु,
आस रामनाम की, भरोसो रामनाम को।
प्रेम रामनाम ही सों, नेम रामनाम ही को,
जानौं न मरम पद दाहिनो न बाम को ॥
स्वारथ सकल परमारथ को रामनाम,
रामनामहीन तुलसी न काहू काम को।
राम की सपथ सरबस मेरे रामनाम,
कामधेनु कामतरु मो से छीन छाम को ॥ १७८ ॥

१७५—करि डीठि = देख सुन कर। पीठि दई = बिमुख हुए।

१७७—मीन की सनीचरी = मीनराशि पर शनैश्चर की स्थिति की दशा जिसका फल राजा प्रजा का नाश होता है। यह जोग संवत् १६६९ के आरंभ से १६७१ के मध्य तक पड़ा था। अतः यह कवित्त उसी समय के भीतर कहा गया होगा।

सवैया

मारग मारि, महीसुर मारि, कुमारग कोटिक कै धन लीयो।
संकर कोप सो पाप को दाम परीच्छित जाहिगो जारि कै हीयो॥
कासी में कंटक जेते भए ते गे पाइ अघाइ कै आपनो कीयो।
आजु कि कालिह परौं कि नरौं जड़ जाहिंगे चाटि दिवारी को दीयो॥१७९॥
कुंकुम रंग सुअंग जितो, मुखचंद सों चंद सों होड़ परी है।
बोलत बोल समृद्धि चुवै, अवलोकत सोच बिषाद हरी है॥
गौरी कि गंग बिहंगिनि बेष, कि मंजुल मूरति मोद भरी है।
पेखि सप्रेम पयान समय सब सोच बिमोचन छेमकरी है॥१८०॥

घनाक्षरी

मंगल की रासि, परमारथ की खानि जानि,
बिरचि बनाई बिधि, केसव बसाई है।
प्रलय हू काल राखी सूलपानि सूल पर,
मीचुबस नीच सोऊ चहत खसाई है॥
छाँड़ि छितिपाल जो परीछित भए कृपालु,
भलो कियो खल को निकाई सो नसाई है।
पाहि हनुमान! करुनानिधान राम पाहि!
कासी-कामधेनु कलि कुहत कसाई है॥१८१॥
बिरची बिरंचि की बसति बिस्वनाथ की जो
प्रानहू तें प्यारी पुरी केसव कृपाल की।
ज्योतिरूप-लिंगमई, अगनित-लिंगमई,
मोक्ष-बितरनि, बिदरनि जगजाल की॥

१७९—परीच्छित = निश्चित, निश्चयरूप से। चाटि दिवारी को दीयो = ऐसा कहते हैं कि सर्प आदि दीवाली का दीया चाट कर चले जाते हैं अर्थात् दीवाली के बाद नहीं रह जाते।

१८०—कुंकुम रंग······परी है = क्षेमकरी नाम का चील जो कत्थई या ललाई लिए पीले रंग की होती है। इसकी चोंच सफ़ेद रंग की होती है। इसका दर्शन शुभ माना जाता है। यह दक्षिण में कारमंडल के किनारे अधिक होती है। तंत्रसार में इसके नमस्कार का श्लोक इस प्रकार है—कुंकुमाभा सर्वांगि कुंदेंदुधवलानने। मत्स्यमांसप्रिये देवि, क्षेमंकरि नमोऽस्तु ते।

१८१—कुहत = मारता है।

देवी देव देवसरि सिद्ध मुनिवर बास,
लोपति बिलोकत कुलिपि भोंड़े भाल की।
कहा करै तुलसी दयानिधान राम! ऐसो
कासी की कदर्थना कराल कलिकाल की॥ १८२॥
आस्रम बरन कलि-बिबस बिकल भये,
निज निज मरजाद मोटरी सी डार दी।
संकर सरोष महामारि ही तें जानियत,
साहिब सरोष दुनी दिन दिन दारदी॥
नारि नर आरत पुकारत, सुनै न कोऊ,
काहू देवतनि मिलि मोटी मूठि मार दी।
तुलसी सभीत-पाल सुमिरे कृपालु राम,
समय सुकरुना सराहि सनकार दी॥ १८३॥

हनुमानबाहुक

छप्पय

सिंधु-तरन सिय-सोच-हरन रबि-बाल-बरन-तनु।
भुज बिसाल, मूरति कराल, कालहु को काल जनु॥
गहन-दहन-निरदहन-लंक, निःसंक, बंकभुव।
जातुधान-बलवान-मान-मद-दवन पवनसुव॥
कह तुलसिदास सेवत सुलभ, सेवक हित संतत निकट।
गुन गनत, नमत, सुमिरत, जपत समन सकल-संकट-बिकट॥ १॥
स्वर्न-सैल-संकास कोटि-रबि-तरुन-तेज घन।
उर बिसाल, भुजदंड चंड नखबज्र बज्रतन॥
पिंग नयन, भ्रुकुटी कराल, रसना दसनानन।
कपिस केस, करकस लँगूर, खल-दल-बल-भानन॥
कह तुलसिदास बस जासु उर मारुतसुत मूरति बिकट।
संताप पाप तेहि पुरुष कहँ सपनेहुँ नहिं आवत निकट॥ २॥

१८२—कदर्थना = दुर्दशा।

१८३—सनकार दी = इशारा कर दिया।

१—भुव = भ्रू, भ्रुकुटी।

२—संकाश = प्रकाश, चमक। भानन = तोड़ना।

झूलना

पंचमुख छमुख भृगुमुख्य भट, असुर-सुर-
सर्व सरि समर समरत्थ सूरो।
बाँकुरो बीर बिरुदैत बिरुदावली,
बेद बंदी बदत पैजपूरो ॥
जासु गुनगाथ रघुनाथ कह, जासु बल
बिपुलजल-भरित जगजलधि झूरो।
दीन-दुख-दमन को कौन तुलसीस है ?
पवन को पूत रजपूत रूरो ॥ ३ ॥

घनाक्षरी

भानु सों पढ़न हनुमान गए, भानु मन
अनुमानि सिसुकेलि कियो फेरफार सो।
पाछिले पगनि गम गगन मगनमन,
क्रम को न भ्रम, कपि-बालक-बिहार सो ॥
कौतुक बिलोकि सुरपाल हरि हर बिधि,
लोचननि चकाचौंधी चित्तनि खँभार सो।
बल कैधौं बीररस, धीरज कै, साहस, कै
तुलसी सरीर धरे सबनि को सार सो ॥ ४ ॥
भारत में पारथ के रथकेतु कपिराज,
गाज्यो सुनि कुरुराजदल हलबल भो।
कह्यो द्रोण भीषम समीरसुत महाबीर,
बीर-रस-बारि-निधि जाको बल जल भो ॥
बानर सुभाय बालकेलि भूमि भानु लगि
फलँग फलाँग हू ते घाटि नभतल भो।
नाइ नाइ माथ जोरि जोरि हाथ जोधा जोहै,
हनुमान देखे जगजीवन को फल भो ॥ ५ ॥

३—भृगुमुख्य = परशुराम।

४—पाछिले पगनि गम = पीछे की ओर पैरों से चलते हुए। कथा है कि जब हनुमानजी सूर्य के पास पढ़ने गए तब उन्होंने कहा कि मैं एक जगह स्थिर नहीं रहता, इससे यदि पढ़ना हो तो मेरे रथ के सामने पीछे की ओर पैर रखते साथ साथ भागते चलो। हनुमान् ने ऐसा ही किया।

गोपद पयोधि करि, होलिका ज्यों लाय लंक,
निपट निसंक परपुर गलबल भो।
द्रोन सो पहार लियो ख्याल ही उखारि कर,
कंदुक ज्यों कपिखेल बेल कैसो फल भो॥
संकटसमाज असमंजस में रामराज,
काज जुग पूगनि को करतल पल भो।
साहसी समत्थ तुलसी को नाह जाकी बाँह
लोकपाल पालन को फिरि थिर थल भो॥ ६॥

कमठ की पीठि जाके गोड़नि की गाड़ै मानो,
नाप के भाजन भरि जलनिधिजल भो।
जातुधानदावन, परावन को दुर्ग भयो,
महामीनवास तिमि-तोमनि को थल भो॥
कुंभकर्न-रावन-पयोदनाद-ईंधन को
तुलसी प्रताप जाको प्रबल अनल भो।
भीषम कहत मेरे अनुमान हनुमान
सारिखो त्रिकाल न त्रिलोक महाबल भो॥ ७॥

दूत रामराय को, सपूत पूत पौन को,
तू अंजनी को नंदन प्रताप भूरि भानु सो।
सीय-सोच-समन, दुरित-दोप-दमन, सरन
आए अवन, लखनप्रिय प्रान सो॥
दसमुख दुसह दरिद्र दरिबे को भयो
प्रगट त्रिलोक ओक तुलसी निधान सो।
ज्ञानगुनवान बलवान सेवासावधान,
साहेब सुजान उर आनु हनुमान सो॥ ८॥

दवन-दुवन-दल भुवनबिदित बल,
वेद जस गावत बिबुध-बंदी-छोर को।
पाप-ताप-तिमिर-तुहिन-विघटन-पटु,
सेवक-सरोरुह सुखद भानु भोर को॥

६—लाय = जला कर। कपिखेल बेल = कपिकच्छु, केवाँच नाम की लता। काज जुग.. पल भो = जुग भर में पूरा होने का काम (हनुमान के) करतल हो गया। पूगना = पूजना, पूरा होना।

८—अवन = रक्षा।

लोक परलोक तें बिसोक, सपने न सोक,
तुलसी के हिए है भरोसो एक ओर को।
राम को दुलारो दास बामदेव को निवास,
नाम कलिकामतरु केसरी-किसोर को ॥ ६ ॥
महाबलसींव, महा भीम, महा बानइत,
महाबीर बिदित बरायो रघुबीर को।
कुलिस कठोरतनु, जोर परै रोर रन,
करुना-कलित मन धारमिक धीर को ॥
दुर्जन को काल सो कराल पाल सज्जन को,
सुमिरे हरनहार तुलसी की पीर को।
सीय सुखदायक, दुलारो रघुनायक को,
सेवक सहायक है साहसी समीर को ॥ १० ॥
रचिबे को बिधि जैसे पालिबे को हरि हर,
मीच मारिबे को, ज्याइबे को सुधापान भो।
धरिबे को धरनि, तरनि तम दलिबे को,
सोखिबे कृसानु, पोषिबे को हिमभानु भो ॥
खलदुख दोषिबे को, जन परितोषिबे को,
माँगिबो मलीनता को मोदक सुदान भो।
आरत की आरति निवारिबे को तिहूँ पुर
तुलसी को साहिब हठीलो हनुमान भो ॥ ११ ॥
सेवक सेवकाई जानि जानकीस मानै कानि,
सानुकूल सूलपानि नवै नाथ नाक को।
देवी देव दानव दयावने ह्वै जोरैं हाथ,
बापुरे बराक और राजा राना राँक को ॥
जागत सोवत बैठे बागत बिनोद मोद,
ताकै जो अनर्थ सो समर्थ एक आक को।
सब दिन रूरो परै पूरो जहाँ तहाँ ताहि
जाके है भरोसो हिय हाँक हनुमान को ॥ १२ ॥
सानुग सगौरि सानुकूल सूलपानि ताहि,
लोकपाल सकल लषन राम जानकी।

१०—बरायो = चुना हुआ।
१२—बराक = बेचारा। बागत = घूमते फिरते।

लोक परलोक को बिसोक सो बिलोक ताहि,
तुलसी तमाहि ताहि काहु बीर आन की ? ॥
केसरी-किसोर, बंदीछोर को निवाजे सब,
कीरति बिमल कपि करुनानिधान की।
बालक ज्यौं पालिहैं कृपालु मुनि सिद्ध ताको
जाके हिये हुलसति हाँक हनुमान की ॥ १३ ॥
करुनानिधान, बलबुद्धि के निधान, मोद
महिमानिधान, गुनज्ञान के निधान हौ।
बामदेवरूप, भूप राम के सनेही, नाम
लेत देत अर्थ धर्म काम निरबान हौ ॥
आपने प्रभाव, सीतानाथ के सुभाव सील,
लोक-वेद-विधि के बिदुष हनुमान हौ।
मन की, वचन की, करम की तिहूँ प्रकार
तुलसी तिहारो तुम साहिब सुजान हौ ॥ १४ ॥
मन को अगम, तन सुगम किए कपीस,
काज महाराज के समाज साज साजे हैं।
देव बंदीछोर रनरोर केसरीकिसोर,
जुग जुग जग तेरे बिरद बिराजे हैं ॥
बीर बरजोर, घटि जोर तुलसी की ओर,
सुनि सकुचाने साधु, खलगन गाजे हैं।
बिगरी-सँवार अंजनीकुमार कीजे मोहिं,
जैसे होत आए हनुमान के निवाजे हैं ॥ १५ ॥

मत्तगयंद

सुजान सिरोमनि हौ, हनुमान ! सदा जन के मन बास तिहारो।
ढारो बिगारो मैं काको कहा ? केहि कारन खीझत हौं तो तिहारो ॥
साहिब सेवक नाते तें हातो कियो तो तहाँ तुलसी को न चारो।
दोष सुनाए ते आगेहुँ को हुसियार ह्वैहौं, मन तौ हिय हारो ॥ १६ ॥
तेरे थपे उथपे न महेस, थपै थिर को कपि जे घर घाले ?
तेरे निवाजे गरीबनिवाज बिराजत बैरिन के उर साले ॥

१३—तमाहि = तम: ही, लालच ही।

संकट सोच सबै तुलसी लिए नाम फटैं मकरी के से जाले ।
बूढ़ भये, बलि, मेरेहि बार, कि हारि परे बहुतै नत पाले ॥ १७ ॥
सिंधु तरे, बड़े बीर दले खल, जारे हैं लंक से बंक मवासे ।
तैं रनकेहरि केहरि के बिदले अरि-कुंजर छैल छवा से ॥
तोसों समत्थ सुसाहिब सेइ सहै तुलसी दुख-दोष दवा से ।
बानर-बाज ! बढ़े खल खेचर, लीजत क्यों न लपेटि लवा से ? ॥ १८ ॥
अच्छ-बिमर्दन कानन-भान दसानन आनन भा न निहारो ।
बारिदनाद अकंपन कुंभकरन्न से कुंजर केहरि-बारो ॥
राम-प्रताप हुतासन, कच्छ बिपच्छ, समीर समीर दुलारो ।
पाप तें, साप तें, ताप तिहूँ तें सदा तुलसी कहँ सो रखवारो ॥ १९ ॥

घनाक्षरी

जानत जहान हनुमान को निवाज्यौ जन,
मन अनुमानि, बलि, बोल न बिसारिए ।
सेवा-जोग तुलसी कबहुँ ? कहाँ चूक परी,
साहेब सुभाय कपि साहेब सँभारिए ॥
अपराधी जानि कीजै साँसति सहस भाँति,
मोदक मरै जो ताहि माहुर न मारिए ।
साहसी समीर के दुलारे रघुबीरजू के,
बाँहपीर महाबीर बेगि ही निवारिये ॥ २० ॥
बालक बिलोकि, बलि, बारे तें आपनो कियो,
दीनबंधु दया कीन्हीं निरुपाधि न्यारिये ।
रावरो भरोसो तुलसी के, रावरोई बल,
आस रावरीयै, दास रावरो बिचारिए ॥
बड़ो बिकराल कलि, काको न बिहाल कियो ?
माथे पगु बली को, निहारि सो निवारिए ।
केसरीकिसोर, रन-रोर, बरजोर बीर,
बाहुपीर राहुमातु ज्यौं पछारि मारिए ॥ २१ ॥
उथपे-थपन, थिरथपे-उथपनहार,
केसरी कुमार बल आपनो सँभारिए ।

१९—कच्छ = तुन का पेड़ जो जल्दी जलता है । बिपच्छ = शत्रु ।
२१—राहुमातु = छायाग्राहिणी सिंहिका ।

राम के गुलामनि को कामतरु रामदूत,
मोसे दीन दूबरे को तकिया तिहारिए ॥
साहिब समर्थ तोसो तुलसी के माथे पर,
सोऊ अपराध बिनु, बीर ! बाँधि मारिए ।
पोषरी बिसाल बाहुँ, बलि, बारिचर पीर,
मकरी ज्यौं पकरि कै बदन बिदारिए ॥ २२ ॥
राम को सनेह, राम साहस, लखन सिय
राम की भगति, सोच संकट निवारिए ।
मुदमरकट रोग बारिनिधि हेरि हारे,
जीव जामवंत को भरोसो तेरो भारिये ॥
कूदिए कृपाल तुलसी सु प्रेमपब्बइ तें,
सुथल सुबेल भालु बैठि कै बिचारिए ।
महाबीर बाँकुरे बराकी बाहुपीर क्यों न
लंकिनी ज्यों लातघात ही मरोरि मारिए ॥ २३ ॥
लोक परलोक हूँ, तिलोक न बिलोकियत
तो सों समरथ चष चारिहूँ निहारिए ।
कर्म काल, लोकपाल, अग जग जीवजाल,
नाथहाथ सब निज महिमा बिचारिए ॥
खास दास रावरो, निवास तेरो नासु उर,
तुलसी सो, देव ! दुखी देखियत भारिए ।
बात तरुमूल, बाहुसूल कपिकच्छु बेलि
उपजी, सकेलि, कपि, खेलही उखारिए ॥ २४ ॥
करम-कराल कंस भूमिपाल के भरोसे
बकी बक भगिनी काहू तें कहा डरैगी ? ।
बड़ी बिकराल बालघातिनी न जात कहि,
बाहुबल बालक छबीले छोटे छरैगी ॥
आइ है बनाइ बेष, आप तू बिचारि देख,
पाप जाय सब को गुनी के पाले परैगी !

२२—तकिया = भरोसा ।

२३—बराकी = बापुरी, तुच्छ ।

२४—कपिकच्छु बेल = केवाँच नाम की लता जो बंदरों बहुत प्रिय होता है ।

पूतना पिसाचिनी ज्यों कपिकान्ह तुलसी की
बाहु-पीर, महाबीर, तेरे मारे मरैगी ॥ २५ ॥

भाल की, कि काल की, कि रोष की, त्रिदोष की है
बेदन बिषम पापताप छलछाहँ की।
करमन कूट की, कि जंत्र मंत्र बूट की,
पराहि जाहि, पापिनी! मलीन मन माहँ की ॥
पैहहि सजाय, नतु कहत बजाय तोहि
बावरी न होहि बानि जानि कपिनाह की।
आन हनुमान की, दोहाई बलवान की,
सपथ महाबीर की जो रहै पीर बाहँ की ॥ २६ ॥

सिंहिका सँहारि, बलि, सुरसा सुधारि छल,
लंकिनी पछारि मारि बाटिका उजारी है।
लंका परजारि, मकरी बिदारि, बार बार
जातुधान धारि धूरिधारी करि डारी है ॥
तोरि जमकातरि मँदोदरी कढ़ोरि आनी,
रावन की रानी मेघनाद महतारी है।
भीर बाहपीर की निपट राखी महाबीर
कौन के सँकोच, तुलसी के सोच भारी है ॥ २७ ॥

तेरो बालकेलि, बीर! सुनि सहमत धीर,
भूलत सरीर-सुधि सक्र रवि राहु की।
तेरी बाँह बसत बिसोक लोकपाल सब,
तेरो नाम लेत रहै आरति न काहु की ॥
साम दान भेद बिधि, बेदहु लबेद सिद्धि,
हाथ कपिनाथ ही के चोटी चोर साहु की।
आलस, अनख, परिहास की सिखावन है?
एते दिन रही पीर तुलसी के बाहु की! ॥ २८ ॥

टूकनि को घरघर डोलत कंगाल बोलि,
बाल ज्यों कृपाल नतपाल पालि पोसो है।
कीन्ही है सँभार सार अंजनीकुमार बीर,
आपनो बिसारि हैं न मेरे हूँ भरोसो है ॥
एतनो परेखो सब भाँति समरथ आजु,
कपिनाथ साँची कहौं को त्रिलोक तोसो है?।

माँसति सहत दास कीजै पेषि परिहास,
चीरी को मरन खेल बालकनि को सो है ॥ २९ ॥
आपने ही पाप तें त्रिताप तें, कि साप तें
बड़ी है बाहुबेदन कही न सहि जाति है ।
औषध अनेक जंत्र मंत्र टोटकादि किए,
बादि भए देवता, मनाए अधिकाति है ॥
करतार, भरतार, हरतार, कर्म, काल,
को है जगजाल जो न मानत इताति है ।
चेरो तेरो तुलसी 'तू मेरो' कह्यो रामदूत,
ढील तेरी, बीर, मोहि पीर तें पिराति है ॥ ३० ॥
दूत रामराय को, सपूत पूत बाय को,
समत्थ हाथ पाय को, सहाय असहाय को ।
बाँकी बिरुदावलि बिदित बेद गाइयत,
रावन सो भट भयो मूठिका के घाय को ॥
एते बड़े साहेब समर्थ को निवाजो आजु
सीदत सुसेवक बचन मन काय को ।
थोरि बाहुपीर की बड़ी गलानि तुलसी को,
कौन पाप कोप, लोप प्रगट प्रभाय को ? ॥ ३१ ॥
देवी देव दनुज मनुज मुनि सिद्ध नाग,
छोटे बड़े जीव जेते चेतन अचेत हैं ।
पूतना पिसाची जातुधानी जातुधान बाम
रामदूत की रजाइ माथे मानि लेत हैं ॥
घोर जंत्र मंत्र कूट कपट कुजोग रोग,
हनूमान आन सुनि छाँड़त निकेत हैं ।
क्रोध कीजे कर्म को, प्रबोध कीजै तुलसी को,
सोध कीजै तिनको जो दोष दुख देत हैं ॥ ३२ ॥
तेरे बल बानर जिताए रन रावन सें,
तेरे घाले जातुधान भए घर घर के ।
तेरे बल रामराज किए सब सुर काज,
सकल समाज साज साजे रघुबर के ॥

३०—इताति = इताअत, आज्ञा-पालन ।

तेरे गुनगान सुनि गीरवान पुलकित,
सजल बिलोचन बिरंचि हरि हर के।
तुलसी के माथे पर हाथ फेरो कीसनाथ,
देखिए न दास दुखी तो से कनिगर के ॥ ३३ ॥
पालो तेरे टूक को, परे हूँ चूक मूकिए न,
कूर कौड़ी दू को हौं आपनी ओर हेरिए।
भोरानाथ भोरे हौ, सरोष होत थोरे दोष,
पोषि तोषि थापि आपने न अवडेरिए।
अंबु तू हौं अंबुचर, अंब तू हौं डिंभ, सो न,
बूझिए बिलंब अवलंब मेरे तेरिए।
बालक बिकल जानि, पाहि, प्रेम पहिचानि
तुलसी की बाँह पर लामी लूम फेरिए ॥ ३४ ॥
घेरि लियो रोगनि कुजोगनि कुलोगनि ज्यौं
बासर जलद घनघटा धुकि धाई है।
बरषत बारि पीर जारिए जवासे जस,
रोष बिनु दोष, धूम-मूल, मलिनाई है ॥
करुनानिधान हनुमान महा बलवान !
हेरि हँसि हाँकि फूँकि फौजैं तै उड़ाई है।
खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि,
केसरी किसोर राखे बीर बरियाई है ॥ ३५ ॥

मत्तगयंद

रामगुलाम तुही हनुमान गुसाइँ सुसाइँ सदा अनुकूलो।
पाल्यौ हौं बाल ज्यों आखर दू पितुमातु ज्यों मंगलमोद समूलो ॥
बाहुँ की बेदन, बाँहपगार ! पुकारत आरत आनँदभूलो।
श्रीरघुबीर निवारिए पीर, रहौं दरबार परो लटि लूलो ॥ ३६ ॥

३३—घर घर के भए = इधर उधर बेठिकाने हो गये। गीरवान = गीर्वाण, देवता। कनिगर = कानिवाला, जिसे अपनी मर्यादा की लज्जा हो।

३४—मूकना = छोड़ना, त्याग करना। अवडेरिए = उद्वास करना, बसने या रहने न देना। डिंभ = छोटा बच्चा।

३६—बाँह पगार = हे दृढ़ कोट के समान बाहुवाले।

घनाक्षरी

काल की करालता, करमकठिनाई कीधौं,
पाप के प्रभाव, की सुभाय बाय बावरे।
बेदन कुभाँति सो सही न जाति रातिदिन,
सोई बाँह गही जो गही समीरडावरे॥
लायो तरु तुलसी तिहारो, सो निहारि बारि
सींचिए मलीन भो, तयो है तिहुँ ताव रे!
भूतनि की, आपनी, पराई, हे कृपानिधान!
जानियत सबही की रीति राम रावरे॥ ३७॥
पाँय-पीर, पेट-पीर बाहु-पीर, मुँह-पीर,
जरजर सकल सरीर पीरमई है।
देव, भूत, पितर, करम, खल, काल, ग्रह,
मोहि पर दवरि दमानक सी दई है॥
हौं तो बिन मोल ही बिकानो, बलि, बारे ही तें,
ओट रामनाम की ललाट लिखि लई है।
कुंभज के किंकर बिकल बूड़े गोखुरनि,
हाय रामराय! ऐसी हाल कहूँ भई है? ॥ ३८॥
[illegible] नीच, लीचर-मरीच मिलि,
[illegible]-सेनजा, कुरोग-जातुधान हैं।
रामनाम जपजाग कियो चाहौं सानुराग,
काल कैसे दूतभूत कहा मेरे मान हैं॥
सुमिरे सहाइ रामलषन आखर दोउ,
जिनके साकेसमूह जागत जहान हैं।
तुलसी सँभारि, ताड़का सँहारि, भारी भट
बेधे बरगद से बनाइ बानबान हैं॥ ३९॥
बालपने सूधे मन राम सनमुख भयो,
रामनाम लेत, माँगि खात टूकटाक हौं।

३७—डावरे = बच्चे, पुत्र।

३८—दमानक = तोपों की बाढ़।

३९—लीचर = लीचरपन, अशक्ति, शिथिलता। कहा मेरे मान हैं = क्या मेरे मान के हैं? क्या मेरे इख्तियार में हैं? अर्थात् मेरी सामर्थ्य के बाहर हैं।

परयौ लोकरीति में, पुनीत प्रीति रामराय
मोहबस बैठो तोरि तरकि तराक हौं ॥
खोटे खोटे आचरन आचरत अपनायो
अंजनीकुमार, सोध्यो रामपानि पाक हौं ।
तुलसी गुसाईं भयो, भोंड़े दिन भूलि गयो,
ताको फल पावत निदान परिपाक हौं ॥ ४० ॥
असन-बसन-हीन, बिषम-बिषाद-लीन
देखि दीन दूबरो करै न हाय हाय को ।
तुलसी अनाथ सों सनाथ रघुनाथ कियो,
दियो फल सीलसिंधु आपने सुभाय को ।
नीच यहि बीच पति पाइ भरुआइ गो
बिहाय प्रभुभजन बचन मन काय को ।
तातें तनु पेषियत घोर बरतोर मिस
फूटि फूटि निकसत लोन रामराय को ॥ ४१ ॥
जीवौ जग जानकीजीवन को कहाइ जन,
मरिबे को बारानसी, बारि सुरसरि को ।
तुलसी के दुहूँ हाथ मोदक हैं ऐसे ठाउँ,
जाके जिए मुए सोच करिहैं न लरिको ।
मोको झूठो साँचो लोग राम को कहत सब,
मेरे मन मान है न हर को न हरि को ।
भारी पीर दुसह सरीर तें बिहाल होत,
सोऊ रघुबीर बिनु सकै दूरि करि को ? ॥ ४२ ॥
सीतापति साहेब, सहाय हनुमान नित,
हित उपदेस को महेस मानो गुरु कै ।
मानस बचन काय सरन तिहारे पायँ,
तुम्हरे भरोसे सुर मैं न जाने सुर कै ॥
ब्याधि भूत-जनित उपाधि काहू खल की,
समाधि कीजे तुलसी को जानि जन फुर कै ।

४०—पाक = [फारसी] पवित्र ।

४१—पति = प्रतिष्ठा । भरुआइ गो = फूल उठा, इतरा गया, अपने को भारी समझने लगा ।

कपिनाथ, रघुनाथ, भोलानाथ, भूतनाथ !
रोगसिंधु क्यों न डारियत गायखुर के ? ॥ ४३ ॥
कहौं हनुमान सों सुजान रामराय सों,
कृपानिधान संकर सों, सावधान सुनिए ;
हरष-बिषाद-राग रोष-गुन-दोष-मई,
बिरची बिरंचि सब देखियतु दुनिए ॥
माया जीव काल के, करम के, सुभाय के,
करैया राम, बेद कहैं, साँची मन गुनिए ।
तुम तें कहा न होय, हाहा ! सो बुझैये मोहि,
हौंहूँ रहों मौन ही, बयो सो जानि लुनिए ॥ ४४ ॥

गीतावली

गीतावली

राग आसावरी

आजु सुदिन सुभ घरी सुहाई ।
मंगलि गुनधाम राम नृप-भवन प्रगट भए आई ॥ १ ॥
अति पुनीत मधुमास, लगन ग्रह बार जोग समुदाई ।
हरषवंत चर अचर भूमिसुर तनरुह पुलक जनाई ॥ २ ॥
बरषहिं बिबुध-निकर कुसुमावलि नभ दुंदुभी बजाई ।
कौसल्यादि मातु मन हरषित, यह सुख बरनि न जाई ॥ ३ ॥
सुनि दसरथ सुत जन्म लिए सब गुरुजन बिप्र बोलाई ।
बेद-बिहित करि क्रिया परम सुचि, आनँद उर न समाई ॥ ४ ॥
सदन बेद-धुनि करत मधुर मुनि, बहु बिधि बाज बधाई ।
पुरबासिन्ह प्रिय नाथ हेतु निज निज संपदा लुटाई ॥ ५ ॥
मनि, तोरन, बहु केतु पताकनि पुरी रुचिर करि छाई ।
मागध सूत द्वार बंदीजन जहँ तहँ करत बड़ाई ॥ ६ ॥
सहज सिंगार किए बनिता चलीं मंगल बिपुल बनाई ।
गावहिं देहिं असीस मुदित चिरजिवौ तनय सुखदाई ॥ ७ ॥
बीथिन्ह कुंकुम कीच, अरगजा अगर अबीर उड़ाई ।
नाचहिं पुर-नर-नारि प्रेम भरि देहदसा बिसराई ॥ ८ ॥
अमित धेनु गज तुरग बसन मनि जातरूप अधिकाई ।
देत भूप अनुरूप जाहि जोइ, सकल सिद्धि गृह आई ॥ ९ ॥
सुखी भए सुर, संत, भूमिसुर, खलगन मन मलिनाई ।
सबइ सुमन बिकसत रबि निकसत, कुमुद-बिपिन बिलखाई ॥ १० ॥
जो सुख सिंधु-सकृत-सीकर तें सिव बिरंचि प्रभुताई ।
सोई सुख अवध उमँगि रह्यो दस दिसि कौन जतन कहौं गाई ॥ ११ ॥
जे रघुबीर चरन चिंतक तिन्हकी गति प्रगट दिखाई ।
अबिरल अमल अनूप भगति दृढ़ तुलसिदास तब पाई ॥ १२ ॥१॥

१—११—सकृत = एक ।

राग जैतश्री

सहेली सुनु सोहिलो रे !
सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो, सोहिलो सब जग आज ॥
पूत सपूत कौसिला जायो, अचल भयो कुलराज ॥ १ ॥
चैत चारु नौमी तिथि सितपख मध्य-गगन-गत भानु ।
नखत जोग ग्रह लगन भले दिन मंगल मोद निधानु ॥ २ ॥
ब्योम पवन पावक जल थल दिसि दसहु सुमंगल मूल ।
सुर दुंदुभी बजावहिं, गावहि, हरषहिं, बरषहिं फूल ॥ ३ ॥
भूपति सदन सोहिलो सुनि बाजैं गहगहे निसान ।
जहँ तहँ सजहिं कलस धुज चामर तोरन केतु बितान ॥ ४ ॥
सींचि सुगंध रचैं चौके गृह आँगन गली बजार ।
दल फल फूल दूब दधि रोचन घर घर मंगलचार ॥ ५ ॥
सुनि सानंद उठे दसस्यंदन सकल समाज समेत ।
लिए बोलि गुरु सचिव भूमिसुर प्रमुदित चले निकेत ॥ ६ ॥
जातकर्म करि, पूजि पितर सुर दिए महिदेवन दान ।
तेहि औसर सुत तीनि प्रगट भए मंगल, मुद, कल्यान ॥ ७ ॥
आनँद महँ आनंद अवध, आनंद बधावन होइ ।
उपमा कहौं चारि फल की, मोहिं भलो न कहै कवि कोइ ॥ ८ ॥
सजि आरती बिचित्र थार कर जूथ जूथ बरनारि ।
गावत चलीं बधावन लै लै निज निज कुल अनुहारि ॥ ९ ॥
असही दुसही मरहु मनहिं मन, बैरिन बढ़हु बिषाद ।
नृपसुत चारि चारु चिरजीवहु संकर-गौरि-प्रसाद ॥ १० ॥
लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार ।
करहिं गान करि आन राय की, नाचहिं राजदुवार ॥ ११ ॥
गज, रथ, बाजि, बाहिनी, बाहन सबनि सँवारे साज ।
जनु रतिपति ऋतुपति कोसलपुर बिहरत सहित समाज ॥ १२ ॥
घंटा घंटि पखाउज आउज झाँझ बेनु डफ तार ।
नूपुर धुनि, मंजीर मनोहर, कर कंकन-झनकार ॥ १३ ॥

२—१०—असही दुसही=द्वेषी, बैरी (जिन्हें भलाई असह्य या दुःसह हो)।

२—११—ढोव = भेंट की वस्तु जो मंगल के अवसर पर भार में भर कर भेजते हैं। आन करि = गीतों में नाम ले ले कर।

२—१३—आउज = तासा। तार = ताल, मजीरा।

नृत्य करहिं नट नटी, नारि नर अपने अपने रंग।
मनहुँ मदनरति बिबिध बेष धरि नटत सुदेस सुढंग ॥ १४ ॥
उघटहिं छंद प्रबंध गीत पद राग तान बंधान।
सुनि किन्नर गंधर्व सराहत, बिथके हैं बिबुध-बिमान ॥ १५ ॥
कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर।
नभ प्रसून झरि, पुरी कोलाहल, भइ मनभावति भीर ॥ १६ ॥
बड़ी बयस बिधि भयो दाहिनो सुरगुरु आसिरबाद।
दसरथ सुकृत-सुधासागर सब उमगे हैं तजि मरजाद ॥ १७ ॥
ब्राह्मण बेद, बंदि बिरदावलि, जय धुनि मंगल गान।
निकसत पैठत लोग परसपर बोलत लगि लगि कान ॥ १८ ॥
बारहिं मुकुता रतन राजमहिषी पुर-सुमुखि समान।
बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जवारि जव धान ॥ १९ ॥
कीन्हि बेदबिधि लोकरीति नृप, मंदिर परम हुलास।
कौसल्या कैकयी सुमित्रा रहस-बिबस रनिवास ॥ २० ॥
रानिन दिए बसन मनि भूषन, राजा सहन-भँडार।
मागध सूत भाट नट जाचक जहँ तहँ करहिं कबार ॥ २१ ॥
बिप्रबधू सनमानि सुआसिनि, जन पुरजन पहिराइ।
सनमाने अवनीस, असीसत ईस रमेस मनाइ ॥ २२ ॥
अष्टसिद्धि नवनिद्धि भूति सब भूपति भवन कमाहिं।
समउ समाज राज दसरथ को लोकप सकल सिहाहिं ॥ २३ ॥
को कहि सकै अवधबासिन को प्रेम प्रमोद उछाह।
सारद सेस गनेस गिरीसहिं अगम निगम अवगाह ॥ २४ ॥
सिव बिरंचि मुनि सिद्ध प्रसंसत, बड़े भूप के भाग।
तुलसिदास प्रभु सोहिलो गावत उमगि उमगि अनुराग ॥ २५ ॥ २ ॥

राग बिलावल

आजु महामंगल कोसलपुर सुनि नृप के सुत चारि भए।
सदन सदन सोहिलो सोहावनो नभ अरु नगर निसान हए ॥ १ ॥
सजि सजि जान अमर किन्नर मुनि जानि समय सुभ गान ठए।
नाचहिं नभ अपसरा मुदित मन पुनि पुनि बरषहिं सुमन चए। २ ॥

२—१५—उघटहिं = बार बार एक ही पद को कहते हैं।
२—२१—सहन-भँडार = बाहरी खजाना। कबार = लेन देन।

अति सुख बेगि बोलि गुरु भूसुर भूपति भीतर भवन गए।
जातकरम करि कनक बसन, मनिभूषित सुरभि समूह दए॥ ३॥
दल फल फूल दूब दधि रोचन जुवतिन्ह भरि भरि थार लए।
गावत चलीं भीर भइ बीथिन्ह, बंदिन्ह बाँकुरे बिरद बए॥ ४॥
कनक-कलस चामर पताक धुज जहँ तहँ बंदनवार नए।
भरहि अबीर, अरगजा छिरकहि, सकल लोक एक रंग रए॥ ५॥
उमँगि चल्यौ आनंद लोक तिहुँ, देत सबनि मंदिर रितए।
तुलसिदास पुनि भरेइ देखियत, रामकृपा चितवनि चितए॥ ६॥

राग जयतश्री

गावैं बिबुध बिमल बरबानी।
भुवन कोटि कल्यान-कंद जो जायो पूत कौसिला रानी॥ १॥
मास पाख तिथि बार नखत ग्रह जोग लगन सुभ ठानी।
जल थल गगन प्रसन्न साधु मन, दसदिसि हिय हुलसानी॥ २॥
बरषत सुमन, बधाव नगर नभ, हरष न जात बखानी।
ज्यों हुलास रनिवास नरेसहिं त्यों जनपद रजधानी॥ ३॥
अमर नाग मुनि मनुज सपरिजन बिगतबिषाद-गलानी।
मिलेहि माँझ रावन रजनीचर लंकसंक अकुलानी॥ ४॥
देव पितर गुरु बिप्र पूजि नृप दिए दान रुचि जानी।
मुनि-बनिता, पुरनारि सुआसिनि सहस भाँति सनमानी॥ ५॥
पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचक जन भए दानी।
'यो प्रसन्न कैकयी सुमित्रहि होहु महेस भवानी'॥ ६॥
दिन दूसरे भूप-भामिनि दोउ भई सुमंगल-खानी।
भयो सोहिलो सोहिलो सो जनु सृष्टि सोहिलो-सानी॥ ७॥
गावत नाचत, मो मन भावत सुख सो अवध अधिकानी।
देत लेत पहिरत पहिरावत प्रजा प्रमोद-अघानी॥ ८॥
गान निसान कुलाहल कौतुक देखत दुनी सिहानी।
हरि बिरंचि हरपुर सोभा कुलि कोसलपुरी लोभानी॥ ९॥
आनंद अवनि, राजरानी सब माँगहु कोखि जुड़ानी।
आसिष दै दै सराहहि सादर उमा रमा ब्रह्मानी॥ १०॥

३—४—बए = कहे।
४—४—मिलेहि माँझ = साथ ही।

बिभव-बिलास बाढ़ि दसरथ की देखि न जिनहिं सोहानी।
प्रीति, कुसल, भूति, जय, ऋधि सिधि तिन्ह पर सबै कोहानी ॥११॥
छठी बारहौं लोक-बेद-बिधि करि सुबिधान बिधानो।
राम लषन रिपुदवन भरत धरे नाम ललित गुरु ज्ञानो ॥ १२ ॥
सुकृत-सुमन तिल-मोद बासि बिधि जतन-जंत्र भरि घानी।
सुख सनेह सब दियो दसरथहि खरि खलेल थिरथानी ॥ १३ ॥
अनुदिन उदय उछाह उमग जग, घर घर अवध कहानी।
तुलसी राम-जनम-जस गावत सो समाज उर आनी ॥ १४ ॥ ४ ॥

राग केदार

घर घर अवध बधावने मंगल साज समाज।
सगुन सोहावन मुदित मन कर सब निज निज काज ॥
छंद—निज काज सजत सँवारि पुर-नर-नारि रचना अनगनी।
गृह, अजिर, अटनि, बजार, बीथिन्ह, चारु चौकैं बिधि घनी ॥
चामर, पताक, बितान, तोरन, कलस, दीपावलि बनी।
सुख-सुकृत-सोभामय पुरी बिधि सुमति-जननी जनु जनी ॥ १ ॥
चैत चतुरदसि चाँदनी, अमल उदित निसिराज।
उडुगन अवलि प्रकासहीं, उमगत आनँद साज ॥
छंद—आनँद उमगत आजु, बिबुध बिमान बिपुल बनाइकै।
गावत बजावत, नटत, हरषत, सुमन बरषत आइ कै ॥
नर निरखि नभ, सुर पेखि पुरछबि परसपर सचु पाइकै।
रघुराज-साज सराहि लोचन-लाहु लेत अघाइकै ॥ २ ॥
जागिय राम छठी सजनि रजनी रुचिर निहारि।
मंगल मोदमढ़ी मुरति नृप के बालक चारि ॥
छंद—मूरति मनोहर चारि बिरचि बिरंचि परमारथ मई।
अनुरूप भूपति जानि पूजन-जोग बिधि संकर दई ॥
तिन्हकी छठी, मंजुलमठी, जग सरस जिन्हकी सरसई।
किए नींद भामिनि जागरन, अभिरामिनी जामिनि भई ॥ ३ ॥
सेवक सजग भए समय, साधन सचिव सुजान।
मुनिवर सिखये लौकिकौ बैदिक बिबिध बिधान ॥

४—१३—खलेल = तेल की मैल या गाद। थिरथानी = लोकपाल आदि स्थिर स्थानवाले।

छंद— बैदिक बिधान अनेक लौकिक आचरत सुनि जानिकै।
बलिदान पूजा मूलिकामनि साधि राखी आनिकै॥
जे देव देवी सेइयत हित लागि चित सनमानिकै।
ते जंत्र मंत्र सिखाइ राखत सबनि सों पहिचानिकै॥ ४॥
सकल सुआसिनि गुरुजन पुरजन पाहुनलोग।
बिबुध बिलासिनि सुर मुनि जाचक जो जेहि जोग॥
छंद—जेहि जोग जे तेहि भाँति ते पहिराइ परिपूरन किये।
जय कहत देत असीस तुलसीदास ज्यों हुलसत हिये॥
ज्यों आजु कालिहु परहुँ जागन होहिंगे नेवते दिये।
ते धन्य पुन्य-पयोधि जे तेहि समै सुख-जीवन जिये॥ ५॥
भूप भाग बलि सुर बर नाग सराहि सिहाहिं।
तिय-बरबेष अली रमा सिधि अनिमादि कमाहि॥
छंद—अनिमादि, सारद, सैलनंदिनि बाल लालहिं पालहीं।
भरि जनम जे पाए न ते परितोष उमा रमा लहीं॥
निज लोक बिसरे लोकपति, घर की न चरचा चालहीं।
तुलसी तपत तिहुँ ताप जग, जनु प्रभु छठी छाया लही॥ ६॥ ५॥

राग जयतश्री

बाजत अवध गहागहे आनंद-बधाए।
नामकरन रघुबरनि के नृप सुदिन सोधाए॥
पाय रजायसु राय को ऋषिराज बोलाए।
सिष्य सचिव सेवक सखा सादर सिर नाए॥
साधु सुमति समरथ सबै सानंद सिखाए।
जल दल फल मनि-मूलिका कुलि काज लिखाए॥ १॥
गनप गौरि हर पूजिकै गोबृंद दुहाए।
घर घर मुद मंगल महा गुन-गान सुहाए॥
तुरत मुदित जहँ तहँ चले मन के भए भाए।
सुरपति-सासनु घन मनो मारुत मिलि धाए॥ २॥
गृह आँगन चौहट गली बाजार बनाए।
कलस चँवर तोरन धुजा सुबितान तनाए॥

५—६—कमाहि = सेवा या काम करती है।

चित्र चारु चौकें रचीं लिखि नाम जनाए।
भरिभरि सरवर बापिका अरगजा सनाए ॥ ३ ॥
नर-नारिन्ह पल चारि में सब साज सजाए।
दसरथ-पुर छबि आपनी सुरनगर लजाए ॥
बिबुध बिमान बनाइ कै आनंदित आए।
हरषि सुमन बरषन लगे गए धन जनु पाए ॥ ४ ॥
बरे बिप्र चहुँ बेद के रबिकुल-गुरु ज्ञानी।
आपु बसिष्ठ अथर्वणी, महिमा जग जानी ॥
लोक-रीति बिधि बेद की करि कह्यो सुबानी—
'सिसु समेत बेगि बोलिए कौसल्या रानी' ॥ ५ ॥
सुनत सुआसिनि लै चलीं गावत बड़भागीं।
उमा रमा सारद सची लखि सुनि अनुरागीं ॥
निज रुचि बेष बिरंचि के हिलिमिलि सँग लागीं।
तेहि अवसर तिहुँ लोक की सुदसा जनु जागीं ॥ ६ ॥
चारु चौक बैठत भई भूप भामिनी सोहैं।
गोद मोद-मूरति लिए, सुकृती जन जोहैं ॥
सुखमा कौतुक कला देखि सुनि मुनि मोहैं।
सो समाज कहै बरनिकै ऐसे कबि को हैं? ॥ ७ ॥
लगे पढ़न रच्छा ऋचा ऋषिराज बिराजे।
गगन सुमन-झरि, जयजय, बहु बाजन बाजे ॥
भए अमंगल लंक में, सब संकट गाजे।
भुवन-चारिदस के बड़े दुख दारिद भाजे ॥ ८ ॥
बाल बिलोकि अथर्वणी हँसि हरहि जनायो।
सुभ को सुभ, मोद मोद को 'राम' नाम सुनायो ॥
आलबाल कल कौसिला, दल बरन सोहायो।
कंद सकल आनंद को जनु अंकुर आयो ॥ ९ ॥
जोहि जानि जपि जोरि कै करपुट सिर राखे।
'जय जय जय करुनानिधे!' सादर सुर भाषे ॥
सत्यसंध साँचे सदा जे आखर आपे।
प्रनतपाल पाए सही जे फल अभिलाषे ॥ १० ॥

६—५—बरे = वरण किया।
६—१०—आपे = कहे।

भूमिदेव देव देखिकै नरदेव सुखारी।
बोलि सचिव सेवक सखा पटधारि भँडारी॥
देहु जाहि जोइ चाहिए सनमानि सँभारी।
लगे देन हिय हरषि कै हेरि हेरि हँकारी॥ ११॥
राम-निछावरि लेन को हठि होत भिखारी।
बहुरि देत तेहि देखिए मानहुँ धन-धारी॥
भरत लषन रिपुदवनहूँ धरे नाम बिचारी।
फलदायक फल चारि के दसरथ-सुत चारी॥ १२॥
भए भूप बालकनि के नाम निरूपन नीके।
सबै सोच संकट मिटे तब तें पुर-ती के॥
सुफल मनोरथ बिधि किए सब बिधि सबही के।
अब होइहै गाए सुने सब के तुलसी के॥ १३॥ ६॥

राग बिलावल

सुभग सेज सोभित कौसल्या रुचिर राम-सिसु गोद लिये।
बार बार बिधुबदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये॥ १॥
कबहुँ पौढ़ि पयपान करावति, कबहूँ राखति लाइ हिये।
बालकेलि गावति हलरावति, पुलकति प्रेम-पियूष पिये॥ २॥
बिधि महेस मुनि सुर सिहात सब, देखत अंबुद ओट दिये।
तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न बिये॥ ३॥ ७॥

राग सोरठ

छैहौ लाल कबहिं बड़ बलि मैया।
राम लषन भावते भरत रिपुदवन चारु चारयो भैया॥ १॥
बाल-बिभूषन-बसन मनोहर अँग नित बिरचि बनैहौं।
सोभा निरखि निछावरि करि उर लाइ वारने जैहौं॥ २॥
छगन-मगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुकु ठुमुकु कब धैहौ।
कलबल बचन तोतरे मंजुल कहि "माँ" मोहि बुलैहौ॥ ३॥
पुरजन सचिव राउ रानी सब सेवक सखा सहेली।
लैहैं लोचन-लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ-बेली॥ ४॥

६—११—नरदेव = राजा।
६—१२—धनधारी = कुबेर।

जा सुख की लालसा लटू सिव, सुक, सनकादि उदासी ।
तुलसी तेहि सुखसिंधु कौसिला मगन, पै प्रेम-पियासी ॥ ४ ॥ ८ ॥

पगनि कब चलिहौ चारौ भैया ?
प्रेम-पुलकि उर लाइ सुवन सब कहति सुमित्रा मैया ॥ १ ॥
सुंदर तनु सिसु-बसन-बिभूषन नखसिख निरखि निकैया ।
दलि तृन, प्रान निछावरि करि करि लैहै मातु बलैया ॥ २ ॥
किलकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहरतैया ।
मनि-खंभनि प्रतिबिंब-झलक, छबि छलकिहै भरि अँगनैया ॥ ३ ॥
बालबिनोद, मोद मंजुल बिधु, लीला ललित जुन्हैया ।
भूपति पुन्य-पयोधि उमग, घर घर आनंद बधैया ॥ ४ ॥
ह्वैहै सकल सुकृत-सुख-भाजन-लोचन, लाहु लुटैया ।
अनायास पाइहै जनमफल तोतरे बचन सुनैया ॥ ५ ॥
भरत, राम, रिपुदवन, लषन के चरित-सरित अन्हवैया ।
तुलसी तब के से अजहुँ जानिबे रघुबर-नगर-बसैया ॥ ६ ॥ ९ ॥

राग केदारा

चुपरि उबटि अन्हवाइकै नयन आँजे,
रचि रुचि तिलक गोरोचन को कियो है ।
भ्रू पर अनूप मसिबिंदु, बारे बारे बार
बिलसत सीस पर हेरि हरै हियो है ।
मोद-भरी गोद लिये लालति सुमित्रा देखि
देव कहैं सबको सुकृत उपवियो है ।
मातु पितु, प्रिय, परिजन, पुरजन धन्य,
पुन्यपुंज पेखि पेखि प्रेमरस पियो है ।
लोहित ललित लघु चरन-कमल चारु,
चाल चाहि सो छबि सुकवि जिय जियो है ।
बालकेलि बातबस झलकि झलमलत
सोभा की दीयटि मानो रूप दीप दियो है ।
राम-सिसु सानुज चरित चारु गाइ सुनि
सुजनन सादर जनम-लाहु लियो है ।
तुलसी बिहाइ दसरथ दसचारिपुर
ऐसे सुखजोग बिधि बिरच्यो न बियो है ॥ १० ॥

१०—उपवियो है = उदय हुआ है । दीप = दीप्त, चमकता हुआ ।

भूमिदेव देव देखिके नरदेव सुखारी।
बोलि सचिव सेवक सखा पट धारि भँडारी॥
देहु जाहि जोइ चाहिए सनमानि सँभारी।
लगे देन हिय हरषि के हेरि हेरि हँकारी॥ ११॥
राम-निछावरि लेन को हठि होत भिखारी।
बहुरि देत तेहि देखिए मानहुँ धन-धारी॥
भरत लषन रिपुदवनहूँ धरे नाम बिचारी।
फलदायक फल चारि के दसरथ-सुत चारी॥ १२॥
भए भूप बालकनि के नाम निरूपम नीके।
सबै सोच संकट मिटे तब तें पुर-ती के॥
सुफल मनोरथ बिधि किए सब बिधि सबही के।
अब होइहै गाए सुने सब के तुलसी के॥ १३॥ ६॥

राग बिलावल

सुभगसेज सोभित कौसल्या रुचिर राम-सिसु गोद लिये।
बार बार बिधुबदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये॥ १॥
कबहुँ पौढ़ि पयपान करावति, कबहूँ राखति लाइ हिये।
बालकेलि गावति हलरावति, पुलकति प्रेम-पियूष पिये॥ २॥
बिधि महेस मुनि सुर सिहात सब, देखत अंबुद ओट दिये।
तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न बिये॥ ३॥ ७॥

राग सोरठ

ह्वैहौ लाल कबहिं बड़े बलि मैया।
राम लषन भावते भरत रिपुदवन चारु चारयो भैया॥ १॥
बाल-बिभूषन-बसन मनोहर अँग नित बिरचि बनैहों।
सोभा निरखि निछावरि करि उर लाइ वारने जैहों॥ २॥
छगन-मगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुकु ठुमुकु कब धैहौ।
कलबल बचन तोतरे मंजुल कहि "माँ" मोहिं बुलैहौ॥ ३॥
पुरजन सचिव राउ रानी सब सेवक सखा सहेली।
लैहैं लोचन-लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ-बेली॥ ४॥

६—११—नरदेव = राजा।
६—१२—धनधारी = कुबेर।

जा सुख की लालसा लटू सिव, सुक, सनकादि उदासी।
तुलसी तेहि सुखसिंधु कौसिला मगन, पै प्रेम-पियासी ॥ ५ ॥ ८ ॥

पगनि कब चलिहौ चारो भैया ?
प्रेम-पुलकि उर लाइ सुवन सब कहति सुमित्रा मैया ॥ १ ॥
सुंदर तनु सिसु-बसन-बिभूषन नखसिख निरखि निकैया।
दलि तृन, प्रान निछावरि करि करि लैहैं मातु बलैया ॥ २ ॥
किलकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहरतैया।
मनि-खंभनि प्रतिबिंब-झलक, छबि छलकिहै भरि अँगनैया ॥ ३ ॥
बालबिनोद, मोद मंजुल बिधु, लीला ललित जुन्हैया।
भूपति पुन्य-पयोधि उमँग, घर घर आनँद बधैया ॥ ४ ॥
ह्वैहै सकल सुकृत-सुख-भाजन-लोचन, लाहु लुटैया।
अनायास पाइहैं जनमफल तोतरे बचन सुनैया ॥ ५ ॥
भरत, राम, रिपुदवन, लषन के चरित-सरित अन्हवैया।
तुलसी तब के से अजहुँ जानिबे रघुबर-नगर-बसैया ॥ ६ ॥ ९ ॥

राग केदारा

चुपरि उबटि अन्हवाइकै नयन आँजे,
रचि रुचि तिलक गोरोचन को कियो है।
भ्रू पर अनूप मसिबिंदु, बारे बारे बार
बिलसत सीस पर हेरि हरै हियो है।
मोद-भरी गोद लिये लालति सुमित्रा देखि
देव कहैं सबको सुकृत उपवियो है।
मातु, पितु, प्रिय, परिजन, पुरजन धन्य,
पुन्यपुंज पेखि पेखि प्रेमरस पियो है।
लोहित ललित लघु चरन-कमल चारु,
चाल चाहि सो छबि सुकबि जिय जियो है।
बालकेलि बातबस झलकि झलमलत
सोभा की दीयटि मानो रूप दीप दियो है।
राम-सिसु सानुज चरित चारु गाइ सुनि
सुजनन सादर जनम-लाहु लियो है।
तुलसी बिहाइ दसरथ दसचारिपुर
ऐसे सुखजोग बिधि बिरच्यो न बियो है ॥ १० ॥

१०—उपवियो है = उदय हुआ है। दीप = दीप्त, चमकता हुआ।

राम-सिसु गोद-महामोद भरे दसरथ,
कौसिलाहु ललकि लषन लाल लए हैं।
भरत सुमित्रा लए, कैकयी सत्रुसमन,
तन प्रेम-पुलक, मगन मन भए हैं।
मेढ़ी लटकन मनि-कनक-रचित, बाल-
भूषन बनाइ आछे अंग अंग ठए हैं।
चाहि चुचुकारि चूमि लालत लावत उर,
तैसे फल पावत जैसे सुबीज बए हैं।
घनओट बिबुध बिलोकि बरषत फूल,
अनुकूल बचन कहत नेह नए हैं।
ऐसे पितु, मातु, पूत, प्रिय, परिजन विधि,
जानियत आयु भरि येई निरमए हैं।
'अजर अमर होहु' 'करौ हरि हर छोहु'
जरठ जठेरिन्ह आसिरबाद दए हैं।
तुलसी सराहै भाग तिन्हके जिन्हके हिये
डिभ-रामरूप-अनुराग-रंग रए हैं॥ ११॥

राग आसावरी

आजु अनरसे है भोर के, पय पियत न नीके।
रहत न बैठे ठाढ़े, पालने झुलावतहू, रोवत राम मेरो सो सोच सबही
देव, पितर, ग्रह पूजिये तुला तौलिए घी के।
तदपि कबहुँ कबहुँक सखी ऐसेहि अरत जब परत दृष्टि दुष्ट ती के॥
बेगि बोलि कुलगुरु छुयो माथे हाथ अमी के।
सुनत आइ ऋषि कुस हरे नरसिंह मंत्र पढ़े जो सुमिरत भय भी के।
जासु नाम सर्वस सदासिव पार्वती के।
ताहि झरावति कौसिला यह रीति प्रीति की हिय हुलसति तुलसी के
माथे हाथ ऋषि जब दियो राम किलकन लागे।
महिमा समुझि, लीला बिलोकि गुरु सजल नयन, तनु पुलक, रोम रोम ज

११—मेढ़ी = आगे के बाल को दोनों ओर गूँथकर बीच की चोटी के बाँध देते हैं जिसे मेढ़ी कहते हैं।

१२—भी = डर।

लिए गोद, धाए गोद तें मोद मुनि मन अनुरागे।
निरखि मातु हरषी हिये आली ओट कहति मृदु बचन प्रेम के से पागे॥
तुम्ह सुरतरु रघुबंस के, देत अभिमत माँगे।
मेरे बिसेषि गति रावरी तुलसी प्रसाद जाके सकल अमंगल भागे॥
अमिय-बिलोकनि करि कृपा मुनिवर जब जोए।
तबतें राम अरु भरत लषन रिपुदवन, सुमुखि सखि! सकल सुवन सुख सोए॥
सुमित्रा लाय हिये फनि मनि ज्यों गोए।
तुलसी नेवछावरि करति मातु अति प्रेम-मगन मन, सजल सुलोचन कोए॥
मातु सकल, कुलगुरु-बधू, प्रिय सखी सुहाई।
सादर सब मंगल किए महि-मनि-महेस पर सबनि सुधेनु दुहाई॥
बोलि भूप भूसुर लिये अति बिनय बड़ाई।
पूजि पायँ सनमानि दान दिये लहि असीस सुनि बरषैं सुमन सुरसाई॥
घर घर पुर बाजन लगीं आनंद बधाई।
सुख सनेह तेहि समय को तुलसी जानै जाको चोर्यो है चित चहूँ भाई॥१२॥

राग धनाश्री

या सिसु के गुन नाम बड़ाई।
को कहि सकै सुनहु नरपति श्रीपति समान प्रभुताई॥
जद्यपि बुधि, बय, रूप, सील, गुन समय चारु चार्यो भाई।
तदपि लोक-लोचन-चकोर-ससि राम भगत-सुखदाई॥
सुर, नर, मुनि करि अभय दनुज हति हरिहि धरनि गरुआई।
कीरति बिमल बिस्व-अघमोचनि रहिहि सकल जग छाई॥
याके चरन-सरोज कपट तजि जे भजिहैं मन लाई।
ते कुल जुगल सहित तरिहैं भव, यह न कछू अधिकाई॥
सुनि गुरुबचन पुलक तन दंपति, हरष न हृदय समाई।
तुलसिदास अवलोकि मातु-मुख प्रभु मन में मुसुकाई॥ १३॥

राग बिलावल

अवध आजु आगमी एकु आयो।
करतल निरखि कहत सब गुनगन, बहुतन परिचौ पायो॥
बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो।
संग सिसुसिष्य, सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो॥
पाँय पखारि पूजि दियो आसन, असन बसन पहिराये।
मेले चरन चारु चार्यो सुत, माथे हाथ दिवायो॥

नखसिख बाल बिलोकि बिपतनु पुलक, नयन जल छायो।
लै लै गोद कमल-कर निरखत, उर प्रमोद न अमायो॥
जनम प्रसंग कह्यो कौसिक मिसि सीय स्वयंबर गायो।
राम, भरत, रिपुदवन, लखन को जय सुख सुजस सुनायो॥
तुलसिदास रनिवास रहसबस, भयो सबको मन भायो।
सनमान्यो महिदेव असीसत सानँद सदन सिधायो॥ १४॥

राग केदारा

पौढ़िये लालन, पालने हौं झुलावौं।
कर, पद, मुख, चख कमल लसत लखि लोचन-भँवर भुलावौं॥
बाल-बिनोद-मोद-मंजुलमनि किलकनि खानि खुलावौं।
तेइ अनुराग ताग गुहिबे कहँ मति मृगनयनि बुलावौं॥
तुलसी भनित भली भामिनि उर सो पहिराइ फुलावौं।
चारु चरित रघुबर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं॥ १५॥

सोइये लाल लाडिले रघुराई।
मगन मोद लिये गोद सुमित्रा बार बार बलि जाई॥
हँसे हँसत, अनरसे अनरसत प्रतिबिंबनि ज्यों झाँई।
तुम सबके जीवन के जीवन, सकल सुमंगलदाई॥
मूल मूल सुरबीथि-बेलि, तम-तोम-सुदल अधिकाई।
नखत-सुमन, नभ-बिटप बौंडि मानो छपा छिटकि छबि छाई॥
हौं जँभात अलसात, तात! तेरी बानि जानि मैं पाई।
गाइ गाइ हलराइ बोलिहौं सुख नींदरी सुहाई॥
बछरु छबीलो छगनमगन मेरे कहति मल्हाइ मल्हाई।
सानुज हिय हुलसति तुलसी के प्रभु की ललित लरिकाई॥ १६॥

ललन लोने लेरुआ, बलि मैया।
सुख सोइए नींद-बेरिया भई चारु-चरित चार्‌यो मैया॥
कहति मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया।
मोद-कंद कुल-कुमुद-चंद्र मेरे रामचंद्र रघुरैया॥
रघुबर बालकेलि संतन की सुभग सुभद सुरगैया।
तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया॥ १७॥

१४—आगमी = दैवज्ञ, ज्योतिषी।
१७—लेरुआ = बछड़ा। घैया = थन से निकलती हुई दूध की धार।

सुखनींद कहति आलि आइहौं।
राम, लखन, रिपुदवन, भरत सिसु करि सब सुमुख सोआइहौं॥
रोवनि, धोवनि, अनखानि, अनरसनि, डिठि-मुठि निठुर नसाइहौं।
हँसनि, खेलनि, किलकनि, आनंदनि भूपति-भवन बसाइहौं॥
गोद बिनोद मोदमय मूरति हरषि हरषि हलराइहौं।
तनु तिल तिल करि वारि राम पर लैहौं रोग बलाइ हौं॥
रानी राउ सहित सुत परिजन निरखि नयन-फल पाइहौं।
चारु चरित रघुबंस-तिलक के तहँ तुलसी मिलि गाइहौं॥ १८॥

राग आसावरी

कनक-रतन मय पालनो रच्यो मनहुँ मार सुतहार।
बिबिध खेलौना किंकिनी लागे मंजुल मुकुताहार॥
रघुकुल-मंडन राम लला॥ १॥
जननि उबटि अन्हवाइकै मनिभूषन सजि लिये गोद।
पौढ़ाए पटु पालने, सिसु निरखि मगन मन मोद॥
दसरथनंदन राम लला॥ २॥
मदन, मोर के चंद की झलकनि निदरति तनु-जोति।
नील कमल, मनि जलद की उपमा कहे लघु मति होति॥
मातु-सुकृत-फल राम लला॥ ३॥
लघु लघु लोहित ललित हैं पद, पानि, अधर एक रंग।
को कबि जो छबि कहि सकै नखसिख सुंदर सब अंग॥
परिजन-रंजन राम लला॥ ४॥
पग नूपुर, कटि किंकिनी, कर कंकन पहुँची मंजु।
हिय हरिनख अद्भुत बन्यो मानो मनसिज मनि-गन-गंजु॥
पुरजन-सिरमनि राम लला॥ ५॥
लोयन नील सरोज से, भ्रू पर मसि-बिंदु बिराज।
जनु बिधु-मुख-छबि-अमिय को रच्छक राखे रसराज॥
सोभासागर राम लला॥ ६॥

१८—डिठि मुठि = डीठ मूठ, नजर और टोना।
१९—१—सुतहार = खाट बीननेवाला, बढ़ई।
१९—६—मसिबिंदु = डिठौना।

गभुआरी अलकावली लसै, लटकन ललित ललाट ।
जनु उडुगन बिधु मिलन को चले तम बिदारि करि बाट ॥
सहज सोहावनो राम लला ॥ ७ ॥
देखि खेलौना किलकहीं पद पानि बिलोचन लोल ।
बिचित्र बिहँग अलि जलज ज्यौं सुखमा-सर करत कलोल ॥
भगत-कल्पतरु राम लला ॥ ८ ॥
बाल-बोल बिनु अरथ के सुनि देत पदारथ चारि ।
जनु इन्ह बचनन्हि तें भए सुरतरु तापस त्रिपुरारि ॥
नाम-कामधुक राम लला ॥ ९ ॥
सखी सुमित्रा वारहीं मनि भूषन बसन बिभाग ।
मधुर झुलाइ मल्हावहीं गावैं उमंगि उमंगि अनुराग ॥
हैं जग-मंगल राम लला ॥ १० ॥
मोती जायो सीप मैं अरु अदिति जन्यो जग-भानु ।
रघुपति जायो कौसिला गुन-मंगल-रूप-निधानु ॥
भुवन-बिभूषन राम लला ॥ ११ ॥
राम प्रगट जब तें भए गए सकल अमंगल मूल ।
मीत मुदित, हित उदित हैं, नित बैरिन के चित सूल ॥
भव-भय-भंजन राम लला ॥ १२ ॥
अनुज सखा सिसु संग लै खेलन जैहैं चौगान ।
लंका खरभर परैगी, सुरपुर बाजिहैं निसान ॥
रिपुगन-गंजन राम लला ॥ १३ ॥
राम अहेरे चलहिंगे जब गज रथ बाजि सँवारि ।
दसकंधर उर धकधकी अब जनि धावै धनु धारि ॥
अरि-करि-केहरि राम लला ॥ १४ ॥
गीत सुमित्रा सखिन्ह के सुनि सुनि सुर मुनि अनुकूल ।
दै असीस जय जय कहैं हरषैं बरषैं फूल ॥
सुर-सुखदायक राम लला ॥ १५ ॥
बालचरित-मय चंद्रमा यह सोरह-कला-निधान ।
चित चकोर तुलसी कियो कर प्रेम-अमिय-रस पान ॥
तुलसी को जीवन राम लला ॥ १६ ॥ १९ ॥

१९—७—गभुआरी=[सं० गर्भ, प्रा० गब्भ + प्र० आर] गर्भ अर्थात् पेट का
१९—९—कामधुक = कामधेनु ।

राग कान्हरा

पालने रघुपतिहिं झुलावै ।
लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै ॥
केकिकंठ दुति, स्यामबरन बपु, बाल-बिभूषन बिरचि बनाए ।
अलकैं कुटिल, ललित लटकन भ्रू, नील नलिन दोउ नयन सुहाए ॥
सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पदपल्लव लाए ।
मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सों सचु पाए ॥
उपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत ।
मनहुँ उभय अंभोज अरुन सों बिधु-भय बिनय करत अति आरत ॥
तुलसिदास बहु बास-बिबस अलि गुंजत सुछबि न जाति बखानी ।
मनहुँ सकल स्रुति ऋचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बरनत बर बानी ॥२०॥

राग बिलावल

झूलत राम पालने सोहैं ।
भूरि-भाग जननी जन जोहैं ॥
तन मृदु मंजुल मेचकताई ।
झलकति बाल बिभूषन झाँई ॥
अधर पानि पद लोहित लोने ।
सर-सिंगार-भव सारस सोने ॥
किलकत निरखि बिलोल खेलौना ।
मनहुँ बिनोद लरत छबि छौना ॥
रंजित अंजन कंज-बिलोचन ।
भ्राजत भाल तिलक गोरोचन ॥
लस मसिबिंदु बदन-बिधु नीको ।
चितवत चितचकोर तुलसी को ॥ २१ ॥

राग कल्याण

राजत सिसुरूप राम सकल गुन निकाय धाम,
कौतुकी कृपालु ब्रह्म जानु-पानि-चारी ।
नीलकंज जलदपुंज मरकतमनि सरिस स्याम,
काम कोटि सोभा अंग अँग उपर वारी ॥
हाटक-मनि-रत्न-खचित रचित इंद्र-मंदिराभ,
इंदिरानिवास सदन बिधि रच्यो सँवारी ।

बिहरत नृप-अजिर अनुज सहित बालकेलि कुसल,
नील-जलज-लोचन हरि मोचन-भयभारी।
अरुन चरन अंकुस धुज कंज कुलिस चिन्ह रुचिर,
भ्राजत अति नूपुर बर मधुर मुखरकारी।
किंकिनी बिचित्र जाल, कंबुकंठ ललित माल,
उर बिसाल केहरि नख, कंकन करधारी॥
चारु चिबुक नासिका कपोल, भाल तिलक, भृकुटि,
स्रवन अधर सुंदर, द्विज-छबि अनूप न्यारी।
मनहुँ अरुन कंज-कोस मंजुल जुगपाँति प्रसव,
कुंदकली जुगल जुगल परम सुभ्रवारी।
चिक्कन चिकुरावली मनो षडंघ्रि-मंडली,
बनी, बिसेषि गुंजत जनु बालक किलकारी।
इकटक प्रतिबिंब निरखि पुलकत हरि हरषि हरषि,
लै उछंग जननी रसभंग जिय बिचारी॥
जा कहँ सनकादि संभु नारदादि सुक मुनींद्र
करत बिबिध जोग काम क्रोध लोभ जारी।
दसरथ गृह सोइ उदार, भंजन संसार-भार,
लीला अवतार तुलसिदास त्रासहारी॥ २२॥

राग कान्हरा

आँगन फिरत घुटुरुवनि धाए।
नील-जलज-तनु-स्याम राम-सिसु जननि निरखि मुख निकट बोलाए॥ १॥
बंधुक-सुमन-अरुन पदपंकज अंकुस प्रमुख चिह्न बनि आए।
नूपुर जनु मुनिबर-कलहंसनि रचे नीड़, दै बाँह बसाए॥ २॥
कटि मेखल, बर हार, ग्रीव दर, रुचिर बाँह भूषन पहिराए।
उर श्रीवत्स मनोहर हरिनख हेम मध्य मनिगन बहु लाए॥ ३॥
सुभग चिबुक द्विज अधर नासिका स्रवन कपोल मोहि अति भाए।
भ्रू सुंदर करुनारस-पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जलजाए॥ ४॥

२२—जानु पानि-चारी = घुटनों के बल चलनेवाले। षडंघ्रि = षट्पद, भौंरा।
२३—२—नीड़ = घोंसला।
२३—४—जलजाए = जलजात, कमल।

भाल बिसाल ललित लटकन बर, बालदसा के चिकुर सोहाए।
मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए ॥५॥
उपमा एक अभूत भई तब जब जननी पट पीत ओढ़ाए।
नील जलद पर उडुगन निरखत तजि सुभाव मनो तड़ित छपाए ॥ ६ ॥
अंग अंग पर मार-निकर मिलि छबिसमूह लैलै जनु छाए।
तुलसिदास रघुनाथ-रूप-गुन तौ कहौं जो बिधि होहिं बनाए ॥ ७ ॥ २३ ॥

राग केदारा

रघुबर-बाल-छबि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव, कोटि-मनोज-सोभाहरनि ॥ १ ॥
बसी मानहुँ चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि।
रुचिर नूपुर किंकिनी मन हरति रुनझुनु करनि ॥ २ ॥
मंजु मेचक मृदुल तनु अनुहरति भूषन भरनि।
जनु सुभग सिंगार-सिसु-तरु फर्‌यो है अदभुत फरनि ॥ ३ ॥
भुजनि भुजग, सरोज नयननि, बदन बिधु जित्यो लरनि।
रहे कुहरनि, सलिल नभ उपमा अपर दुरि डरनि ॥ ४ ॥
लसत कर प्रतिबिंब मनि-आँगन घुटुरुवनि चरनि।
जलज-संपुट सुछबि भरि भरि धरति जनु उर धरनि ॥ ५ ॥
पुन्यफल अनुभवति सुतहि बिलोकि दसरथ घरनि।
बसति तुलसी-हृदय प्रभु किलकनि ललित लरखरनि ॥ ६ ॥ २४ ॥

नेकु बिलोकि धौं रघुबरनि।
चारि फल त्रिपुरारि तोको दिये कर नृप-घरनि ॥ १ ॥
बाल-भूषन-बसन, तन सुंदर रुचिर रजभरनि।
परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि, गिरि गिरि परनि ॥ २ ॥
झुकनि झाँकनि, छाँह सों किलकनि, नटनि, हठि लरनि।
तोतरी बोलनि, बिलोकनि मोहनी मनहरनि ॥ ३ ॥
सखि बचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासे ढरनि।
लेति भरि भरि अंक सैंतति पैंत जनु दुहुँ करनि ॥ ४ ॥
चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दै जलधरनि।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भए चहै तरनि ॥ ५ ॥ २५ ॥

२५—४—सैंतना=संचय और रक्षा करना। पैंत = दाँव में रखा हुआ द्रव्य।

राग जयतश्री

भूमितल भूप के बड़े भाग।
राम लषन रिपुदमन भरत सिसु निरखत अति अनुराग ॥ १ ॥
बाल-बिभूषन लसत पायँ मृदु मंजुल अंग-बिभाग।
दसरथ सुकृत-मनोहर-बिरवनि रूप-करह जनु लाग ॥ २ ॥
राजमराल बिराजत बिहरत जे हर-हृदय-तड़ाग।
ते नृप-अजिर जानुकर धावत धरन चटक चल काग ॥ ३ ॥
सिद्ध सिहात, सराहत मुनिगन कहैं सुर किन्नर नाग।
"है बरु बिहँग बिलोकिय बालक बसि पुर उपबन बाग" ॥ ४ ॥
परिजन सहित राय रानिन्ह कियो मज्जन प्रेम-प्रयाग।
तुलसी फल ताके चाख्यो मनि मरकत पंकजराग ॥ ५ ॥ २६ ॥

राग आसावरी

छँगन-मँगन अँगना खेलत चारु चार्यो भाई।
सानुज भरत लाल लषन राम लोने लोने,
लरिका लखि मुदित मातुसमुदाई ॥ १ ॥
बाल-बसन-भूषन धरे नखसिख छबि छाई।
नील पीत मनसिज-सरसिज मंजुल,
मालनि मानो है देहनि तें दुति पाई ॥ २ ॥
ठुमुकु ठुमुकु पग धरनि, नटनि, लरखरनि सुहाई।
भजनि मिलनि रूठनि टूठनि किलकनि,
अवलोकनि बोलनि बरनि न जाई ॥ ३ ॥
जननि सकल चहुँ ओर आलबाल मनि-अँगनाई।
दसरथ सुकृत-बिबुध-बिरवा बिलसत,
बिलोकि जनु बिधि बर बारि बनाई ॥ ४ ॥
हरि बिरंचि हर हेरि राम प्रेम-परबसताई।
सुख-समाज रघुराज के बरनत,
बिसुद्ध मन सुरनि सुमन झरि लाई ॥ ५ ॥

२६—२—करह = नया कल्ला।
२६—५—पंकजराग = पद्मराग, मानिक।
२७—४—बिबुध-बिरवा = कल्पवृक्ष।

सुमिरत श्रीरघुबरन की लीला लरिकाई ।
तुलसिदास अनुराग अवध आनँद,
अनुभवत तब को सो अजहुँ अघाई ॥ ६ ॥ २७ ॥

राग बिलावल

आँगन खेलत आनँदकंद ।
रघुकुल कुमुद सुखद चारु चंद ॥
सानुज भरत लषन सँग सोहैं ।
सिसु-भूषन भूषित मन मोहैं ॥
तन दुति मोरचंद जिमि झलकैं ।
मनहु उमँगि अंग अंग छबि छलकैं ॥ १ ॥
कटि किंकिनि, पग पैंजनि बाजैं ।
पंकज-पानि पहुँचियाँ राजैं ॥
कठुला कंठ बघनहा नीके ।
नयन-सरोज मयन-सरसी के ॥ २ ॥
लटकन लसत ललाट लटूरीं ।
दमकति द्वै द्वै दँतुरियाँ रूरीं ॥
मुनि-मन हरत मंजु मसि-बुंदा ।
ललित बदन, बलि, बालमुकुंदा ॥ ३ ॥
कुलही चित्र-बिचित्र झगूलीं ।
निरखत मातु मुदित मन फूलीं ॥
गहि मनि-खंभ डिंभ डगि डोलत ।
कलबल बचन तोतरे बोलत ॥ ४ ॥
किलकत झुकि झाँकत प्रतिबिंबनि ।
देत परम सुख पितु अरु अंबनि ॥
सुमिरत सुखमा हिय हुलसी है ।
गावत प्रेम पुलकि तुलसी है ॥ ५ ॥ २८ ॥

राग कान्हरा

ललित सुतहि लालति सचु पाए ।
कौसल्या कल कनक अजिर महँ सिखवति चलन अँगुरियाँ लाए ॥ १ ॥
कटि किंकिनी, पैंजनी पाँयनि बाजति रुनझुनु मधुर रेंगाए ।
पहुँची करनि, कंठ कठुला बन्यो केहरिनख-मनि-जरित जराए ॥ २ ॥

पीत पुनीत बिचित्र झँगुलिया सोहति स्याम सरीर सोहाए।
दँतियाँ द्वै द्वै मनोहर मुखछबि, अरुन अधर चित लेत चोराए॥ ३ ॥
चिबुक कपोल नासिका सुंदर, भाल तिलक मसिबिंदु बनाए।
राजत नयन मंजु अंजनजुत खंजन कंज मीन मद नाए॥ ४ ॥
लटकन चारु भ्रकुटिया टेढ़ी, मेढ़ी सुभग सुदेस सुभाए।
किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि, डरपति जननि पानि छुटकाए॥५॥
गिरि घुटुरुवनि टेकि उठि अनुजनि तोतरि बोलत पूप देखाए।
बाल-केलि अवलोकि मातु सब मुदित मगन आनँद न अमाए॥ ६ ॥
देखत नभ घन-ओट चरित मुनि जोग समाधि बिरति बिसराए।
तुलसिदास जे रसिक न एहि रस ते जन जड़ जीवत जग जाए॥७॥२९

राग ललित

छोटी छोटी गोड़ियाँ अँगुरियाँ छबीलीं छोटी,
नख-जोति मोती मानो कमल-दलनि पर।
ललित आँगन खेलैं, ठुमुकु ठुमुकु चलैं,
झुँझुनु झुँझुनु पाँय पैंजनी मृदु मुखर॥
किंकिनी कलित कटि हाटक-जटित मनि,
मंजु कर-कंजनि पहुँचियाँ रुचिरतर।
पियरी झीनी झँगुली साँवरे सरीर खुली,
बालक दामिनि ओढ़ी मानो बारे बारिधर॥ १ ॥
उर बघनहा, कंठ कठुला, झँडूले केस,
मेढ़ी लटकन मसिबिंदु मुनि मन-हर।
अंजन-रंजित नैन, चित चोरै चितवनि,
मुख-सोभा पर वारौं अमित असमसर॥
चुटकी बजावती नचावती कौसल्या माता,
बालकेलि गावति मल्हावति सुप्रेम-भर।
किलकि किलकि हँसैं, द्वै द्वै दँतुरियाँ लसैं,
तुलसी के मन बसैं तोतरे बचन बर॥ २ ॥ ३० ॥

सादर सुमुखि बिलोकि राम-सिसुरूप, अनूप भूप लिए कनियाँ।
सुंदर स्याम-सरोज-बरन तनु, नखसिख सुभग सकल सुखदनियाँ॥ १ ॥
अरुन चरन नखजोति जगमगति, रुनुझुनु करति पाँय पैंजनियाँ।
कनक-रतन-मनि-जटित रटति कटि किंकिनि, कलित पीतपट-तनियाँ॥२

पहुँची करनि, पदिक हरिनख उर, कठुला कंठ, मंजु गजमनियाँ।
रुचिर चिबुक, रद अधर मनोहर, ललित नासिका लसति नथुनियाँ॥३॥
बिकट भृकुटि सुखमानिधि आनन कल कपोल कानन नगफनियाँ।
भाल तिलक मसिबिंदु बिराजत, सोहति सीस लाल चौतनियाँ॥४॥
मनमोहनी तोतरी बोलनि, मुनिमनहरनि हँसनि किलकनियाँ।
बाल सुभाय बिलोल बिलोचन, चोरति चितहि चारु चितवनियाँ॥५॥
सुनि कुलबधू झरोखनि झाँकति रामचंद्र-छबि चंदबदनियाँ।
तुलसिदास प्रभु देखि मगन भई प्रेमबिबस कछु सुधि न अपनियाँ॥६॥३१॥

राग बिलावल

सोहत सहज सुहाए नैन।
खंजन मीन कमल सकुचत तब जब उपमा चाहत कबि दैन॥१॥
सुंदर सब अंगनि सिसु-भूषन राजत जनु सोभा आए लैन।
बड़ो लाभ, लालची लोभ बस रहि गए लखि सुखमा बहु मैन॥२॥
भोर भूप लिए गोद मोद भरे, निरखत बदन, सुनत कल बैन।
बालक-रूप अनूप राम-छबि निवसति तुलसिदास-उर-ऐन॥३॥३२॥

राग बिभास

भोर भयो जागहु, रघुनंदन!
गत-व्यलीक, भगतनि-उर-चंदन॥
ससि करहीन, छीन दुति तारे।
तमचुर मुखर, सुनहु मेरे प्यारे!॥
बिकसित कंज, कुमुद बिलखाने।
लै पराग रस मधुप उड़ाने॥
अनुज सखा सब बोलन आए।
बंदिन्ह अति पुनीत गुन गाए॥
मनभावतो कलेऊ कीजै।
तुलसिदास कहँ जूठनि दीजै॥३३॥
प्रात भयो तात, बलि, मातु, बिधु बदन पर
मदन बारौं कोटि, उठौ प्रानप्यारे!।
सूत मागध बंदि बदत बिरुदावली,
द्वार सिसु-अनुज प्रियतम तिहारे।

३३—व्यलीक=कपट।

कोक गतसोक अवलोकि ससि छीनछवि,
अरुनमय गगन राजत रुचिर तारे।
मनहुँ रविबाल-मृगराज तमनिकर-करि
दलित, अति ललित मनिगन बिथारे।
सुनहु तमचुर मुखर, कीर कलहंस पिक
केकि रव कलित, बोलत बिहंग बारे॥ ३४॥
मनहुँ मुनिबृंद, रघुबंसमनि! रावरे
गुनत गुन आस्रमनि सपरिवारे।
सरनि बिकसित कंजपुंज मकरंद बर,
मंजुतर मधुर मधुकर गुँजारे।
मनहुँ प्रभुजन्म सुनि चैन अमरावती,
इंदिरानंद मंदिर सँवारे।
प्रेम-संमिलित बर बचन-रचना अकनि
राम राजीव-लोचन उघारे।
दास तुलसी मुदित, जननि करै आरती
सहज सुंदर अजिर पाँव धारे॥ ३५॥
जागिए कृपानिधान जानराय रामचंद्र!
जननी कहै बार बार भोर भयो प्यारे।
राजिव-लोचन बिसाल, प्रीति-बापिका मराल,
ललित कमल-बदन ऊपर मदन कोटि वारे॥
अरुन उदित, बिगत सर्वरी, ससांक किरनहीन
दीन दीपजोति, मलिन-दुति समूह तारे।
मनहुँ ज्ञान घन प्रकास, बीते सब भव-बिलास
आसत्रास-तिमिर तोष-तरनि-तेज जारे॥
बोलत खगनिकर मुखर मधुर-करि प्रतीति
सुनहु स्रवन, प्रानजीवन धन, मेरे तुम बारे।
मनहु बेद बंदी मुनिबृंद सूत मागधादि बिरुद
बदत 'जय जय जय जयति कैटभारे'॥
बिकसित कमलावली, चले प्रपुंज चंचरीक
गुंजत कल कोमल धुनि त्यागि कंज न्यारे।
जनु बिराग पाइ सकल-सोक-कूप-गृह बिहाइ
भृत्य प्रेममत्त फिरत गुनत गुन तिहारे॥

सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,
भागे जंजाल बिपुल, दुख-कदंब टारे।
तुलसिदास अति अनंद देखिकै मुखारबिंद,
छूटे भ्रमफंद परम मंद द्वंद भारे॥ ३६॥

बोलत अवनिप-कुमार ठाढ़े नृपभवन-द्वार,
रूपसील-गुन उदार जागहु मेरे प्यारे।
बिलखित कुमुदिनि, चकोर, चक्रवाक हरष भोर,
करत सोर तमचुर खग, गुंजत अलि न्यारे॥
रुचिर मधुर भोजन करि, भूषन सजि सकल अंग,
संग अनुज बालक सब बिबिध बिधि सँवारे।
करतल गहि ललित चाप भंजन रिपु-निकर-दाप,
कटितट पटपीत, तून सायक अनियारे॥
उपवन मृगया-बिहार-कारन गवने कृपाल,
जननी मुख निरखि पुन्यपुंज निज बिचारे।
तुलसिदास संग लीजै, जानि दीन अभय कीजै
दीजै मति बिमल गावै चरित बर तिहारे॥ ३७॥

राग नट

खेलन चलिये आनँदकंद।
सखा प्रिय नृपद्वार ठाढ़े बिपुल बालक-बृंद॥ १॥
तृषित तुम्हरे दरस कारन चतुर चातक-दास।
बपुष-बारिद बरषि छबि-जल हरहु लोचन-प्यास॥ २॥
बंधु-बचन बिनीत सुनि उठे मनहुँ केहरि-बाल।
ललित लघु सर चाप कर, उर नयन बाहु बिसाल॥ ३॥
चलत पद प्रतिबिंब राजत अजिर सुखमा-पुंज।
प्रेमबस प्रति चरन महि मानो देति आसन कंज॥ ४॥
निरखि परम बिचित्र सोभा चकित चितवहिं मात।
हरष-बिबस न जात कहि, 'निज भवन बिहरहु, तात'॥ ५॥
देखि तुलसीदास प्रभु-छबि रहे सब पल रोकि।
थकित निकर-चकोर मानहुँ सरदइंदु बिलोकि॥ ६॥ ३८॥

३६—कदंब = समूह।

बिहरत अवध-बीथिन राम।
संग अनुज अनेक सिसु नव-नील-नीरद-स्याम॥ १॥
तरुन अरुन-सरोज-पद बनी कनकमय पदत्रान।
पीत पट कटि तून बर, कर ललित लघु धनु बान॥ २॥
लोचननि को लहत फल छबि निरखि पुर-नर-नारि।
बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि॥ ३॥ ३९॥

जैसे राम ललित तैसे लोने लषन लालु।
तैसेई भरत सील-सुखमा-सनेह-निधि तैसेई सुभग संग सत्रुसालु॥ १॥
धरे धनु सर कर, कसे कटि तरकसी, पीरे पट ओढ़े चले चारु चालु।
अंग अंग भूषन जराय के जगमगत, हरत जन के जी को तिमिरजालु॥ २॥
खेलत चौहट हाट बीथी बाटिकनि प्रभु सिव सुप्रेम-मानस-मरालु।
सोभा-दान दै दै सनमानत जाचकजन करत लोक-लोचन निहालु॥ ३॥
भगत-दुरित-दुख दलैं सुर कहैं आजु 'अवध सकल सुख को सुकालु'।
तुलसी सराहैं सिद्ध सुकृत कौसल्या जू के, भूरि-भाग-भाजन भुआलु॥ ४॥ ४०॥

राग ललित

ललित ललित लघु लघु धनु सर कर,
तैसी तरकसी, कटि कसे पट पियरे।
ललित पनही पाँय पैंजनी-किंकिनि-धुनि,
सुनि सुख लहैं मनु रहैं नित नियरे॥
पहुँची अंगद चारु, हृदय पदिक हारु,
कुंडल-तिलक-छबि गड़ी कबि जियरे।
सिरसि टिपारो लाल, नीरज-नयन बिसाल,
सुंदर बदन ठाढ़े सुरतरु सियरे॥
सुभग सकल अंग, अनुज बालक संग,
देखि नर-नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे।
खेलत अवध खोरि, गोली भौंरा चक डोरि,
मूरति मधुर बसै तुलसी के हियरे॥ ४१॥
छोटिऐ धनुहियाँ, पनहियाँ पगनि छोटी,
छोटिऐ कछौटी कटि, छोटिऐ तरकसी।

४१—टिपारा = ऊँची दीवार की टोपी के आकार का मुकुट। दियरा = बड़ा सा लुक जो शिकारी हिरनों को आकर्षित करने के लिए जलाते हैं।

लसत अँगुली झीनी, दामिनि की छवि छीनी,
सुंदर बदन, सिर पगिया जरकसी ॥
बय-अनुरूप बिभूषन बिचित्र अंग,
जोहे जिय आवति सनेह की सरक सी ।
मूरति की सूरति कही न परै तुलसी पै,
जानै सोई जाके उर कसकै करक सी ॥ ४२ ॥

राग टोड़ी

राम लषन इक ओर, भरत रिपुदवन लाल इक ओर भये ।
सरजुतीर सम सुखद भूमि-थल, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये ॥
कंदुक-केलि-कुसल हय चढ़ि चढ़ि, मन कसि कसि, ठोंकि ठोंकि खये ।
कर-कमलनि बिचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये ॥
व्योम बिमाननि बिबुध बिलोकत खेलक पेखक छाँह छये ।
सहित समाज सराहि दसरथहि बरषत निज तरु कुसुम चये ॥
एक लै बढ़त, एक फेरत, सब प्रेम-प्रमोद-बिनोद-मये ।
एक कहत भइ हारि राम जू की, एक कहत भइया भरत जये ॥
प्रभु बकसत गज बाजि बसन मनि, जय-धुनि गगन निसान हये ।
पाइ सखा सेवक जाचक भरि जनम न दुसरे द्वार गए ॥
नभ-पुर परति निछावरि जहँ तहँ, सुर सिद्धनि बरदान दये ।
भूरि-भाग अनुराग उमँगि जे गावत सुनत चरित्र नित ये ॥
हारे हरष होत हिय भरतहि, जिते सकुच सिर नयन नए ।
तुलसी सुमिरि सुभाव सील सुकृती तेइ जे एहि रंग-रए ॥ ४३ ॥

खेलि खेल सुखेलनिहारे ।
उतरि उतरि चुचुकारि तुरंगनि सादर जाइ जोहारे ॥ १ ॥
बंधु सखा सेवक सराहि सनमानि सनेह सँभारे ।
दिए बसन गज बाजि साजि सुभ साज सुभाँति सँवारे ॥ २ ॥
मुदित नयन-फल पाइ, गाइ गुन सुर सानंद सिधारे ।
सहित समाज राजमंदिर कहँ राम राउ पगु धारे ॥ ३ ॥
भूप-भवन घरघर घमंड, कल्यान कोलाहल भारे ।
निरखि हरषि आरती निछावरि करत सरीर बिसारे ॥ ४ ॥

४२—सरक = शराब या शराब का खुमार ।
४३—खये = बाहुमूल ।

नित नए मंगल मोद अवध सब, सब बिधि लोग सुखारे ।
तुलसी तिन्ह सम तेउ जिन्हके प्रभु तें प्रभु-चरित पियारे ॥ ५ ॥ ४४ ॥

राग सारंग

चहत महामुनि जाग जयो ।
नीच निसाचर देत दुसह दुख, कृस तनु ताप तयो ॥ १ ॥
आपे पाप, नये निदरत खल, तब यह मंत्र ठयो ।
बिप्र-साधु-सुर-धेनु-धरनि-हित हरि अवतार लयो ॥ २ ॥
सुमिरत श्रीसारंगपानि छन में सब सोच गयो ।
चले मुदित कौसिक कोसलपुर, सगुननि साथ दयो ॥ ३ ॥
करत मनोरथ जात पुलकि, प्रगटत आनंद नयो ।
तुलसी प्रभु अनुराग उमगि मग मंगल-मूल भयो ॥ ४ ॥ ४५ ॥

आजु सकल सुकृत फलु पाइहौं ।
सुख की सींव, अवधि आनंद की, अवध बिलोकि हौं पाइहौं ॥ १ ॥
सुतनि सहित दसरथहि देखिहौं, प्रेम पुलकि उर लाइहौं ।
रामचंद्र-मुखचंद्र-सुधा-छबि नयन-चकोरनि प्याइहौं ॥ २ ॥
सादर समाचार नृप बूझिहैं, हौं सब कथा सुनाइहौं ।
तुलसी ह्वै कृतकृत्य आस्रमहि राम लषन लै आइहौं ॥ ३ ॥ ४६ ॥

राग नट

देखि मुनि ! रावरे पद आज ।
भयो प्रथम गनती में अब तें हौं जहँ लौं साधु-समाज ॥ १ ॥
चरन बंदि कर जोरि निहोरत, "कहिय कृपा करि काज ।
मेरे कछु न अदेय राम बिनु, देह गेह सब राज" ॥ २ ॥
भली कही भूपति-त्रिभुवन में को सुकृती सिरताज ?
तुलसि राम-जनमहि तें जानियत सकल सुकृत को साज ॥ ३ ॥ ४७ ॥

राजन ! राम लषन जौं दीजे ।
जस रावरो, लाभ ढोटनिहूँ, मुनि सनाथ सब कीजै ॥ १ ॥
डरपत हौं साँचे सनेह-बस सुत-प्रभाव बिनु जाने ।
बूझिय बामदेव अरु कुलगुरु, तुम पुनि परम सयाने ॥ २ ॥
रिपु रन दलि, मख राखि, कुसल अति अलप दिननि घर ऐहैं ।
तुलसिदास रघुबंस-तिलक की कबिकुल कीरति गैहैं ॥ ३ ॥ ४८ ॥

४५—जयो = यजन किया ।

रहे ठगिसे नृपति सुनि मुनिबर के बयन।
कहि न सकत कछु, राम-प्रेम-बस पुलक गात भरे नीर नयन ॥ १ ॥
गुरु बसिष्ठ समुझाय कह्यो तब हिय हरषाने जाने सेष-सयन।
सौंपे सुत गहि पानि पाँय परि, भूसुर उर चले उमगि चयन ॥ २ ॥
तुलसी प्रभु जोहत पोहत चित, सोहत मोहत कोटि मयन।
मधु माधव मूरति दोउ संग मानो दिनमनि गवन कियो उतर अयन ॥ ३ ॥ ४९ ॥

राग मारू

रिषि सँग हरषि चले दोउ भाई।
पितु-पद बंदि सीस लियो आयसु सुनि सिष आसिष पाई ॥ १ ॥
नील पीत पाथोज-बरन बपु, बय किसोर बनि आई।
सर धनु पानि, पीत पट कटितट कसे निषंग बनाई ॥ २ ॥
ललित कंठ मनि-माल, कलेवर चंदन खौरि सुहाई।
सुंदर बदन, सरोरुह-लोचन, मुखछबि बरनि न जाई ॥ ३ ॥
पल्लव पंख सुमन सिर सोहत, क्यों कहौं बेष लुनाई।
मनु मूरति धरि उभय भाग भइ त्रिभुवन सुंदरताई ॥ ४ ॥
पैठत सरनि, सिलनि चढ़ि चितवत खग-मृग-बन-रुचिराई।
सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि पुनि पुनि लेत बलाई ॥ ५ ॥
एक तीर तकि हती ताड़का, बिद्या बिप्र पढ़ाई।
राख्यो जज्ञ जीति रजनीचर, भइ जग बिदित बड़ाई ॥ ६ ॥
चरन-कमल-रज-परस अहल्या निज पति-लोक पठाई।
तुलसिदास प्रभु के बूझे मुनि सुरसरि कथा सुनाई ॥ ७ ॥ ५० ॥

राग नट

दोउ राज-सुवन राजत मुनि के संग।
नखसिख लोने, लोने बदन, लोने लोयन दामिनि-बारिद-बरबरन अंग ॥ १ ॥
सिरनि सिखा सुहाइ, उपबीत पीट पट, धनु सर कर, कसे कटि निषंग।
मानो मख-रुज-निसिचर हरिबे को सुत पावक के साथ पठए पतंग ॥ २ ॥
करत छाँह घन, बरषैं सुमन सुर, छबि बरसत अतुलित अनंग।
तुलसी प्रभु बिलोकि मग-लोग, खग-मृग प्रेम मगन रँगे रूप रंग ॥ ३ ॥ ५१ ॥

५१—पतंगसुत = सूर्य के पुत्र अश्विनीकुमार।

राग कल्याण

मुनि के संग बिराजत बीर ।
काकपच्छ धर, कर कोदंड सर, सुभग पीतपट कटि तूनीर ॥ १ ॥
बदन इंदु, अंभोरुह लोचन, स्याम गौर सोभा-सदन सरीर ।
पुलकत ऋषि अवलोकि अमित छबि, उर न समाति प्रेम की भीर ॥ २ ॥
खेलत चलत करत मग कौतुक बिलंबत सरित-सरोबर-तीर ।
तोरत लता सुमन सरसीरुह, पियत सुधा सम सीतल नीर ॥ ३ ॥
बैठत बिमल सिलनि बिटपनि तर, पुनि पुनि बरनत छाँह समीर ।
देखत नटत केकि, कल गावत मधुप मराल कोकिला कीर ॥ ४ ॥
नयननि को फल लेत निरखि खग मृग सुरभी ब्रजबधू अहीर ।
तुलसी प्रभुहि देत सब आसन निज निज मन-मृदु-कमल-कुटीर ॥ ५ ॥ ५२ ॥

राग कान्हरा

मोहत मग मुनि संग दोउ भाई ।
तरुन तमाल चारु चंपक-छबि कबि सुभाय कहि जाई ॥ १ ॥
भूषन बसन अनुहरत अंगनि, उमगति सुंदरताई ।
बदन-सरोज सरोज-लोचननि रही है लुभाइ लुनाई ॥ २ ॥
अंसनि धनु, सर कर-कमलनि, कटि कसे हैं निखंग बनाई ।
सकल-भुवन-सोभा-सरबसु लघु लागति निरखि निकाई ॥ ३ ॥
महि मृदु पथ, घन छाँह, सुमन सुर बरषि, पवन सुखदाई ।
जल-थल-रुह फल फूल सलिल सब करत प्रेम पहुनाई ॥ ४ ॥
सकुच सभीत बिनीत साथ गुरु बोलनि चलनि सुहाई ।
खग मृग चित्र बिलोकत बिच बिच, लसति ललित लरिकाई ॥ ५ ॥
बिद्या दई जानि बिद्यानिधि, बिद्यहु लही बड़ाई ।
ख्याल दली ताड़का, देखि ऋषि देत असीस अघाई ॥ ६ ॥
बूझत प्रभु सुरसरि प्रसंग कहि निज-कुल-कथा सुनाई ।
गाधिसुवन-सनेह-सुख-संपति उर-आस्रम न समाई ॥ ७ ॥
बनबासी बटु जती जोगि-जन साधु सिद्ध-समुदाई ।
पूजत पेखि प्रीति पुलकत तनु, नयन लाभ लुटि पाई ॥ ८ ॥

५२—नटत = नाचते हैं । ब्रज = अहीरों का टोल या बाड़ा ।
५३—अंसनि = कंधों पर ।
५३—५—चित्र = रंग बिरंग ।

मख राख्यो खलदल दलि भुजबल, बाजत बिबुध बधाई ।
नित पथ-चरित-सहित तुलसी-चित बसत लखन रघुराई ॥६॥५३॥

मंजुल मंगलमय नृप-ढोटा ।
मुनि, मुनितिय, मुनिसिसु बिलोकि कहैं मधुर मनोहर जोटा ॥ १ ॥
नाम-रूप-अनुरूप बेष बय, राम लखन लाल लोने ।
उन्हतें लही है मानो घन दामिनि दुति मनसिज मरकत सोने ॥२॥
चरन-सरोज, पीतपट कटितट, तून-तीर-धनुधारी ।
नाहरिकंध, काम-करि-करवर बिपुल बाहु, बल भारी ॥ ३ ॥
दूषन-रहित समय सम भूषन पाइ सुअंगनि सोहै ।
नव-राजीव-नयन, पूरन-बिधुबदन मदन मन मोहै ॥ ४ ॥
सिरनि सिखंड, सुमन-दल-मंडन बाल सुभाय बनाए ।
केलि-अंक तनु रेनु पंक जनु प्रगटत चरित चोराए ॥ ५ ॥
मख राखिबे लागि दसरथ सों माँगि आस्रमहि आने ।
पाय पूजि पाहुने प्रानप्रिय गाधिसुवन सनमाने ॥ ६ ॥
साधन-फल साधक सिद्धनि के, लोचन-फल सबही के ।
सकल सुकृत-फल मातु पिता के, जीवनधन तुलसी के ॥ ७ ॥ ५४ ॥

राग सूहो

रामपद-पदुम-पराग परी ।
ऋषितिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छबिमय देह धरी ॥ १ ॥
प्रबल पाप पति-साप-दुसह-दव दारुन जरनि जरी ।
कृपा-सुधा सिंचि बिबुध बेलि ज्यों फिरि सुख-फरनि फरी ॥ २ ॥
निगम-अगम मूरति महेस-मति-जुबति बराय बरी ।
सोइ मूरति भइ जानि नयनपथ इकटक तें न टरी ॥ ३ ॥
बरनति हृदय सरूप सील गुन प्रेम-प्रमोद-भरी ।
तुलसिदास अस केहि आरत की आरति प्रभु न हरी ? ॥ ४ ॥ ५५ ॥

परत पद-पंकज-रज ऋषि-रवनी ।
भई है प्रगट अति दिव्य देह धरि मानो त्रिभुवन-छबि-छवनी ॥१॥

५४—सिखंड = मोरपक्ष । केलिअंक......चुराए = खेल के चिह्न स्वरूप जो धूल और कीचड़ शरीर में लगा है वह मानो उस चरित्र को प्रकट करता है जो विश्वामित्र से चुरा कर किया गया ।

देखि बड़ो आचरज पुलकि तनु कहति मुदित मुनि-भवनी।
जो चलिहैं रघुनाथ पयादेहि सिला न रहिहि अवनी ॥ २ ॥
परसि जो पाँय पुनीत सुरसरि सोहै तीनि-पथ-गवनी।
तुलसिदास तेहि चरन-रेनु की महिमा कहै मति कवनी ॥३॥५६॥

भूरिभाग-भाजनु भई।
रूपरासि अवलोकि बंधु दोउ पेम-सुरंग रई ॥ १ ॥
कहा कहै केहि भाँति सराहै नहिं करतूति नई।
बिनु कारन करुनाकर रघुबर केहि केहि गति न दई ? ॥ २ ॥
करि बहु बिनय, राखि उर मूरति मंगल-मोदमई।
तुलसी ह्वै बिसोक पति-लोकहि प्रभुगुन गनत गई ॥ ३ ॥ ५७ ॥

राग कान्हरा

कौसिक के मख के रखवारे।
नाम राम अरु लखन ललित अति दसरथ-राज-दुलारे ॥ १ ॥
मेचक पीत कमल कोमल कल काकपच्छ-धर बारे।
सोभा सकल सकेलि मदन-बिधि सुकर सरोज सँवारे ॥ २ ॥
सहस समूह सुबाहु सरिस खल समर सूर भट भारे।
केलि-तून-धनु-बान-पानि रन निदरि निसाचर मारे ॥ ३ ॥
ऋषितिय तारि स्वयंबर पेखन जनक-नगर पगु धारे।
भए नरनारि निहारत सादर कहैं बड़ भाग हमारे ॥ ४ ॥
तुलसी सुनत एक एकनि सों चलत बिलोकनिहारे।
मूकनि बचन-लाहु, मानो अंधनि लहे हैं बिलोचन-तारे ॥५॥५८॥

राग टोड़ी

आए सुनि कौसिक जनक हरषाने हैं।
बोलि गुरु भूसुर समाज सों मिलन चले,
जानि बड़े भाग अनुराग अकुलाने हैं ॥ १ ॥
नाइ सीस पगनि, असीस पाइ प्रमुदित
पाँवड़े अरघ देत आदर सों आने हैं।
असन बसन बास के सुपास सब बिधि,
पूजि प्रिय पाहुने, सुभाय सनमाने हैं ॥ २ ॥
बिनय बड़ाई ऋषि-राजऊ परसपर
करत पुलकि प्रेम आनँद अघाने हैं।

देखे राम लखन निमेषैं बिथकित भईं;
प्रानहुँ ते प्यारे लागे बिनु पहिचाने हैं ॥ ३ ॥
ब्रह्मानंद हृदय, दरस-सुख लोयननि
अनुभए उभय, सरस राम जाने हैं ।
तुलसी बिदेह की सनेह की दसा सुमिरि
मेरे मन माने राउ निपट सयाने हैं ॥ ४ ॥ ५९ ॥

राग मलार

कोसलराय के कुअँर ढोटा ।
राजत रुचिर जनक-पुर पैठत स्याम गौर नीके जोटा ॥ १ ॥
चौतनि सिरनि, कनक-कली काननि, कटि पट पीत सोहाए ।
उर मनि-माल, बिसाल बिलोचन, सीय-स्वयंबर आए ॥ २ ॥
बरनि न जात, मनहि मन भावत, सुभग अबहि बय थोरी ।
भई है मगन बिधुबदन बिलोकत ललिता नगर चकोरी ॥ ३ ॥
कहैं सिवचाप लरिकवनि बूझत बिहँसि चितै तिरछौंहैं ।
तुलसी गलिन भीर, दरसन लगि लोग अटनि आरोहैं ॥ ४ ॥ ६० ॥

ये अवधेस के सुत दोऊ ।
चढ़ि मंदिरनि बिलोकत सादर जनक-नगर सब कोऊ ॥ १ ॥
स्याम गौर सुंदर किसोर तनु, तून-बान-धनुधारी ।
कटि पट पीत, कंठ मुकुतामनि, भुज बिसाल, बलभारी ॥ २ ॥
मुखमयंक, सरसीरुह-लोचन, तिलक भाल टेढ़ी भौंहैं ।
कल कुंडल, चौतनी चारु अति, चलत मत्त-गज गौं हैं ॥ ३ ॥
बिस्वामित्र हेतु पठए नृप, इनहि ताड़का मारी ।
मख राख्यो रिपु जीति जान जग, मग मुनिबधू उधारी ॥ ४ ॥
प्रिय पाहुने जानि नरनारिन नयननि अयन दए ।
तुलसिदास प्रभु देखि लोग सब जनक समान भए ॥ ५ ॥ ६१ ॥

५९—४—सरस = बढ़कर ।

६१—गौं = ढब, चाल । जनक समान = पिता ।

राग टोड़ी

बूझत जनक 'नाथ ढोटा दोउ काके हैं' ?
तरुन तमाल-चारु-चंपक-बरन-तनु,
कौन बड़े भागी के सुकृत परिपाके हैं ॥ १ ॥
सुख के निधान पाए, हिय के पिधान लाए,
ठग के से लाड़ खाए, प्रेम-मधु छाके हैं ।
स्वारथ-रहित परमारथी कहावत हैं,
भे सनेह-बिबस बिदेहता बिवाके हैं ॥ २ ॥
सील-सुधा के अगार, सुखमा के पारावार,
पावत न पैरि पार पैरि पैरि थाके हैं ।
लोचन ललकि लागे, मन अति अनुरागे,
एक रसरूप चित सकल सभा के हैं ॥ ३ ॥
जिय जिय जोरत सगाई राम लषन सों
आपने आपने भाय जैसे भाय जाके हैं ।
प्रीति को, प्रतीति को, सुमिरिबे को,
सेइबे को, सरन को समरथ तुलसिहु ताके हैं ॥ ४ ॥ ६२ ॥

ए कौन, कहाँ तें आए ?
नील-पीत-पाथोज-बरन, मन-हरन सुभाय सुहाए ॥ १ ॥
मुनिसुत किधौं भूप-बालक, किधौं ब्रह्म-जीव जग जाए ।
रूप-जलधि के रतन सुछबि तिय लोचन ललित ललाए ॥ २ ॥
किधौं रबि-सुवन, मदन ऋतुपति, किधौं हरि हर बेष बनाए ।
किधौं आपने सुकृत-सुरतरु के सुफल रावरेहि पाए ॥ ३ ॥
भए बिदेह बिदेह नेहबस देहदसा बिसराए ।
पुलक गात, न समात हरष हिय, सलिल सुलोचन छाए ॥ ४ ॥
जनक-बचन मृदु मंजु मधु-भरे-भगति कौसिकहि भाए ।
तुलसी अति आनंद उमँगि उर राम लषन गुन गाए ॥ ५ ॥ ६३ ॥

कौसिक कृपालु हू को पुलकित तनु भो ।
उमँगत अनुराग, सभा के सराहे भाग,
देखि दसा जनक की कहिबे को मनु भो ॥ १ ॥
प्रीति के न पातकी, दिएहूँ साप पाप बड़ो,
मख-मिस मेरो तब अवध गवनु भो ।

६२—बिवाके = बेबाक़ किया, छोड़ा ।

प्रानहूँ ते प्यारे सुत माँगे दिए दसरथ,
सत्यसिंधु सोच सहे, सूनो सो भवनु भो ॥ २ ॥
काकसिखा सिर, कर केलि-तून-धनु-सर
बालक-बिनोद जातुधाननि सों रनु भो ।
बूझत बिदेह अनुराग-आचरज-बस,
ऋषिराज-जाग भयो महाराज अनुभो ॥ ३ ॥
भूमिदेव नरदेव सचिव परसपर
कहत हमहिं सुरतरु सिवधनु भो ।
सुनत राजा की रीति, उपजी प्रतीति प्रीति,
भाग तुलसी के, भले साहेब को जनु भो ॥ ४ ॥ ६४ ॥

चार्यो भले बेटा देव दसरथ राय के ।
जैसे राम-लषन भरत-रिपुहन तैसे,
सील सोभा सागर प्रभाकर प्रभाय के ॥ १ ॥
ताडुका सँहारि मख राखे, नीके पाले व्रत,
कोटि कोटि भट किए एक एक घाय के ।
एक बान बेगही उड़ाने जातुधान जात,
सूखि गए गात हैं पतौआ भए बाय के ॥ २ ॥
सिलाछोर छुवत अहल्या भई दिव्य देह,
गुन पेखे पारस के पंकरुह पाय के ।
राम के प्रसाद गुरु गोतम खसम भए,
रावरेहु सतानंद पूत भये माय के ॥ ३ ॥
प्रेम-परिहास-पोख-बचन परसपर
कहत सुनत सुख सबही सुभाय के ।
तुलसी सराहैं भाग कौसिक जनक जू के,
बिधि के सुढर होत सुढर सुदाय के ॥ ४ ॥ ६५ ॥

ए दोऊ दसरथ के बारे ।
नाम राम घनस्याम, लषन लघु नखसिख अँग उजियारे ॥ १ ॥
निज हित लागि माँगि आने मैं धर्मसेतु-रखवारे ।
धीर बीर बिरुदैत बाँकुरे महाबाहु बल भारे ॥ २ ॥

६४—प्रीति के न पातकी = यज्ञ में विघ्न करनेवाले पातकी राक्षस प्रीति के पात्र नहीं थे ।

एक तीर तकि हती ताड़ुका, किए सुर साधु सुखारे।
जज्ञ राखि जग साखि, तोषि ऋषि, निदरि निसाचर मारे ॥ ३ ॥
मुनितिय तारि स्वयंबर पेखन आए सुनि बचन तिहारे।
एउ देखिहैं पिनाकु नेकु जेहि नृपति लाज-ज्वर जारे ॥ ४ ॥
सुनि सानंद सराहि सपरिजन बारहि बार निहारे।
पूजि सप्रेम प्रसंसि कौसिकहिं भूपति सदन सिधारे ॥ ५ ॥
सोचत सत्य-सनेह-बिबस निसि नृपहिं गनत गए तारे।
पठए बोलि भोर गुरु के सँग रंगभूमि पगु धारे ॥ ६ ॥
नगर लोग सुधि पाइ मुदित सबहीं सब काज बिसारे।
मनहुँ मघा-जल उमगि उदधि-रुख चले नदी नद नारे ॥ ७ ॥
ए किसोर, धनु घोर बहुत, बिलखात बिलोकनिहारे।
टर्‌यो न चाप तिन्हते जिन्ह सुभटनि कौतुक कुधर उखारे ॥ ८ ॥
ए जाने बिनु जनक जानियत करि पन भूप हँकारे।
नतरु सुधासागर परिहरि कत कूप खनावत खारे ॥ ९ ॥
सुखमा सील सनेह सानि मानो रूप बिरंचि सँवारे।
रोम रोम पर सोम काम सत कोटि बारि फेरि डारे ॥ १० ॥
कोउ कहै तेज प्रताप पुंज चितए नहि जात, भिया रे!
छुअत सरासन-सलभ जरैगो ये दिनकर-बंस-दिया रे ॥ ११ ॥
एक कहै कछु होउ सुफल भए जीवन जनम हमारे।
अवलोके भरि नयन आजु तुलसी के प्रानपियारे ॥ १२ ॥ ६६ ॥

जनक बिलोकि बार बार रघुबर को।
मुनिपद सीस नाय आयसु असीस पाई,
एई बातैं कहत गवन कियो घर को ॥ १ ॥
नींद न परति राति, प्रेम पन एक भाँति,
सोचत सकोचत बिरंचि हरि हर को।
तुम्हतें सुगम सब देव देखिबे को अब,
जस हंस किए जोगवत जुग पर को ॥ २ ॥
ल्याये संग कौसिक, सुनाए कहि गुनगन,
आए देखि दिनकर-कुल-दिनकर को।

६६—भिया रे = भैया रे।

तुलसी तेऊ सनेह को सुभाउ बाउ मानो
चलदल को सो पात करै चित चर को ॥ ३ ॥ ६० ॥

राग केदार

रंग-भूमि भोरेहीं जाइकै ।
राम लषन लखि लोग लूटिहैं लोचन-लाभ अघाइकै ॥ १ ॥
भूप-भवन घर घर, पुर बाहर इहै चरचा रही छाइकै ।
मगन मनोरथ मोद नारि नर प्रेम-बिबस उठैं गाइकै ॥ २ ॥
सोचत बिधि-गति समुझि परसपर कहत बचन बिलखाइकै ।
कुँवर किसोर कठोर सरासन, असमंजस भयो आइकै ॥ ३ ॥
सुकृत सँभारि मनाइ पितर सुर सीस ईसपद नाइकै ।
रघुबर-कर धनु-भंग चहत सब अपनो सो हितु चितु लाइकै ॥ ४ ॥
लेत फिरत कनसुई सगुन, सुभ बूझत गनक बोलाइकै ।
सुनि अनुकूल मुदित मन मानहुँ धरत धीरजहि धाइकै ॥ ५ ॥
कौसिक-कथा एक एकनि सों कहत प्रभाउ जनाइकै ।
सीय-राम संजोग जानियत रच्यो बिरंचि बनाइकै ॥ ६ ॥
एक सराहि सुबाहु-मथन बर बाहु उछाह बढ़ाइकै ।
सानुज राज-समाज बिराजिहैं राम पिनाक चढ़ाइकै ॥ ७ ॥
बड़ी सभा, बड़ो लाहु, बड़ो जस, बड़ी बड़ाई पाइकै ।
को सोहिहै और को लायक रघुनायकहि बिहाइकै ? ॥ ८ ॥
गवनिहैं गँवहिं गवाँइ गरब गृह नृपकुल बलहि लजाइकै ।
भली भाँति साहब तुलसी के चलिहैं ब्याहि बजाइकै ॥ ९ ॥ ६८ ॥

राग टोड़ी

भोर फूल बीनबे को गए फुलवाई हैं ।
सीसनि टिपारे, उपवीत, पीत पट कटि,
दोना बाम करनि सलोने भे सबाई हैं ॥ १ ॥
रूप के अगार भूप के कुमार सुकुमार,
गुरु के प्रानअधार संग सेवकाई है ।

६७—चलदल = पीपल का वृक्ष ।

६८—कनसुई लेना = गोबर की गौर चलनी में रखकर स्त्रियाँ पृथ्वी पर फेंकती हैं । यदि वह गौर सीधी गिरती है तो सगुन और उलटी या आड़ी गिरती है तो असगुन मानती हैं ।

नीच ज्यों टहल करैं, राखैं रुख अनुसरैं,
कौसिक से कोही बस किये दुहूँ भाई है ॥ २ ॥
सखिन सहित तेहि औसर बिधि के संजोग
गिरिजा जू पूजिबे को जानकी जू आई है ।
निरखि लषन राम जाने ऋतुपति काम,
मोहि मानो मदन मोहनी मूड़ नाई है ॥ ३ ॥
राघौजू-श्रीजानकी-लोचन मिलिबे को मोद
कहिबे को जोगु न, मैं बातैं सी बनाई हैं ।
स्वामी सीय सखिन्ह लखन तुलसी को तैसो
तैसो मन भयो जाकी जैसिये सगाई है ॥ ४ ॥ ६६ ॥

पूजि पारबती भले भाय पाँय परिकै ।
सजल सुलोचन सिथिल तनु पुलकित,
आवै न बचन मनु रह्यो प्रेम भरिकै ॥ १ ॥
अंतरजामिनि भवभामिनि स्वामिनि सों हौं,
कही चाहौं बात, मातु, अंत तौ हौं लरिकै ।
मूरति कृपालु मंजु माल दै बोलत भई,
पूजो मन कामना भावतो बरु बरिकै ॥ २ ॥
राम कामतरु पाइ बेलि ज्यों बौंड़ी बनाइ
माँग कोखि तोषि पोषि फैलि फूलि फरिकै ।
रहोगी कहोगी तब साँची कही अंबा सिय
गहे पाँय द्वै उठाय माथे हाथ धरिकै ॥ ३ ॥
मुदित असीस सुनि सीस नाइ पुनि पुनि
बिदा भई देवी सों जननि डर डरिकै ।
हरषीं सहेली, भयो भावतो, गावतीं गीत,
गवनी भवन तुलसीस हियो हरिकै ॥ ४ ॥ ७० ॥

रंगभूमि आए दसरथ के किसोर हैं ।
पेखनो सो पेखन चले हैं पुर-नर-नारि,
बारे बूढ़े अंध पंगु करत निहोर हैं ॥ १ ॥
नील-पीत-नीरज-कनक-मरकत-घन-
दामिनि-बरन तनु रूप के निचोर हैं ।
सहज सलोने राम लषन ललित नाम
जैसे सुने तैसेई कुँवर सिरमौर हैं ॥ २ ॥

चरन-सरोज, चारु जंघा जानु ऊरु कटि,
कंधर बिसाल, बाहु बड़े बरजोर हैं ।
नीके कै निषंग कसे, कर कमलनि लसै
बान बिसिषासन मनोहर कठोर हैं ॥ ३ ॥
काननि कनकफूल, उपवीत अनुकूल,
पियरे दुकूल बिलसत आछे छोर हैं ।
राजिव-नयन बिधुबदन टिपारे सिर,
नख सिख अंगनि ठगौरी ठौर ठौर हैं ॥ ४ ॥
सभा-सरवर, लोक-कोकनद-कोकगन
प्रमुदित मन देखि दिनमनि भोर है ।
अबुध असैले मन-मैले महिपाल भए,
कछुक उलूक कछु कुमुद चकोर है ॥ ५ ॥
भाई सों कहत बात कौसिकहि सकुचात,
बोल घन घोर से बोलत थोर थोर है ।
सनमुख सबहि बिलोकत सबहि नीके,
कृपा सों हेरत हँसि तुलसी की ओर हैं ॥ ६ ॥ ७१ ॥

एई राम लषन जे मुनि सँग आए हैं ।
चौतनी चोलना काछे, सखि ! सोहैं आगे पाछे,
आछेहू तें आछे आछे आछे भाय भाए हैं ॥ १ ॥
साँवरे गोरे सरीर, महाबाहु, महाबीर,
कटि तून तीर धरे, धनुष सुहाए हैं ।
देखत कोमल कल, अतुल बिपुल बल,
कौसिक कोदंड-कला बिपुल सिखाए हैं ॥ २ ॥
इन्हहीं ताड़का मारी, गौतम की तिय तारी,
भारी भारी भूरि भट रन बिचलाए हैं ।
ऋषि-मख रखवारे दसरथ के दुलारे,
रंगभूमि पगुधारे, जनक बुलाए हैं ॥ ३ ॥
इन्हके बिमल गुन गनत पुलकि तनु
सतानंद कौसिक नरेसहि सुनाए हैं ।

७१—पेखनो = तमाशा ।

प्रभुपद मन दिए सो समाज चित्त किए
हुलसि हुलसि हिये तुलसिहुँ गाए हैं ॥ ४ ॥ ७२ ॥

राग कान्हरा

सीय स्वयंवरु, माई, दोउ भाई आए देखन ।
सुनत चलीं प्रमदा प्रमुदित मन,
प्रेम पुलकि तनु मनहुँ मदन मंजुल पेखन ॥
निरखि मनोहरताई सुख पाई कहैं एक एक सों,
'भूरि भाग हम धन्य, आलि ! ए दिन, ए खन ।'
तुलसी सहज सनेह सुरँग सब,
सो समाज चित-चित्रसार लागी लेखन ॥ ७३ ॥

राग गौरी

राम लषन जब दृष्टि परे, री !
अवलोकत सब लोग जनकपुर मानो बिधि बिबिध बिदेह करे, री ॥१॥
धनुषजज्ञ कमनीय अवनि-तल कौतुकही भए आय खरे, री ।
छबि सुरसभा मनहुँ मनसिज के कलित कलपतरु रूख फरे, री ॥ २ ॥
सकल काम बरषत मुख निरखत, करषत चित हित हरष भरे, री ।
तुलसी सबै सराहत भूपहि भले पैंत पासे सुढर ढरे, री ॥ ३ ॥ ७४ ॥

नेकु ! सुमुखि, चित लाइ चितौ, री ।
राजकुँवर-मूरति रचिबे की रुचि सुबिरंचि स्रम कियो है कितौ, री ॥१॥
नख सिख सुंदरता अवलोकत कह्यो न परत सुख होत जितौ, री ।
साँवर-रूप-सुधा भरिबे कहँ नयन-कमल-कल-कलस रितौ, री ॥ २ ॥
मेरे जान इन्हैं बोलिबे कारन चतुर जनक ठयो ठाट इतौ, री ।
तुलसी प्रभु भंजिहैं संभु-धनु भूरि भाग सिय मातु पितौ, री ॥३॥७५॥

राग सारंग

जबतें राम लषन चितए, री ।
रहे इकटक नर-नारि जनकपुर, लागत पलक कलप बितए, री ॥ १ ॥
प्रेम-बिबस माँगत महेस सों देखत ही रहिए नित ए, री ।
कै ए सदा बसहु इन्ह नयनन्हि, कै ए नयन जाहु जित ए, री ॥ २ ॥
कोउ समुझाइ कहै किन भूपहि बड़े भाग आए इत ए, री ।
कुलिस कठोर कहाँ संकर-धनु, मृदु मूरति किसोर कित ए, री ॥ ३ ॥
बिरचत इन्हहि बिरंचि भुवन सब सुंदरता खोजत रितए, री ।
तुलसिदास ते धन्य जनम जन मन क्रम बच जिन्हके हित ए, री ॥४॥७

सुनु सखि भूपति भलोइ कियो, री।
जेहि प्रसाद अवधेस-कुँवर दोउ नगर-लोग अवलोकि जियो, री ॥ १ ॥
मानि प्रतीति कहै मेरे तैं कत सँदेह-बस करति हियो, री।
तौलौं है यह संभु सरासन श्रीरघुबर जौलौं न लियो, री ॥ २ ॥
जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी औ रामहि ऐसो रूप दियो, री।
तुलसिदास तेहि चतुर बिधाता निज कर यह संजोग सियो, री ॥३॥७७॥

अनुकूल नृपहि सूलपानि है।
नीलकंठ कारुन्यसिंधु हर दीनबंधु दिनदानि है ॥ १ ॥
जो पहिलेही पिनाक जनक कहँ गए सौंपि जिय जानि है।
बहुरि त्रिलोचन लोचन के फल सबहि सुलभ किए आनि है ॥ २ ॥
सुनियत भव-भावते राम है, सिय भावती-भवानि है।
परखत प्रीति प्रतीति पयज पनु रहे काज ठटु ठानि है ॥ ३ ॥
भए बिलोकि बिदेह नेहबस बालक बिनु पहिचानि हैं।
होत हरे होने बिरवनि दल सुमति कहति अनुमानि है ॥ ४ ॥
देखियत भूप भोर के से उडुगन, गरत गरीब गलानि हैं।
तेज प्रताप बढ़त कुँवरन को जदपि सँकोची बानि हैं ॥ ५ ॥
बय किसोर बरजोर बाहुबल मेरु मेलि गुन तानिहैं।
अवसि राम राजीव-बिलोचन संभु सरासन भानिहैं ॥ ६ ॥
देखिहैं ब्याह-उछाह नारि-नर सकल सुमंगल-खानि हैं।
भरि भाग तुलसी तेऊ जे सुनिहैं, गाइहैं, बखानिहैं ॥ ७ ॥ ७८ ॥

राग केदारा

रामहि नीके कै निरखि, सुनैनी !
मनसहु अगम समुझि यह अवसरु कत सकुचति पिकबैनी ॥ १ ॥
बड़े भाग मख-भूमि प्रकट भइ सीय सुमंगल-ऐनी।
जा कारन लोचन-गोचर भइ मूरति सब-सुखदैनी ॥ २ ॥
कुलगुरु-तिय के मधुर बचन सुनि जनक-जुवति मति-पैनी।
तुलसी सिथिल देह सुधि बुधि करि सहज-सनेह-बिषैनी ॥ ३ ॥ ७९ ॥

मिलो बरु सुंदर सुंदरि सीतहि लायकु,
साँवरो सुभग, सोभा हू को परम सिंगारु।

७७—सियो = सज्यो, उत्पन्न किया।

मनहूँ को मन मोहै, उपमा को को है ?
सोहै सुखमासागर-संग अनुज राजकुमारु ॥ १ ॥
ललित सकल अंग, तनु धरे कै अनंग,
नैननि को फल कैधौं, सिय को सुकृत-सारु ।
सरद-सुधा-सदन-छबिहि निंदै बदन,
अरुन आयत नवनलिन-लोचन चारु ॥ २ ॥
जनक-मन की रीति जानि बिरहित प्रीति,
ऐसीऔ मूरति देखे रह्यो पहिलो बिचारु ।
तुलसी नृपहि ऐसो कहि न बुझावै कोउ,
'पन औ कुँवर दोऊ प्रेम की तुला धौं तारु' ॥ ३ ॥ ८० ॥

देखि देखि री ! दोउ राजसुवन ।
गोर स्याम सलोने लोने, लोने लोयननि,
जिन्हकी सोभा तें सोहै सकल भुवन ॥ १ ॥
इन्हहीं ताड़ुका मारी, मग मुनि-तिय तारी,
ऋषिमख राख्यो, रन दले है दुवन ।
तुलसी प्रभु को अब जनकनगर-नभ
सुजस-बिमल-बिधु चहत उवन ॥ २ ॥ ८१ ॥

राग टोड़ी

राजा रंगभूमि आज बैठे जाइ जाइकै ।
आपने आपने थल, आपने आपने साज,
आपनी आपनी बर बानिक बनाइ कै ॥ १ ॥
कौसिक सहित राम, लषन ललित नाम,
लरिका ललाम लोने पठए बुलाइकै ।
दरसलालसा-बस लोग चले भाय भले
बिकसत-मुख निकसत धाइ धाइ कै ॥ २ ॥
सानुज सानंद हिये आगे ह्वै जनक लिए,
रचना रुचिर सब सादर देखाइ कै ।
दिये दिव्य आसन सुपास सावकास अति,
आछे आछे बिछे बिछे बिछौना बिछाइ कै ॥ ३ ॥

८०—तारु = तौल ।

भूपति-किसोर दुहुँ ओर, बीच मुनिराउ,
देखिबे को दाउँ, देखौ देखिबो बिहाइ कै।
उदय-सैल सोहैं सुंदर कुँवर, जोहैं,
मानो भानु भोर भूरि किरनि छिपाइ कै॥ ४॥
कौतुक कोलाहल निसान गान पुर नभ,
बरषत सुमन बिमान रहे छाइ कै।
हित अनहित, रत बिरत बिलोकि बाल,
प्रेम-मोद-मगन जनम-फल पाइ कै॥ ५॥
राजा की रजाइ पाइ सचिव सहेली धाइ,
सतानंद ल्याए सिय सिबिका चढ़ाइ कै।
रूप-दीपिका निहारि मृग-मृगी नर-नारि,
बिथके बिलोचन निमेषै बिसराइ कै॥ ६॥
हानि लाहु अनख उछाहु, बाहुबल कहि
बंदि बोले बिरद अकस उपजाइ कै।
दीप दीप के महीप आए सुनि पैज पन,
कीजै पुरुषारथ को अवसर भो आइ कै॥ ७॥
आनाकानी, कंठ, हसी मुँहा-चाही होन लगी,
देखि दसा कहत बिदेह बिलखाइ कै।
धरनि सिधारिए सुधारिए आगिलो काज,
पूजि पूजि धनु कीजै बिजय बजाइ कै॥ ८॥
जनक-बचन छुए बिरवा लजारू के से
बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइ कै।
तुलसी लषन माषे, रोषे, राखे रामरुख,
भाषे मृदु परुष सुभायन रिसाइ कै॥ ९॥ ८२॥

भूपति बिदेह कही नीकियै जो भई है।
बड़े ही समाज आजु राजनि की लाज-पति
हाँकि आँक एक ही पिनाक छीनि लई है॥ १॥
मेरो अनुचित न कहत लरिकाई-बस,
पन परमिति और भाँति सुनि गई है।
नतरु प्रभु प्रताप उतरु चढ़ाय चाप
देतो पै देखाइ बल, फल पापमई है॥ २॥

भूमि के हरैया उखरैया भूमि-धरनि के,
विधि बिरचे प्रभाउ जाको जग-जई है।
बिहँसि हिये हरषि हटके लषन राम,
सोहत सकोच सील नेह नारि नई है ॥ ३ ॥
सहमी सभा सकल, जनक भये विकल,
राम लखि कौसिक असीस आज्ञा दई है।
तुलसी सुभाय गुरुपाँय लागि रघुराज
ऋषिराज की रजाइ माथे मानि लई है ॥ ४ ॥ ८३ ॥

सोचत जनक पोच पेच परि गई है ।
जोरि कर-कमल निहारि कहै कौसिक सों,
'आयसु भो राम को सो मेरे दुचितई है ॥ १ ॥
बान जातुधानपति भूप दीप सातहूँ के,
लोकप बिलोकत पिनाक भूमि लई है।
जोतिलिंग कथा सुनि जाको अंत पाए बिनु
आए बिधि हरि हारि सोई हाल भई है ॥ २ ॥
आपुही बिचारिए निहारिए सभा की गति,
बेद-मरजाद मानौ हेतुवाद हई है।
इन्हके जितौहैं मन, सोभा अधिकानी तन,
मुखन की सुखमा सुखद सरसई है ॥ ३ ॥
रावरो भरोसो बल, कै है कोऊ किया छल,
कैधों कुल को प्रभाव, कैधों लरिकई है ?।
कन्या, कल-कीरति, बिजय बिस्व की बटोरि
कैधों करतार इन्हहीं को निरमई है ॥ ४ ॥
पन को न मोह, न बिसेष चिंता सीता हू की,
लुनिहै पै सोई सोई जोई जेहि बई है।
रहै रघुनाथ की निकाई नीकी नीके नाथ,
हाथ सों तिहारे करतूति जाकी नई है' ॥ ५ ॥

८३—नारि नई है = नार या गरदन नीची हुई है।

८४—जोतिलिंग = शैव पुराणों में कथा है कि जब शिव का ज्योतिर्लिंग प्रकट हुआ तब ब्रह्मा और विष्णु उस पर घूमते ही रह गए किसी को उसका अंत न मिला। हेतुवाद = तर्क शास्त्र।

कहि 'साधु साधु' गाधि-सुवन सराहे राउ,
'महराज ! जानि जिय ठीक भली दई है'।
हरषे लषन, हरषाने बिलषाने लोग,
तुलसी मुदित जाको राजाराम जई है ॥ ६ ॥ ८४ ॥

सुजन सराहै जो जनक बात कही है।
रामहि सोहानी जानि, मुनिमन-मानी सुनि
नीच महिपावली दहन बिनु दही है ॥ १ ॥
कहैं गाधिनंदन मुदित रघुनंदन सों,
नृपगहि अगह, गिरा न जाति गही है।
देखे सुने भूपति अनेक झूठे झूठे नाम,
साँचे तिरहुतिनाथ साखि देति मही है ॥ २ ॥
रागऊ बिराग, भोग जोग जोगवत मन,
जोगी जागबलिक-प्रसाद सिद्धि लही है।
ताते न तरनि तें, न सीरे सुधाकरहू तें,
सहज समाधि निरुपाधि निरबही है ॥ ३ ॥
ऐसेउ अगाध बोध रावरे सनेह-बस
बिकल बिलोकियत दुचितई सही है।
कामधेनु-कृपा हुलसानी तुलसीस उर,
पन-सिसु हेरि, मरजाद बाँधी रही है ॥ ४ ॥ ८५ ॥

ऋषिराज राजा आजु जनक समान को ?।
आपु यहि भाँति प्रीति सहित सराहियत,
रागी औ बिरागी बड़भागी ऐसो आन को ? ॥ १ ॥
भूमि भोग करत अनुभवत जोग-सुख,
मुनि-मन-अगम अलख गति जान को ?
गुरु हर-पद-नेहु गेह बसि भो बिदेह,
अगुन-सगुन-प्रभु-भजन-सयान को ? ॥ २ ॥
कहनि रहनि एक, बिरति बिबेक नीति,
बेद-बुध-संमत पथी न निरबान को ?।
गाँठि बिनु गुन की कठिन जड़ चेतन की,
छोरी अनायास, साधु सोधक अपान को ॥ ३ ॥
सुनि रघुबीर की बचन-रचना की रीति
भयो मिथिलेस मानो दीपक बिहान को।

मिट्यो महा मोह जी को, छूट्यो पोच सोच सी को,
जान्यो अवतार भयो पुरुष-पुरान को ॥ ४ ॥
सभा नृप गुरु, नर-नारि पुर, नभ सुर,
सब चितवत मुख करुनानिधान को।
एकै एक कहत प्रगट एक प्रेम-बस,
तुलसीस तोरिए सरासन इसान को ॥ ५ ॥ ८६ ॥

राग मारू

सुनो भैया भूप सकल दै कान।
बज्ररेख गजदसन जनक-पन बेद-बिदित, जग जान ॥ १ ॥
घोर कठोर पुरारि-सरासन नाम प्रसिद्ध पिनाकु।
जो दसकंठ दियो बाँवों, जेहि हर-गिरि कियो है मनाकु ॥ २ ॥
भूमि-भाल भ्राजत न चलत सो ज्यों बिरंचि को आँकु।
धनु तोरै सोई बरै जानकी राउ होइ की राँकु ॥ ३ ॥
सुनि आमरष उठे अवनीपति, लगे बचन जनु तीर।
टरै न चाप, करै अपनी सी महा महा बलधीर ॥ ४ ॥
नमित-सीस सोचहिं सलज्ज सब श्रीहत भए सरीर।
बोले जनक बिलोकि सीय तनु दुखित सरोष अधीर ॥ ५ ॥
सप्त दीप नव खंड भूमि के भूपति बृंद जुरे।
बड़ो लाभ कन्या कीरति को जहँ तहँ महिप मुरे ॥ ६ ॥
डग्यौ न धनु, जनु बीर-बिगत महि, किधौं कहुँ सुभट दुरे।
रोषे लषन बिकट भृकुटी करि, भुज अरु अधर फुरे ॥ ७ ॥
सुनहु भानुकुल-कमल-भानु ! जो अब अनुसासन पावौं।
का बापुरो पिनाकु मेलि गुन मंदर मेरु नवावौं ॥ ८ ॥
देखौ निज किंकर को कौतुक क्यों कोदंड चढ़ावौं।
लै धावौं, भंजौं मृनाल ज्यों तौ प्रभु अनुग कहावौं ॥ ९ ॥
हरषे पुर-नर-नारि सचिव नृप कुँवर कहे बर बैन।
मृदु मुसकाइ राम बरज्यो प्रिय बंधु नयन की सैन ॥ १० ॥
कौसिक कह्यौ उठहु रघुनंदन जगबंदन बलऐन।
तुलसिदास प्रभु चले मृगपति ज्यों निज भगतनि सुखदैन ॥ ११ ॥ ८७ ॥

जबहि सब नृपति निरास भए।
गुरुपद-कमल बंदि रघुपति तब चाप-समीप गए ॥ १ ॥

स्याम-तामरस-दाम-बरन बपु उर भुज नयन बिसाल ।
पीत बसन कटि कलित कंठ सुंदर सिंधुर-मनि-माल ॥ २ ॥
कल कुंडल, पल्लव प्रसून सिर चारु चौतनी लाल ।
कोटि-मदन-छबि-सदन बदन-बिधु, तिलक मनोहर भाल ॥ ३ ॥
रूप अनूप बिलोकत सादर पुरजन राजसमाज ।
लषन कह्यो थिर ह्वाहु धरनिधरु धरनि, धरनिधर आज ॥ ४ ॥
कमठ कोल दिग-दंति सकल अँग सजग करहु प्रभु-काज ।
चहत चपरि सिव-चाप चढ़ावन दसरथ को जुवराज ॥ ५ ॥
गहि करतल, मुनि पुलक सहित, कौतुकहि उठाइ लियो ।
नृपगन-मुखनि समेत नमित करि सजि सुख सबहि दियो ॥ ६ ॥
आकरष्यो सिय-मन समेत हरि, हरष्यो जनक-हियो ।
भञ्ज्यो भृगुपति-गर्व सहित, तिहुँ लोक बिमोह कियो ॥ ७ ॥
भयो कठिन कोदंड-कोलाहल प्रलय-पयोद समान ।
चौंके सिव, बिरंचि, दिसिनायक रहे मूँदि कर कान ॥ ८ ॥
सावधान ह्वै चढ़े बिमाननि चले बजाइ निसान ।
उमगि चल्यो आनंद नगर, नभ जयधुनि मंगलगान ॥ ९ ॥
बिप्र-बचन सुनि सखी सुआसिनि चलीं जानकिहि ल्याइ ।
कुँवर निरखि जयमाल मेलि उर कुँवरि रही सकुचाइ ॥ १० ॥
बरषहि सुमन असीसहिं सुर मुनि, प्रेम न हृदय समाइ ।
सीय राम की सुंदरता पर तुलसिदास बलि जाइ ॥ ११ ॥ ८८ ॥

राग मलार

जब दोउ दसरथ-कुँवर बिलोके ।
जनक-नगर नर-नारि मुदित मन निरखि नयन पल रोके ॥ १ ॥
बय किसोर घन-तड़ित-बरन तनु नखसिख अंग लोभारे ।
दै चित, कै हित, लै सब छबि-बित बिधि निज हाथ सँवारे ॥ २ ॥
संकट नृपहि, सोच अति सीतहि, भूप सकुचि सिर नाए ।
उठे राम रघुकुल-कल-केहरि गुरु अनुसासन पाए ॥ ३ ॥
कौतुक ही कोदंड खंडि प्रभु, जय अरु जानकि पाई ।
तुलसिदास कीरति रघुपति की मुनिन्ह तिहूँ पुर गाई ॥ ४ ॥ ८९ ॥

८९—लोभारे = लुभावने ।

राग टोड़ी

मुनि-पदरेनु रघुनाथ माथे धरी है।
रामरुख निरखि, लषन की रजाइ पाइ,
धरा धरा धरनि सुसावधान करी है ॥ १ ॥
सुमिरि गनेस गुरु गौरि हर भूमिसुर
सोचत सकोचत सकोचि बानि धरी है।
दीनबंधु, कृपासिंधु, साहसिक, सीलसिंधु,
सभा को सकोच, कुलहू की लाज परी है ॥ २ ॥
पेषि पुरुषारथ परखि पन, पेम नेम,
सिय-हिय की बिसेषि बड़ी खरभरी है।
दाहिनो दियो पिनाकु, सहमि भयो मनाकु,
महाब्याल बिकल बिलोकि जनु जरी है ॥ ३ ॥
सुर हरषत बरषत फूल बार बार,
सिद्ध मुनि कहत सगुन सुभ घरी है।
रामबाहु-बिटप बिसाल बौंड़ी देखियत,
जनक-मनोरथ कलपबेलि फरी है ॥ ४ ॥
लख्यो न चढ़ावत, न तानत, न तोरत हू,
घोर धुनि सुनि सिव की समाधि टरी है।
प्रभु के चरित चारु तुलसी सुनत सुख,
एक ही सुलाभ सबही की हानि हरी है ॥ ५ ॥ ९० ॥

राग सारंग

राम कामरिपु-चाप चढ़ायो।
मुनिहिं पुलक, आनंद नगर, नभ निरखि निसान बजायो ॥ १ ॥
जेहि पिनाक बिनु नाक किए नृप, सबहि बिषाद बढ़ायो।
सोइ प्रभु कर परसत टूट्यो जनु हुतो पुरारि पढ़ायो ॥ २ ॥
पहिराई जयमाल जानकी जुवतिन्ह मंगल गायो।
तुलसी सुमन बरषि हरषे सुर, सुजस तिहूँ पुर छायो ॥ ३ ॥ ९१ ॥

राग टोड़ी

जनक मुदित मन टूटत पिनाक के।
बाजे हैं बधावने सुहावने मंगल-गान,
भयो सुख एकरस रानी राजा राँक के ॥ १ ॥

९०—जरी = जली।

दुंदुभी बजाइ, गाइ हरषि, बरषि फूल,
सुरगन नाचैं नाच नायकहू नाक के।
तुलसी महीस देखे दिन रजनीस जैसे.
सूने परे सून से मनो मिटाए आंक के ॥ २ ॥ ६२ ॥

लाज तोरि, साजि साज राजा राढ़ रोषे हैं।
कहा भौ चढ़ाए चाप, ब्याह ह्वैहै बड़े खाए,
बोलैं खोलैं सेल असि चमकत चोखे हैं ॥ १ ॥
जानि पुरजन त्रसे, धीर दै लषन हँसे,
बल इनको पिनाक नीके नापे जोखे हैं।
कुलहि लजावैं बाल, बालिस बजावैं गाल,
कैधौं क्रूर काल बस तमकि त्रिदोषे हैं ॥ २ ॥
कुँवर चढ़ाई भौंहैं, अब को बिलोकै सौंहैं,
जहँ तहँ भे अचेत, खेत के से धोखे हैं।
देखे नर-नारि कहैं, साग खाइ जाए माइ,
बाहु पीन पाँवरनि पीना खाइ पोखे हैं ॥ ३ ॥
प्रमुदित-मन लोक-कोकनद-कोकगन,
राम के प्रताप-रबि सोच-सर सोखे हैं।
तब के देखैया तोषे, तब के लोगनि भले,
अब के सुनैया साधु तुलसिहुँ तोषे हैं ॥ ४ ॥ ६३ ॥

जयमाल जानकी जलजकर लई है।
सुमन सुमंगल सगुन की बनाइ मंजु,
मानहुँ मदनमाली आपु निरमई है ॥ १ ॥
राज-रुख लखि गुरु भूसुर सुआसिनिन्ह
समय समाज की ठवनि भली ठई है।
चलीं गान करत, निसान बाजे गहगहे,
लहलहे लोयन सनेह सरसई है ॥ २ ॥
हनि देव दुंदुभी हरषि बरषत फूल,
सफल मनोरथ भो, सुख सुचितई है।

९३—बड़े खाए = (मुहा०) बड़ी कठिनता से। धोखे = खेत में पशु पक्षियों को डराने के लिए खड़ा किया हुआ चीथड़ों का पुतला। पीना=तिल की खली अर्थात् निःसार भोजन।

पुरजन परिजन रानी राउ प्रमुदित,
मनसा अनूप राम-रूप-रंग रई है ॥ ३ ॥
सतानंद सिष सुनि पाँय परि पहिराई
माल सिय पिय-हिय सोहत सो भई है ।
मानस तें निकसि बिसाल सु तमाल पर
मानहुँ मरालपाँति बैठी बनि गई है ॥ ४ ॥
हितनि के लाह की, उछाह की, बिनोद मोद
सोभा की अवधि नहि, अब अधिकई है ।
याते बिपरीत अनहितन की जानि लीबो,
गति कहे प्रकट खुनिस खामी खई है ॥ ५ ॥
निज निज बेद की सप्रेम जोग-छेम-मई,
मुदित असीस बिप्र बिदुषनि दई है ।
छबि तेहि काल की कृपालु सीतादूलह की
हुलसति हिए तुलसी के नित नई है ॥ ६ ॥ ९४ ॥

राग केदारा

लेहु री लोचननि को लाहु ।
कुँवर सुंदर साँवरा सखि सुमुखि ! सादर चाहु ॥ १ ॥
खंडि हर-कोदंड ठाढ़े, जानु-लंबित बाहु ।
रुचिर उर जयमाल राजित, देत सुख सब काहु ॥ २ ॥
चितै चित हित-सहित नखसिख अंग-अंग-निबाहु ।
सुकृत निज, सियरामरूप, बिरंचि-मतिहि सराहु ॥ ३ ॥
मुदित मन बरबदन-सोभा उदित अधिक उछाहु ।
मनहुँ दूरि कलंक करि ससि समर सूद्यो राहु ॥ ४ ॥
नयन सुखमा-अयन हरत सरोज-सुंदरताहु ।
बसत तुलसीदास-उरपुर जानकी को नाहु ॥ ५ ॥ ९५ ॥

राग सारंग

भूप के भाग की अधिकाई ।
टूट्यो धनुष, मनोरथ पूज्यो, बिधि सब बात बनाई ॥ १ ॥

९४—खई=झगड़ा लड़ाई ।

९५--सूद्यो=सूदन किया, नाश किया ।

तब तें दिन दिन उदय जनक को जब तें जानकी जाई।
अब यहि ब्याह सफल भयो जीवन, त्रिभुवन बिदित बड़ाई ॥ २ ॥
बारहि बार पहुनई ऐहैं राम लषन दोउ भाई।
एहि आनंद मगन पुरबासिन्ह देहदसा बिसराई ॥ ३ ॥
सादर सकल बिलोकत रामहि काम-कोटि-छबि छाई।
यह सुखसमउ समाज एक मुख क्यों तुलसी कहै गाई ? ॥ ४ ॥ ९६ ॥

राग सोरठ

मेरे बालक कैसे धौं मग निबहहिंगे ?
भूख, पियास, सीत, स्रम सकुचनि क्यों कौसिकहि कहहिंगे ? ॥ १ ॥
को भोर ही उबटि अन्हवैहै, काढ़ि कलेऊ दैहै ?
को भूषन पहिराइ निछावरि करि लोचन-सुख लैहै ? ॥ २ ॥
नयन निमेषनि ज्यों जोगवैं नित पितु परिजन महतारी।
ते पठए ऋषि साथ निसाचर मारन, मख रखवारी ॥ ३ ॥
सुंदर सुठि सुकुमार सुकोमल काकपच्छ-धर दोऊ।
तुलसी निरखि हरषि उर लैहौं बिधि ह्वैहै दिन सोऊ ? ॥ ४ ॥ ९७ ॥

ऋषि नृप-सीस ठगौरी सी डारी।
कुलगुरु, सचिव, निपुन नेवनि अवरेब न समुझि सुधारी ॥ १ ॥
सिरिस-सुमन-सुकुमार कुँवर दोउ, सूर सरोष सुरारी।
पठए बिनहि सहाय पयादेहि केलि-बान-धनुधारी ॥ २ ॥
अति सनेह कातर माता कहै, सुनि सखि ! बचन दुखारी।
बादि बीर-जननी-जीवन जग, छत्रि-जाति-गति भारी ॥ ३ ॥
जो कहिहै फिरे राम लषन घर करि मुनिमख-रखवारी।
सो तुलसी प्रिय मोहि लागिहै ज्यों सुभाय सुत चारी ॥ ४ ॥ ९८ ॥

जब तें लै मुनि संग सिधाए।
राम लखन के समाचार, सखि ! तब तें कछुअ न पाए ॥ १ ॥
बिनु पानही गमन, फल भोजन, भूमि सयन तरुछाहीं।
सर सरिता जलपान, सिसुन के संग सुसेवक नाहीं ॥ २ ॥
कौसिक परम कृपालु परमहित, समरथ, सुखद, सुचाली।
बालक सुठि सुकुमार सकोची, समुझि सोच मोहि, आली ! ॥ ३ ॥

९८—नेव = नायब, मंत्री। अवरेब = टेढ़ी गति, कठिनाई।

बचन सप्रेम सुमित्रा के सुनि सब सनेह-बस रानी।
तुलसी आइ भरत तेहि औसर कही सुमंगल-बानी ॥ ४ ॥ ९९ ॥

सानुज भरत भवन उठि धाए।
पितु-समीप सब समाचार सुनि मुदित मातु पहँ आए ॥ १ ॥
सजल नयन, तनु पुलक, अधर फरकत लखि प्रीति सुहाई।
कौसल्या लिए लाइ हृदय 'बलि' कहौ कछु है सुधि पाई ? ॥ २ ॥
सतानंद उपरोहित अपने तिरहुति-नाथ पठाए।
खेम कुसल रघुबीर-लषन की ललित पत्रिका ल्याए ॥ ३ ॥
दलि ताड़ुका, मारि निसिचर, मख राखि, बिप्र-तिय तारी।
दै बिद्या, लै गए जनकपुर, हैं गुरु संग सुखारी ॥ ४ ॥
करि पिनाक-पन, सुता-स्वयंबर सजि, नृप-कटक बटोर्‌यो।
राजसभा रघुबर मृनाल ज्यों संभु-सरासन तोर्‌यो ॥ ५ ॥
यों कहि सिथिल सनेह बंधु दोउ अंब अंक भरि लीन्हें।
बार बार मुख चूमि, चारु मनि बसन निछावरि कीन्हें ॥ ६ ॥
सुनत सुहावनि चाह अवध घर घर आनंद बधाई।
तुलसिदास रनिवास रहस-बस, सखी सुमंगल गाई ॥ ७ ॥ १०० ॥

राग कान्हरा

राम लषन सुधि आई बाजै अवध बधाई।
ललित लगन लिखि पत्रिका,
उपरोहित के कर जनक-जनेस पठाई ॥ १ ॥
कन्या भूप बिदेह की रूप की अधिकाई।
तासु स्वयंबर सुनि सब आए
देस देस के नृप चतुरंग बनाई ॥ २ ॥
पन पिनाक, पबि मेरु तें गुरुता कठिनाई।
लोकपाल महिपाल बान बानइत,
दसानन सके न चाप चढ़ाई ॥ ३ ॥
तेहि समाज रघुराज के मृगराज जगाई।
भंजि सरासन संभु को जग जय कल कीरति,
तिय तियमनि सिय पाई ॥ ४ ॥

१००—चाह = खबर।

पुर घर घर आनंद महा सुनि चाह सुहाई ।
मातु मुदित मंगल सजैं, कहैं मुनि
प्रसाद भए सकल सुमंगल, माई ॥ ५ ॥
गुरु आयसु मंडप रच्यो सब साज सजाई ।
तुलसिदास दसरथ-बरात सजि,
पूजि गनेसहि चले निसान बजाई ॥ ६ ॥ १०१ ॥

राग केदारा

मन में मंजु मनोरथ हो, री ! ।
सो हर-गौरि-प्रसाद एक तें, कौसिक-कृपा चौगुनो भो, री ! ॥ १ ॥
पन-परिताप, चाप-चिंता-निसि, सोच-सकोच-तिमिर नहिं थोरी ।
रविकुलरवि अवलोकि सभा-सर हितचित-बारिज-बन बिकसो री ॥ २ ॥
कुँवर कुँवरि सब मंगलमूरति, नृप दोउ धरम धुरंधर धोरी ।
राजसमाज भूरि-भागी जिन लोचन-लाहु लह्यो एक ठौरी ॥ ३ ॥
ब्याह-उछाह राम-सीता को सुकृत सकेलि बिरंचि रच्यो, री ।
तुलसिदास जानै सोइ यह सुख जेहि उर बसति मनोहर जोरी ॥४॥१०२॥

राजति राम जानकी जोरी ।
स्याम-सरोज जलद-सुंदर बर, दुलहिनि तड़ित-बरन तनु गोरी ॥ १ ॥
ब्याह-समय सोहति बितान तर, उपमा कहुँ न लहति मति मोरी ।
मनहुँ मदन-मंजुल-मंडप महँ छबि सिंगार सोभा इक ठौरी ॥ २ ॥
मंगलमय दोउ, अंग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछोरी ।
कनककलस कहँ देत भाँवरी, निरखि रूप सारद भइ भोरी ॥ ३ ॥
इत बसिष्ठ मुनि उतहि सतानँद, बंस-बखान करैं दोउ ओरी ।
इत अवधेस उतहिं मिथिलापति, भरत अंक सुख-सिंधु हिलोरी ॥ ४ ॥
मुदित जनक, रनिवास रहसबस, चतुर नारि चितवहि तृन तोरी ।
गान निसान बेदधुनि सुनि सुर बरषत सुमन, हरष कहै को री ? ॥ ५ ॥
नयनन को फल पाइ प्रेमबस सकल असीसत ईस निहोरी ।
तुलसी जेहि आनंद-मगन मन क्यों रसना बरनै सुख सो री ! ॥५॥१०३॥

दूलह राम, सीय दुलही री ! ।
घन-दामिन-बर बरन, हरन-मन सुंदरता नखसिख निबही, री ॥ १ ॥

१०२—हो = था ।

ब्याह-बिभूषन-बसन-बिभूषित, सखि-अवली लखि ठगि सी रही, री ।
जीवन-जनम-लाहु लोचन-फल है इतनोइ, लह्यो आजु सही, री ॥ २ ॥
सुखमा-सुरभि सिंगार-छीर दुहि मयन अमिय-मय कियो है दही, री ।
मथि माखन सिय राम सँवारे, सकल-भुवन-छबि मनहुँ मही, री ॥ ३ ॥
तुलसिदास जोरी देखत सुख सोभा अतुल न जाति कही, री ।
रूप रासि बिरची बिरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लही री ॥४॥१०४॥

जैसे ललित लषन लाल लोने ।
तैसिये ललित उरमिला, परसपर लखन सुलोचन-कोने ॥ १ ॥
सुखमासागर सिंगारसार करि कनक रचे हैं तिहि सोने ।
रूपप्रेम-परमिति न परत कहि, बिथकि रही मति मौने ॥ २ ॥
सोभा सील सनेह सोहावने, समउ केलिगृह गौने ।
देखि तियनि के नयन सफल भए, तुलसीदास हू के होने ॥ ३ ॥ १०५ ॥

राग बिलावल

जानकी-बर सुंदर, माई ।
इंद्रनील-मनि-स्याम सुभग अँग अंग मनोजनि बहु छबि छाई ॥ १ ॥
अरुन चरन, अंगुली मनोहर, नख दुतिवंत कछुक अरुनाई ।
कंजदलनि पर मनहुँ भौम दस बैठे अचल सु-सदसि बनाई ॥ २ ॥
पीन जानु उरु चारु जटित मनि नूपुर पद कल मुखर सोहाई ।
पीतपराग भरे अलिगन जनु जुगल जलज लखि रहे लोभाई ॥ ३ ॥
किंकिनि कनककंज-अवली मृदु मरकत सिखर मध्य जनु जाई ।
गई न उपर सभीत निमत-मुख, बिकसि चहूँ दिसि रही लोनाई ॥ ४ ॥
नाभि गंभीर उदर रेखा बर, उर भृगु-चरन-चिह्न सुखदाई ।
भुज प्रलंब भूषन अनेक जुत, बसन पीत सोभा अधिकाई ॥ ५ ॥
जज्ञोपबीत बिचित्र हेममय, मुक्तामाल उरसि मोहि भाई ।
कंद-तड़ित बिच जनु सुरपति-धनु निकट बलाकपाँति चलि आई ॥ ६ ॥
कंबु कंठ, चिबुकाधर सुंदर, क्यों कहौं दसनन की रुचिराई ?
पदुमकोस महँ बसे बज्र मनो निज सँग तड़ित-अरुन-रुचि लाई ॥ ७ ॥

१०४—सिला = शीला, जो दाने खेत काटते समय खेत में गिर जाते हैं ; लवनि = लवनी, अनाज की फ़सल का वह थोड़ा सा बोझ जो मज़दूरों को दिया जाता है ।

नासिक चारु, ललित लोचन, भ्रू कुटिल, कचनि अनुपम छबि पाई ।
रहे घेरि राजीव उभय मनो चंचरीक कछु हृदय डेराई ॥ ८ ॥
भाल तिलक, कंचन किरीट सिर, कुंडल लोल कपोलनि झाँई ।
निरखहि नारि-निकर बिदेहपुर निमि नृप की मरजाद मिटाई ॥ ९ ॥
सारद सेस संभु निसि बासर चिनत रूप न हृदय समाई ।
तुलसिदास सठ क्यों करि बरनै यह छबि, निगम नेति कह गाई ॥१०॥१०६॥

राग कान्हरा

भुजनि पर जननी वारि फेरि डारी ।
क्यों तोर्‍यौ कोमल कर-कमलनि संभु-सरासन भारी ? ॥ १ ॥
क्यों मारीच सुबाहु महाबल प्रबल ताड़का मारी ?
मुनि-प्रसाद मेरे राम लषन की बिधि बड़ि करवर टारी ॥ २ ॥
चरनरेनु लै नयननि लावति, क्यों मुनिबधू उधारी ।
कहौ धौं तात ! क्यों जीति सकल नृप बरी है बिदेहकुमारी ॥ ३ ॥
दुसह-रोष-मूरति भृगुपति अति नृपति-निकर-खयकारी ।
क्यों सौंप्यो सारंग हारि हिय, करी है बहुत मनुहारी ॥ ४ ॥
उमगि उमगि आनंद बिलोकति बधुनसहित सुत चारी ।
तुलसिदास आरती उतारति प्रेम-मगन महतारी ॥ ५ ॥ १०७ ॥

मुदित-मन आरती करै माता ।
कनक बसन मनि वारि वारि करि पुलक प्रफुल्लित गाता ॥ १ ॥
पाँलागनि दुलहियन सिखावति सरिस सासु सत-साता ।
देहिं असीस ते 'बरिस कोटि लगि अचल होउ अहिवाता' ॥ २ ॥
राममोय-छबि देखि जुवतिजन करहिं परस्पर बाता ।
अब जान्यो साँचहू सुनहु, सखि ! कोबिद बड़ो बिधाता ॥ ३ ॥
मंगल-गान निसान नगर नभ, आनँद कह्यो न जाता ।
चिरजीवहु अवधेस-सुवन सब तुलसिदास-सुखदाता ॥ ४ ॥ १०८ ॥

१०६—कंद = बादल ।
१०७—करवर = संकट, कठिनाई ।

अयोध्या कांड

राग सोरठ

नृप कर जोरि कह्यो गुरु पाहीं।
तुम्हरी कृपा असीस, नाथ! मेरी सबै महेस निबाहीं ॥ १ ॥
राम होहिं जुवराज जियत मेरे यह लालच मन माहीं।
बहुरि मोहँ जियबे मरिबे की चित चिंता कछु नाहीं ॥ २ ॥
महाराज, भलो काज बिचार्‍यो बेगि बिलंब न कीजै।
बिधि दाहिनो होइ तौ सब मिलि जनम-लाहु लुटि लीजै ॥ ३ ॥
सुनत नगर आनंद बधावन, कैकेयी बिलखानी।
तुलसीदास देवमायाबस कठिन कुटिलता ठानी ॥ ४ ॥ १ ॥

राग गौरी

सुनहु राम मेरे प्रानपियारे।
बारौं सत्यवचन स्रुति-सम्मत जाते हौं बिछुरत चरन तिहारे ॥ १ ॥
बिनु प्रयास सब साधन को फल प्रभु पायो सो तो नाहिं सँभारे।
हरि तजि धरमसील भयो चाहत, नृपति नारिबस सरबस हारे ॥ २ ॥
रुचिर काँचमनि देखि मूढ़ ज्यों करतल तें चिंतामनि डारे।
मुनि-लोचन-चकोर, ससि-राघव, सिव-जीवनधन सोउ न बिचारे ॥ ३ ॥
जद्यपि नाथ तात! मायाबस सुखनिधान सुत तुम्हहिं बिसारे।
तदपि हमहिं त्यागहु जनि रघुपति दीनबंधु दयालु मेरे बारे ॥ ४ ॥
अतिसय प्रीति बिनीत बचन सुनि प्रभु कोमल-चित चलत न पारे।
तुलसिदास जौ रहौं मातु-हित को सुर बिप्र भूमि भय टारे? ॥ ५ ॥ २ ॥

रहि चलिए सुंदर रघुनायक।
जो सुत तात-बचन-पालन-रत जननिउ तात! मानिबे लायक ॥ १ ॥
बेद-बिदित यह बानि तुम्हारी रघुपति सदा संत-सुखदायक।
राखहु निज मरजाद निगम की, हौं बलि जाउँ धरहु धनुसायक ॥ २ ॥
सोक-कूप पुर परिहि, मरिहि नृप, सुनि सँदेस रघुनाथ-सिधायक।
यह दूषन बिधि तोहि होत अब रामचरन-बियोग-उपजायक ॥ ३ ॥
मातु-बचन सुनि स्रवत नयन जल, कछु सुभाउ जनु नरतनु-पायक।
तुलसिदास सुरकाज न साध्यौ तौ तो दोष होय मोहि महि आयक ॥ ४ ॥ ३ ॥

३—रघुनाथ-सिधायक = रघुनाथ के सिधारने का। नरतनुपायक = नरशरीर पाने का। महिआयक = पृथ्वी पर आने का।

राग सोरठ

राम ! हौं कौन जतन घर रहिहौं ?
बार बार भरि अंक गोद लै ललन कौन सों कहिहौं ॥ १ ॥
इहि आँगन बिहरत मेरे बारे ! तुम जो संग सिसु लीन्हें ।
कैसे प्रान रहत सुमिरत सुत बहु बिनोद तुम्ह कीन्हें ॥ २ ॥
जिन्ह स्रवननि कल बचन तिहारे सुनि सुनि हौं अनुरागी ।
तिन्ह स्रवननि बनगवन सुनति हौं, मो तें कौन अभागी ? ॥ ३ ॥
जुग सम निमिष जाहिं रघुनंदन-बदनकमल बिनु देखे ।
जौ तनु रहै बरष बीते, बलि, कहा प्रीति इहि लेखे ? ॥ ४ ॥
तुलसीदास प्रेमबस श्रीहरि देखि बिकल महतारी ।
गदगद कंठ, नयन जल, फिरि फिरि आवन कह्यो मुरारी ॥५॥४॥

राग बिलावल

रहहु भवन हमरे कहे, कामिनि !
सादर सासु चरन सेवहु नित जो तुम्हरे अति हित गृह-स्वामिनि ॥ १ ॥
राजकुमारि कठिन कंटक मग, क्यों चलिहौ मृदु पग गजगामिनि ।
दुसह बात बरषा, हिम, आतप कैसे सहिहौ अगनित दिन जामिनि ? ॥२॥
हौं पुनि पितु-आज्ञा प्रमान करि ऐहौं बेगि सुनहु दुति-दामिनि ।
तुलसिदास प्रभु-बिरह-बचन सुनि सहि न सकी मुरछित भइ भामिनि ॥३॥५॥

कृपानिधान सुजान प्रानपति संग बिपिन ह्वै आवौंगी ।
गृह तें कोटि-गुनित सुख मारग चलत, साथ सचु पावौंगी ॥ १ ॥
थाके चरन कमल चापौंगी, स्रम भए बाउ डोलावौंगी ।
नयन-चकोरनि मुखमयंक-छबि सादर पान करावौंगी ॥ २ ॥
जो हठि नाथ राखिहौ मोकहँ तौ सँग प्रान पठावौंगी ।
तुलसिदास प्रभु-बिनु जीवत रहि क्यों फिरि बदन देखावौंगी ? ॥३॥६॥

कहौ तुम्ह बिनु गृह मेरो कौन काजु ? ।
बिपिन कोटि सुरपुर समान मोको जोपै पिय परिहर्यो राजु ॥ १ ॥
बलकल बिमल दुकूल मनोहर, कंद मूल फल अमिय नाजु ।
प्रभुपद कमल बिलोकिहैं छिनछिन, इहि तें अधिक कहा सुख-समाजु ? ॥२॥
हौं रहौं भवन भोग-लोलुप ह्वै पति कानन कियो मुनि को साजु ।
तुलसिदास ऐसे बिरह-बचन सुनि कठिन हियो बिहरो न आजु ॥ ३ ॥ ७ ॥

पिय निठुर बचन कहे कारन कवन ?
जानत हौ सब के मन की गति, मृदुचित, परमकृपालु, रवन ! ॥ १ ॥

प्राननाथ सुंदर सुजानमनि, दीनबंधु, जग-आरति-दवन ।
तुलसिदास प्रभु-पदमराज तजि रहिहौं कहा करौंगी भवन? ॥ २ ॥ ८ ॥

मैं तुम्ह सों सतिभाव कही है ।
बूझति और भाँति भामिनि कत, कानन कठिन कलेस सही है ॥ १ ॥
जौं चलिहौ तो चलौ चलि कै बन सुनि सिय मन अवलंब लही है ।
बूड़त बिरह-बारिनिधि मानहुँ नाह बचनमिस बाँह गही है ॥ २ ॥
प्राननाथ के साथ चलीं उठि अवध सोकसरि उमँगि बही है ।
तुलसी सुनी न कबहुँ काहु कहुँ, तनु परिहरि परिछाँहि रही है ॥३॥९॥

जबहि रघुपति-संग सीय चली ।
बिकल-बियोग लोग पुरतिय कहैं अति अन्याउ, अली ॥ १ ॥
कोउ कहै मनिगन तजत काँच लगि, करत न भूप भली ।
कोउ कहै कुल-कुबेलि कैकयी दुख-बिष-फलनि फली ॥ २ ॥
एक कहैं बन जोग जानकी ! बिधि बड़ बिषम बली ।
तुलसी कुलिसहू की कठोरता तेहि दिन दलकि दली ॥ ३ ॥ १० ॥

ठाढ़े हैं लषन कमलकर जोरे ।
उर धकधकी न कहत कछु सकुचनि, प्रभु परिहरत सबनि तृन तोरे ॥१॥
कृपासिंधु अवलोकि बंधु तन, प्रान-कृपान बीर सी छोरे ।
तात बिदा माँगिए मातु सों, बनिहै बात उपाइ न औरे ॥ २ ॥
जाइ चरन गहि आयसु जाँचौ, जननि कहत बहुभाँति निहोरे ।
सिय-रघुबर-सेवा सुचि ह्वैहौ तो जानिहौं सही सुत मोरे ॥ ३ ॥
कीजहु इहै बिचार निरंतर राम समीप सुकृत नहिं थोरे ।
तुलसी सुनि सिप चले चकित-चित,
उड़्यो मानो बिहग बधिक भय भोरे ॥ ४ ॥ ११ ॥

राग सोरठ

मोको बिधुबदन बिलोकन दीजै ।
राम लषन मेरी यहै भेंट, बलि, जाउँ जहाँ मोहि मिलि लीजै ॥ १ ॥
सुनि पितु-बचन चरन गहे रघुपति, भूप अंक भरि लीन्हें ।
अजहुँ अवनि बिदरत दरार मिस सो अवसर-सुधि कीन्हें ॥ २ ॥
पुनि सिर नाइ गवन कियो प्रभु, मुरछित भयो भूप न जाग्यो ।
करम-चोर नृप-पथिक मारि मानो राम-रतन ले भाग्यो ॥ ३ ॥
तुलसी रबिकुल-रबि रथ चढ़ि चले तकि दिसि दखिन सुहाई ।
लोग नलिन भए मलिन अवध-सर, बिरह-बिषम-हिम पाई ॥ ४ ॥ १२ ॥

राग बिलावल

कहौ सो बिपिन है धौं केतिक दूरि।
जहाँ-गवन कियो कुँवर कोसलपति, बूझति सिय पिय-पतिहि बिसूरि ॥१॥
प्राननाथ परदेस पयादेहि चले सुख सकल तजे तृन तूरि।
करौं बयारि बिलंबिय बिटपतर, झारौं हौं चरन-सरोरुह-धूरि ॥ २ ॥
तुलसिदास प्रभु प्रियाबचन सुनि नीरजनयन नीर आए पूरि।
कानन कहाँ अबहिं, सुनु, सुंदरि, रघुपति फिरि चितए हित भूरि ॥३॥१३॥

फिरि फिरि राम सीयतनु हेरत।
तृषित जानि जल लेन लषन गए, भुज उठाइ ऊँचे चढ़ि टेरत ॥ १ ॥
अवनि कुरंग, बिहँग द्रुम-डारन रूप निहारत पलक न प्रेरत।
मगन न डरत निरखि कर-कमलनि सुभग सरासन सायक फेरत ॥ २ ॥
अवलोकत मग-लोग चहूँ दिसि मनहुँ चकोर चंद्रमहिं घेरत।
ते जन भूरिभाग भूतल पर तुलसी राम-पथिक-पद जे रत ॥ ३ ॥ १४ ॥

नृपति-कुँवर राजत मग जात।
सुंदर बदन, सरोरुह-लोचन मरकत-कनकबरन मृदुगात ॥ १ ॥
अंसनि चाप, तून कटि मुनिपट, जटा मुकुट बिच नूतन पात।
फेरत पानि-सरोजनि सायक, चोरत चितहि सहज मुसुकात ॥ २ ॥
संग नारि सुकुमारि सुभग सुठि राजति बिन भूषन नव-सात।
सुखमा निरखि ग्राम-बनितनि के नलिन-नयन बिकसित मनो प्रात ॥ ३ ॥
अंग अंग अगनित अनंग-छबि उपमा कहत सुकबि सकुचात।
सिय समेत नित तुलसिदास चित, बसत किसोर पथिक दोउ भ्रात ॥४॥१५॥

तू देखि देखि री! पथिक परम सुंदर दोऊ।
मरकत-कलधौत-बरन, काम-कोटि-कांतिहरन,
चरन-कमल कोमल अति, राजकुँवर कोऊ ॥ १ ॥
कर सर धनु, कटि निषंग, मुनिपट सोहैं सुभग अंग,
संग चंद्रबदनि बधू, सुंदरि सुठि सोऊ।
तापस बर बेष किए सोभा सब लूटि लिए,
चित के चोर बय किसोर, लोचन भरि जोऊ ॥ २ ॥

१५—नवसात = सोलह शृंगार।

दिनकर-कुलमनि निहारि प्रेम-मगन ग्राम-नारि,
परसपर कहैं, सखि ! अनुराग ताग पोऊ।
तुलसी यह ध्यान-सुधन जानि मानि लाभ सघन,
कृपन ज्यों सनेह सो हिये-सुगेह गोऊ ॥ ३ ॥ १६ ॥

कुँवर साँवरो, री सजनी ! सुंदर सब अंग।
रोम रोम छबि निहारि आलि वारि फेरि डारि,
कोटि भानु-सुवन सरद-सोम, कोटि अनंग ॥ १ ॥
बाम अंग लसत चाप, मौलि मंजु जटा कलाप,
सुचि सर कर, मुनिपट कटि-तट कसे निषंग।
आयत उर बाहु नैन, मुख-सुखमा को लहै न
उपमा अवलोकि लोक, गिरामति-गति भंग ॥ २ ॥
यों कहि भई मगन बाल, थिथकीं सुनि जुवति-जाल,
चितवत चले जात संग मधुप मृग बिहंग।
बरनौं किमि तिनकी दसहि, निगम-अगम प्रेम-रसहि
तुलसीमन-बसन रँगे रुचिर रूपरंग ॥ ३ ॥ १७ ॥

राग कल्यान

देखु कोउ परम सुंदर सखि ! बटोही।
चलत महि मृदु चरन अरुन-बारिज-बरन
भूपसुन, रूपनिधि निरखि हौं मोही ॥ १ ॥
अमल मरकत स्याम सीलसुखमाधाम,
गौरतनु सुभग सोभा सुमुखि जोही।
जुगल बिच नारि सकुमारि सुठि सुंदरी,
इंदिरा इंदु-हरि मध्य जनु सोही ॥ २ ॥
करनि बर धनु तीर, रुचिर कटि तूनीर,
धीर, सुर-सुखद, मर्दनअवनि-द्रोही।
अंबुजायत नयन, बदन छबि बहु मयन,
चारु चितवनि चतुर लेति चित पोही ॥ ३ ॥
बचन प्रिय सुनि स्रवन राम करुनाभवन
चितए सब अधिक हित सहित कछु ओही।
दास तुलसी नेह-बिबस बिसरी देह,
जान नहिं आपु तेहि काल धौं कोही ॥ ४ ॥ १८ ॥

राग केदारा

सखि ! नीके कै निरखि कोऊ सुठि सुंदर बटोही ।
मधुर मूरति मदनमोहन जोहन-जोग,
बदन सोभासदन देखिहौं मोही ॥ १ ॥
साँवरे गोरे किसोर, सुर मुनि चित्त-चोर,
उभय-अंतर एक नारि सोही ।
मनहुँ बारिद बिधु बीच ललित अति
राजति तड़ित निज सहज बिछोही ॥ २ ॥
उर धीरजहि धरि, जन्म सफल करि,
सुनहि सुमुखि ! जनि बिकल होही ।
को जानै कौनै सुकृत लह्यो है लोचन-लाहू,
ताहि तें बारहि बार कहति तोही ॥ ३ ॥
सखिहि सुसिख दई, प्रेम-मगन भई,
सुरति बिसरि गई आपनी ओही ।
तुलसी रही है ठाढ़ी पाहन गढ़ी सी काढ़ी,
न जानै कहाँ तें आई, कौन की को ही ॥ ४ ॥ १९ ॥

माई ! मन के मोहन जोहन-जोग जोही ।
थोरी ही बयस गोरे साँवरे सलोने लोने,
लोयन ललित, बिधुबदन बटोही ॥ १ ॥
सिरनि जटा मुकुट मंजुल सुमनजुत,
जैसिये लसति नव पल्लव खोही ।
किए मुनि-बेष बीर, धरे धनु तून तीर,
सोहैं मग, को हैं लखि परै न मोही ॥ २ ॥
सोभा को साँचो सँवारि रूप जातरूप,
ढारि नारि बिरची बिरंचि संग सोही ।
राजत रुचिर तनु, सुंदर स्रम के कन,
चाहे चकचौंधी लागै, कहौं का तोही ? ॥ ३ ॥
सनेह-सिथिल सुनि बचन सकल सिय
चितई अधिक हित सहित ओही ।

१९—निज सहज बिछोही = अपना चंचल स्वभाव छोड़कर ।
२०—खोही = पत्तों का बना हुआ छाता ।

तुलसी मनहुँ प्रभु कृपा की मूरति फिरि
हेरि कै हरषि हिये लियो है पाही ॥ ४ ॥ २० ॥

सखि ! सरद-बिमल-बिधुबदनि बधूटी ।
ऐसी ललना सलोनी न भई, न है, न होनो,
रच्यो रची बिधि जा छोलत छबि छूटी ॥ १ ॥
साँवरे गोरे पथिक बीच सोहति अधिक,
तिहूँ त्रिभुवन-सोभा मनहुँ लूटी ।
तुलसी निरखि सिय प्रेमबस कहैं तिय,
लोचन-सिसुन्ह देहु अमिय घूटी ॥ २ ॥ २१ ॥

सोहै साँवरे पथिक, पाछे ललना लोनी ।
दामिनि-बरन गोरी, लखि सखि तृन तोरी,
बीती है बय किसोरी, जोबन होनी ॥ १ ॥
नीके कै निकाई देखि, जनम सुफल लेखि,
हम सी भूरि-भागिनि नभ नन छोनी ।
तुलसी-स्वामी-स्वामिनि जोहे मोही हैं भामिनि,
सोभा-सुधा पिए करि अँखिया दोनी ॥ २ ॥ २२ ॥

पथिक गोरे साँवरे सुठि लोने ।
संग सुतिय जाके तनु तें लही है दुति सोन सरोरुह सोने ॥ १ ॥
बय किसोर-सरि-पार मनोहर बयस-सिरोमनि होने ।
सोभा-सुधा, आलि ! अचवहु करि नयन मंजु मृदु दोने ॥ २ ॥
हेरत हृदय हरत, नहि फेरत चारु बिलोचन कोने ।
तुलसी-प्रभु किधौं प्रभु को प्रेम पढ़े प्रगट कपट बिनु टोने ॥ ३ ॥ २३ ॥

मनोहरता के मानो ऐन ।
स्यामल गौर किसोर पथिक दोउ, सुमुखि ! निरखु भरि नैन ॥ १ ॥
बीच बधू बिधुबदनि बिराजति उपमा कहुँ कोऊ है न ।
मानहुँ रति ऋतुनाथ सहित मुनि-बेष बनाए है मैन ॥ २ ॥
किधौं सिंगार-सुखमा-सुप्रेम मिलि चले जग-चित-बित लैन ।
अद्भुत त्रयी किधौं पठई है बिधि मग-लोगन्हि सुख दैन ॥ ३ ॥
सुनि सुचि सरल सनेह सुहावने ग्रामबधुन्ह के बैन ।
तुलसी प्रभु तरु तर बिलँबे किए प्रेम कनौडे कै न ? ॥ ४ ॥ २४ ॥

२३—सोन = लाल । बयस सिरोमनि = युवावस्था ।

बय किसोर गोरे साँवरे धनुबान धरे हैं।
सब अँग सहज सोहावने, राजीव जिते नैननि, बदननि बिधु निदरे हैं॥१॥
तून सुमुनिपट कटि कसे, जटा मुकुट करे हैं।
मंजु मधुर मृदु मूरति, पानह्यौं न पायनि, कैसे धौं पथ बिचरे हैं?॥२॥
उभय बीच बनिता बनी लखि मोहि परे हैं।
मदन सप्रिया सप्रिय सखा मुनि-बेष बनाए लिए मन जात हरे हैं॥३॥
सुनि जहँ तहँ देखन चले अनुराग भरे हैं।
राम-पथिक छबि निरखि कै, तुलसी,
मग-लोगनि धाम-काम बिसरे हैं॥४॥२५॥

कैसे पितु मातु, कैसे ते प्रिय परिजन हैं?
जगजलधि ललाम, लोने लोने गोरे स्याम,
जिन पठए हैं ऐसे बालकनि बन हैं॥१॥
रूप के पारावार, भूप के कुमार मुनि-बेष,
देखत लोनाई लघु लागत मदन हैं।
सुखमा की मूरति सी, साथ निसिनाथ-मुखी,
नखसिख अंग सब सोभा के सदन हैं॥२॥
पंकज-करनि चाप, तीर तरकस कटि,
सरद-सरोजहु तें सुंदर चरन हैं।
सीता राम लषन निहारि ग्रामनारि कहैं,
हेरि, हेरि, हेरि! हेली हिय के हरन हैं॥३॥
प्रानहूँ के प्रान से, सुजीवन के जीवन से,
प्रेमहू के प्रेम, रंक कृपिन के धन हैं।
तुलसी के लोचन-चकोरनी के चंद्रमा से,
आछे मन-मोर चित-चातक के घन हैं॥४॥२६॥

राग भैरव

देखि! द्वै पथिक गोरे साँवरे सुभग हैं।
सुतिय सलोनी संग सोहत सुमग हैं॥१॥
सोभासिंधु-संभव से नीके नीके नग हैं।
मातु-पितु-भाग-बस गए परि फंग हैं॥२॥
पाइँ पनह्यौ न, मृदु पंकज से पग हैं।
रूप की मोहनी मेलि मोहे अग जग हैं॥३॥

मुनि-बेष धरे धनु सायक सुलग हैं।
तुलसी हिये लसत लोने लोने डग हैं ॥ ४ ॥ २७ ॥

पथिक पयादे जात पंकज से पाय हैं।
मारग कठिन, कुस कंटकनिकाय हैं ॥ १ ॥
सखी भूखे प्यासे पै चलत चित चाय हैं।
इन्हके सुकृत सुर संकर सहाय हैं ॥ २ ॥
रूप सोभा प्रेम के से कमनीय काय हैं।
मुनिबेष किए किधौं ब्रह्म जीव माय हैं ॥ ३ ॥
बीर बरियार धीर धनुधर-राय हैं।
दसचारि-पुर-पाल आली उरगाय हैं ॥ ४ ॥
मग-लोग देखत करत हाय हाय हैं।
बन इनको तो बाम बिधि के बनाय हैं ॥ ५ ॥
धन्य ते जे मीन से अवधि-अंबु-आय हैं।
तुलसी प्रभु सों जिन्हहूँ के भले भाय हैं ॥ ६ ॥ २८ ॥

राग आसावरी

सजनी ! है कोउ राजकुमार।
पथ चलत मृदु पद कमलनि दोउ सील-रूप-आगार ॥ १ ॥
आगे राजिवनैन स्याम-तनु सोभा अमित अपार।
डारौं वारि अंग अंगनि पर कोटि कोटि सत मार ॥ २ ॥
पाछे गोर किसोर मनोहर, लोचन बदन सुढार।
कटि तूनीर कसे, कर सर धनु, चले हरन छिति भार ॥ ३ ॥
जुगुल बीच सुकुमारि नारि इक राजति बिनहि सिंगार।
इंद्रनील, हाटक, मुकुतामनि जनु पहिरे महि हार ॥ ४ ॥
अवलोकहु भरि नैन, बिकल जनि होहु, करहु सुबिचार।
पुनि कहँ यह सोभा, कह लोचन, देह गेह संसार ? ॥ ५ ॥
सुनि प्रिय बचन चितै हित कै रघुनाथ कृपा सुखसार।
तुलसिदास प्रभु हरे सबन्हि के मन, तन रही न सँभार ॥ ६ ॥ २९ ॥

२७—सुलग = पास।

२८—उरगाय = उरुगाय, विष्णु। कै बनाय हैं = बनाय के हैं, बहुत ही प्रतिकूल है। अवधि-अंबु-आय = जिनकी आयु अवधि रूपी जल ही तक है।

राग टोड़ी

देखु री सखी ! पथिक नख-सिख नीके है
नीले पीले कमल से कोमल कलेवरनि
तापस हूँ, बेष किये काम कोटि फीके है ॥ १ ॥
सुकृत सनेह सील सुखमा सुख सकोल
बिरचे बिरंचि किधौं अमिय अमी के है ।
रूप की सी दामिनी सुभामिनी सोहति संग,
उमहुँ रमा तें आछे अंग अंग ती के है ॥ २ ॥
बन-पट कसे कटि, तून तीर धनु धरे,
धीर बीर पालक कृपालु सबही के है
पानहीं न, चरन-सरोजनि चलत मग,
कानन पठाए पितु-मातु कैसे ही के है ? ॥ ३ ॥
आली अवलोकि लेहु, नयननि के फलु येहु,
लाभ के सुलाभ, सुखजीवन से जी के है ।
धन्य नर नारि जे निहारि बिनु गाहक हू
आपने आपने मन मोल बिनु बीके है ॥ ४ ॥
बिबुध बरखि फूल हरषि हिये कहत
ग्राम-लोग मगन सनेह सिय-पी के है ।
जोगीजन अगम दरस पायो पावँरनि,
प्रमुदित मन सुनि सुरप सची के है ॥ ५ ॥
प्रीति के सुबालक से लालत सुजन मुनि,
मग चारु चरित लषन राम सी के है ।
जोग न बिराग जाग तप न तीरथ त्याग,
एही अनुराग भाग खुले तुलसी के है ॥ ६ ॥ ३० ॥

रीति चलिबे की चाहि, प्रीति पहिचानि के ।
आपनी आपनी कहैं प्रेम परबस अहै,
मंजु मृदु बचन सनेह-सुधा सानि के ॥ १ ॥
साँवरे कुँवर के बराइ कै चरन के चिह्न,
बधू पग धरति कहा धौं जिय जानि के ।
जुगल कमल-पद-अंक जोगवत जात
गोरे गात कुँवर महिमा महा मानि के ॥ २ ॥

उनकी कहनि नीकी, रहनि लषन सी की,
तिनकी गहनि जे पथिक उर आनि कै।
लोचन सजल, तन पुलक, मगन मन,
होत भूरिभागी जस तुलसी बखानि कै॥ ३॥ ३१॥

राग केदारा

जेहि जेहि मग सिय राम लषन गए।
तहँ तहँ नर नारि बिनु छर छरिगे।
निरखि निकाई-अधिकाई बिथकित भए
बच, बिय-नैन-सर सोभा-सुधा भरिगे॥ १॥
जोते बिनु, बए बिनु, निफन निराए बिनु,
सुकृत-सुखेत सुख-सालि फूलि फरिगे।
मुनिहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ
सुगम सो राम लघु लोगनि को करिगे॥ २॥
लालची कौड़ी के कूर पारस परे है पाले,
जानत न को है, कहा कीबो सो बिसरिगे।
बुधि न बिचार, न बिगार, न सुधार सुधि
देह गेह नेह नाते मन से निसरिगे॥ ३॥
बरषि सुमन सुर हरषि हरषि कहैं,
'अनायास भवनिधि नीच नाके तरिगे'।
सो सनेह समउ सुमिरि तुलसीहू के से
भली भाँति भले पैंत भले पाँसे परिगे॥ ४॥ ३२॥

बोले राज देन को, रजायसु भो कानन को,
आनन प्रसन्न, मन मोद, बड़ो काज भो।
मातु-पिता-बंधु-हित, आपनो परम हित,
मोको बीसहू के ईस अनुकूल आजु भो॥ १॥
असन अजीरन को समुझि तिलक तज्यौ,
बिपिन-गवनु भले भूखे को सुनाजु भो।

३२—बिनु छर छरिगे = बिना छाँटे हुए छँट कर साफ़ हो गए (चावल के समान), कना अलग करने के लिए चावल को फिर फटक कर साफ़ करने को 'छरना' कहते हैं। निफन = अच्छी तरह।

धरम-धुरीन धीर बीर रघुबीरजू को
कोटि राज सरिस भरत जू को राजु भो ॥ २ ॥
ऐसी बातैं कहत सुनत मग-लोगन की
चले जात बंधु दोउ मुनि को सो साज भो।
ध्याइबे को, गाइबे को, सेइबे सुमिरिबे को,
तुलसी को सब भाँति सुखद समाज भो ॥ ३ ॥ ३३ ॥
सिरिस-सुमन-सुकुमारि सुखमा की सींव
सीय, राम बड़े ही सकोच संग लई है।
भाई के प्रान समान, प्रिया के प्रान के प्रान,
जानि बानि प्रीति रीति कृपासील भई है ॥ १ ॥
आलबाल-अवध सुकामतरु कामबेलि
दूरि करि केकई बिपत्ति-बेलि बई है।
आप, पति, पूत, गुरुजन प्रिय परिजन,
प्रजाहू को कुटिल दुसह दसा दई है ॥ २ ॥
पंकज से पगनि पानह्यौं न, परुष पंथ,
कैसे निबहे हैं निबहैंगे गति नई है?।
एही सोच संकट मगन मग-नर-नारि,
सबकी सुमति राम-राग-रँग-रई है ॥ ३ ॥
एक कहैं बाम बिधि दाहिनो हम को भयो,
उत कीन्हों पीठि, इत को सुडीठि भई है।
तुलसी सहित बनवासी मुनि हमरिऔ,
अनायास अधिक अघाइ बनि गई है ॥ ४ ॥ ३४ ॥

राग गौरी

नीके कै मैं न बिलोकन पाए।
सखि ! यहि मग जुग पथिक मनोहर, बिधु बिधु-बदनि समेत सिधाए ॥१॥
नयन सरोज, किसोर बयस बर, सीस जटा रचि मुकुट बनाए।
कटि मुनि बसन तून, धनु सर कर, स्यामल गौर सुभाय सोहाए ॥ २ ॥
सुंदर बदन, बिसाल बाहु उर, तनु-छबि कोटि मनोज लजाए।
चितवत मोहिं लगी चौंधी सी जानौं न कौन कहाँ तें धौं आए ॥ ३ ॥
मनु गयो संग, सोचबस लोचन मोचत बारि, कितौ समुझाए।
तुलसिदास लालसा दरस की सोइ पुरवै जेहिं आनि देखाए ॥ ४ ॥ ३५ ॥

३३—बीसहू कै = बीसो बिस्वे, पूरी तरह से।

पुनि न फिरे दोउ बीर बटाऊ ।
स्यामल गौर सहज सुंदर, सखि ! बारक बहुरि बिलोकिबे काऊ ॥ १ ॥
कर-कमलनि सर सुभग सरासन, कटि मुनि बसन निषंग सोहाए ।
भुज प्रलंब, सब अंग मनोहर, धन्य सो जनक जननि जेहि जाए ॥ २ ॥
सरद-बिमल-बिधु-बदन, जटा सिर, मंजुल अरुन-सरोरुह-लोचन ।
तुलसिदास मनमय मारग में राजत कोटि-मदन-मदमोचन ॥ ३ ॥ ३६ ॥

राग केदारा

आली ! काहू तो बूझौ न पथिक कहाँ धौं सिधैहैं ।
कहाँ तें आए हैं, को हैं, कहा नाम स्याम गोरे,
काज कै कुसल फिरि एहि मग ऐहैं ? ॥ १ ॥
उठति बयस, मसि भींजति, सलोने सुठि,
सोभा-देखवैया बिनु बित्त ही बिकैहैं ।
हिये हेरि हरि लेत लोनी ललना समेत,
लोयननि लाहु देत जहाँ जहाँ जैहैं ॥ २ ॥
राम-लखन-सिय-पंथि की कथा पृथुल,
प्रेम बिथकीं कहति सुमुखि सबै हैं ।
तुलसी तिन्ह सरिस तेऊ भूरिभाग जेऊ
सुनि कै सुचित तेहि समै समैहैं ॥ ३ ॥ ३७ ॥

बहुत दिन बीते सुधि कछु न लही ।
गए जो पथिक गोरे साँवरे सलोने,
सखि ! संग नारि सुकुमारि रही ॥ १ ॥
जानि पहिचानि बिनु आपु तें आपुनेहु तें,
प्रानहुँ तें प्यारे प्रियतम उपही ।
सुधा के सनेह हू के सार लै सँवारे बिधि,
जैसे भावते हैं भाँति जाति न कही ॥ २ ॥
बहुरि बिलोकिबे कबहुँक, कहत
तनु पुलक, नयन जलधार बही ।
तुलसी प्रभु सुमिरि ग्रामजुवती सिथिल,
बिनु प्रयास परीं प्रेम सही ॥ ३ ॥ ३८ ॥

३७—सुचित समैहैं = चित्त में समवाएँगे अर्थात् धारण करेंगे ।
३८—उपही = ऊपरी, बाहरी ।

राग भैरव

आली री ! पथिक जे एहि पथ परौं सिधाए ।
तेतौ राम लषन अवध तें आए ॥ १ ॥
संग सिय सब अंग सहज सोहाए ।
रति, काम, ऋतुपति कोटिक लजाए ॥ २ ॥
राजा दसरथ रानी कौसिला जाए ।
कैकेयी कुचालि करि कानन पठाए ॥ ३ ॥
बचन कुभामिनि के भूपहि क्यों भाए ?
हाय हाय राय बाम बिधि भरमाए ॥ ४ ॥
कुलगुरु सचिव काहू न समुझाए ।
काँच मनि लै अमोल मानिक गवाँए ॥ ५ ॥
भाग मग-लोगनि के देखन जे पाए ।
तुलसी सहित जिन गुन गन गाए ॥ ६ ॥ ३९ ॥

सखि ! जबतें सीता समेत देखे दोउ भाई ।
तब तें परै न कल, कछू न सोहाई ॥ १ ॥
नखसिख नीके, नीके निरखि निकाई ।
तन सुधि गई, मन अनत न जाई ॥ २ ॥
हेरनि हँसनि हिय लिये है चोराई ।
पावन-प्रेम-बिबस भई हौं पराई ॥ ३ ॥
कैसे पितु मातु प्रिय परिजन भाई ।
जीवत जीव के जीवन बनहिं पठाई ॥ ४ ॥
समझ सो चित करि हित अधिकाई ।
प्रीति ग्रामबधुन की तुलसिहुँ गाई ॥ ५ ॥ ४० ॥

राग केदारा

जब तें सिधारे यहि मारग लखन राम
जानकी सहित तब तें न सुधि लही है ।
अवध गए धौं फिरि, कैधौं चढ़े बिंध्यगिरि,
कैधौं कहुँ रहे सो कछू न काहू कही है ॥ १ ॥
एक कहै चित्रकूट निकट नदी के तीर
परनकुटीर करि बसे, बात सही है ।
सुनियत भरत मनाइबे को आवत हैं,
होइगी पै सोई जो बिधाता चित्त चही है ॥ २ ॥

सत्य-संध धरम-धुरीन रघुनाथजू को
आपनी निबाहिबे नृप की निरबही है।
दस-चारि बरिस बिहार बन पद-चार
करिबे पुनीत सैल सर सरि मही है॥ ३॥
मुनि सुर सुजन समाज के सुधारि काज,
बिगरि बिगरि जहाँ जहाँ जाकी रही है।
पुर पाँउ धारिहैं उधारिहैं तुलसी हूँ से जन,
जिन जानि कै गरीबी गाढ़ी गही है॥ ४॥ ४१॥

राग सारंग

ये उपही कोउ कुँवर अहेरी।
स्याम गौर धनु-बान-तूनधर चित्रकूट अब आइ रहे, री॥ १॥
इन्हहि बहुत आदरत महामुनि समाचार मेरे नाह कहे, री।
बनिता बंधु समेत बसे बन, पितु हित कठिन कलेस सहे, री॥ २॥
बचन परसपर कहति किरातिनि पुलक गात, जल नयन बहे, री।
तुलसी प्रभुहि बिलोकति एकटक लोचनु जनु बिनु पलक लहे, री॥३॥४२॥

राग चंचरी

चित्रकूट अति बिचित्र, सुंदर बन महि पवित्र,
पावनि पय सरित सकल मल-निकंदिनी।
सानुज जहँ बसत राम, लोचनाभिराम,
बाम अंग बामावर बिस्व-बंदिनी॥ १॥ *
चितवत मुनिगन चकोर, बैठे निज ठौर ठौर,
अच्छय अकलंक सरद-चंद-चंदिनी।
उदित सदा बन-अकास, मुदित बदत तुलसिदास,
जय जय रघुनंदन जय जनकनंदिनी॥ २॥ ४३॥

* टी० बैजनाथ वाली प्रति में तथा एक हस्तलिखित प्रति में इसके आगे ये चार चरण और हैं—

ऋषिवर तहँ छंद बास, गावत कलकंठ हास, कीर्तन उनमाय काय क्रोधकंदिनी।
वर बिधान करत गान, वारत धन मान प्रान, झरना झर झिंग झिंग झिंग जल तरंगिनी।
वर बिहार चरन चारु पाँडर चंपक चनार करनहार बार पार पुर पुरंगिनी।
जोबन नव ढरत ढार, दुत्त मत्त मृग मराल, मंद मंद गुंजत हैं अलि अलिगिनी।

फटिकसिला मृदु बिसाल, संकुल सुरतरु तमाल,
[illegible] हरति छबि बितान की ।
मदाकिनि तटिनि तीर, मंजुल मृग बिहग भीर,
धीर मुनिगिरा गभीर सामगान की ॥ १ ॥
मधुकर पिक बरहि मुखर, सुंदर गिरि निर्भर भर,
जल-कन घन छाँह, छन प्रभा न भान की ।
सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, संतत बहै त्रिबिध बाउ
जनु बिहार-बाटिका नृप पंचबान की ॥ २ ॥
बिरचित तहँ परनसाल, अति बिचित्र लषन लाल,
निवसत जहँ नित कृपालु राम जानकी ।
निजकर राजीवनयन पल्लव-दल रचित सयन
प्यास परसपर पियूष प्रेम-पान की ॥ ३ ॥
सिय अँग लिखें धातुराग, सुमननि भूषन-बिभाग,
तिलक करनि का कहौं कलानिधान की ।
माधुरी बिलास हास, गावत जस तुलसिदास
बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की ॥ ४ ॥ ४४ ॥

राग केदारा

लोने लाल लषन सलोने राम, लोनी सिय,
चारु चित्रकूट बैठे सुरतरु-तर हैं ।
गोरे साँवरे सरीर पीत नील नीरज से,
प्रेमरूप सुखमा के मनसिज-सर हैं ॥ १ ॥
लोने नख-सिख, निरुपम निरखन जोग,
बड़े उर कंधर बिसाल भुज बर हैं ।
लोने लोने लोचन जटनि के मुकुट लोने,
लोने बदननि जीते कोटि सुधाकर हैं ॥ २ ॥
लोने लोने धनुष, बिशिष कर कमलनि,
लोने मुनिपट, कटि लोने सरघर हैं ।
प्रिया प्रिय बंधु को दिखावत बिटप, बेलि,
मंजु कुंज, सिलातल, दल, फूल, फर हैं ॥ ३ ॥

४४—सयन = शयनासन, बिस्तर ।

४५—सरघर=तरकश, तूणीर ।

ऋषिन के आश्रम सराहैं, मृग नाम कहैं,
लागि मधु, सरित, झरत निर्झर है।
नाचत बरहि नीके, गावत मधुप पिक,
बोलत बिहंग, नभ-जल-थल-चर है॥ ४॥
प्रभुहि बिलोकि मुनिगन पुलके कहत
भूरिभाग भये सब नीच नारि-नर हैं।
तुलसी सो सुख-लाहु लूटत किरात कोल
जाको सिसकत सुर बिधि हरि हर है॥ ५॥ ४५॥

राग सारंग

आइ रहे जब तें दोउ भाई।
तब तें चित्रकूट-कानन-छबि दिन दिन अधिक अधिकाई॥ १॥
सीता-राम-लषन-पद-अंकित अवनि सोहावनि बरनि न जाई।
मंदाकिनि मज्जत अवलोकन त्रिबिध पाप त्रयताप नसाई॥ २॥
उकठेउ हरित भए जल-थलरुह, नित नूतन राजीव सुहाई।
फूलत फलत पल्लवत पलुहत बिटप बेलि अभिमत सुखदाई॥ ३॥
सरित सरनि सरसीरुह-संकुल सदन सँवारि रमा जनु छाई।
कूजत बिहग, मंजु गुंजत अलि, जात पथिक जनु लेत बुलाई॥ ४॥
त्रिबिध समीर नीर झर झरननि जहँ तहँ रहे ऋषि कुटी बनाई।
सीतल सुभग सिलनि पर तापस करत जोग जप तप मन लाई॥ ५॥
भए सब साधु किरात किरातिनि, राम-दरस मिटि गइ कलुषाई।
खग मृग मुदित एक सँग बिहरत सहज बिषम बड़ बैर बिहाई॥ ६॥
कामकेलि बाटिका बिबुध-बन, लघु उपमा कबि कहत लजाई।
सकल भुवन सोभा सकेलि मनो राम बिपिन बिधि आनि बसाई॥ ७॥
बन मिस मुनि, मुनितिय, मुनि-बालक बरनत रघुबर-बिमल-बड़ाई।
पुलक सिथिल तनु, सजल सुलोचनु प्रमुदित मन जीवन फलु पाई॥ ८॥
क्यों कहौं चित्रकूट-गिरि संपत महिमा मोद मनोहरताई।
तुलसी जहँ बसि लखन राम सिय आनँद-अवधि अवध बिसराई॥ ९॥ ४६॥

राग गौरी

देखत चित्रकूट बन मन अति होत हुलास।
सीताराम लषन प्रिय, तापस-बृंद-निवास॥ १॥
सरित सोहावनि पावनि, पापहरनि पय नाम।
सिद्ध-साधु-सुर-सेवित देति सकल मन काम॥ २॥

बिटप बेलि नव किसलय, कुसुमित सघन सुजाति ।
कंदमूल, जल-थलरुह अगनित अनबन भाँति ॥ ३ ॥
बंजुल मंजु, बकुल कुल सुरतरु, ताल, तमाल ।
कदलि, कदंब, सुचंपक, पाटल, पनस, रसाल ॥ ४ ॥
भूरुह भूरि भरे जनु छबि अनुराग सुभाग ।
बन बिलोकि लघु लागहि बिपुल बिबुध-बन-बाग ॥ ५ ॥
जाइ न बरनि राम-बन चितवत चित हरि लेत ।
ललित-लता-द्रुम-संकुल मनहुँ मनोज-निकेत ॥ ६ ॥
सरित सरनि सरसीरुह फूले नाना रंग ।
गुंजत मंजु मधुप गन कूजत बिबिध बिहंग ॥ ७ ॥
लषन कहेउ रघुनंदन देखिय बिपिन-समाज ।
मानहुँ चयन मयन-पुर आयउ प्रिय ऋतुराज ॥ ८ ॥
चित्रकूट पर राउर जानि अधिक अनुरागु ।
सखा सहित जनु रतिपति आयउ खेलन फागु ॥ ९ ॥
झिल्लि, झाँझ, झरना, डफ, नव मृदंग, निसान ।
भेरि, उपंग, भृंग रव ताल, कीर कलगान ॥ १० ॥
हंस कपोत कबूतर बोलत चक्क चकोर ।
गावत मनहुँ नारिनर मुदित नगर चहुँ ओर ॥ ११ ॥
चित्र बिचित्र बिबिध मृग डोलत डोंगर डाँग ।
जनु पुरबीथिन बिहरत छैल सँवारे स्वाँग ॥ १२ ॥
नचहिं मोर, पिक गावहिं, सुर बर राग बँधान ।
निलज तरुन तरुनी जनु खेलहिं समय समान ॥ १३ ॥
भरि भरि सुंड करिनि करि जहँ तहँ डारहिं बारि ।
भरत परसपर पिचकनि मनहुँ मुदित नर नारि ॥ १४ ॥
पीठि चढ़ाइ सिसुन्ह कपि कूदत डारहिं डार ।
जनु मुँह लाइ गेरु मसि भए खरनि असवार ॥ १५ ॥
लिए पराग सुमनरस डोलत मलय समीर ।
मनहुँ अरगजा छिरकत, भरत गुलाल अबीर ॥ १६ ॥
काम कौतुकी यहि बिधि प्रभुहित कौतुक कीन्ह ।
रीझि राम [illegible]
दुखवहु मोरे दास जनि, मानेहु मोरि रजाइ ।
'भलेहि नाथ' माथे धरि आयसु चलेउ बजाइ ॥ १८ ॥

मुदित किरात किरातिनि रघुबर-रूप निहारि ।
प्रभुगुन गावत नाचत चले जोहारि जोहारि ॥ १९ ॥
देहिं असीस प्रसंसहिं मुनि, सुर बरषहिं फूल ।
गवने भवन राखि उर मूरति मंगलमूल ॥ २० ॥
चित्रकूट कानन छबि को कबि बरनै पार ।
जहँ सिय लषन सहित नित रघुबर करहिं बिहार ॥ २१ ॥
तुलसिदास चाँचरि मिस कहे राम गुन-ग्राम ।
गावहिं सुनहिं नारि नर पावहिं सब अभिराम ॥ २२ ॥ ४७ ॥

राग बसंत

आजु बन्यो है बिपिन देखो, राम धीर। मानो खेलत फागु मुद मदन बीर ॥१॥
बट बकुल कदंब पनस रसाल। कुसुमित तरु-निकर कुरव तमाल ॥
मानो बिबिध बेष धरे छैल-जूथ। बिच बीच लता ललना बरूथ ॥ २ ॥
पनवानक निर्झर, अलि उपंग। बोलत पारावत मानो डफ मृदंग ॥
गायक सुक कोकिल, झिल्लि ताल। नाचत बहु भाँति बरहिं मराल ॥ ३ ॥
मलयानिल सीतल सुरभि मंद। बह सहित सुमन रस रेनु बृंद ॥
मनु छिरकत फिरत सबनि सुरंग। भ्राजत उदार लीला अनंग ॥ ४ ॥
क्रीडत जीते सुर असुर नाग। हठि सिद्ध मुनिन के पंथ लाग ॥
कह तुलसिदास तेहि छाँड़ु मैन। जेहि राख राम राजीवनैन ॥ ५ ॥४८॥
ऋतु-पति आए भलो बन्यो बनसमाज। मानो भए हैं मदन महाराज आज ॥१॥
मनो प्रथम फागु मिस करि अनीति। होरी मिस अरिपुर जारि जीति ॥
मारुत मिस पत्र-प्रजा उजारि। नय नगर बसाए बिपिन झारि ॥ २ ॥
सिंहासन सैल सिला सुरंग। कानन, छबि रति परिजन कुरंग ॥
सित छत्र सुमन, बल्ली बितान। चामर समीर, निर्झर निसान ॥ ३ ॥
मनो मधु माधव दोउ अनिप धीर। बर बिपुल बिटप बानैत बीर ॥
मधुकर सुक कोकिल बंदि-बृंद। बरनहिं बिसुद्ध जस बिबिध छंद ॥ ४ ॥
मँह परत सुमन-रस फल पराग। जनु देत इतर नृप कर-बिभाग ॥
कलि सचिव सहित नय-निपुन मार। कियो बिस्व बिबस चारिहु प्रकार ॥ ५ ॥
बिरहिन पर नित नइ परै मारि। डाँड़ियत सिद्ध साधक प्रचारि ॥
तिनको न काम सकै चापि छाँह। तुलसी जे बसहिं रघुबीर-बाँह ॥ ६ ॥ ४९ ॥

४७—अनबन = भिन्न भिन्न, नाना। डाँगर = ऊँची ज़मीन या टीला। डाँग = घना बनखंड।

४८—कुरव = कुरबक, कटसरैया।

राग मलार

सब दिन चित्रकूट नीको लागत ।
बरषाऋतु प्रवेस बिसेष गिरि देखत मन अनुरागत ।। १ ।।
चहुँदिसि बन संपन्न, बिहँग मृग बोलत सोभा पावत ।
जनु सुनरेस देस पुर प्रमुदित प्रजा सकल सुख छावत ।। २ ।।
सोहत स्याम जलद मृदु घोरत धातु रँगमगे सृंगनि ।
मनहुँ आदि अंभोज बिराजत सेवित सुर-मुनि-भृंगनि ।। ३ ।।
सिखर परसि घन घटहिं, मिलति बग पाँति सो छबि कबि बरनी ।
आदि बराह बिहरि बारिधि मनो उठ्यो है दसन धरि धरनी ।। ४ ।।
जल-जुत बिमल सिलनि झलकत नभ, बन-प्रतिबिंब तरंग ।
मानहुँ जग-रचना बिचित्र बिलसति बिराट अँग अंग ।। ५ ।।
मंदाकिनिहि मिलत झरना झरि झरि भरि भरि जल आछे ।
तुलसी सकल सुकृत सुख लागे मानो राम भगति के पाछे ।। ६ ।। ५० ।।

राग सोरठ

आजु को भोर और सो, माई ।
सुनौं न द्वार बेद बंदी धुनि गुनिगन-गिरा सोहाई ।। १ ।।
निज निज सुंदर पति सदननि तें रूप-सील-छबि छाई ।
लेन असीस सीय आगे करि मोपै सुतबधू न आई ।। २ ।।
बूझी हौं न बिहँसि मेरे रघुबर 'कहाँ री ! सुमित्रा माता' ।
तुलसी मनहुँ महासुख मेरो देखि न सकेउ बिधाता ।। ३ ।। ५१ ।।

जननी निरखति बान धनुहियाँ ।
बार बार उर नैननि लावति प्रभुजू की ललित पनहियाँ ।। १ ।।
कबहुँ प्रथम ज्यों जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सबारे ।
"उठहु तात ! बलि मातु बदन पर, अनुज सखा सब द्वारे" ।। २ ।।
कबहुँ कहति यों "बड़ी बार भइ जाहु भूप पहँ, भैया ।
बंधु बोलि जेंइय जो भावै गई निछावरि मैया" ।। ३ ।।
कबहुँ समुझि बनगवन राम को रहि चकि चित्र लिखी सी ।
तुलसिदास वह समय कहे तें लागति प्रीति सिखी सी ।। ४ ।। ५२ ।।

माई री ! मोहि कोउ न समुझावै ।
राम-गवन साँचो किधौं सपनो, मन परतीति न आवै ।। १ ।।
लगेइ रहत मेरे नैननि आगे राम लषन अरु सीता ।
तदपि न मिटत दाह या उर को, बिधि जो भयो बिपरीता ।। २ ।।

दुख न रहै रघुपतिहिं बिलोकत, तनु न रहै बिनु देखे।
करत न प्रान पयान सुनहु, सखि! अरुझि परी यहि लेखे॥ ३ ॥
कौसल्या के बिरह-बचन सुनि रोइ उठीं सब रानी।
तुलसिदास रघुबीर-बिरह की पीर न जात बखानी॥ ४ ॥ ५३ ॥

जब जब भवन बिलोकति सूनो।
तब तब बिकल होति कौसल्या दिन दिन प्रति दुख दूनो॥ १ ॥
सुमिरत बाल-बिनोद राम के सुंदर मुनि-मन-हारी।
होत हृदय अति सूल समुझि पदपंकज अजिर-बिहारी॥ २ ॥
को अब प्रात कलेऊ माँगत रूठि चलैगो, माई!
स्याम-तामरस-नैन स्रवत जल काहि लेउँ उर लाई॥ ३ ॥
जीवौं तौ बिपति सहौं निसिबासर मरौं तौ मन पछितायो।
चलत बिपिन भरि नयन राम को बदन न देखन पायो॥ ४ ॥
तुलसिदास यह दुसह दसा अति, दारुन बिरह घनेरो।
दूरि करै को भूरि कृपा बिनु सोकजनित रुज मेरो?॥ ५ ॥ ५४ ॥

मेरो यह अभिलाषु बिधाता।
कब पुरवै सखि सानुकूल ह्वै हरि सेवक सुखदाता॥ १ ॥
सीता सहित कुसल कोसलपुर आवत हैं सुत दोउ।
स्रवन-सुधा-सम बचन सखी कब आइ कहैगो कोउ?॥ २ ॥
सुनि संदेस प्रेम-परिपूरन संभ्रम उठि धावौंगी।
बदन बिलोकि रोकि लोचन-जल हरषि हिये लावौंगी॥ ३ ॥
जनकसुता कब सासु कहै मोहिं, राम लषन कहैं मैया।
बाहु जोरि कब अजिर चलहिंगे स्यामगौर दोउ भैया॥ ४ ॥
तुलसिदास यहि भाँति मनोरथ करत प्रीति अति बाढ़ी।
थकित भई उर आनि राम-छबि मनहुँ चित्र लिखि काढ़ी॥ ५ ॥ ५५

सुन्यो जब फिरि सुमंत पुर आयो।
कहिहै कहा प्रानपति की गति, नृपति बिकल उठि धायो॥ १ ॥
पाँय परत मंत्री अति ब्याकुल, नृप उठाइ उर लायो।
दसरथ-दसा देखि न कह्यो कछु हरि जो सँदेस पठायो॥ २ ॥
बूझि न सकत कुसल प्रीतम की हृदय यहै पछितायो।
साँचेहु सुत-बियोग सुनिबे कहँ धिग बिधि मोहिं जिआयो॥ ३ ॥
तुलसिदास प्रभु जानि निठुर हौं न्याय नाथ बिसरायो।
हा! रघुपति कहि पर्‌यो अवनि जनु जल तें मीन बिलगायो॥ ४ ॥ ५६ ॥

मुएहु न मिटैगो मेरो मानसिक पछिताउ।
नारिबस न बिचारि कीन्हों काज, सोचत राउ॥ १॥
तिलक को बोल्यो, दियो बन, चौगुनो चित चाउ।
हृदय दाड़िम ज्यों न बिदस्यो समुझि सील सुभाउ॥ २॥
सीय रघुबर लषन बिनु, भय भभरि भगी न आउ।
मोहिं बूझि न परत यातें कौन कठिन कुघाउ॥ ३॥
सुनि सुमंत ! कि आनि सुंदर सुवन सहित जिआउ।
दास तुलसी नतरु मोको मरन-अमिय पिआउ॥ ४॥ ५७॥

अवध बिलोकि हौं जीवत राम भद्र-बिहीन।
कहा करिहैं आइ सानुज भरत धरमधुरीन॥ १॥
राम-सोक-सनेह-संकुल, तनु बिकल, मनु लीन।
टूटि तारो गगन-मग ज्यों होत छिन छिन छीन॥ २॥
हृदय समुझि सनेह सादर प्रेम-पावन-मीन।
करी तुलसीदास दसरथ प्रीति-परमिति पीन॥ ३॥ ५८॥

राग गौरी

करत राउ मन मों अनुमान।
सोक-बिकल मुख बचन न आवै बिछुरे कृपानिधान॥ १॥
राज देन कहि बोलि नारि-बस मैं जो कह्यो बन जान।
आयसु सिर धरि चले हरषि हिय कानन भवन समान॥ २॥
ऐसे सुत के बिरह-अवधि लौं जो राखौं यह प्रान।
तौ मिटि जाइ प्रीति की परमिति अजस सुनौं निज कान॥ ३॥
राम गए अजहूँ हौं जीवत समुझत हिय अकुलान।
तुलसिदास तनु तजि रघुपति हित कियो प्रेम परवान॥ ४॥ ५९॥

ऐसे तैं क्यों कटु बचन कह्यो, री ?
'राम जाहु कानन' कठोर तेरो कैसे धौं हृदय रह्यो री॥ १॥
दिनकर-बंस, पिता दसरथ से, राम लषन से भाई।
जननी ! तू जननी ? तौ कहा कहौं बिधि केहि खोरि न लाई ?॥ २॥
हौं लहिहौं सुख राजमातु ह्वै, सुत सिर छत्र धरैगो।
कुल-कलंक मल-मूल मनोरथ तव बिनु कौन करैगो ?॥ ३॥
ऐहैं राम, सुखी सब ह्वैहैं, ईस अजस मेरो हरिहै।
तुलसिदास मोको बड़ो सोच है तू जनम कौनि बिधि भरिहै॥ ४॥ ६०॥

ताते हौं देत न दूषन तोहूँ ।
रामबिरोधी उर कठोर तें प्रगट कियो है बिधि मोहूँ ॥ १ ॥
सुंदर सुखद सुसील सुधानिधि, जरनि जाइ जिहि जोए ।
बिष-बारुनी-बंधु कहियत बिधु ! नातो मिटत न धोए ॥ २ ॥
होते जौ न सुजान-सिरोमनि राम सब के मन माहीं ।
तौ तोरी करतूति, मातु ! सुनि, प्रीति प्रतीति कहा हीं ? ॥ ३ ॥
मृदु मंजुल सींची-सनेह सुचि सुनत भरत-बर-बानी ।
तुलसी 'साधु साधु' सुर नर मुनि कहत प्रेम पहिचानी ॥ ४ ॥ ६१ ॥

जो पै हौं मातु मते महँ ह्वैहौं ।
तौ जननी ! जग में या मुख की कहाँ कालिमा ध्वैहौं ? ॥ १ ॥
क्यों हौं आजु होत सुचि सपथनि ? कौन मानिहै साँची ? ।
महिमा-मृगी कौन सुकृती की खल-बच-बिसिषन बाँची ? ॥ २ ॥
गहि न जाति रसना काहू की, कहो जाहि जोइ सूझै ।
दीनबंधु कारुण्य-सिंधु बिनु कौन हिये की बूझै ? ॥ ३ ॥
तुलसी रामबियोग-बिषम-बिष-बिकल नारिनर भारी ।
भरत-सनेहसुधा सींचे सब भए तेहि समय सुखारी ॥ ४ ॥ ६२ ॥

काहे को खोरि कैकयिहि लावौ ?
धरहु धीर बलि जाउँ, तात ! मोको आज बिधाता बावो ॥ १ ॥
सुनिबे जोग बियोग राम को हौं न होउँ मेरे प्यारे ।
सो मेरे नयननि आगे तें रघुपति बनहि सिधारे ॥ २ ॥
तुलसिदास समुझाइ भरत कहँ आँसु पोंछि उर लाए ।
उपजी प्रीति जानि प्रभु के हित, मनहुँ राम फिरि आए ॥ ३ ॥ ६३ ॥

मेरो अवध धौं कहहु कहा है ।
करहु राज रघुराज-चरन तजि, लै लटि लोगु रहा है ॥ १ ॥
धन्य मातु, हौं धन्य लागि जेहि राज-समाज ढहा है ।
तापर मोको प्रभु करि चाहत, सब बिनु दहन दहा है ॥ २ ॥
राम-सपथ कोउ कछू कहै जनि, मैं दुख दुसह सहा है ।
चित्रकूट चलिए सब मिलि, बलि, छमिए मोहिं हहा है ॥ ३ ॥
यों कहि भोर भरत गिरिवर को मारग बूझि गहा है ।
सकल सराहत एक भरत जग जनमि सुलाहु लहा है ॥ ४ ॥

६४—लै लटि लोग रहा है = इसी धुन में लोग हैरान हो रहे हैं ।

जानहिं सिय रघुनाथ भरत को सील सनेह महा है।
कै तुलसी जाको राम-नाम सों प्रेम नेम निबहा है॥ ५॥ ६४॥

भाई! हौं अवध कहा रहि लैहौं।
राम-लषन-सिय-चरन बिलोकन काल्हि काननहिं जैहौं॥ १॥
जद्यपि मोतें, कै कुमातु तें, ह्वै आई अति पोची।
सन्मुख गए सरन राखहिंगे रघुपति परम सँकोची॥ २॥
तुलसी यों कहि चले भोरहीं, लोग बिकल सँग लागे।
जनु बन जरत देखि दारुन दव निकसि बिहग मृग भागे॥ ३॥ ६५॥

सुक सों गहवर हिये कहै सारो।
बीर कीर! सिय राम लषन बिनु लागत जग अँधियारो॥ १॥
पापिनि चेरि, अयानि रानि, नृप हित अनहित न बिचारो।
कुलगुरु सचिव साधु सोचतु बिधि को न बसाइ उजारो?॥ २॥
अवलोके न चलत भरि लोचन, नगर कोलाहल भारो।
सुने न बच करुनाकर के जब पुर परिवार सँभारो॥ ३॥
भैया भरत भावते के सँग बन सब लोग सिधारो।
हम पँख पाइ पींजरनि तरसत, अधिक अभाग हमारो॥ ४॥
सुनि खग कहत अंब! मौंगी रहि समुझि प्रेमपथ न्यारो।
गए ते प्रभुहि पहुँचाइ फिरे पुनि करत करम गुन गारो॥ ५॥
जीवन जग जानकी लखन को मरन महीप सँवारो।
तुलसी और प्रीति की चरचा करत कहा कछु चारो॥ ६॥ ६६॥

कहै सुक सुनहि सिखावन, सारो!।
बिधि करतब बिपरीत बाम गति, रामप्रेम-पथ न्यारो॥ १॥
को नर-नारि अवध खग मृग जेहि जीवन राम तें प्यारो।
बिद्यमान सब के गवने बन, बदन करम को कारो॥ २॥
अब अनुज प्रिय सखा सुसेवक देखि बिषाद बिसारो।
पंछी परबस परे पींजरनि लेखो कौन हमारो॥ ३॥
रही नृप की, बिगरी है सब की, अब एक सँवार निहारो।
तुलसी प्रभु निज चरन-पीठ-मिस भरत-प्रान रखवारो॥ ४॥ ६७॥

ता दिन सृंगबेरपुर आए।
राम सखा तें समाचार सुनि बारि बिलोचन छाए॥

६६—सारो = शारिका, मैना। मौंगी रहि=चुपचाप रह।

कुस साथरी देखि रघुपति की हेतु अपनपौ जानी ।
कहत कथा सिय राम लषन की बैठेहि रैनि बिहानी ॥
भोरहि भरद्वाज आश्रम ह्वै करि निषादपति आगे ।
चले जनु तक्यो तड़ाग तृषित गज घोर घाम के लागे ॥
बूझत 'चित्रकूट कहँ, जेहि तेहि मुनि बालकनि बतायो ।
तुलसी मनहुँ फनिक मनि ढूँढत निरखि हरषि हिय धायो ॥ १ ॥ ६८ ॥

राग केदारा

बिलोके दूरि तें दोउ बीर ।
उर आयत, आजानु सुभग भुज, स्यामल गौर सरीर ॥ १ ॥
सीस जटा, सरसीरुह लोचन, बने परिधन मुनिचीर ।
निकट निषंग, संग सिय सोभित, करनि धुनत धनु तीर ॥ २ ॥
मन अगहुँड़ तनु पुलक सिथिल भयो, नलिन नयन भरे नीर ।
गड़त गोड़ मानों सकुच-पंक महँ, कढ़त प्रेम-बल धीर ॥ ३ ॥
तुलसिदास दसा देखि भरत की उठि धाए अतिहि अधीर ।
लिये उठाइ उर लाइ कृपानिधि बिरह-जनित हरि पीर ॥ ४ ॥ ६९ ॥

भरत भए ठाढ़े कर जोरि ।
है न सकत सामुहे सकुचबस समुझि मातुकृत खोरि ॥ १ ॥
फिरिहैं किधौं फिरन कहिहैं प्रभु कलपि कुटिलता मोरि ।
हृदय सोच, जल भरे बिलोचन, नेह देह भइ भोरि ॥ २ ॥
बनबासी, पुरलोग, महामुनि किये हैं काठ के से कोरि ।
दै दै स्रवन सुनिबे को जहँ तहँ रहे प्रेम मन बोरि ॥ ३ ॥
तुलसी राम-सुभाव सुमिरि उर धरि धीरजहि बहोरि ।
बोले बचन बिनीत उचित हित करुना-रसहि निचोरि ॥ ४ ॥ ७० ॥

जानत हौं सबही के मन की ।
तदपि कृपालु करौं बिनती सोइ सादर सुनहु दीन हित जन की ॥ १ ॥
ए सेवक संतत अनन्य अति ज्यों चातकहि एक गति घन की ।
यह बिचारि गवनहु पुनीत पुर, हरहु दुसह आरति परिजन की ॥ २ ॥
मेरो जीवन जानिय ऐसोइ जैसो अहि जासु गई मनि फन की ।
मेटहु कुलकलंक कोसलपति आज्ञा देहु नाथ मोहिं बन की ॥ ३ ॥

६९—धुनत = क्रीडावश धनुष की डोरी पर मारते है ।
७०—कोरि = छीलछाल कर ।

मोकों जोइ लाइय लागै सोइ, उतपति है कुमातु तें तन की ।
तुलसिदास सब दोष दूरि करि प्रभु अब लाज करहु निज पन की । ४॥७१॥

तात ! बिचारो धौं हौं क्यों आवौं ।
तुम्ह सुचि सुहृद सुजान सकल बिधि बहुत कहा कहि कहि समुझावौं ॥१॥
निज कर खाल खैंचि या तनुतें जौ पितु पग पानहीं करावौं ।
होउँ न उऋन पिता दसरथ तें; कैसे ताके बचन मेटि पति पावौं ॥ २ ॥
तुलसिदास जाको सुजस तिहूँ पुर क्यों तेहि कुलहि कालिमा लावौं ।
प्रभु रुख निरखि निरास भरत भए, जान्यो है सबहि भाँति बिधि बावौं ॥३॥७२

राग सोरठ

बहुरो भरत कह्यो कछु चाहैं ।
सकुच-सिंधु बोहित बिबेक करि बुधि बल बचन निबाहैं ॥ १ ॥
छोटे हुतें छोह करि आए मैं सामुहे न हेरो ।
एकहि बार आजु बिधि मेरो सील सनेह निबेरो ॥ २ ॥
तुलसी जो फिरिबो न बनै प्रभु तौ हौं आयसु पावौं ।
घर फेरिए लषन लरिका हैं, नाथ साथ हौं आवौं ॥ ३ ॥ ७३ ॥

रघुपति ! मोहि संग किन लीजै ।
बारबार 'पुर जाहु' नाथ ! केहि कारन आयसु दीजै ॥ १ ॥
जद्यपि हौं अति अधम कुटिल मति अपराधिनि को जायो ।
प्रनतपाल कोमल-सुभाव जिय जानि सरन तकि आयो ॥ २ ॥
जो मेरे तजि चरन आन गति, कहौं हृदय कछु राखी ।
तौ परिहरहु दयालु दीनहित प्रभु अभिअंतर-साखी ॥ ३ ॥
ताते, नाथ ! कहौं मैं पुनि पुनि प्रभु पितु मातु गोसाईं ।
भजन-हीन नरदेह बृथा खर स्वान फेरु की नाईं ॥ ४ ॥
बंधु-बचन सुनि स्रवन नयन राजीव नीर भरि आए ।
तुलसिदास प्रभु परम कृपा गहि बाँह भरत उर लाए ॥ ५ ॥ ७४ ॥

काहेको मानत हानि हिये हौ ?
प्रीति नीति गुन सील धर्म कहँ तुम अवलंब दिये हौ ॥ १ ॥
तात ! जात जानिबे न ए दिन; करि प्रमान पितु-बानी ।
ऐहौं बेगि, धरहु धीरज उर कठिन कालगति जानी ॥ २ ॥
तुलसिदास अनुजहि प्रबोधि प्रभु चरनपीठ निज दीन्हें ।
मनहुँ सबनि के प्रान-पाहरू भरत सीस धरि लीन्हें ॥ ३ ॥ ७५ ॥

बिनती भरत करत कर जोरे ।
दीनबंधु दीनता दीन की कबहुँ परै जिनि भोरे ॥ १ ॥
तुह्मसे तुह्महिं नाथ मोको, मोसे जन तुमको बहुतेरे ।
इहै जानि पहिचानि प्रीति छमिए अब औगुन मेरे ॥ २ ॥
यों कहि सीय-राम-पाँयनि परि लषन लाइ उर लीन्हें ।
पुलक सरीर नीर भरि लोचन कहत प्रेम-पन कीन्हें ॥ ३ ॥
तुलसी बीते अवधि प्रथम दिन जो रघुबीर न ऐहौं ।
ता प्रभु-चरन-सरोज-सपथ जीवत परिजनहि न पैहौं ॥ ४ ॥ ७६ ॥

अवसि हौं आयसु पाइ रहौंगो ।
जनमि कैकयी- कोखि कृपानिधि ! क्यों कछु चपरि कहौंगो ॥ १ ॥
'भरत भूप, सिय राम लपन बन', सुनि आनंद सहौंगो ।
पुर परिजन अवलोकि मातु सब सुख संतोष लहौंगो ॥ २ ॥
प्रभु जानत जेहि भाँति अवधि लौं बचन पालि निबहौंगो ।
आगे की बिनती तुलसी तब जब फिरि चरन गहौंगो ॥ ३ ॥ ७७ ॥

प्रभु सों मैं ढीठो बहुत दई है ।
कोबी छमा नाथ आरति तें कही कुजुगुति नई है ॥ १ ॥
यों कहि बार बार पाँयनि परि पाँवरि पुलकि लई है ।
अपनो अदिन देखि हौं डरपत जेहि बिष बेलि बई है ॥ २ ॥
आए सदा सुधारि गोसाईं जन तें बिगरि गई है ।
थके बचन पैरत सनेह-सरि पर्यो मानो घोर घई है ॥ ३ ॥
चित्रकूट तेहि समय सबनि को बुद्धि बिषाद हई है ।
तुलसी राम-भरत के बिछुरत सिला सप्रेम भई है ॥ ४ ॥ ७८ ॥

जब तें चित्रकूट तें आए ।
नंदिग्राम खनि अवनि, डासि कुस, परनकुटी करि छाए ॥ १ ॥
अजिन बसन, फल असन, जटा धरे रहत अवधि चित दीन्हें ।
प्रभुपद-प्रेमनेमब्रत निरखत मुनिन्ह नमित मुख कीन्हें ॥ २ ॥
सिंहासन पर पूजि पादुका बारहिं बार जोहारे ।
प्रभु-अनुराग माँगि आयसु पुरजन सब काज सँवारे ॥ ३ ॥
तुलसी ज्यों ज्यों घटत तेज तनु त्यों त्यों प्रीति अधिकाई ।
भए, न हैं, न होहिंगे कबहूँ भुवन भरत से भाई ॥ ४ ॥ ७९ ॥

७८---घई = भँवर ।

राग रामकली

राखी भगति भलाई भली भाँति भरत ।
स्वारथ परमारथ पथी जय जय जग करत ॥ १ ॥
जो ब्रत मुनिवरनि कठिन मानस आचरत ।
सो ब्रत लिए चातक ज्यों सुनत पाप हरत ॥ २ ॥
सिंहासन सुभग राम-चरन-पीठ धरत ।
चालत सब राजकाज आयसु अनुसरत ॥ ३ ॥
आपु अवध, बिपिन बंधु, सोच जरनि जरत ।
तुलसी सम बिषम, सुगम अगम लखि न परत ॥ ४ ॥ ८० ॥

मोहि भावति, कहि आवति नहि भरतजू की रहनि ।
सजल नयन, सिथिल बयन प्रभु-गुन-गन कहनि ॥ १ ॥
असन-बसन-अयन-सयन धरम-गरुअ-गहनि ।
दिन दिन पन प्रेम नेम निरुपधि निरबहनि ॥ २ ॥
सीता-रघुनाथ लषन-बिरह-पीर सहनि ।
तुलसी तजि उभय लोक रामचरन-चहनि ॥ ३ ॥ ८१ ॥

जानी है संकर हनुमान लषन भरत-रामभगति ।
कहत सुगम, करत अगम, सुनत मीठी लगति ॥ १ ॥
लहत सकृत चहत सकल, जुग जुग जगमगति ।
राम-प्रेम-पथ तें कबहुँ डोलति नहि डगति ॥ २ ॥
ऋधि, सिधि, बिधि चारि सुगति जा बिनु गति अगति ।
तुलसी तेहि सनमुख बिनु बिषय-ठगिनि ठगति ॥ ३ ॥ ८२ ॥

राग गौरी

कैकयी करी धौं चतुराई कौन ? ।
राम लषन सिय बनहिं पठाए, पति पठए सुरभौन ॥ १ ॥
कहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुन-तन दौन ।
पुरबासिन्ह के नयन नीर बिनु कबहुँ तो देखति हौं न ॥ २ ॥
कौसल्या दिन राति बिसूरति बैठि मनहिं मन मौन ।
तुलसी उचित न होइ रोइबो प्रान गए संग जौ न ॥ ३ ॥ ८३ ॥

हाथ मींजिबो हाथ रह्यो ।
लगी न संग चित्रकूटहु तें ह्याँ कहा जात बह्यो ॥ १ ॥
पति सुरपुर, सिय राम लषन बन, मुनिब्रत भरत गह्यो ।
हौं रहि घर मसान-पावक ज्यों मरिबोइ मृतक दह्यो ॥ २ ॥

मेरोइ हिय कठोर करिबे कहँ बिधि कहुँ कुलिस लह्यो ।
तुलसी बन पहुँचाइ फिरी सुत, क्यों कछु परत कह्यो ? ॥ ३ ॥ ८४ ॥

राग सोरठ

हौं तो समुझि रही अपनो सो ।
राम लषन सिय को सुख मो कहँ भयो, सखी ! सपनो सो ॥ १ ॥
जिन्हके बिरह बिषाद बँटावन खग मृग जीव दुखारी ।
मोहि कहा सजनी समुझावति हौं तिन्हकी महतारी ॥ २ ॥
भरत-दसा सुनि, सुमिरि भूपगति, देखि दीन पुरवासी ।
तुलसी 'राम' कहति हौं सकुचति ह्वैहै जग उपहाँसी ॥ ३ ॥ ८५ ॥

आली ! हौं इन्हहि बुझावौं कैसे ? ।
लेत हिये भरि भरि पति को हित, मातुहेतु सुत जैसे ॥ १ ॥
बार बार हिहिनात हेरि उत जो बोलै कोउ द्वारे ।
अंग लगाइ लिए बारे तें करुनामय सुत प्यारे ॥ २ ॥
लोचन सजल, सदा सोवत से, खान पान बिसराए ।
चितवत चौंकि नाम सुनि, सोचत राम-सुरति उर आए ॥ ३ ॥
तुलसी प्रभु के बिरह बधिक हठि राजहंस से जोरे ।
ऐसेहु दुखित देखि हौं जीवति राम लषन के घोरे ॥ ४ ॥ ८६ ॥

राघौ ! एक बार फिरि आवौ ।
ए बर बाजि बिलोकि आपने बहुरो बनहिं सिधावौ ॥ १ ॥
जे पय प्याइ पोखि कर-पंकज बार बार चुचुकारे ।
क्यों जीवहि, मेरे राम, लाडिले ! ते अब निपट बिसारे ॥ २ ॥
भरत सौगुनी सार करत है अति प्रिय जानि तिहारे ।
तदपि दिनहिं दिन होत झाँवरे मनहुँ कमल हिम-मारे ॥ ३ ॥
सुनहु पथिक ! जो राम मिलहिं बन कहियो मातु सँदेसो ।
तुलसी मोहिं और सबहिन तें इन्हको बड़ो अँदेसो ॥ ४ ॥ ८७ ॥

राग केदारा

काहू सों काहू समाचार ऐसे पाए ।
चित्रकूट तें राम लषन सिय सुनियत अनत सिधाए ॥ १ ॥

८४—मरिबोई मृतक दह्यो = मानो मृत्यु रूपी मृतक को ही जला डाला है अर्थात् मैं मरती भी नहीं हूँ ।

८७—सार = खबरदारी, सँभाल ।

सैल, सरित, निर्झर, बन, मुनिथल देखि देखि मन भाए।
कहत सुनत सुमिरत सुखदायक मानस सुगम सुहाए ॥ २ ॥
बड़ि अवलंब बाम-बिधि-बिघटित, बिषम बिषाद बढ़ाए।
सिरिस सुमन सुकुमार मनोहर बालक बिंध्य चढ़ाए ॥ ३ ॥
अवध सकल नर नारि बिकल अति अकनि बचन अनभाए।
तुलसी राम-बियोग-सोग-बस समुझत नहिं समुझाए ॥ ४ ॥ ८८ ॥

सुनी मैं, सखि! मंगल चाह सुहाई।
सुभ पत्रिका निषादराज की आजु भरत पहँ आई ॥ १ ॥
कुँवर सो कुसल-छेम अलि! तेहि पल कुलगुरु कहँ पहुँचाई।
गुरु कृपालु संभ्रम पुर घर घर सादर सबहि सुनाई ॥ २ ॥
बधि बिराध, सुर साधु सुखी करि, ऋषि सिख आसिष पाई।
कुंभज सिष्य समेत संग सिय मुदित चले दोउ भाई ॥ ३ ॥
बीच बिंध्य रेवा सुपास थल बसे हैं परन-गृह छाई।
पंथ-कथा रघुनाथ पथिक की तुलसिदास सुनि गाई ॥ ४ ॥ ८९ ॥

अरण्य कांड

राग मलार

देखे राम-पथिक नाचत मुदित मोर।
मानत मनहुँ सतड़ित ललित घन, धनु सुरधनु, गरजनि टंकोर ॥ १ ॥
कँपै कलाप बर बरहि फिरावत, गावत कल कोकिल-किसोर।
जहँ जहँ प्रभु बिचरत तहँ तहँ सुख दंडकबन कौतुक न थोर ॥ २ ॥
सघन छाँह तम-रुचिर रजनि भ्रम, बदन-चंद चितवत चकोर।
तुलसी मुनि खग मृगनि सराहत भए हैं सुकृत सब इन्हकी ओर ॥ ३ ॥ १ ॥

राग कल्याण

सुभग सरासन सायक जोरे।
खेलत राम फिरत मृगया बन बसति सो मृदु मूरति मन मोरे ॥
पीत बसन कटि, चारु चारि सर, चलत कोटि नट सो तृन तोरे।
स्यामल तनु स्रम-कन राजत ज्यों नव घन सुधा-सरोवर खोरे ॥

१—कँपै =कँपा कर। कलाप =मोर की पूछ।

ललित कंध, बर भुज, बिसाल उर, लेहिं कंठ-रेखैं चित चोरे।
अवलोकत मुख देत परम सुख लेत सरद-ससिकी छबि छोरे॥
जटा मुकुट सिर सारस-नयननि गौंहैं तकत सुभौंह सकोरे।
सोभा अमित समाति न कानन, उमगि चली चहुँ दिसि मिति फोरे॥
चितवत चकित कुरंग कुरंगिनि सब भए मगन मदन के भोरे।
तुलसिदास प्रभु बान न मोचत, सहज सुभाय प्रेमबस थोरे॥ २॥

राग सोरठ

बैठे हैं राम लषन अरु सीता।
पंचबटी बर परन कुटी तर कहैं कछु कथा पुनीता॥
कपट-कुरंग कनकमनिमय लखि प्रिय सों कहति हँसि बाला।
पाए पालिबे जोग मंजु मृग, मारेहुँ मंजुल छाला॥
प्रिया-बचन सुनि बिहँसि प्रेमबस गवहिं चाप सर लीन्हें।
चल्यो भाजि फिरि फिरि चितवत मुनिमख-रखवारे चीन्हें॥
सोहति मधुर मनोहर मूरति हेम-हरिन के पाछे।
धावनि, नवनि, बिलोकनि, बिथकनि बसै तुलसि उर आछे॥ ३॥

राग कल्याण

कर सर धनु, कटि रुचिर निषंग।
प्रिया-प्रीति-प्रेरित बन बीथिन्ह बिचरत कपट-कनक-मृग संग॥
भुज बिसाल, कमनीय कंध उर, स्रम-सीकर सोहैं साँवरे अंग।
मनु मुकुता मनि-मरकतगिरि पर लसत ललित रबि-किरनि प्रसंग॥
नलिन नयन, सिर जटा मुकुट बिच सुमन-माल मनु सिव-सिर गंग।
तुलसिदास ऐसी मूरति की बलि, छबि, बिलोकि लाजैं अमित अनंग॥४॥

राग केदारा

राघव, भावति मोहि बिपिन की बीथिन्ह धावनि।
अरुन-कंज-बरन चरन सोकहरन, अंकुस कुलिस केतु अंकित अवनि॥
सुंदर स्यामल अंग, बसन पीत सुरंग, कटि निषंग परिकर मेरवनि।
कनक-कुरंग संग साजे कर सर चाप, राजिवनयन इत उत चितवनि॥

२—चलत...... तोरे = नट भी उनकी सुंदर द्रुत गति पर मोहित होकर तिनका तोड़ते हैं जिसमें उन्हें नजर न लगे। (स्त्रियाँ बच्चों को नजर से बचाने के लिए तिनका तोड़ने का टोटका करती हैं।)

३—गवहिं=धीरे से, चुपचाप।

सोहत सिर मुकुट जटा पटल, निकर सुमन लता सहित, रची बनवनि।
तैसेई स्रम-सीकर रुचिर राजत मुख, तैसिए ललित भृकुटिन्ह की नवनि।
देखत खग-निकर, मृग रवनिन्ह जुत, थकित बिसारि जहाँ तहाँ की भँवनि।
हरि-दरसन-फल पायो है ज्ञान बिमल, जाँचत भगति मुनि चाहत जवनि॥
जिन्हके मन मगन भए हैं रस सगुन, तिन्हके लेखे अगुन मुकुति कवनि।
स्रवन सुख करनि, भवसरिता तरनि, गावत तुलसिदास कीरति पवनि॥५॥

राग सोरठ

रघुबर दूरि जाइ मृग मार्‌यो।
लखन पुकारि, राम हरुए कहि मरतहुँ बैर सँभार्‌यो॥
सुनहु तात! कोउ तुम्हहि पुकारत प्राननाथ की नाईं।
कह्यो लषन हत्यो हरिन, कोपि सिय हठि पठयो बरिआई॥
बधु बिलोकि कहत तुलसी-प्रभु "भाई! भली न कीन्हीं।
मेरे जान जानकी काहू खल छल करि हरि लीन्हीं"॥ ६॥

आरत बचन कहति बैदेही।
बिलपति भरि बिसूरि 'दूरि गए मृग सँग परम सनेही'॥
कहे कटु बचन, रेख नाँघी मैं, तात छमा सो कीजे।
देखि बधिक-बस राजमरालिनि लषन लाल छिनि लीजै॥
बनदेवनि सिय कहन कहति यों छल करि नीच हरी हौं।
गोमर-कर सुरधेनु, नाथ! ज्यौं त्यौं पर-हाथ परी हौं॥
तुलसिदास रघुनाथ-नाम-धुनि अकनि गीध धुकि धायो।
'पुत्रि पुत्रि! जनि डरहि, न जैहै नीचु? मीचु हौं आयो'॥ ७॥

फिरत न बारहि बार पचार्‌यो।
चपरि चोंच चंगुल हय हति, रथ खंड खंड करि डार्‌यो॥
बिरथ बिकल कियो, छीनि लीन्हि सिय, घन घायनि अकुलान्यो।
तब असि काढ़ि काटि पर पाँवर लै प्रभु-प्रिया परान्यो॥
रामकाज खगराज आजु लर्‌यो जियत न जानकि त्यागी।
तुलसिदास सुर सिद्ध सराहत धन्य बिहँग बड़भागी॥ ८॥

राग गौरी

हेम को हरिन हनि फिरे रघुकुल-मनि
लषन ललित कर लिए मृगछाल।

५—मेरवनि = मिलान। भँवनि = भ्रमण, घूमना। पवनि = पावन, पवित्र।

आस्रम आवत चले, सगुन न भए भले,
फरके बाम बाहु लोचन बिसाल ॥ १ ॥
सरित जल मलिन, सरनि सूखे नलिन,
अलि न गुंजत, कल कूजैं न मराल ।
कोलिनि कोल किरात जहाँ तहाँ बिलखात,
बन न बिलोकि जात खग-मृग-माल ॥ २ ॥
तरु जे जानकी लाए, ज्याये हरि करि कपि,
हेरैं न हुँकरि, झरैं फल न रसाल ।
जे सुक सारिका पाले, मातु ज्यों ललकि लाले,
तेऊ न पढ़त, न पढ़ावैं मुनिबाल ॥ ३ ॥
समुझि सहमे सुठि, प्रिया तौ न आई उठि,
तुलसी बिबरन परन-तृन-माल ।
औरै सो सब समाजु, कुसल न देखौं आजु
गहबर हिय कहैं कोसलपाल ॥ ४ ॥ ९ ॥
आस्रम निरखि भूले, द्रुम न फले न फूले,
अलि खग मृग मानो कबहुँ न हे ।
मुनि न मुनिबधूटी, उजरी परनकुटी,
पंचबटी पहिचानि ठाढ़ेइ रहे ॥ १ ॥
उठी न सलिल लिये प्रेम प्रमुदित हिये
प्रिया, न पुलकि प्रिय बचन कहे ।
पल्लव-सालन हेरी, प्रानबल्लभा न टेरी,
बिरह बिथकि लखि लषन गहे ॥ २ ॥
देखे रघुपति-गति बिबुध बिकल अति,
तुलसी गहन बिनु दहन दहे ।
अनुज दियो भरोसो, तौलों है सोचु खरो सो,
सिय-समाचार प्रभु जौलों न लहे ॥ ३ ॥ १० ॥

राग सोरठ

जबहि सिय-सुधि सब सुरनि सुनाई ।
भए सुनि सजग बिरहसरि पैरत थके थाह सी पाई ॥
कसि तूनीर तीर धनु-धर-धुर धीर बीर दोउ भाई ।
पंचबटी गोदहि प्रनाम करि कुटी दाहिनी लाई ॥

चले बूझत बन बेलि बिटप खग मृग अलि अवलि सुहाई।
प्रभु की दसा सो समौ कहिबे को कबि उर आइ न आई॥
रटनि अकनि पहिचानि गीध फिरे करुनामय रघुराई।
तुलसी रामहि प्रिया बिसरि गई सुमिरि सनेह सगाई॥११॥

मेरे एकौ हाथ न लागी।
गयो बपु बीति बादि कानन ज्यों कलपलता दव दागी॥
दसरथ सों न प्रेम प्रतिपाल्यो हुतो जो सकल जग साखी।
बरबस हरत निसाचरपति सों हठि न जानकी राखी॥
मरत न मैं रघुबीर बिलोके तापस बेष बनाए।
चाहत चलन प्रान पाँवर बिनु सिय-सुधि प्रभुहि सुनाए॥
बारबार कर मीजि सीस धुनि गीधराज पछिताई।
तुलसी प्रभु कृपालु तेहि औसर आइ गए दोउ भाई॥१२॥

राख्यौ गीध गोद करि लीन्हों।
नयन-सरोज सनेह-सलिल सुचि मनहुँ अरघजल दीन्हों॥
सुनहु लषन! खगपतिहि मिले बन मैं पितु-मरन न जान्यौ।
सहि न सक्यौ सो कठिन बिधाता बड़ो पछु आजुहि भान्यो।
बहु बिधि राम कह्यो तनु राखन परम धीर नहिं डोल्यौ।
रोकि प्रेम, अवलोकि बदन-बिधु बचन मनोहर बोल्यौ॥
तुलसी प्रभु झूठे जीवन लगि समय न धोखो लैहौं।
जाको नाम मरत मुनि दुर्लभ तुमहि कहाँ पुनि पैहौं?॥१३॥

नीके कै जानत राम हियो हौं।
प्रनतपाल, सेवक-कृपालु चित, पितु पटतरहि दियो हौं॥
त्रिजगजोनि-गत गीध जनम भरि खाइ कुजंतु जियो हौं।
महाराज सुकृती-समाज सब-ऊपर आजु कियो हौं॥
स्रवन बचन, मुख नाम, रूप चख, राम उछंग लियो हौं।
तुलसी मो समान बड़भागी को कहि सकै बियो हौं॥१४॥

मेरे जान तात कछू दिन जीजै
देखिय आपु सुवन-सेवासुख मोहि पितु को सुख दीजै॥

११—गोदहि = गोदावरी को। आइ = हिम्मत, साहस।
१३—न धोखो लैहौं = धोखा न लगाऊँगा, न चूकूँगा।

दिव्य-देह इच्छा-जीवन जग बिधि मनाइ मँगि लीजै ।
हरि हर सुजस सुनाइ, दरस दे लोग कृतारथ कीजै ॥
देखि बदन, सुनि बचन अमिय, तन रामनयन-जल भीजै ।
बोल्यो बिहग बिहँसि 'रघुबर बलि कहौं सुभाय पतीजै ॥
मेरे मरिबे सम न चारि फल होंहि तौ क्यों न कहीजै ?' ॥
तुलसी प्रभु दियो उतरु मौन हीं परी मानो प्रेम सहीजै ॥ १५ ॥

मेरो सुनियो, तात! सँदेसो ।
सीय-हरन जनि कहेहु पिता सों, ह्वैहै अधिक अँदेसो ॥
रावरे पुन्यप्रताप-अनल महँ अलप दिननि रिपु दहिहैं ।
कुसल समेत सुरसभा दसानन समाचार सब कहिहैं ॥
सुनि प्रभु-बचन राखि उर मूरति चरनकमल सिर नाई ।
चल्यो नभ सुनत राम-कल-कीरति अरु निज भाग बड़ाई ॥
पितु ज्यों गीध-क्रिया करि रघुपति अपने धाम पठायो ।
ऐसो प्रभु बिसारि तुलसी सठ तू चाहत सुख पायो ॥ १६ ॥

राग सूहो

सबरी सोइ उठी, फरकत बाम बिलोचन बाहु ।
सगुन सुहावने सूचत मुनि-मन-अगम उछाहु ॥
मुनि-अगम उर आनंद, लोचन सजल, तनु पुलकावली ।
तृन-पनसाल बनाइ, जल भरि कलस, फल चाहन चली ॥
मंजुल मनोरथ करति, सुमिरति बिप्र-बरबानी भली ।
ज्यों कल्प-बेलि सकेलि सुकृत सुफूल-फूली सुफल-फली ॥ १ ॥

प्रानप्रिय पाहुने ऐहैं राम लषन मेरे आजु ।
जानत जन-जिय की मृदु चित राम गरीबनिवाजु ॥
मृदु चित गरीबनिवाज आजु बिराजिहैं गृह आइकै ।
ब्रह्मादि संकर गौरि पूजित पूजिहौं अब जाइकै ॥
लहि नाथ हौं रघुनाथ-बानो पतितपावन पाइकै ।
दुहुँ ओर लाहु अघाइ तुलसी तीसरेहु गुन गाइकै ॥ २ ॥

दोनो रुचिर रचे पूरन कंद मूल फल फूल ।
अनुपम अमियहु तें अंबक अवलोकत अनुकूल ॥
अनुकूल अंबक अंब ज्यों निज डिंभ हित सब आनिकै ।
सुंदर सनेह सुधा सहस जनु सरस राखे सानिकै ॥

छन भवन, छन बाहर बिलोकति पंथ भू पर पानि कै।
दोउ भाइ आये सबरिका के प्रेम-पन पहचानिकै ॥ ३ ॥

स्रवन सुनत चली आवत देखि लषन रघुराउ।
सिथिल सनेह कहै, 'है सपना बिधि कैधौं सति भाउ' ॥
सति भाउ कै सपना ? निहारि कुमार कोसलराय के।
गहे चरन जे अघहरन नत-जन-बचन-मानस-काय के ॥
लघु-भाग-भाजन उदधि उमग्यो लाभ सुख चित चाय के।
सो जननि ज्यों आदरी सानुज, राम भूखे भाय के ॥ ४ ॥

प्रेम पट पाँवड़े देत सुअरघ बिलोचन-बारि।
आश्रम लै दिए आसन पंकज-पाँय पखारि ॥
पद-पंकजात पखारि पूजे पंथ-स्रम-बिरहित भये।
फल फूल अंकुर मूल धरे सुधारि भरि दोना नये ॥
प्रभु खात पुलकित गात, स्वाद सराहि आदर जनु जये।
फल चारिहू फल चारि दहि परचारि फल सबरी दये ॥ ५ ॥

सुमन बरषि हरषे सुर, मुनि मुदित सराहि सिहात।
केहि रुचि केहि छुधा सानुज माँगि माँगि प्रभु खात !
प्रभु खात माँगत देति सबरी राम भोगी जाग के।
पुलकत प्रसंसत सिद्ध सिव सनकादि भाजन-भाग के ॥
बालक सुमित्रा कौसिला के पाहुने फल साग के।
सुनु समुझि तुलसी जानु रामहि बस अमल अनुराग के ॥ ६ ॥

रघुबर अचइ उठे सबरी करि प्रनाम कर जोरि।
हौं बलि बलि गई पुरई मंजु मनोरथ मोरि ॥
पुरई मनोरथ स्वारथहु परमारथहु पूरन करी।
अघ अवगुनन्हि की कोठरी करि कृपा मुदमंगल भरी ॥
तापस किरातिनि कोल मृदु मूरति मनोहर मन धरी।
सिर नाइ आयसु पाइ गवनो परमनिधि पाले परी ॥ ७ ॥

सिय-सुधि सब कही नख सिख निरखि निरखि दोउ भाइ
दै दै प्रदच्छिना करति प्रनाम न प्रेम अघाइ ॥
अति प्रीति मानस राखि रामहि राम-धामहि सो गई।
तेहि मातु ज्यों रघुनाथ अपने हाथ जलअंजलि दई ॥

तुलसी-भनित सबरी-प्रनति, रघुबर प्रकृति करुनामई।
गावत, सुनत, समुझत भगति हिय होय प्रभुपद नित नई ॥८॥१७॥

किष्किंधा कांड

राग केदारा

भूषन बसन बिलोकत सिय के।
प्रेम-बिबस मन, कंप पुलक तनु नीरजनयन नीर भरे पिय के ॥
सकुचत कहत, समुझि उर उमगत, सील सनेह सुगुनगन तिय के।
स्वामिदसा लखि लखन सखा कपि, पिघले हैं आँच माठ मानो घिय के ॥
सोचत हानि मानि मन, गुनि गुनि, गये निघटि फल सकल सुकिय के।
बरने जामवंत तेहि अवसर, बचन बिबेक बीररस बिय के ॥
धीर बीर सुनि समुझि परसपर, बल उपाय उघटत निज हिय के।
तुलसिदास यह समउ कहे तें कबि लागत निपट निठुर जड़ जिय के ॥१॥

प्रभु कपि-नायक बोलि कह्यो है।
बरषा गई, सरद आई, अब लगि नहिं सिय-सोधु लह्यो है।
जा कारन तजि लोकलाज तनु राखि बियोग सह्यो है।
ताको तौ कपिराज आज लगि कछु न काज निबह्यो है ॥
सुनि सुग्रीव ससोक नमित-मुख उतरु न देन चह्यो है।
आइ गए हरि-जूथ देखि उर पूरि प्रमोद रह्यो है ॥
पठये बदि बदि अवधि दसहुँ दिसि, चले बल सबनि गह्यो है।
तुलसी सिय लगि भवदधि-निधि मनु फिर हरि चहत मह्यो है ॥ २ ॥

१७—फल चारिहू......सबरी दये = चारों फलों (अर्थ, धर्म आदि) को (शबरी के दिए) चार फलों से लजाकर ललकारकर शबरी को फल दिए अर्थात् शबरी को चारों फलों से कहीं बढ़कर फल दिए।

१—सुकिय = सुकृत।

सुंदर कांड

राग केदारा

रजायसु राम को जब पायो।
गाल मेलि मुद्रिका मुदित मन पवनपूत सिर नायो॥
भालुनाथ नल नील साथ चले, बली बालि को जायो।
फरकि सुअंग भए सगुन, कहत मानो मग मुद-मंगल छायो॥
देखि बिबर सुधि पाइ गीध सों सबनि अपनो बलु अनुमायो।
सुमिरि राम, तकि तरकि तोयनिधि लंक लूक सो आयो॥
खोजत घर घर जनु दरिद्र-मनि फिरत लागि धन धायो।
तुलसी सिय बिलोकि पुलक्यो तनु भूरिभाग भयो भायो॥१॥

देखी जानकी जब जाइ।
परम धीर समीरसुत के प्रेम उर न समाइ॥
कृस सरीर सुभाय सोभित, लगी उड़ि उड़ि धूलि।
मनहुँ मनसिज मोहनी-मनि गयो भोरे भूलि॥
रटति निसि बासर निरंतर राम राजिवनैन।
जात निकट न बिरहिनी-अरि अकनि ताते बैन॥
नाथ के गुनगाथ कहि कपि दई मुदरी डारि।
कथा सुनि उठि लई कर बर रुचिर नाम निहारि॥
हृदय हरष बिषाद अति पति-मुद्रिका पहिचानि।
दास तुलसी दसा सो केहि भाँति कहै बखानि?॥२॥

राग सोरठ

बोलि, बलि, मूँदरी! सानुज कुसल कोसलपालु।
अमिय बचन सुनाइ मेटहि बिरह-ज्वाला-जालु॥
कहत हित अपमान मैं कियो, होत हिय सोइ सालु।
रोष छमि सुधि करत कबहुँ ललित लछिमन लालु?॥
परसपर पति देवरहि का होति चरचा चालु।
देवि! कहु केहि हेतु बोले बिपुल बानर भालु॥
सीलनिधि समरथ सुसाहिब दीनबंधु दयालु।
दास तुलसी प्रभुहि काहु न कह्यो मेरो हालु॥३॥

१—अनुमायो = अनुमान किया, अंदाज़ किया। लूक = उल्का।

सदल सलषन हैं कुसल कृपालु कोसल-राउ !
सील-सदन सनेह-सागर सहज सरल सुभाउ ॥
नींद भूख न देवरहि परिहरे को पछिताउ ।
धीरधुर रघुबीर को नहि सपनेहुँ चित चाउ ॥
सोधु बिनु, अनुरोधु ऋतु के, बोध बिहित उपाउ ।
करत हैं सोइ समय साधन फलति बनत बनाउ ॥
पठे कपि दिसि दसहुँ जे प्रभुकाज कुटिल न काउ ।
बोलि लियो हनुमान करि सनमान जानि सभाउ ॥
दई हौं संकेत कहि कुसलात सियहि सुनाउ ।
देखि दुर्ग बिसेषि जानकि जानि रिपु-गति आउ ॥
कियो सीय प्रबोध मुँदरी, दियो कपिहि लखाउ ।
पाइ अवसर नाइ सिर तुलसीस गुनगन गाउ ॥ ४ ॥
सुवन समीर को धीर धुरीन बीर बड़ोइ ।
देखि गति सिय मुद्रिका की बाल ज्यौं दियो रोइ ॥
अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोध-बिंध्य बढ़ोइ ।
सकुचि सम भयो ईस-आयसु-कलसभव जिय जोइ ॥
बुद्धि बल साहस पराक्रम अछत राखे गोइ ।
सकल साज समाज साधक समउ कहै सब कोइ ॥
उतरि तरु तें नमत पद, सकुचात सोचत सोइ ।
चुके अवसर मनहुँ सुजनहि सुजन सनमुख होइ ॥
कहै बचन बिनीत प्रीति प्रतीति नीति निचोइ ।
सीय सुनि हनुमान जान्यो भली भाँति भलोइ ॥
देवि ! बिनु करतूति कहिबो जानिहैं लघु लोइ ।
कहौंगो मुख की समरसरि कालि कारिख धोइ ॥
करत कछू न बनत हरिहिय हरष सोक समोइ ।
कहत मन तुलसीस लंका करहुँ सघन घमोइ ॥ ५ ॥

राग केदारा

हौं रघुबंसमनि को दूत ।
मातु मानु प्रतीति जानकि ! जानि मारुतपूत ॥

५—कलसभव=अगस्त्य, जिन्होंने विंध्यपर्वत को बढ़ने से रोक दिया था। तुलसीस=हनुमान। घमोइ=सत्यानाशी या भंडभाड़ नाम का पौधा जो खँडहरों में प्रायः उगता है।

मैं सुनी बातैं असैली जे कही निसिचर नीच ।
क्यों न मारै गाल बैठो काल-डाढ़नि बीच ॥
निदरि अरि रघुवीर-बल लै जाउँ जौ हठि आज ।
डरौं आयसु-भंग तें, अरु बिगरिहै सुरकाज ॥
बाँधि बारिधि, साधि रिपु दिन चारि में दोउ बीर ।
मिलहिंगे कपि-भालु-दल संग, जननि उर धरु धीर ॥
चित्रकूट कथा कुसल कहि सीस नायो कीस ।
सुहृद सेवक नाथ को लखि दई अचल असीस ।
भये सीतल स्रवन तन मन सुने बचन-पियूष ।
दास तुलसी रही नयननि दरस ही की भूख ॥ ६ ॥

तात ! तोहूँ सों कहत होति हिये गलानि ।
मन को प्रथम पन समुझि अछत तनु
लखि नइ गति भइ मति मलानि ॥
पिय को बचन परिहर्‌यो जिय के भरोसे,
संग चली बन बड़ो लाभ जानि ।
पीतम-बिरह तौ सनेह सरबसु, सुत !
औसर को चूकिबो सरिस न हानि ॥
आरज-सुवन के तो दया दुसनहुँ पर,
मोहि सोच मोतें सब बिधि नसानि ।
आपनी भलाई भलो कियो नाथ सबही को,
मेरे ही अदिन बस बिसरी बानि ॥
नेम तो पपीहा ही के, प्रेम प्यारो मीन ही के,
तुलसी कही है नीके हृदय आनि ।
इतनी कही सो कही सीय, ज्योंहीं त्योंहीं,
रही, प्रीति परी सही, बिधि सों न बसानि ॥ ७ ॥

मातु काहे को कहति अति बचन दीन ?
तब की तुहीं जानति अब की हौं ही कहत,
सबके जिय की जानत प्रभु प्रबीन ॥
ऐसो तो सोचहिं न्याय-निठुर-नायक-रत
सलभ, खग, कुरंग, कमल, मीन ।

६—असैली = शैलीविरुद्ध, रीति-नीति-विरुद्ध ।

करुनानिधान को तो ज्यों ज्यों तनु छीन भयो
त्यों त्यों मनु भयो तेरे प्रेम पीन ॥
सिय को सनेह, रघुबर की दसा सुमिरि
पवनपूत देखि भयो प्रीति-लीन ।
तुलसी जन को जननी प्रबोध कियो,
"समुझि तात ! जग बिधि-अधीन" ॥ ८ ॥

राग जयतश्री

कहु कपि कब रघुनाथ कृपा करि, हरिहैं निज बियोग-संभव दुख ।
राजिवनयन मयन-अनेक-छबि रबिकुल-कुमुद सुखद मयंक-मुख ॥
बिरह-अनल स्वासा-समीर निज तनु जरिबे कहँ रही न कछु सक ।
अति बल जल बरषत दोउ लोचन दिन अरु रैन रहत एकहि तक ॥
सुदृढ़ ज्ञान अवलंबि सुनहु सुत ! राखति प्रान बिचारि दहन मग ।
सगुन रूप, लीला-बिलास-सुख सुमिरन करति रहति अंतरगत ॥
सुनु हनुमंत ! अनंत-बंधु करुना सुभाव सीतल कोमल अति ।
तुलसिदास यहि त्रास जानि जिय बरु दुख सहौं प्रगट कहि न सकति ॥ ९ ॥

राग केदारा

कबहूँ, कपि ! राघव आवहिंगे ? ।
मेरे नयन चकोर प्रीतिबस राकाससि मुख दिखरावहिंगे ॥
मधुप मराल मोर चातक ह्वै लोचन बहु प्रकार धावहिंगे ।
अंग अंग छबि भिन्न भिन्न सुख निरखि निरखि तहँ तहँ छावहिंगे ॥
बिरह-अगिनि जरि रही लता ज्यों कृपादृष्टि-जल पलुहावहिंगे ।
निज-बियोग-दुख जानि दयानिधि मधुर बचन कहि समुझावहिंगे ॥
लोकपाल-सुर-नाग-मनुज सब परे बंदि कब मुकुतावहिंगे ।
रावनबध रघुनाथ-बिमल-जस नारदादि मुनिजन गावहिंगे ॥
यह अभिलाष रैन दिन मेरे राज बिभीषन कब पावहिंगे ।
तुलसिदास प्रभु मोहजनित भ्रम भेद बुद्धि कब विसरावहिंगे ? ॥ १० ॥

सत्य बचन सुनु मातु जानकी ! ।
जन के दुख रघुनाथ दुखित अति, सहज प्रकृति करुनानिधान की ॥
तुव बियोग-संभव दारुन दुख बिसरि गई महिमा सुबान की ।
नतु कहु कहँ रघुपति-सायक-रवि, तम अनीक कहँ जातुधान की ॥

१—एकहि तक = एकताक, एकतार, एकरस ।

कहे हम पसु साखामृग चंचल बात कहौं मैं विद्यमान की।
कहे हरि सिव-अज-पूज्य ज्ञानघन नहि बिसरति वह लगनि कान की॥
तुव दरसन, सँदेस सुनि हरि को बहुत भई अवलंब प्रान की।
तुलसिदास गुन सुमिरि राम के प्रेम मगन नहिं सुधि अपान की॥११॥

राग कान्हरा

रावन ! जु पै राम रन रोपे।
को कहि सकै सुरासुर समरथ बिलिप काल-दसननि तें चोपे॥
तपबल, भुजबल के सनेह-बल सिव विरंचि नीकी बिधि तोपे।
सो फल राजसमाज सुवन जन, आपुन नास आपने पापे॥
तुला पिनाक, साहु नृप, त्रिभुवन भट बटोरि सबके बल जोपे।
परसुराम से सूर-सिरोमनि पल में भए खेत के से धोपे॥
कालि की बात बालि की सुधि करि समुझिहि ता हित खोलि झरोपे।
कह्यो कुमंत्रिन को न मानिए, बड़ी हानि, जिय जानि त्रिदोपे॥
जासु प्रसाद जनमि जग पुरपनि सागर सृजे, खने अरु सोखे।
तुलसिदास सो स्वामि न सूझ्यो नयन बीस मंदिर के से मोखे॥ १२॥

राग मारू

जो हौं प्रभु-आयसु लै चलतो।
तौ यहि रिस तोहिं सहित दसानन जातुधान दल दलतो॥
रावन सो रसराज सुभट-रस सहित लंक खल खलतो।
करि पुटपाक नाक-नायकहित घने घने घर घलतो॥
बड़े समाज लाज-भाजन भयो, बड़ो काज बिनु छल तो।
लंकनाथ ! रघुनाथ-बैरु-तरु आजु फैलि फूलि फलतो॥
कालकरम दिगपाल सकल जग जाल जासु करतल तो।
ता रिपु सों पर भूमि रारि रन जीवन मरन सुथल तो॥
देखी मैं दसकंठ-सभा सब, मोंतें कोउ न सबल तो।
तुलसी अरि उर आनि एक अब एतो गलानि न गलतो॥ १३॥

१२—मोखे = गवाक्ष, झरोखा।

१३—रसराज = पारा। खलतो = खरल में डालकर घोंट डालता। बिनु छल तो = बिना छल के था अर्थात् होता। अरि उर······गलतो = इस प्रकार एक एक शत्रु को (अर्थात् उनके बल को) समझ बूझकर भी।

तौलौं, मातु ! आपु नीके रहिबो ।
जौलौं हौं ल्यावौं रघुबीरहिं, दिन दस और दुसह दुख सहिबो ॥
सोखि कै खेत कै, बाँधि सेतु करि, उतरिबो उदधि न बोहित चहिबो ।
प्रबल दनुज-दल दलि पल आध में, जीवत दुरित-दसानन गहिबो ॥
बैरि-बृंद-बिधवा-बनितनि को, देखिबो बारि-बिलोचन बहिबो ।
सानुज सेन समेत स्वामिपद निरखि परम मुद मंगल लहिबो ॥
लंक-दाह उर आनि मानिबो साँचु राम सेवक को कहिबो ।
तुलसी प्रभु सुर सुजस गाइहैं, मिटि जैहै सबको सोचु दव दहिबो॥१४॥

कपि के चलत सिय को मनु गहबरि आयो ।
पुलक सिथिल भयो सरीर, नीर नयननि्ह छायो ॥
कहन चह्यो संदेस, नहिं कह्यो, पिय के जिय की जानि हृदय दुसह दुख दुरायो ।
देखि दसा ब्याकुल हरीस, ग्रीषम के पथिक ज्यों धरनि तरनि-तायो ॥
मीच तें नीच लगी अमरता, छल को न बल को निरखि थल परुष प्रेम पायो।
कै प्रबोध मातु प्रीति सों असीस दीन्हीं ह्वैहै तिहारोई मन भायो ॥
करुना कोप लाज भय भरो कियो गौन, मौन ही चरन-कमल सीस नायो ।
यह सनेह-सरबस समौ तुलसी रसना रूखी ताही तें परत गायो॥ १५ ॥

राग बसंत

रघुपति ! देखो आयो हनूमंत । लंकेस-नगर खेल्यो बसंत ।
आराम-काजहित सुदिन साधि । साथी प्रबोधि लाँघ्यो पयोधि ॥
सिय-पाँय पूजि आसिषा पाइ । फल अमिय सरिस खायो अघाइ ॥
कानन दलि होरी रचि बनाइ । हठि तेल बसन बालधि बँधाइ ॥
लिए ढोल चले सँग लोग लागि । बरजोर दई चहुँ ओर आगि ॥
आयत आहुति किए जातुधान । लखि लपट भभरि भागे बिमान ॥
नभतल कौतुक, लंका बिलाप । परिनाम पचहिं पातकी पाप ॥
हनुमान-हाँक सुनि बरषि फूल । सुर बार बार बरनहिं लँगूर ॥
भरि भुवन सकल कल्यान-धूम । पुर जारि बारिनिधि बोरि लूम ॥

१५—गहबरि आयो=करुणा से भर आया । मीच ते नीच ·······प्रेम पायो=(सीताजी का ऐसा विरह दुःख देखकर) हनुमान जी को अपनी अमरता मृत्यु से भी अधिक दुःखदायिनी लगी, और उन्होंने उस स्थल पर बल छल का अवसर न देख अपने प्रेम को बहुत कठोर और दारुण पाया । समौ = प्रसंग अवसर ।

जानकी तोषि पोषेउ प्रताप। जय पवन-सुवन दलि दुअन-दाप ॥
नाचहिं कूदहिं कपि करि बिनोद। पीवत मधु मधुबन मगन मोद ॥
यों कहत लषन गहे पाँय आइ। मुनि सहित मुदित भेंट्यो उठाइ ॥
लगे सजन सेन भयो हिय हुलास। जय जय जस गावत तुलसिदास ॥१६॥

राग जयतश्री

सुनहु राम बिश्रामधाम! हरि जनकसुता, अति बिपति जैसे सहति।
हे सौमित्रि-बंधु करुनानिधि मन महँ रटति प्रगट नहिं कहति ॥
निजपद-जलज बिलोकि सोकरत नयननि बारि रहत न एक छन।
मनहुँ नील नीरज ससि-संभव रबि बियोग दोउ स्रवत सुधाकन ॥
बहु राक्षसी सहित तरु के तर तुम्हरे बिरह निज जनम बिगोवति।
मनहुँ दुष्ट इंद्रिय संकट महँ बुद्धि-बिबेक-उदय मगु जोवति ॥
सुनि कपि बचन बिचारि हृदय हरि अनपायनी सदा सो एक मन।
तुलसिदास दुख-सुखातीत हरि सोच करत मानहुँ प्राकृत जन ॥ १७ ॥

राग केदारा

रघुकुल-तिलक बियोग तिहारे।
मैं देखी जब जाइ जानकी मनहु बिरह-मूरति मन मारे ॥
चित्र से नयन अरु गढ़े से चरन कर, मढ़े से स्रवन नहिं सुनति पुकारे।
रसना रटति नाम, कर सिर चिर रहे, नित निजपद-कमल निहारे ॥
दरसन-आस-लालसा मन महँ राखे प्रभु ध्यान प्रान-रखवारे।
तुलसिदास पूजति त्रिजटा नीके रावरे गुन-गन-सुमन सँवारे ॥ १८ ॥

अतिहि अधिक दरसन की आरति।
राम-बियोग असोक-बिटप तर सीय निमेष कलप सम टारति।
बार बार बर बारिजलोचन भरि भरि बरत बारि उर ढारति।
मनहुँ बिरह के सद्य घाय हिये लखि तकि तकि धरि धीरज तारति।
तुलसिदास जद्यपि निसि बासर छिन छिन प्रभु मूरतिहि निहारति।
मिटति न दुसह ताप तउ तनु की, यह बिचारि अंतरगति हारति ॥ १९ ॥

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु, राम करुनानिधि! जानौं कछु पै सकौं कहि हौं न।
लोचन-नीर कृपिन के धन ज्यों रहत निरंतर लोचन-कोन।

१९—बरत=तपता हुआ, गरम। तारति = तरेरा या पानी की धार देती है।

'हा धुनि'-खगी लाज-पिंजरी महँ राखि हिये बड़े बधिक हठि मौन।
जेहि बाटिका बसति तहँ खग मृग तजि तजि भजे पुरातन भौन।
स्वास-समीर भेंट भइ भोरेहुँ तेहि मग पगु न धर्‍यो तिहुँ पौन।
तुलसिदास प्रभु ! दसा सीय की मुख करि कहत होति अति गौन।
दीजै दरस दूरि कीजै दुख हो तुम्ह आरत-आरति-दौन ॥ २० ॥

कपि के सुनि कल कोमल बैन।
प्रेम पुलकि सब गात सिथिल भए, भरे सलिल सरसीरुह नैन।
सिय-बियोग-सागर नागर मनु बूड़न लग्यो सहित चित चैन।
लही नाव पवनज प्रसन्नता, बरबस तहाँ गह्यो गुन मैन।
सकत न बूझि कुसल, बूझे बिन गिरा बिपुल ब्याकुल उर ऐन।
ज्यों कुलीन सुचि सुमति बियोगिनि सनमुख सहै बिरह सर पैन।
धरि धरि धीर बीर कोसलपति किए जतन सके उत्तरु दै न।
तुलसिदास प्रभु सखा अनुज सों सैनहि कह्यौ चलहु सजि सैन ॥ २१ ॥

राग मारू

जब रघुबीर पयानो कीन्हों।
छुभित सिंधु, डगमगत महीधर, सजि सारँग कर लीन्हों।
सुनि कठोर टंकोर घोर अति चौंके बिधि त्रिपुरारि।
जटापटल तें चली सुरसरी सकत न संभु सँभारि।
भए बिकल दिगपाल सकल, भय भरे भुवन दसचारि।
खरभर लंक, ससंक दसानन, गर्भ स्रवहि अरि-नारि।
कटकटात भट भालु बिकट मरकट करि केहरि-नाद।
कूदत करि रघुनाथ-सपथ उपरी-उपरा बदि बाद।
गिरि-तरुधर नख मुख कराल रद कालहु करत बिषाद।
चले दस दिसि रिस भरि, धरु धरु कहि, को बराक मनुजाद ?
पवन पंगु, पावक पतंग ससि दुरि गए, थके बिमान।
जाचक सुर निमेष, सुरनायक नयन-भार अकुलान।
गए पूरि सर धूरि, भूरि भय अग थल जलधि समान।
नभ निसान हनुमान हाँक सुनि समुझत कोउ न अपान।
दिग्गज कमठ कोल सहसानन धरत धरनि धरि धीर।

२०—गौन = गौण, अर्थात कहने में उसका महत्व नहीं आ सकता कम सा हो जाता है।

बारहिं बार अमरषत करषत करकैं परीं सरीर।
चली चमू, चहुँ ओर सोर, कछु बनै न बरनै भीर।
किलकिलात, कसमसत, कोलाहल होत नीरनिधि-तीर।
जातुधानपति जानि कालबस मिले बिभीषन आइ।
सरनागत-पालक कृपालु कियो तिलक, लियो अपनाइ।
कौतुकहीं बारिधि बँधाइ उतरे सुबेल तट जाइ।
तुलसिदास गढ़ देखि फिरे कपि प्रभु आगमन सुनाइ॥ २२॥

राग आसावरी

आए देखि दूत सुनि सोच सठ मन में।
बाहर बजावै गाल भालु कपि कालबस,
मोसे बीर सों चहत जीत्यो रारि रन में।
राम छाम, लरिका लषन, बालि-बालकहि
घालि को गनत? रीछ जल ज्यों न घन में।
काज को न कपिराज, कायर कपिसमाज,
मेरे अनुमान हनुमान हरि गन में।
समय सयानी मृदु बानी रानी कहै 'पिय!
पावक न होइ जातुधान-बेनु बन में।
तुलसी जानकी दिए स्वामी सों सनेह किये
कुसल, नतरु सब ह्वैहै छार छन में॥ २३॥

आपनी आपनी भाँति सब काहू कही है।
मंदोदरी, महोदर, मालवान महामति,
राजनीति-पहुँच जहाँ लौं जाकी रही है।
महामद-अंध दसकंध न करत कान;
मीचु-बस नीच हठि कुगहनि गही है।
हँसि कहे सचिव 'सयाने मोसों यों कहत,
चहै मेरु उड़न बड़ी बयारि बही है।
भालु, नर, बानर अहार निसचरनि को,
सोऊ नृप-बालकनि माँगी धारि लही है।

२२—अग = पर्वत।

२३—घालि = घलुआ अर्थात कुछ नहीं। रीछ...घन में = जानना जलहीन बादल के समान अर्थात् निस्सार है।

देखो कालकौतुक पिपीलिकनि पंख लागो,
भाग मेरे लोगनि के भई चित-चही है।
तोसों न तिलोक आजु साहस समाज-साजु,
महाराज-आयसु भो जोई सोई सही है।
तुलसी प्रनाम कै बिभीषन बिनतो करै
'ख्याल, बेधे ताल, कपि केलि लंका दही है'॥ २४।

दूसरो न देखतु साहिब सम रामै।
बेदऊ पुरान कबि कोबिद बिरद-रत,
जाको जस सुनत, गावत गुनग्रामै।
माया, जीव, जग-जाल, सुभाउ, करमकाल,
सबको सासकु, सबमें; सब जामै।
बिधि से करनिहार, हरि से पालनिहार,
हर से हरनिहार जपैं जाके नामैं।
सोइ नरबेप जानि, जन की बिनती मानि,
मतो नाथ सोई जा तें भलो परिनामै।
सुभट-सिरोमनि कुठारपानि सारिखेहू
लखी औ लखाई इहाँ किए सुभ-लामै।
बचन-बिभूषन बिभीषन-बचन सुनि
लागे दुख दूषन से दाहिनेउ बामैं।
तुलसी हुमुकि हिये हन्यो लात, भले तात
चल्यो सुरतरु ताकि तजि घोर घामैं॥ २५॥

जाय माय पायँ परि कथा सो सुनाई है।
समाधान करति बिभीषन को बार बार,
'कहा भयो तात लात मारे, बड़ो भाई है।
साहिब पितु समान, जातुधान को तिलक,
ताके अपमान तेरी बड़िए बड़ाई है।
गरत गलानि जानि सनमानि सिख देति,
रोप किए दोप, सहें समुझें भलाई है।
इहाँ तें बिमुख भये, राम की सरन गए
भलो नेकु लोक राखे निपट निकाई है।
मातु पग सीस नाइ, तुलसी असीस पाइ
चले भले सगुन कहत मन भाई है॥ २६॥

भाई को सो करौं डरौं कठिन कुफेरे ।
सुकृत-संकट पर्‍यो जात गलानिन्ह गर्‍यो,
'कृपानिधि को मिलौं पै मिलि कै कुबेरे' ।
जाइ गहे पाँय, धाइ धनद उठाइ भेंट्यो,
समाचार पाइ पोच सोचत सुमेरे ।
तहँई मिले महेस, दियो हित-उपदेस,
'राम की सरन जाहि, सुदिनु न हेरै ।
जाको नाम कुंभज कलेस-सिंधु सोखिबे को,
मेरो कह्यो मानि, तात ! बाँधे जिनि बेरे ।'
तुलसी मुदित चले, पाए हैं सगुन भले,
रंक लूटिबे को मानो मनिगन-ढेरे ॥ २७ ॥

राग केदारा

संकर सिख आसिष पाइकै ।
चले मनहिं मन कहत बिभीषन सीस महेसहि नाइकै ।
गए सोच, भए सगुन सुमंगल दस दिसि देत देखाइकै ।
सजल नयन, सानंद हृदय तनु प्रेम पुलक अधिकाइकै ।
अनहु भाव भलो भाई को कियो अनभलो मनाइकै ।
भइ कूबर की लात बिधाता राखी बात बनाइकै ।
नाहित क्यों कुबेर घर मिलि हर हितु कहते चित लाइकै ।
जो सुनि सरन राम ताके मैं निज बामता बिहाइकै ।
अनायास अनुकूल सूलधर मग मुदमूल जनाइकै ।
कृपासिंधु सनमानि जानि जन दीन लियो अपनाइकै ।
स्वारथ परमारथ करतलगत स्रमपथ गयो सिराइकै ।
सपने के सौतुक सुख-सस सुर सींचत देत निराइकै ।
गुरु गौरीस साँइ सीतापति हित हनुमानहिं जाइकै ।
मिलिहौं मोहि कहा कीबे अब अभिमत अवधि अघाइकै
मरतो कहाँ जाइ को जानै लटि लालची ललाइकै ।
तुलसिदास भजिहौं रघुबीरहि अभय-निसान बजाइकै ॥ २८ ॥

२७—सुकृत संकट = धर्मसंकट ।

२८—कूबर की लात = ऐसी लात जिससे कुबड़ी पीठ सीधी हो जाय, अर्थात् बात बन जाय । सस = शस्य, खेती बारी ।

पदपदुम गरीबनिवाज के ।
देखिहौं जाइ पाइ लोचन-फल हित सुर साधु समाज के ।
गई-बहोर, ओर निरबाहक, साजक बिगरे साज के ।
सबरी सुखद, गीध गतिदायक, समनसोक कपिराज के ।
नाहिन मोहि और कतहूँ कछु जैसे काग जहाज के ।
आयो सरन सुखद पदपंकज चोंथे रावन बाज के ।
आरतिहरन सरन समरथ सब दिन अपने की लाज के ।
तुलसी पाहि कहत नत-पालक मोहूँ से निपट निकाज के ॥ २९ ॥
महाराज राम पहँ जाउँगो ।
सुख स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ ज्यों साहिबहि सुहाउँगो ।
सरनागत सुनि बेगि बोलिहैं, हौं निपटहि सकुचाउँगो ।
राम गरीबनिवाज निवाजिहैं, जानिहैं ठाकुर ठाउँ गो ।
धरिहैं नाथ हाथ माथे एहि तें केहि लाभ अघाउँगो ?
सपनो सो अपनो न कछू लखि लघु लालच न लोभाउँगो ।
कहिहौं बलि, रोटिहा रावरो बिनु मोलही बिकाउँगो ।
तुलसी पट ऊतरे ओढ़िहौं, उबरी जूठनि खाउँगो ॥ ३० ॥

आइ सचिव बिभीषन के कही ।
कृपासिंधु दसकंधबंधु लघु चरन-सरन आयो सही ।
बिषम-बिषाद-बारिनिधि बूड़त थाह कपीस कथा लही ।
गये दुख दोष देखि पदपंकज अब न साध एकौ रही ।
सिथिल सनेह सराहत नखसिख नीक निकाई निरबही ।
तुलसी मुदित दूत भयो मन में अमिय-लाहु माँगत गही ॥ ३१ ॥
बिनती सुनि प्रभु प्रमुदित भए ।
भालुराज कपिराज, नील, नल बोलि बालिनंदन लए ।
बूझिये कहा ? रजाइ पाइ नय धरम सहित ऊतर दए ।
भलो बंधु ताको जेहि बिमोह-बस बैर-बीज बरबस बए ।
बाँह-पगार द्वार तेरे तें सभय न कबहूँ फिरि गए ।
तुलसी असरन-सरन स्वामि के बिरद बिराजत नित नए ॥ ३२ ॥

हिय बिहँसि कहत हनुमान सों ।
सुमति साधु सुचि सुहृद बिभीषन, बूझि परत अनुमान सों ।

३०—ठाकुर ठाउँ गो = ठाकुर और ठिकाना नहीं रह गया ।

'हौं बलि जाउँ, और को जानै ?' कह्यो कपि कृपानिधान सों।
छल न होइ स्वामि सनमुख ज्यों तिमिर सातहय-जान सों।
खोटो खरो सभीत पालिए सो सनेह सनमान सों।
तुलसी प्रभु कियो जो भलो सोइ बूझि सरासन बान सों॥ ३३॥

साँचेहु बिभीषन आइ हैं ?
बूझत बिहँसि कृपालु, लषन सुनि कहत सकुचि सिर नाइ हैं।
ऐहै कहा, नाथ ! आयो ह्याँ, क्यों कहि जाति बनाइ है।
रावन-रिपुहि राखि रघुबर बिनु को त्रिभुवनपति पाइ है।
प्रभु प्रसन्न सब सभा सराहति दूत-बचन मन भाइ है।
तुलसी बोलिये बेगि लषन सों भइ महराज रजाइ है॥ ३४॥

चले लेन लषन हनुमान हैं।
मिले मुदित बूझि कुसल परसपर सकुचत करि सनमान हैं।
भयो रजायसु पाँइ धारिए, बोलत कृपानिधान हैं।
दूरि तें दीनबंधु देखे जनु देत अभय बरदान हैं।
सील सहस हिमभानु तेज सत कोटि भानुहूँ के भानु हैं।
भगतनि को हित कोटि मातुपितु, अरिन्ह को कोटि कृसानु हैं।
जन गुन रज गिरि गनि सकुचत निज गुन गिरि रज परमानु हैं।
बाँह-पगारु बोल को अबिचल, बेद करत गुनगान हैं।
चारु चाप तूनीर तामरस करनि सुधारत बान हैं
चरचा चलति बिभीषन की सोइ सुनत सुचित दै कान हैं।
हरषत सुर बरषत प्रसून सुभ सगुन कहत कल्यान हैं।
तुलसी ते कृतकृत्य जे सुमिरत समय सुहावनो ध्यान हैं॥ ३५॥

रामहिं करत प्रनाम निहारिकै।
उठे उमँगि आनंद-प्रेम-परिपूरन बिरद बिचारिकै।
भयो बिदेह बिभीषन उत, इत प्रभु अपनपौ बिसारिकै
भली भाँति भावते भरत ज्यों भेंट्यो भुजा पसारिकै।
सादर सबहिं मिलाइ समाजहिं निपट निकट बैठारिकै।
बूझत छेम कुसल सप्रेम अपनाइ भरोसे भारिकै।
नाथ ! कुसल कल्यान सुमंगल बिधि सुख सकल सुधारिकै।
देत लेत जे नाम रावरो बिनय करत मुख चारि कै।

३३—सातहय-जान = सात घोड़े जिसके यान में जुते हैं अर्थात् सूर्य।
३५—हिमभानु = चंद्रमा।

जो मूरति सपने न बिलोकत मुनि महेस मन मारिकै।
तुलसी तेहि हौं लियो अंक भरि, कहत कछू न सँवारिकै ॥ ३६ ॥

करुनाकर की करुना भई।
मिटी मीचु, लहि लंक संक गइ, काहू सों न खुनिस खई।
दसमुख तज्यो दूध-माखी ज्यों आपु काढ़ि साढ़ी लई।
भव-भूषन सोइ कियो बिभीषन मुद-मंगल-महिमामई।
बिधि हरि हर मुनि सिद्ध सराहत, मुदित देव दुंदुभी दई।
बारहि बार सुमन बरषत, हिय हरषत कहि जै जै जई।
कौसिक सिला जनक संकट हरि भृगुपति की टारी टई।
खग मृग सबर निसाचर सबकी पूँजी बिनु बाढ़ी सई।
जुग जुग कोटि कोटि करतब करनी न कछू बरनी नई।
राम-भजन-महिमा हुलसी हिय तुलसीहू की बनि गई ॥ ३७ ॥

मंजुल मूरति मंगलमई।
भयो बिसोक बिलोकि बिभीषन नेह देह सुधि सींव गई।
उठि दाहिनी ओर तें सनमुख सुखद माँगि बैठक लई।
नखसिख निरखि निरखि सुख पावत, भावत कछु कछु और भई।
बार कोटि सिर काटि साटि लटि रावन संकर पै लई।
सोइ लंका लखि अतिथि अनवसर राम तृनासर ज्यों दई।
प्रीति-प्रतीति-रीति-सोभासरि थाहत जहँ जहँ तहँ धई।
बाहु-बली, बानैत बोल को, बीर बिस्वबिजयी जई।
को दयालु दूसरो दुनी जेहि जरनि दीन-हिय की हई ?।
तुलसी काको नाम जपत जग जगती जामति बिनु बई ॥ ३८ ॥

सब भाँति बिभीषन की बनी।
कियो कृपालु अभय कालहु तें गइ संसृति साँसति घनी।
सखा लषन हनुमान संभु गुरु धनी राम कोसलधनी।
हिय की और और कीन्हीं बिधि, रामकृपा औरै ठनी।
कलुष-कलंक कलेस-कोस भयो जो पद पाय रावन रनी।
सोइ पद पाय बिभीषन भो भव-भूषन दलि दूषन-अनी।
बाँह-पगार उदार-सिरोमनि नत-पालक पावन-पनी।
सुमन बरषि रघुबर-गुन बरनत हरषि देव दुंदुभी हनी।

३७—टई = टही, घात। सई = वृद्धि, बरकत।

रंक-निवाज रंक राजा किए, गए गरब गरि गरि गनी।
राम-प्रनाम महा महिमा-खनि सकल सुमंगलमनि जनी।
होय भलो ऐसे ही अजहुँ गये राम-सरन परिहरि मनी।
भुजा उठाइ साखि संकर करि कसम खाइ तुलसी भनी ॥ ३९ ॥

कहो क्यों न बिभीषन की बनै?
गयो छाँड़ि छल सरन राम की जो फल चारि चारयो जनै।
मंगलमूल प्रनाम जासु जग मूल अमंगल के खनै।
तेहि रघुनाथ हाथ माथे दियो, को ताकी महिमा भनै?।
नाम प्रताप पतित-पावन किए जे न अघाने अघ अनै।
कोउ उलटो कोउ सूधो जपि भए राजहंस बायस-तनै।
हुतो ललात कृसगात खात खरि मोद पाइ कोदो-कनै।
सो तुलसी चातक भयो जाँचत राम स्याम सुंदर घनै ॥ ४० ॥

अति भाग बिभीषन के भले।
एक प्रनाम प्रसन्न राम भए दुरित दोष दारिद दले।
रावन कुंभकरन बर माँगत सिव बिरंचि बाचा छले।
राम-दरस पायो अबिचल पद, सुदिन सगुन नीके चले।
मिलनि बिलोकि स्वामि सेवक की उकठे तरु फूले फले।
तुलसी सुनि सनमान बंधु को दसकंधर हँसि हिये जले ॥ ४१ ॥

गये राम सरन सबको भलो।
गनी-गरीब, बड़ो छोटो, बुध मूढ़, हीनबल अति बलो।
पंगु अंध निरगुनी निसंबल जो न लहै जाँचे जलो।
सो निबह्यो नीके जो जनमि जग राम-राजमारग चलो।
नाम-प्रताप-दिवाकर-कर खर गरत तुहिन ज्यों कलिमलो।
सुत हित नाम लेत भवनिधि तरि गयो अजामिल सो खलो।
प्रभुपद-प्रेम प्रनाम कामतरु सद्य बिभीषन को फलो।
तुलसी सुमिरत नाम सबनि को मंगलमय नभ जल थलो ॥ ४२ ॥

सुजस सुनि स्रवन हौं नाथ! आयो सरन।
उपल केवट गीध सबरी संसृत-समन,
सोक स्रम सीव सुग्रीव आरतिहरन।
राम राजीव लोचन बिमोचन बिपति,

३९—मनी [फा०] अभिमान।

श्याम नव तामरस-दाम बारिद-बरन।
लसत जट जूटि सिर चारु मुनि चीर कटि
धीर रघुबीर तूनीर-सर-धनु-धरन।
जातुधानेस भ्राता बिभीषन नाम
बंधु अपमान गुरु ग्लानि चाहत गरन।
पतितपावन प्रनतपाल करुनासिंधु!
राखिए मोहि सौमित्रि-सेवित-चरन।
दीनता प्रीति संकलित मृदु बचन सुनि
पुलकि तन प्रेम, जल नयन लागे भरन।
बोलि, लंकेस कहि अंक भरि भेंटि प्रभु,
तिलक दियो दीन-दुख-दोष-दारिद-दरन।
रातिचर-जाति आराति सब भाँति गत,
कियो सो कल्यान-भाजन, सुमंगल करन।
दास तुलसी सदय हृदय रघुबंसमनि
पाहि कहे काहि कीन्हों न तारनतरन? ॥ ४३ ॥

दीन-हित बिरद पुराननि गायो।
आरत-बंधु, कृपालु, मृदुल-चित जानि सरन हौं आयो।
तुम्हरे रिपु को अनुज बिभीषन, बंस निसाचर जायो।
सुनि गुन सील सुभाउ नाथ को मैं चरननि चितु लायो।
जानत प्रभु दुख सुख दासनि को ताते कहि न सुनायो।
करि करुना भरि नयन बिलोकहु तब जानो अपनायो।
बचन बिनीत सुनत रघुनायक हँसि करि निकट बुलायो।
भेट्यो हरि भरि अंक भरत ज्यों लंकापति मन भायो।
कर पंकज सिर परसि अभय कियो, जन पर हेतु दिखायो।
तुलसिदास रघुबीर भजन करि को न परमपद पायो? ॥ ४४ ॥

राग धनाश्री

सत्य कहौं मेरो सहज सुभाउ।
सुनहु सखा कपिपति लंकापति तुम्हसन कौन दुराउ।
सब बिधि हीन दीन अति जड़मति जाको कतहुँ न ठाउँ।
आयो सरन भजौं, न तजौं तिहि, यह जानत ऋषिराउ।
जिन्हके हौं हित सब प्रकार चित नाहिंन और उपाउ।
तिनहि लागि धरि देह करौं सब, डरौं न सुजस नसाउ।

पुनि पुनि भुजा उठाइ कहत हौं सकल सभा पतिआउ ।
नहिं कोउ प्रिय मोहिं दास सम कपट प्रीति बहि जाउ ।
सुनि रघुपति के बचन बिभीषन प्रेम मगन मन चाउ ।
तुलसिदास तजि आस त्रास सब ऐसे प्रभु कहँ गाउ ॥ ४५ ॥

नाहिंन भजिबे जोग बियो ।
श्रीरघुबीर समान आन को पूरन कृपा हियो ।
कहहु कौन सुर सिला तारि पुनि केवट मीत कियो ? ।
कौन गीध अधम को पितु ज्यों निज कर पिंड दियो ? ।
कौन देव सबरी के फल करि भोजन सलिल पियो ? ।
बालित्रास-बारिधि बूड़त कपि केहि गहि बाँह लियो ? ।
भजन प्रभाउ बिभीषन भाष्यो सुनि कपि-कटक जियो ।
तुलसिदास को प्रभु कोसलपति सब प्रकार बरियो ॥ ४६ ॥

राग जयतश्री

कब देखौंगी नयन वह मधुर मूरति ?
राजिवदल-नयन, कोमल-कृपाअयन, मयननि बहु छवि अंगनि दूरति ।
सिरसि जटा-कलाप पानि सायक चाप उरसि रुचिर बनमाल लूरति ।
तुलसिदास रघुबीर की बानि सुमिरि, भई है मगन नहिं तन की सूरति ॥४७ ।

राग केदारा

कहु कबहुँ देखिहौं आली ! आरज-सुवन ।
सानुज सुभग-तनु, जब तें बिछुरे बन, तब तें दव सी लगी तीनिहूँ भुवन ।
मूरति सूरति किये प्रगट प्रीतम हिये, मन के करन चाहैं चरन छुवन ।
चित चढ़िगो बियोग दसा न कहिबे जोग, पुलकगात, लागे लोचन चुवन ।
तुलसी त्रिजटा जानी सिय अति अकुलानी मृदु बानी कह्यो ऐहै दवन-दुवन ।
तमीचर-तमहारी सुरकंज सुखकारी, रबिकुल-रबि अब चाहत उवन ॥४८॥

अबलों मैं तोसों न कहे री ।
सुन त्रिजटा ! प्रिय प्राननाथ बिनु बासर निसि दुख दुसह सहे री ।
बिरह बिषम बिष-बेलि बढ़ी उर ते सुख सकल सुभाय दहे री ।
सोइ सींचिबे लागि मनसिज के रहँट नयन नित रहत नहे री ।
सर-सरीर सूखे प्रान बारिचर जीवन आस तजि चलनु चहे री ।
ते प्रभु-सुजस-सुधा सीतल करि राखे तदपि न तृप्ति लहे री ।

४६—बरियो = बली ।

रिपु-रिस घोर नदी बिबेक बल, धीर सहित हुते जात बहे री ।
दै मुद्रिका-टेक तेहि औसर, सुचि समीरसुत पैरि गहे री ।
तुलसिदास सब सोच पोच मृग मन कानन भरि पूरि रहे री ।
अब सखि सिय संदेह परिहरु हिय आइ गए दोउ बीर अहेरी ॥ ४९ ॥

राग बिलावल

सो दिन सोने को कहु कब ऐहै ?
जा दिन बध्यौ सिंधु त्रिजटा सुनु तू संभ्रम आनि मोहिं सुनैहै ।
बिस्वदवन सुर-साधु-सतावन रावन कियो आपनो पैहै ।
लंक-पुरी भयो भूप बिभीषन, बिबुध-समाज बिलोकन धैहै ।
बजि दुंदुभी, प्रसंसिहैं मुनिगन, नभतल बिमल बिमाननि छैहै ।
बरषिहैं कुसुम भानुकुल-मनि पर, तब मोको पवनपूत लै जैहै ।
अनुज सहित सोभिहैं कपिन महं, तनु-छबि कोटि मनोज लजैहैं ।
इन नयननि यहि भाँति प्रानपति, निरखि हृदय आनँद न समैहैं ।
बहुरो सदल, सनाथ, सलछिमन, कुसल कुसल बिधि अवध देखैहै ।
गुरु, पुर लोग, सास, दोउ देवर, मिलत दुसह उर तपनि बुतैहै ।
मंगल-कलस, बधावने घर घर, पैहैं माँगने जो जेहि भैहै ।
बिजय राम राजाधिराज को, तुलसिदास पावन जस गैहै ॥ ५० ॥

सिय ! धीरज धरिये राघौ अब ऐहैं ।
पवनपूत पै पाइ तिहारी सुधि सहज कृपालु बिलंब न लैहैं ॥
सेन साजि कपि भालु काल सम कौतुक ही पाथोधि बँधैहैं ।
घेराइ पै देखिबी लंकगढ़ बिकल जातुधानी पछितैहैं ॥
निसिचर सलभ कृसानु राम-सर उड़ि उड़ि परत जरत खल जैहैं ।
रावन करि परिवार अगमनो जमपुर जात बहुत सकुचैहैं ॥
तिलक सारि अपनाय बिभीषन अभय-बाँह दै अमर बसैहैं ।
जय धुनि मुनि बरषिहैं सुमन सुर, ब्योम बिमान निसान बजैहैं ॥
बंधु समेत प्रानवल्लभपद परसि सकल परिताप नसैहैं ।
राम बाम दिसि देखि तुमहिं सब नयनवंत लोचन फल पैहैं ॥
हम अति हित चितइहौ नाथ-तनु, बार बार प्रभु तुमहिं चितैहैं ।
यह सोभा सुख समय बिलोकत काहू तो पलकैं नहिं लैहैं ॥
कपिकुल लखन सुजस जय जानकि सहित कुसल निज नगर सिधैहैं ।
प्रेम पुलकि आनंद मुदित मन तुलसिदास कल कीरति गैहैं ॥ ५१ ॥

लंका कांड

राग मारू

मानु अजहूँ सिष परिहरि क्रोधु ।
पिय पूरो आयो अब काहि कहु करि रघुबीर-बिरोधु ।
जेहि ताड़का सुबाहु मारि मख राखि जनायो आपु ।
कौतुक ही मारीच-नीच-मिस प्रगट्यो बिसिष-प्रतापु ।
सकल भूप बल गरब-सहित तोर्‍यौ कठोर सिवचापु ।
ब्याही जेहि जानकी जीति जग हर्‍यौ परसुधर-दापु ।
कपट काक साँसति प्रसाद करि बिनु स्रम बध्यो बिराधु
खर दूषन त्रिसिरा कबंध हति कियो सुखी सुर साधु ।
एकहि बान बालि मार्‍यो जेहि जो बल-उदधि अगाधु ।
कहहु धौं कंत कुसल बीती केहि किये राम-अपराधु ।
लाँघि न सके लोक-बिजयी तुम जासु अनुज-कृत-रेषु ।
उतरि सिंधु जार्‍यो पचारि पुर जाको दूत बिसेषु ।
कृपासिंधु खलबन कृसानु सम, जस गावत श्रुति शेषु ।
सोइ बिरुदैत बीर कोसलपति नाथ समुझि जिय देषु ।
मुनि पुलस्त्य के जस-मयंक महँ कत कलंक हठि होहि ।
और प्रकार उबार नहीं कहुँ मैं देख्यों जग टोहि ।
चलु मिलु बेगि कुसल सादर सिय सहित अग्र करि मोहि
तुलसिदास प्रभु सरन सबद सुनि अभय करैंगे तोहि ॥ १ ॥

राग कान्हरा

तू दसकंठ भले कुल जायो ।
तामह सिव-सेवा बिरंचिबर, भुजबल बिपुल जगत जस पायो ।
खर, दूषन, त्रिसिरा, कबंध रिपु जेहि बाली जमलोक पठायो ।
ताको दूत पुनीत चरित हरि सुभ सँदेस कहन हौं आयो ।
श्रीमद नृप-अभिमान मोहबस जानत अनजानत हरि लायो ।
तजि ब्यलीक भजु कारुनीक प्रभु दै जानकिहि सुनु न समझायो ।
जाते तव हित होइ कुसल कुल अचल राज चलिहै न चलायो
नाहिन रामप्रताप-अनल महँ ह्वै पतंग परिहै सठ धायो ।
जद्यपि अंगद नीति परम हित कह्यो तथापि न कछु मन भायो ।
तुलसिदास सुनि बचन क्रोध अति पावक जरत मनहुँ घृत नायो ॥ २ ॥

तैं मेरो मरम कछू नहिं पायो।
रे कपि कुटिल ढीठ पसु पाँवर! मोहि दास ज्यों डाँटन आयो।
भ्राता कुंभकरन रिपुघातक, सुत सुरपतिहि बंदि कर ल्यायो।
निज भुजबल अति अतुल कहौं क्यों कंदुक लौं कैलास उठायो।
सुर नर असुर नाग खग किन्नर सकल करत मेरो मन भायो।
निसिचर रुचिर अहार मनुज-तनु ताको जस खल मोहि सुनायो।
कहा भयो बानर सहाय मिलि करि उपाय जो सिंधु बँधायो।
जो नरिहै भुज बीस घोरनिधि ऐसो को त्रिभुवन में जायो?।
सुनि दससीस-बचन कपि-कुंजर बिहँसि ईसमायहि सिर नायो।
तुलसिदास लंकेस कालबस गनत न कोटि जतन समझायो॥ ३॥

सुनु खल मैं तोहि बहुत बुझायो।
एतो मान सठ भयो मोहबस जानतहूँ चाहत बिष खायो।
जगत-बिदित अति बीर बालि-बल जानत हौ किधौं अब बिसरायो।
बिनु प्रयास सोउ हत्यो एक सर सरनागत पर प्रेम देखायो।
पावहुगे निज करम जनित फल, भले ठौर हठि बैर बढ़ायो।
बानर भालु चपेट लपेटनि मारत तब ह्वैहै पछितायो।
हौं हौं दसन तोरिबे लायक कहा करौं जो न आयसु पायो।
अब रघुबीर बान बिदलित उर सोवहिगो रनभूमि सुहायो।
अबिचल राज बिभीषन को सब जेहि रघुनाथ चरन चित लायो।
तुलसिदास यहि भाँति बचन कहि गरजत चल्यो बालि-नृप-जायो॥ ४॥

राग केदारा

राम लषन उर लाय लये हैं।
भरे नीर राजीवनयन सब अंग परिताप तये हैं॥
कहत ससोक बिलोकि बंधु-मुख बचन प्रीति गुथये हैं।
सेवक सखा भगति भायप गुन चाहत अब अथये हैं॥
निज कीरति करतूति तात! तुम सुकृती सकल जये हैं।
मैं तुम्ह बिनु तनु राखि लोक अपने अपलोक लये हैं॥
मेरे पन की लाज इहाँ लौं हठि प्रिय प्रान दये हैं।
लागति साँगि बिभीषन-ही पर सीपर आपु भये हैं॥
सुनि प्रभु-बचन भालु कपि-गन सुर सोच सुखाइ गये हैं।
तुलसी आइ पवनसुत-बिधि मानो फिरि निरमये नये हैं॥ ५॥

५—सीपर = [फा० सिपर] ढाल।

राग सोरठ

मोपे तौ न कछू ह्वै आई ।
ओर निबाहि भली बिधि भायप चल्यौ लषन सो भाई ॥
पुर पितु मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन बिपति बँटाई ।
ता सँग हौं सुरलोक सोक तजि सक्यौ न प्रान पठाई ॥
जानत हौं या उर कठोर तें कुलिश कठिनता पाई ।
सुमिरि सनेह सुमित्रा-सुत को दरकि दरार न जाई ॥
तात-मरन तिय-हरन गीध-बध भुज दाहिनी गवाई ।
तुलसी मैं सब भाँति आपने कुलहि कालिमा लाई ॥ ६ ॥

मेरो सब पुरुषारथ थाको ।
बिपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको ?
सुनु सुग्रीव साँचेहूँ मोपर फेर्‍यो बदन बिधाता ।
ऐसे समय समर-संकट हौं तज्यो लषन सो भ्राता ॥
गिरि कानन जैहैं शाखामृग हौं पुनि अनुज सँघाती ।
ह्वैहै कहा बिभीषन को गति, रही सोच भरि छाती ॥
तुलसी सुनि प्रभु-बचन भालु कपि सकल बिकल हिय हारे ।
जामवंत हनुमंत बोलि तब औसर जानि प्रचारे ॥ ७ ॥

राग मारू

जो हौं अब अनुसासन पावौं ।
तो चंद्रमहि निचोरि चैल ज्यों आनि सुधा सिर नावौं ॥
कै पाताल दलौं ब्यालावलि अमृत-कुंड महि लावौं ।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं ॥
बिबुध-बैद बरबस आनौं धरि तौ प्रभु अनुग कहावौं ।
पटकौं मीच नीच मूषक ज्यों सबहि को पापु बहावौं ॥
तुम्हरिहि कृपा प्रताप तिहारेहि नकु बिलंब न लावौं ।
दीजै सोइ आयसु तुलसीप्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं ॥ ८ ॥

सुनि हनुमंत-बचन रघुबीर ।
सत्य समीर-सुवन सब लायक कह्यो राम धरि धीर ॥
चहिए बैद, ईस-आयसु धरि सीस कीस बलऐन ।
आन्यो सदन-सहित सोवत ही जौलौं पलक परै न ॥
जियै कुँवर निसि मिलै मूलिका, कीन्ही बिनय सुषेन ।
उठ्यो कपीस सुमिरि सीतापति चल्यो सजीवनि लेन ॥

कालनेमि दलि बेगि बिलोक्यो द्रोनाचल जिय जानि।
देखी दिव्य औषधी जहँ तहँ जरी न परि पहिचानि ॥
लियो उठाय कुधर कंदुक ज्यों, बेग न जाइ बखानि।
ज्यों धाए गजराज उधारन सपदि सुदरसनपानि ॥
आनि पहार जोहारे प्रभु, कियो बैदराज उपचार।
करुनासिंधु बंधु भेंट्यो, मिटि गयो सकल दुख भार ॥
मुदित [illegible] लह्यो जनु समर-पयोनिधि पार।
बहुरि ठौरही राखि महाधर आयो पवनकुमार ॥
सेन सहित सेवकहि सराहत पुनि पुनि राम सुजान।
बरषि सुमन हिय हरषि प्रसंसत बिबुध बजाइ निसान ॥
तुलसिदास सुधि पाइ निसाचर भए मनहुँ बिनु प्रान।
परी भोरही रोर लंकगढ़, दई हाँक हनुमान ॥ ९ ॥

राग केदारा

कौतुक ही कपि कुधर लियो है।
चल्यो नभ नाइ माथ रघुनाथहिं, सरिस न बेग बियो है ॥
देख्यो जात जानि निसिचर बिनु फर सर हयो हियो है।
पर्‌यो कहि राम, पवन राख्यो गिरि पुर तेहि तेज पियो है ॥
जाइ भरत भरि अंक भेंटि निज जीवन-दान दियो है।
दुख लघु लषन मरम-घायल सुनि, सुख बड़ो कीस जियो है ॥
आयसु इतहि स्वामि-संकट उत, परत न कछू कियो है।
तुलसिदास बिहर्‌यो अकास सो कैसेहु जात सियो है ॥ १० ॥

भरत सत्रुसूदन बिलोकि कपि चकित भयो है।
राम लषन रन जीति अवध आए, कैधौं मोहिं भ्रम, कैधौं काहू कपट [illegible]
प्रेम पुलकि पहिचानि कै पदपदुम नयो है।
कह्यो न परत जेहि भाँति दुहूँ भाइन सनेह सों सो उर लाय लयो है ॥
समाचार कहि गहरु भो, तेहि ताप तयो है।
कुधर सहित चढ़ौ बिसिष, बेगि पठवौं, सुनि हरिहिय गरब गूढ़ उपयो है।
तीर तें उतरि जस कह्यो चहै, गुनगननि जयो है।
धनि भरत! धनि भरत! करत भयो मगन मौन रह्यो मन अनुराग रयो है।
यह जलनिधि खन्यो, मथ्यो, लँघ्यो, बाँध्यो, अँचयो है।
तुलसिदास रघुबीर-बंधु-महिमा को सिंधु तरि को कबि पार गयो है? ॥ ११ ॥

११—उपयो है = उत्पन्न हुआ है।

होतो नहिं जो जग जनम भरत को।
तौ कपि कहत कृपान-धार-मग चलि आचरत बरन को ?
धीरज-धरम-धरनि धर-धुरहू तें गुरु धुर धरनि धरत को ?
सब सद्गुन सनमानि आनि उर, अघ औगुन निदरत को ?
सिवहु न सुगम सनेह रामपद सुजननि सुलभ करत को ?
सृजि निज जस-सुरतरु तुलसी कहँ अभिमत फरनि फरत को ?॥ १२॥

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामि-काज संग्राम सुभट सों लोहे ललकारि लरे हैं॥
सुवन-सोक संतोष सुमित्रहि रघुपति-भगति बरे हैं।
छिन छिन गात सुखात छिनहिं छिन हुलसत होत हरे हैं॥
कपि सों कहति सुभाय अंब के अंबक अंबु भरे हैं।
रघुनंदन बिनु बंधु कुअवसर जद्यपि धनु दुसरे हैं॥
'तात! जाहु कपि संग' रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधिबस सुढर ढरे हैं॥
अंब-अनुज-गति लखि पवनज भरतादि गलानि गरे हैं।
तुलसी सब समुझाइ मातु तेहि समय सचेत करे हैं॥ १३॥

बिनय सुनाइबी परि पाय।
कहौं कहा कपीस तुम्ह सुचि सुमति सुहृद सुभाय॥
स्वामि-संकट-हेतु हौं, जड़ जननि जनम्यो जाय।
समौ पाइ कहाइ सेवक घट्यो तौ न सहाय॥
कहत सिथिल सनेह भो जनु धीर घायल घाय।
भरत-गति लखि मातु सब रहि ज्यों गुड़ी बिनु बाय॥
कहि कहि कहिबो, कह्यो यों कठिन-मानस माय।
"लाल! तोहि लषन-सहित सुललित लागत नाय" ॥
देखि रिपु-सनेह अंब-सुभाउ, लषन कुठाय।
तपत तुलसी तरनि त्रासकु साहि नये निहुँ ताय॥ १४॥

हृदय-घाउ मेरे पीर रघुबीरै।
पाइ सजीवन जागि कहत यों प्रेमपुलकि बिसराय सरीरै॥
मोहि कहा बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै।
सोभा सुख छति लाहु भूप कहँ केवल कांति मोल हीरै॥

१३—धनु = अर्थात् शत्रुघ्न। पैंत = पाँसा।

तुलसी सुनि सौमित्रि-बचन सब धरि न सकत धीरो धीरै।
उपमा राम-लषन की प्रीति की क्यों दीजै खीरै-नीरै॥ १५॥

राग कान्हरा

राजत राम काम-सत-सुंदर।
रिपु रन जीति अनुज संग सोभित, फेरत चाप बिसिष बनरुह-कर॥
स्याम सरीर रुचिर स्रमसीकर, सोनित-कन बिच बीच मनोहर।
जनु खद्योत-निकर हरिहित-गन भ्राजत मरकत-सैल-सिखर पर॥
घायल बीर बिराजत चहुँ दिसि, हरषित सकल रिच्छ अरु बनचर।
कुसुमित किंसुक-तरु-समूह महँ तरुन तमाल बिसाल बिटप बर॥
राजिव-नयन बिलोकि कृपा करि किए अभय मुनि नाग बिबुध नर।
तुलसिदास यह रूप अनूपम हिय सरोज बसि दुसह बिपतिहर॥ १६॥

राग आसावरी

अवधि आजु किधौं औरो दिन ह्वै है।
चढ़ि धौरहर बिलोकि दखिन दिसि बूझु धौं पथिक कहाँ ते आए वै हैं॥
बहुरि बिचारि हारि हिय सोचति, पुलकि गात लागे लोचन च्वै हैं।
निज दासरथि बरष पुरवैगो बिधि मेरे तहाँ दुरम कठिन कृत कै हैं॥
बन रघुबीर. मातु गृह जीवति, निलज प्रान सुनि सुनि सुख स्वैहै।
तुलसिदास मोसी कठोर-चित कुलिससाल-भंजनि को ह्वैहै॥ १७॥

आली! अब राम-लषन कित ह्वैहैं।
चित्रकूट तज्यो तब तें न लही सुधि बधू-समेत कुसल सुत द्वै हैं।
बारि बयारि बिषम हिम आतप सहि बिनु बसन भूमितल स्वैहैं।
कंद मूल फल फूल असन बन, भोजन समय मिलत कैसे ब्वैहैं॥
जिन्हहिं बिलोकि सोचिहैं लता द्रुम खग मृग मुनि लोचन जल च्वैहैं।
तुलसिदास तिनकी जननी हौं, मो सी निठुर चित औरो कहुँ ह्वैहै॥१८॥

राग सोरठ

बैठी सगुन मनावति माता।
कब ऐहैं मेरे बाल कुसल घर कहहु काग फुरि बाता॥
दूध भात की दोनी दैहौं सोने चोंच मढ़ैहौं।
जब सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम-लषन उर लैहौं॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बोलाइ पाँय परि पूछति प्रेम-मगन मृदु बानी॥

१६—बनरुह = कमल। हरिहित = इंद्रबधूटी, बीरबहूटी।

तेहि अवसर कोउ भरत निकट तें समाचार लै आयो ।
प्रभु-आगमन सुनत तुलसी मनो मीन मरत जल पायो ॥ १९ ॥

राग गौरी

छेमकरी बलि बोलि सुबानी ।
कुसल छेम सिय राम लषन कब ऐहैं, अंब ? अवध रजधानी ॥
ससिमुख, कुंकुम-बरनि, सुलोचनि, मोचनि-सोचनि बेद बखानी ।
देवि ! दया करि देहि दरसफल जोरि पानि बिनवहिं सब रानी ॥
सुनि सनेहमय बचन निकट ह्वै मंजुल मंडल कै मड़रानी ।
सुभ मंगल आनंद गगन-धुनि अकनि अकनि उर जरनि जुड़ानी ॥
फरकन लगे सुअंग बिदिसि दिसि, मन प्रसन्न दुख-दसा सिरानी ।
करहिं प्रनाम सप्रेम पुलकि तनु मानि बिबिध बलि सगुन सयानी ॥
तेहि अवसर हनुमान भरत सों कही सकल कल्यान-कहानी ।
तुलसिदास सोइ चाह सँजीवनि बिषम बियोग ब्यथा बड़ि भानी ॥ २० ॥

राग धनाश्री

सुनियत सागरसेतु बँधायो ।
कोसलपति की कुसल सकल सुधि कोउ इक दूत भरत पहँ ल्यायो ॥
बध्यो बिराध त्रिसिर खर दूषन, सूपनखा को रूप नसायो ।
हति कबंध, बल-अंध बालि दलि कृपासिंधु सुग्रीव बसायो ॥
सरनागत अपनाइ बिभीषन रावन सकुल समूल बहायो ।
बिबुध-समाज निवाजि बाँह दै बंदिछोर बर बिरद कहायो ॥
एक एक सों समाचार सुनि नगरलोग जहँ तहँ सब धायो ।
घन-धुनि अकनि मुदित मयूर ज्यों बूड़त जलधि पार सो पायो ॥
'अवधि आजु', यों कहत परस्पर बेगि बिमान निकट पुर आयो ।
उतरि अनुज अनुगनि समेत प्रभु गुरु द्विजगन चरननि सिर नायो ॥
जो जेहि जोग राम तेहि बिधि मिलि सबके मन अति मोद बढ़ायो ।
भेंटी मातु भरत भरतानुज, क्यों कहौं प्रेम अमित अनमायो ॥
तेही दिन मुनिबृंद अनंदित तुरत तिलक को साज सजायो ।
महाराज रघुबंस-नाथ को सादर तुलसिदास गुन गायो ॥ २१ ॥

राग जयतश्री

रन जीति राम राउ आए ।
सानुज सदल ससीय कुसल आजु अवध आनंद-बधाए ॥

२०—चाह=खबर, समाचार । २१—अनमायो=जिसकी माप नहीं हो सकती ।

अरिपुर जारि, उजारि, मारि रिपु, बिबुध सुबास बसाए।
धरनि धेनु महिदेव साधु सबके सब सोच नसाए॥
दई लंक, थिर थपे बिभीषन, बचन पियूष पिआए।
सुधा सींचि कपि, कृपा नगर-नर-नारि निहारि जिआए॥
मिलि गुरु बंधु मातु जन परिजन भए सकल मन भाए।
दरस-हरष दसचारि बरष के दुख पल मैं बिसराए॥
बोलि सचिव सुचि सोधि सुदिन मुनि मंगल साज सजाए।
महाराज अभिषेक बरषि सुर सुमन निसान बजाए॥
लै लै भेंट नृप अहिप लोकपति अति सनेह सिर नाए।
पूजि प्रीति पहिचानि राम आदरे अधिक अपनाए॥
दान मान सनमानि जानि रुचि जाचक जन पहिराए।
गए सोक-सर सूखि, मोद-सरिता-समुद्र गहिराए॥
प्रभु, प्रताप-रबि अहित-अमंगल अघ-उलूक-तम ताए।
किये बिसोक हित-कोक-कोकनद, लोक सुजस सुभ छाए॥
राम राज कुलकाज सुमंगल सबनि सबै सुख पाए।
देहिं असीस भूमिसुर प्रमुदित प्रजा प्रमोद बढ़ाए॥
आस्रम-धरम-बिभाग बेदपथ पावन लोग चलाए।
धरम-निरत सिय-राम-चरन-रत मनहुँ राम-सम जाए॥
कामधेनु महि बिटप कामतरु कोउ बिधि बाम न लाए।
ते तब, अब तुलसी तेउ जिन्ह हित-सहित राम-गुन गाए॥ २२॥

राग टोड़ी

आजु अवध आनंद बधावन रिपु रन जीति राम आए।
सजि सुबिमान निसान बजावत मुदित देव देखन धाए॥
घर घर चारु चौक चंदन मनि, मंगल-कलस सबनि साजे।
ध्वज पताक तोरन बितान बर, बिबिध भाँति बाजन बाजे॥
राम-तिलक सुनि दीप दीप के नृप आए उपहार लिये।
सीय सहित आसीन सिंहासन निरखि, जोहारत हरष हिये॥
मंगल गान, बेदधुनि, जयधुनि मुनि-असीस-धुनि भुवन भरे।
बरषि सुमन सुर सिद्ध प्रसंसत, सबके सब संताप हरे॥
राम-राज भइ कामधेनु महि सुख संपदा लोक छाए।
जनम जनम जानकीनाथ के गुनगन तुलसिदास गाए॥ २३॥

उत्तर कांड

राग सोरठ

बन तें आइके राजा राम भए भुवाल ।
मुदित चौदह भुवन, सब सुख सुखी सब सब काल ॥
मिटे कलुष कलेस कुलषन कपट कुपथ कुचाल ।
गए दारिद दोष दारुन दंभ दुरित दुकाल ॥
कामधुक महि, कामतरु तरु, उपल मनिगन लाल ।
नारि नर तेहि समय सुकृती भरे भाग सुभाल ॥
बरन-आस्रम-धरमरत, मन बचन बेष मराल ।
राम-सिय-सेवक सनेही साधु सुमुख रसाल ॥
राम-राज-समाज बरनत सिद्ध सुर दिगपाल ।
सुमिरि सो तुलसी अजहुँ हिय हरष होत बिसाल ॥ १ ॥

राग ललित

भोर जानकीजीवन जागे ।
सूत मागध प्रबीन, बेनु बीना धुनि द्वारे, गायक सरस राग रागे ।
स्यामल सलोने गात, आलसबस जँभात प्रिया प्रेमरस पागे ।
उनींदे लोचन चारु, मुख सुषमा सिंगार हेरि हारे मार भूरि भागे ।
सहज सुहाई छबि, उपमा न लहै कबि, मुदित बिलोकन लागे ।
तुलसिदास निसि बासर अनूप रूप रहत प्रेम-अनुरागे ॥ २ ॥

राग कल्याण

रघुपति राजीवनयन, सोभातनु कोटि मयन,
करुनारस-अयन चयन-रूप भूप, माई ।
देखो सखि अतुलित छबि, संत कंज-कानन-रबि
गावत कल कीरति कबि कोबिद समुदाई ॥
मज्जन करि सरजुतीर ठाढ़े रघुबंसबीर,
सेवत पद कमल धीर निरमल चित लाई ।
ब्रह्मंडली-मुनींद्रबृंद-मध्य इंदुबदन
राजत सुखसदन लोकलोचन-सुखदाई ॥
बिथुरित सिररुह-बरूथ कुंचित बिच सुमन-जूथ,
मनिजुत सिसु-फनि-अनीक ससि समीप आई ।

जनु सभीत दै अँकोर राखे जुग रुचिर मोर,
कुंडल-छबि निरखि चोर सकुचत अधिकाई ॥
ललित भ्रुकुटि तिलक भाल चिबुक अधर द्विज रसाल,
हास चारुतर, कपोल नासिका सुहाई ।
मधुकर जुग पंकज बिच सुक बिलोकि नीरज पर
लरत मधुप-अवलि मानो बीच कियो जाई ॥
सुंदर पटपीत बिसद, भ्राजत बनमाल उरसि,
तुलसिका-प्रसून-रचित बिबिध बिधि बनाई ।
तरु तमाल अधबिच जनु त्रिबिध कीरपाँति रुचिर
हेमजाल अंतर परि तातें न उड़ाई ॥
शंकर-हृदि-पुंडरीक निसि बस हरि-चंचरीक,
निर्व्यलीक मानस-गृह सतत रहे छाई ।
अतिसय आनंदमूल तुलसिदास सानुकूल,
हरन सकल सूल, अवध-मंडन रघुराई ॥ ३ ॥

राजत रघुबीर धीर, भंजन भव-भीर, पीर
हरन सकल सरजुतीर निरखहु, सखि ! सोहै ।
संग अनुज मनुज-निकर, दनुज-बल-बिभंग-करन,
अंग अंग छबि अनंग अगनित मन मोहै ॥
सुखमा-सुख-सील-अयन नयन निरखि निरखि नीके
कुंचित कच, कुंडल कल नासिक चित पोहै ।
मनहुँ इंदुबिंब मध्य कंज मीन खंजन लखि
मधुप मकर कीर आए तकि तकि निज गोहै ॥
ललित गंड मंडल, सुबिसाल भाल तिलक झलक
मंजुतर मयंक-अंक, रुचिर बंक भौंहै ।
अरुन अधर, मधुर बोल, दसन दमक दामिनि दुति,
हुलसति हिय हँसनि चारु, चितवनि तिरछौंहै ॥
कंबु कंठ, भुज बिसाल, उरसि तरुन तुलसिमाल,
मंजुल मुकतावलि जुत जागति जिय जोहैं ।
जनु कलिंदनंदिनि मनि-इंद्रनील-सिखर परसि
धँसति लसति हंससेनि संकुल अधिकौहैं ॥

२—बीच कियो = बीच बिचाव किया, बीच में पड़ कर झगड़ा छुड़ाया ।
निर्व्यलीक = कपट-रहित ।

दिव्यतर दुकूल भव्य, नव्य रुचिर चंपक चय,
चंचला कलाप कनक निकर अलि किधौं हैं।
मज्जन-चख-झख-निकेत, भूषन मनिगन समेत,
रूप-जलधि-बपुष लेत मन-गयंद बोहैं॥
अकनि बचन चातुरी, तुराय पेखि प्रेम मगन
पग न परत इत उत सब चकित तेहि समो है।
तुलसिदास यह सुधि नहिं कौन का, कहाँ तें आई,
कौन काज, काके ढिग, कौन ठाउ को है॥ ४॥

देखु सखि! आजु रघुनाथ सोभा बनी।
नील-नीरद-बरन-बपुष, भुवनाभरन,
पीत-अंबर-धरन हरन दुति-दामिनी॥
सरजु मज्जन किए संग सज्जन लिए,
हेतु जन पर हिये, कृपा कोमल घनी।
सजनि आवत भवन, मत्त-गजबर-गवन,
लंक मृगपति ठवनि कुँवर कोसलधनी॥
सघन चिक्कन कुटिल चिकुर बिलुलित मृदुल,
करनि बिबरत चतुर सरस सुषमा जनी।
ललित अहि-सिसु-निकर मनहुँ ससि सन समर,
लरत, धरहरि करत रुचिर जनु जुग फनी॥
भाल भ्राजत तिलक, जलज लोचन, पलक
चारु भ्रू नासिका सुभग सुक-आननी।
चिबुक सुंदर, अधर अरुन, द्विज दुति सुघर,
बचन गंभीर, मृदुहास भव-भाननी॥
स्रवन कुंडल, बिमल गंड मंडित चपल,
कलित कल कांति अति भाँति कछु तिन्ह तनी।
जुगल कंचन-मकर मनहुँ बिधुकर मधुर
पियत पहिचानि करि सिंधुकीरति भनी॥
उरसि राजत पदिक, ज्योति रचना अधिक,
माल सुबिसाल चहुँ पास बनि गजमनी।
स्याम नव जलद पर निरखि दिनकर-कला

४—बोहैं लेत=डुब्बी लेना है, अवगाहन करता है।

कौतुकी मनहुँ रही घेरि उडुगन-अनी ॥
मंदिरनि पर खरी नारि आनँद-भरी,
निरखि बरषहिं बिपुल कुसुम कुंकुम-कनी ।
दास तुलसी राम परम करुनाधाम,
काम सत कोटि मद हरत छबि आपनी ॥ ५ ॥

आजु रघुबीर छबि जाति नहिं कछु कही ।
सुभग सिंहासनासीन सीतारमन,
भुवन अभिराम बहु काम सोभा मही ॥
चारु चामर ब्यजन, छत्र मनिगन बिपुल.
दाम मुकुतावली जोति जगमगि रही ।
मनहुँ राकेस सँग हंस उडुगन बरहि
मिलन आए हृदय जानि निज नाथही ॥
मुकुट सुंदर सिरसि, भालबर तिलक भ्रू
कुटिल कच, कुंडलनि परम आभा लही ।
मनहुँ हर-डर जुगल मारध्वज के मकर
लागि स्रवननि करत मेरु की बतकही ॥
अरुन-राजीव-दल-नयन करुना-अयन,
बदन सुषमासदन, हास त्रय-तापही ।
बिबिध कंकन हार, उरसि गजमनि-माल
मनहुँ बग-पाँति जुग मिलि चली जलद ही ॥
पीत निर्मल चैल, मनहुँ मरकत सैल,
पृथुल दामिनि रही छाइ तजि सहज ही ।
ललित सायक चाप, पीन भुज बल अतुल
मनुज तनु दनुजबन-दहन मंडन-मही ॥
जासु गुन रूप नहिं कलित निर्गुन सगुन,
संभु सनकादि सुक भक्ति दृढ़ करि गही ।
दास तुलसी राम-चरन-पंकज सदा
बचन मन कर्म चहै प्रीति नित निर्बही ॥ ६ ॥

५—चरहरि करत = बीच बिचाव करते हैं । तनी = तानी, फैलाई ।

६—मेरु की बतकही = मेल की बातचीत । त्रयतापही = तीनों तापों का नाश करनेवाला । तजि सहज = (चंचल) स्वभाव छोड़कर ।

रामराज राजमौलि मुनिवर-मन-हरन सरन
लायक, सुखदायक रघुनायक देखौ, री।
लोक लोचनाभिराम, नीलमनि-तमाल-स्याम,
रूप सीलधाम, अंग छबि अनंग को री ॥
भ्राजत सिर मुकुट पुरट-निर्मित मनि-रचित चारु,
कुंचित कच रुचिर परम, सोभा नहि थोरी।
मनहुँ चंचरीक-पुंज कंजबृंद प्रीति लागि
गुंजत कल गान तान दिनमनि रिझयो री ॥
अरुनकंज-दल-बिसाल लोचन भ्रू तिलक भाल
मंडित स्रुति कुंडल बर सुंदरतर जोरी।
मनहुँ संबरारि मारि, ललित मकर-जुग बिचारि,
दीन्हें ससि कहँ पुरारि, भ्राजत दुहुँ ओरी ॥
सुंदर नासा कपोल चिबुक, अधर अरुन, बोल
मधुर दसन राजत जब चितवत मुख मोरी।
कंज-कोस भीतर जनु कंजराज-सिखर निकर,
रुचिर रचित बिधि बिचित्र तड़ित-रंग बोरी ॥
कंबु कंठ, उर बिसाल तुलसिका नवीन माल,
मधुकर बर बास बिबस उपमा सुनु सो री!
जनु कलिंदजा सुनील सैल तें धरनी समीप,
कंद-बृंद बरषत छबि मधुर घोरि घोरी ॥
निर्मल अति पीत चैल-दामिनि जनु जलद नील
राखी निज सोभाहित बिपुल बिधि निहोरी।
नयननिह को फल बिसेष ब्रह्म अगुन सगुन बेष
निरखहु तजि पलक, सफल जीवन लेखौ री ॥
सुंदर सीता समेत सोभित करुनानिकेत,
सेवक सुख देत लेत चितवत चित चोरी।
बरनत यह अमित रूप थकित निगम नागभूप,
तुलसिदास छबि बिलोकि सारद भइ भोरी ॥ ७ ॥

७—पुरट = सोना, स्वर्ण। संबरारि = कामदेव, (प्रद्युम्न ने जो काम के अवतार थे शंबर को मारा था)। कंजराग = पद्मराग मणि। कंद = बादल। घोरि घोरी = गरज गरजकर।

राग केदारा

सखि ! रघुनाथ-रूप निहारु ।
सरद-बिधु रबि-सुवन मनसिज-मान-भंजनिहारु ॥
स्याम सुभग सरीर जनु मन-काम-पूरनिहारु ।
चारु चंदन मनहुँ मरकत सिखर लसत निहारु ॥
रुचिर उर उपबीत राजत, पदिक गजमनि हारु ।
मनहुँ सुरधनु नखतगन बिच तिमिर-गंजनिहारु ॥
बिमल पीत दुकूल दामिनि-दुति बिनिंदनिहारु ।
बदन सुषमासदन सोभित मदन-मोहनिहारु ॥
सकल अंग अनूप नहिं कोउ सुकबि बरननिहारु ।
दासतुलसी निरखतहि सुख लहत निरखनिहारु ॥ ८ ॥

सखि ! रघुबीर-मुखछबि देखु ।
चित्त-भीति सुप्रीति-रंग सुरूपता अवरेखु ॥
नयन-सुषमा निरखि नागरि ! सुफल जीवन लेखु ।
मनहुँ बिधि जुग जलज बिरचे ससि सुपूरन मेखु ॥
भ्रुकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर कुंकुम-रेखु ।
भ्रमर द्वै रबिकिरनि ल्याए करन जनु उनमेखु ॥
सुमुखि ! केस सुदेस सुंदर सुमन-संजुत पेखु ।
मनहुँ उडुगन निवह आए मिलन तम तजि द्वेषु ॥
स्रवन कुंडल मनहुँ गुरु कबि करत बाद बिसेषु ।
नासिका द्विज अधर जनु रह्यो मदनु करि बहु बेषु ॥
रूप बरनि न सकत नारद संभु सारद सेषु ।
कहै तुलसीदास क्यों मतिमंद-सकल-नरेसु ॥ ९ ॥

राग जयतश्री

देखौ राघव-बदन बिराजत चारु ।
जात न बरनि बिलोकत ही सुख, मुख किधौं छबि बर नारि सिंगारु ॥
रुचिर चिबुक, रद-जोति अनूपम, अधर अरुन, सित हास निहारु ।
मनो ससिकर बस्यो चहत कमल महँ प्रगटत दुरत न बनत बिचारु ॥

८—रबिसुवन = अश्विनीकुमार ।

९—ससि पूरन मेखु=शरत् पूणिमा का चंद्रमा जो मेष राशि में होता है ।

नासिक सुभग मनहुँ सुक सुंदर, चितवत चकित अचरज अपारु।
कल कपोल, मृदु बोल मनोहर, रीझि चित चतुर अपनपौ वारु ॥
नयनसरोज, कुटिल कच, कुंडल भ्रुकुटि सुभाल तिलक सोभा-सारु।
मनहुँ केतु के मकर, चाप सर गयो बिसारि भयो मोहित मारु ॥
निगम सेष सारद सुक शंकर बरनत रूप न पावत पारु।
तुलसिदास कहै कहौ धौं कौन बिधि अति लघुमति जड़ क्रूर गँवारु ॥ १० ॥

राग ललित

आज रघुपति-मुख देखत लागत सुख,
सेवक सुरूप सोभा सरद-ससि सिहाई।
दसन-बसन लाल बिसद हास रसाल,
मानो हिमकर-कर राखे राजीव मनाई ॥
अरुन नैन बिसाल, ललित भ्रुकुटि, भाल
तिलक, चारु कपोल, चिबुक नासा सुहाई।
बिथुरे कुटिल कच, मानहुँ मधु लालच अलि
नलिन-जुगल उपर रहे लोभाई ॥
स्रवन सुंदर सम कुंडल कल जुगम,
तुलसिदास अनूप उपमा कहा न जाई।
मानो मरकत सीप सुंदर ससि समीप
कनक मकरजुत बिधि बिरची बनाई ॥ ११ ॥

राग भैरव

प्रातकाल रघुबीर-बदन-छबि चितै चतुर चित मेरे।
होहिं बिबेक-बिलोचन निर्मल सुफल सुसीतल तेरे ॥
भाल बिसाल बिकट भ्रुकुटी बिच तिलक-रेख रुचि राजै।
मनहुँ मदन तम तकि मरकत धनु जुगल कनक सर साजै ॥
रुचिर पलक-लोचन जुग तारक स्याम, अरुन सित कोए।
जनु अलि नलिन-कोस महँ बंधुक-सुमन सेज सजि सोए ॥
बिलुलित ललित कपोलनि पर कच मेचक कुटिल सुहाए।
मनो बिधु महँ बनरुह बिलोकि अलि-बिपुल सकौतुक आए ॥
सोभित स्रवन कनक-कुंडल कल लंबित बिबि भुजमूले।
मनहुँ केकि तकि गहन चहत जुग उरग इंदु प्रतिकूले ॥

११—दसन-बसन = रदच्छद = ओठ।

अधर अरुन-तर, दसन-पाँति बर, मधुर मनोहर हासा।
मनहुँ सोन-सरसिज महँ कुलिसनि तड़ित सहित कृत बासा॥
चारु चिबुक, सुकतुंड-बिनिंदक सुभग सुउन्नत नासा।
तुलसिदास छबिधाम राममुख सुखद समन भवत्रासा॥ १२॥

राग केदारा

सुमिरत श्री रघुबीर की बाहैं।
होत सुगम भव-उदधि अगम अति, कोउ लाँघत, कोउ उतरत थाहैं॥
सुंदर-स्याम-सरीर-सैल तें धँसि जनु जुग जमुना अवगाहैं।
अमित अमल जल-बल परिपूरन जनु जनमीं सिंगार-सचिता हैं॥
धारैं बान, कूल धनु, भूषन जलचर, भँवर सुभग सब घाहैं।
बिलसति बीचि बिजय-बिरदावलि, कर-सरोज सोहत सुषमा हैं॥
सकल-भुवन-मंगल-मंदिर के द्वार बिसाल सुहाई साहैं।
जे पूजीं कौसिक-मख ऋषयनि जनक गनप संकर गिरिजा हैं॥
भवधनु दलि जानकी बिबाहीं भए बिहाल नृपाल त्रपा हैं।
परसु पानि जिन्ह किए महामुनि जे चितए कबहूँ न कृपा हैं॥
जातुधान-तिय जानि बियोगिनि दुखई सीय सुनाइ कुचाहैं।
जिन्ह रिपु मारि सुरारि-नारि तेइ सीस उघारि दिवाईं धाहैं॥
दसमुख-बिबस तिलोक लोकपति बिकल बिनाए नाक चना हैं।
सुबस बसे गावत जिन्हके जस अमर-नाग-नर-सुमुखि सनाहैं॥
जे भुज बेद पुरान सेष सुक सारद सहित सनेह सराहैं।
कलपलताहु की कलपलता बर, कामदुहहु की कामदुहा हैं॥
सरनागत आरत प्रनतनि को दै दै अभयपद ओर निबाहैं।
करि आईं, करिहैं, करती हैं तुलसिदास दासनि पर छाहैं॥ १३॥

राग भैरव

रामचंद्र-करकंज कामतरु बामदेव-हितकारी।
सियसनेह-बर-बेलि-बलित बर प्रेमबंधु बर बारी॥
मंजुल-मंगल-मूल मूलतरु करज मनोहर साखा।
रोम परन, नख सुमन, सुफल सब काल सुजन अभिलाषा॥

१३—थाहैं = दो उँगलियों के बीच की थाई (संधिस्थान)। साहैं = द्वार के ढाँचे की दोनों खड़ी लकड़िया। त्रपा = लज्जा से। धाहैं दिवाई = धा मारकर रुलाया।

अविचल अमल अनामय अबिरल ललित रहित-छल-छाया ।
समन सकल संताप पाप रुज मोह मान मद माया ॥
सेवहिं सुचि मुनि-भृंग-बिहग मन-मुदित मनोरथ पाए ।
सुमिरत हिय हुलसत तुलसी अनुराग उमँगि गुन गाए ॥ १४ ॥

रामचरन अभिराम कामप्रद तीरथ-राज बिराजै ।
संकर-हृदय भगति भूतल पर प्रेम-अछयबट भ्राजै ॥
स्यामबरन पद-पीठ, अरुन तल, लसति बिसद नखस्रेनी ।
जनु रबिसुता सारदा सुरसरि मिलि चलीं ललित त्रिबेनी ॥
अंकुस कुलिस कमल-धुज सुंदर भँवर तरंग बिलासा ।
मज्जहिं सुर सज्जन मुनिजन मन मुदित मनोहर बासा ॥
बिनु बिराग जप जाग जोग ब्रत, बिनु तप, बिनु तनु त्यागे ।
सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभु-पद-प्रयाग अनुरागे ॥ १५ ॥

राग बिलावल

रघुबर-रूप बिलोकु नेकु मन ।
सकल लोक-लोचन-सुखदायक नखसिख सुभग स्यामसुंदर तन ॥
चारु चरन-तल-चिह्न चारि फल चारि देत पर चारि जानि जन ।
राजत नख जनु कमल-दलनि पर अरुन-प्रभा-रंजित तुषार-कन ॥
जंघा जानु जानु कदलि बर, कटि किंकिनि, पटपीत सुहावन ।
रुचिर निषंग, नाभि रोमावलि त्रिबलि-बलित उपमा कछु आवन ॥
भृगुपद-चिह्न पदिक उर सोभित मुकुतमाल कुंकुम अनुलेपन ।
मनहुँ परस्पर मिलि पंकज रुचि प्रगट्यो निज अनुराग सुजस घन ॥
बाहु बिसाल ललित सायक धनु, कर कंकन केयूर महाधन ।
बिमल दुकूल दलन दामिनि-दुति यज्ञोपबीत लसत अति पावन ॥
कंबुग्रीव, छबिसींव चिबुक द्विज, अधर कपोल, बोल भय-मोचन ।
नासिक सुभग कृपापरिपूरन, तरुन अरुन राजीव बिलोचन ॥
कुटिल भ्रकुटिबर, भाल तिलक रुचि, सुचि सुंदरता स्रवन बिभूषन ।
मनहुँ मारि मनसिज पुरारि दिय ससिहिं चापसर मकर अदूषन ॥
कुंचित कच, कंचन-किरीट सिर जटित ज्योतिमय बहु बिधि मनिगन ।
तुलसिदास रबिकुल-रबि-छबि कबि कहि न सकत सुक संभु सहसफन ॥१६॥

राग कान्हरा

देखो रघुपति-छबि अतुलित अति ।
जनु तिलोक सुखमा सकेलि बिधि राखी रुचिर अंग अंगनि प्रति ॥

पदुमराग रुचि मृदु पदतल, धुज अंकुस कुलिस कमल यहि सूरति ।
रही आनि चहुँ बिधि भगतनि की जनु अनुराग भरी अंतरगति ॥
सकल सुचिह्न सुजन सुखदायक ऊरधरेख बिसेष बिराजति ।
मनहुँ भानु-मंडलहि सँवारत धर्यो सूत बिधि-सुत बिचित्र मति ॥
सुभग अगुष्ठ अंगुली अबिरल, कछुक अरुन नख-ज्योति जगमगति ।
चरन पीठ उन्नत नत-पालक, गूढ़ गुलुफ, जंघा कदलीजति ॥
काम-तून-तल सरिस जानु जुग, उरु करि-कर करभहि बिलखावति ।
रसना रचित रतन चामीकर, पीत बसन कटि कसे सरसावति ॥
नाभी सर त्रिबली निसेनिका, रोमराजि सैवल छबि पावति ।
उर मुकुतामनि-माल मनोहर मनहुँ हंस-अवली उड़ि आवति ॥
हृदय पदिक भृगु-चरन-चिह्न बर बाहु बिसाल जानु लगि पहुँचति ।
कल केयूर पूर-कंचन-मनि, पहुँची मंजु कंजकर सोहति ॥
सुजस सुरेख सुनख अंगुलिजुत, सुंदर पानि मुद्रिका राजति ।
अंगुलित्रान कमान बानछबि सुरनि सुखद असुरनि-उर सालति ॥
स्याम सरीर सुचंदन-चर्चित, पीत दुकूल अधिक छबि छाजति ।
नील जलद पर निरखि चंद्रिका दुरनि त्यागि दामिनि जनु दमकति ॥
यज्ञोपवीत पुनीत बिराजत गूढ़ जत्रु बनि पीन अंस तति ।
सुगढ़ पुष्ट उन्नत कृकाटिका कंबु कंठ सोभा मन मानति ॥
सरद-समय-सरसीरुह-निंदक मुख-सुखमा कछु कहत न बानति ।
निरखत ही नयननि निरुपम सुख, रबिसुत, मदन, सोम-दुति निदरति ॥
अरुन अधर द्विजपाँति अनूपम ललित हँसनि जनु मन आकरषति ।
बिद्रुम-रचित बिमान मध्य जनु सुरमंडली सुमन-चय बरषति ॥
मंजुल चिबुक मनोरम हनुथल, कल कपोल नासा मन मोहति ।
पंकज-मान-बिमोचन लोचन, चितवनि चारु अमृत-जल सींचति ॥
केस सुदेस गंभीर बचन बर, स्रुति कुंडल-डोलनि जिय जागति ।
लखि नव नील पयोद स्रवित सुनि रुचिर मोर जोरी जनु नाचति ॥
भौंहे बंक मयंक-अंक रुचि कुंकुमरेख भाल भलि भ्राजति ।
सिरसि हेम-हीरक-मानिकमय मुकुट-प्रभा सब भुवन प्रकासति ॥

१७ सूत धर्यो = कारीगरों के समान सीध नापने के लिए सूत रक्खा। बिधिसुत = विश्वकर्मा। कदली जति = कदलीजित। जत्रु = गले के नीचे की धन्वाकार हड्डी जिसे हँसली कहते हैं। अंस = कंध। तति = विस्तीर्ण। कृकाटिका = कंधे और गले का जोड़।

बरनत रूप पार नहि पावत निगम सेष सुक संकर भारति ।
तुलसिदास केहि बिधि बखानि कहै यह मन बचन अगोचर मूरति ॥१७॥

राग मलार

आली री ! राघौ के रुचिर हिंडोलना झूलन जैए ।
फटिक भीति सुचारु चहुँ दिसि, मंजु मनिमय पौरि ।
गच काँच लखि मन नाच सिखि जनु पाँचसर सु फँसौरि ॥
तोरन बितान पताक चामर धुज सुमन फल-घौरि ।
प्रतिछाँह-छबि कवि साखि दै प्रति सों कहै गुरु हौं रि ! ॥
मदन जय के खंभ से रचे खंभ सरल बिसाल ।
पाटीर पाटि बिचित्र भँवरा बलित बेलिन लाल ॥
डाँड़ी कनक कुंकुम-तिलक रेखैं सी मनसिज-भाल ।
पटुली पदिक रति-हृदय जनु कलधौत-कोमल-माल ॥
उनये सघन घनघोर, मृदु झरि सुखद सावन लाग ।
बगपाँति सुरधनु, दमक दामिनि, हरित भूमि-बिभाग ॥
दादुर मुदित, भरे सरित सर, महि उमग जनु अनुराग ।
पिक मोर मधुप चकोर चातक सोर उपवन बाग ।
सो समौ देखि सुहावनो नवसत सँवारि सँवारि ।
गुन-रूप-जोबन सींव सुंदरि चलीं झुंडनि झारि ॥
हिंडोल-साज बिलोकि सब अंचल पसारि पसारि ।
लागीं असीसन राम सीतहि सुख-समाजु निहारि ॥
झूलहि झुलावहि ओसरिन्ह गावैं सुगौंड़-मलार ।
मंजीर-नूपुर-बलय-धुनि जनु काम-करतल तार ॥
अति स्रमित स्रमकन मुखनि बिथुरे चिकुर बिलुलित हार ।
तम तड़ित उडुगन अरुन बिधु जनु करत ब्योम बिहार ॥
हिय हरषि बरषि प्रसून निरखति बिबुध-तिय तृन तूरि ।
आनंद जल लोचन, मुदित मन, पुलक तनु भरिपूरि ॥
सब कहहिं अबिचल राज नित, कल्यान मंगल भूरि ।
चिरजियौ जानकिनाथ जग तुलसी सँजीवनि मूरि ॥ १८ ॥

१८—पाँचसर सु फँसौरि = कामदेव के फंदे सा है । फँसौरि = फंदा, पाश । प्रतिछाँह·········गुरु हौं रि ! = प्रतिबिंब कवियों का साक्ष्य देकर मूल प्रति या बिंब (असल वस्तु) से कहता है कि मैं तुमसे बड़ा हूँ । नवसत = सोलह शृंगार ।

राग सूहो

कोसलपुरी सुहावनी सरि सरजू के तीर ।
भूपावली-मुकुटमनि नृपति जहाँ रघुबीर ।।
पुरनर नारि चतुर अति धरमनिपुन, रत-नीति ।
सहज सुभाय सकल उर, श्रीरघुबर-पद-प्रीति ।।
श्रीरामपद-जलजात सब के प्रीति अविरल पावनी ।
जो चहत सुक सनकादि संभु बिरंचि मुनिमन-भावनी ।।
सबही के सुंदर मंदिराजिर, राउ रंक न लखि परैं ।
नाकेस-दुर्लभ भोग लोग करहिं न मन विषयनि हरैं ।। १ ।।

सब ऋतु सुखप्रद सो पुरी पावस अति कमनीय ।
निरखत मनहिं हरत हठि हरित अवनि रमनीय ।।
बीरबहूटि बिराजहीं, दादुर-धुनि चहुँ ओर ।
मधुर गरजि घन बरषहीं, सुनि सुनि बोलत मोर ।।
बोलत जो चातक मोर कोकिल कीर पारावत घने ।
खग बिपुल पाले बालकनि कूजत उड़ात सुहावने ।।
बकराजि राजति गगन हरिधनु तड़ित दिसि दिसि सोहहीं ।
नभ नगर की सोभा अतुल अवलोकि मुनि मन मोहहीं ।। २ ।।

गृह गृह रचे हिंडोलना महि गच काँच सुढार ।
चित्र बिचित्र चहूँ दिसि परदा फटिक पगार ।।
सरल बिसाल बिराजहीं बिद्रुम-खंभ सुजोर ।
चारु पाटि पटी पुरट की झरकत मरकत भौंर ।।
मरकत भँवर डाँड़ी कनक मनि-जटित दुति जगमगि रही ।
पटुली मनहुँ बिधि निपुनता निज प्रगट करि राखी सही ।।
बहुरंग लसत बितान मुकुतादाम सहित-मनोहरा ।
नव सुमन माल सुगंध लोभे मंजु गुंजत मधुकरा ।। ३ ।।

झुंड झुंड झूलन चलीं गजगामिनि बर नारि ।
कुसुंभि चीर तनु सोहहीं भूषन बिबिध सँवारि ।।
पिकबयनी मृगलोचनी सारद ससि सम तुंड ।
राम-सुजस सब गावहीं सुसुर सुसारँग गुंड ।।

१–३—भौंर = वह घूमनेवाली ऑकड़ी जिसमें झूले की डोरी बँधी रहती है ।

सारंग गुंड मलार सोरठ सुहव सुघरनि बाजहीं ।
बहु भाँति तान-तरंग सुनि गंधर्व किन्नर लाजहीं ॥
अति मचत छूटत कुटिल कच छबि अधिक सुंदरि पावहीं ।
पट उड़त भूषन खसत हँसि हँसि अपर सखी झुलावहीं ॥ ४ ॥
फिरि फिरि झूलहिं भामिनी अपनी अपनी बार ।
बिबुध-बिमान थकित भए देखत चरित अपार ॥
बरषि सुमन हरषहिं उर बरनहिं हरिगुन-गाथ ।
पुनि पुनि प्रभुहि प्रसंसहीं 'जय जय जानकिनाथ' ॥
जय जानकीपति बिसद कीरति सकल-लोक-मल-हरनी ।
सुरबधू देहिं असीस चिरजिव राम सुख संपति महा ॥
पावस समय कछु अवध बरनत सुनि अघोघ नसावहीं ।
रघुबीर के गुनगन नवल नित दास तुलसी गावहीं ॥ ५ ॥ १८ ॥

राग आसावरी

साँझ समय रघुबीर पुरी की सोभा आजु बनी ।
ललित दीपमालिका बिलोकहि हित करि अवधधनी ॥
फटिक-भीत सिखरन पर राजति कंचन-दीप-अनी ।
जनु अहिनाथ मिलन आयो मनि-सोभित सहसफनी ॥
प्रति मंदिर कलसनि पर भ्राजहिं मनिगन दुति अपनी ।
मानहुँ प्रगटि बिपुल लोहितपुर पठइ दिए अवनी ॥
घर घर मंगलचार एकरस हरषित रंक गनी ।
तुलसिदास कल कीरति गावहिं जो कलिमल-समनी ॥ १९ ॥

राग गौरी

अवध नगर अति सुंदर बर सरिता के तीर ।
नीति-निपुन नर तिय सबहि धरम धुरंधर धीर ॥
सकल ऋतुन्ह सुखदायक तामहँ अधिक बसंत ।
भूप-मौलि-मनि जहँ बस नृपति जानकीकंत ॥
बन उपबन नव किसलय कुसुमित नाना रंग ।
बोलत मधुर मुखर खग पिकबर, गुंजत भृंग ॥
समय बिचारि कृपानिधि देखि द्वार अति भीर ।
खेलहु मुदित नारि नर बिहँसि कहेउ रघुबीर ॥

२. —लोहितपुर = मंगललोक ।

नगर नारि नर हरषित सब चले खेलन फागु।
देखि राम-छबि अतुलित उमगत उर अनुरागु॥
स्याम-तमाल-जलदतनु निर्मल पीत दुकूल।
अरुन-कंज-दल-लोचन सदा दास अनुकूल॥
सिर किरीट, स्रुति कुंडल, तिलक मनोहर भाल।
कुंचित केस, कुटिल भ्रू, चितवनि भगत-कृपाल॥
कल कपोल, सुक नासिक, ललित अधर द्विज-जोति।
अरुन कंज महँ जनु जुग पाँति रुचिर गज मोति॥
बर दर-ग्रीव, अमितबल बाहु सुपीन बिसाल।
कंकन हार मनोहर, उरसि लसति बनमाल॥
उर भृगु-चरन बिराजत, द्विज प्रिय चरित पुनीत।
भगत हेतु नर-बिग्रह सुरबर गुन गोतीत॥
उदर त्रिरेख मनोहर सुंदर नाभि गँभीर।
हाटक-घटित जटित मनि कटितट रट मंजीर॥
उरु अरु जानु पीन मृदु मरकत खंभ समान।
नूपुर मुनि मन मोहत करत सुकोमल गान॥
अरुन चरन पदपंकज, नखदुति इंदु-प्रकास।
जनक-सुता-करपल्लव लालित बिपुल बिलास॥
कंज कुलिस धुज अंकुस रेख चरन सुभ चारि।
जन-मन-मीन हरन कहँ बंसी रची सँवारि॥
अंग अंग प्रति अतुलित सुषमा बरनि न जाइ।
एहि सुख मगन होइ मन फिरि नहिं अनत लोभाइ॥
खेलत फागु अवधपति अनुज सखा सब संग।
बरषि सुमन सुर निरखहिं, सोभा अमित अनंग॥
ताल मृदंग झाँझ डफ बाजहिं पवन निसान।
सुघर सरस सहनाइन्ह गावहिं समय समान॥
बीना बेनु मधुर धुनि सुनि किन्नर गंधर्ब।
निज गुन गरुअ हरुअ अति मानहिं मन तजि गर्ब॥
निज निज अटनि मनोहर गान करहिं पिकबैनि।
मनहुँ हिमालय सिखरनि लसहिं अमर-मृगनैनि॥
धवल धाम तें निकसहिं जहँ तहँ नारि बरूथ।
मानहुँ मथत पयोनिधि बिपुल अपसरा-जूथ॥

किंसुक बरन सुअंसुक सुषमा सुखनि समेत ।
जनु बिधु-निवह रहे करि दामिनि-निकर निकेत ॥
कुंकुम सुरस अबीरनि भरहिं चतुर बर नारि ।
ऋतु सुभाय सुठि सोभित देहिं बिबिध बिधि गारि ॥
जो सुख जोग जाग जप तप तीरथ तें दूरि ।
राम-कृपा तें सोइ सुख अवध गलिन्ह रह्यो पूरि ॥
खेलि बसंत कियो प्रभु मज्जन सरजूनीर ।
बिबिध भाँति जाचक-जन पाए भूषन चीर ॥
तुलसिदास तेहिं अवसर माँगी भगति अनूप ।
मृदु मुसुकाइ दीन्हिं तब कृपादृष्टि रघुभूप ॥ २१ ॥

राग बसंत

खेलत बसंत राजाधिराज । देखत नभ कौतुक सुर-समाज ॥
सोहैं सखा अनुज रघुनाथ साथ । झोलिन्ह अबीर, पिचकारि हाथ ॥
बाजहिं मृदंग डफ ताल बेनु । छिरकैं सुगंध-भरे मलय-रेनु ॥
उत जुबति-जूथ जानकी संग । पहिरे पट भूषन सरस रंग ॥
लिए छरी बेंत सोधैं बिभाग । चाँचरि झूमक कहैं सरस राग ॥
नूपुर-किंकिनि-धुनि अति सोहाइ । ललना-गन जब जेहि धरइँ धाइ ॥
लोचन आँजहिं फगुआ मनाइ । छाँड़हिं नचाइ हाहा कराइ ॥
चढ़े खरनि बिदूषक स्वाँग साजि । करैं कूटि, निपट गइ लाज भाजि ॥
नर नारि परसपर गारि देत । सुनि हँसत राम भाइन समेत ॥
बरषत प्रसून बर-बिबुध-बृंद । जय जय दिनकर-कुल-कुमुद-चंद ॥
ब्रह्मादि प्रसंसत अवध बास । गावत कल कीरति तुलसिदास ॥ २२ ॥

राग केदारा

देखत अवध को आनंद ।
हरषि बरषत सुमन दिन दिन देवतनि को बृंद ।
नगर-रचना सिखन को बिधि तकत बहु बिधिवंद ॥
निपट लागत अगम ज्यों जलचरहि गमन सुछंद ।
मुदित पुर लोगनि सराहत निरखि सुखमाकंद ॥
जिन्हके सुअलि-चख पियत राम-मुखारबिंद-मरंद ।

२१—अंसुक = वस्त्र । निवह = समूह ।

सध्य व्योम बिलंबि चलत दिनेस उडुगन चंद ।
रामपुरी बिलोकि तुलसी मिटत सब दुख-द्वंद ॥ २३ ॥

राग सोरठ

पालत राज यों राजाराम धरमधुरीन ।
सावधान सुजान सब दिन रहत नय-लयलीन ॥
स्वान खग जति न्याउ देख्यो आपु बैठि प्रबीन ।
नीचु हति महिदेव बालक कियो मीचुबिहीन ॥
भरत ज्यों अनुकूल जग निरुपाधि नेह नवीन ।
सकल चाहत राम ही ज्यों जल अगाधहि मीन ॥
गाइ राज-समाज जाँचत दास तुलसी दीन ।
लेहु निज करि, देहु निज पदप्रेम पावन पीन ॥ २४ ॥

संकट सुकृत को सोचत जानि जिय रघुराउ ।
सहस द्वादस पंचसत में कछुक है अब आउ ॥
भोग पुनि पितु-आयु को, सोउ किए बनै बनाउ ।
परिहरे बिनु जानकी नहिं और अनघ उपाउ ॥
पालिबे असिधार-ब्रत प्रिय प्रेम-पाल सुभाउ ।
होइ हित केहि भाँति, नित सुविचारु नहिं चित चाउ ॥
निपट असमंजसहु बिलसति मुख मनोहरताउ ।
परम धीर-धुरीन हृदय कि हरष बिसमय काउ ? ॥
अनुज सेवक सचिव हैं सब सुमति साधु सखाउ ।
जान कोउ न जानकी बिनु अगम अलख लखाउ ॥
राम जोगवत सीय-मनु प्रिय मनहि प्रानप्रियाउ ।
परम पावन प्रेम-परमिति समुझि तुलसी गाउ ॥ २५ ॥

राम बिचारि कै राखी ठीक दै मन माहिं ।
लोक बेद सनेह पालत पल कृपालहि जाहिं ॥

२३—बिधिबंद = बंध अर्थात् रचना के भेद ।

२५—भोग पुनि पितु-आयु को = ऐसा प्रसिद्ध है कि राजा दशरथ अपनी आयु पूरी करने के पहले ही मर गए, उनकी शेष आयु को रामचद्रजी ने भोगा। अपनी आयु भर तो राम ने जानकी को साथ रखा पर जब अपने पिता की आयु भोगने चले तब जानकी का परित्याग उन्होंने उचित बिचारा ।

प्रियतमा-पति-देवता जिहि उमा रमा सिहाहिं ।
गुरुविनी सुकुमारि सिय तियमनि समुझि सकुचाहिं ॥
मेरेही सुख सुखी सुख अपनो सपनहूँ नाहिं ।
गेहिनी गुन गेहिनी गुन सुमिरि सोच समाहिं ॥
राम सीय सनेह बरनत अगम सुकबि सकाहिं ।
रामसीय-रहस्य तुलसी कहत राम कृपाहिं ॥ २६ ॥

चरचा चरनि सों चरची जानमनि रघुराइ ।
दूत-मुख सुनि लोक-धुनि घर घरनि बूझी आइ ॥
प्रिया निज अभिलाष रुचि कहि कहति सिय सकुचाइ ।
तीय तनय समेत तापस पूजिहौं बन जाइ ॥
जानि करुनासिंधु भावी-बिबस सकल सहाइ ।
धीर धरि रघुबीर भोरहि लिए लषन बोलाइ ॥
"तात तुरतहि साजि स्यंदन सीय लेहु चढ़ाइ ।
बालमीकि मुनीस-आस्रम आइयहु पहुँचाइ ॥
'भले हि नाथ' सुहाथ माथे राखि राम-रजाइ ।
चले तुलसी पालि सेवक धरम-अवधि-अघाइ ॥ २७ ॥

आए लषन लै सौंपी सिय मुनीसहि आनि ।
नाइ सिर रहे पाइ आसिष जोरि पंकजपानि ॥
बालमीकि बिलोकि व्याकुल, लषन गरत गलानि ।
सर्वबिद बूझत न बिधि की बामता पहिचानि ॥
जानि जिय अनुमान ही सिय सहस बिधि सनमानि ।
राम सद्गुन-धाम, परमिति भई कछुक मलानि ॥
दीनबंधु दयालु देवर देखि अति अकुलानि ।
कहति बचन उदास तुलसीदास त्रिभुवन-रानि ॥ २८ ॥

तौलौं बलि आपुही कीबी बिनय समुझि सुधारि ।
जौलौं हौं सिखि लेउँ बन ऋषि-रीति बसि दिन चारि ॥
तापसी कहि कहा पठवति नृपनि को मनुहारि ।
बहुरि तिहि बिधि आइ कहिहै साधु कोउ हितकारि ॥
लषन लाल कृपाल ! निपटहि डारिबी न बिसारि ।
पालबी सब तापसनि ज्यों राजधरम बिचारि ॥

२६—गुरुविनी = गुर्विणी, गर्भवती ।

सुनत सीता-बचन मोचत सकल लोचन-बारि।
बालमीकि न सके तुलसी सो सनेह सँभारि॥ २९॥

सुनि ब्याकुल भए उतरु कछु कह्यो न जाइ।
जानि जिय बिधि बाम दीन्हों मोहिं सरुष सजाइ॥
कहत हिय मेरी कठिनई लखि गई प्रीति लजाइ।
आजु अवसर ऐसेहूँ जौं न चले प्रान बजाइ॥
इतहिं सीय-सनेह-संकट उतहि राम-रजाइ।
मौनही गहि चरन गौने सिख सुआसिष पाइ॥
प्रेम-निधि पितु को कहे मैं परुष-बचन अघाइ।
पाप तेहि परिताप तुलसी उचित सहे सिराइ॥ ३०॥

गौने गौनही बारहि बार परि परि पाय।
जात जनु रथ चोर कर लछिमन मगन पछिताय॥
असन बिनु बन, बरम बिनु रन, बच्यौ कठिन कुघाय।
दुसह साँसति सहन को हनुमान ज्यायो जाय॥
हेतु हौं सियहरन को तब, अबहुँ भयों सहाय।
होत हठि मोहि दाहिनो दिन दैव दारुन-दाय॥
तज्यो तनु संग्राम जेहि लगि गीध जसी जटाय।
ताहि हौं पहुँचाइ कानन चल्यों अवध सुभाय॥
घोर हृदय कठोर करतब सृज्यो हौं बिधि बायँ।
दास तुलसी जानि राख्यो कृपानिधि रघुराय॥ ३१॥

पुत्रि! न सोचिए आई हौं जनक-गृह जिय जानि।
कालिहीं कल्यान कौतुक, कुसल तव, कल्यानि॥
राजऋषि पितु ससुर, प्रभु पति, तू सुमंगल-खानि।
ऐसेहूँ थल बामता, बड़ि बाम बिधि की बानि॥
बोलि मुनि कन्या सिखाई प्रीति-गति पहिचानि।
आलबाल की बेलि सरि सिय सेइयहु मन मानि॥
न्हाइ प्रातहि पूजिबो बट बिटप अभिमत-दानि।
सुवन-लाहु उछाहु, दिन दिन, देखि अनहित-हानि॥
पाप-ताप-बिमोचनी कहि कथा सरस पुरानि।
बाल्मीकि प्रबोधि तुलसी गई गरुइ गलानि॥ ३२॥

जब तें जानकी रही रुचिर आस्रम आइ ।
गगन, जल, थल बिमल तब तें सकल मंगलदाइ ॥
निरस भूरुह सरस फूलत फलत अति अधिकाइ ।
कंद मूल अनेक अंकुर स्वाद सुधा लजाइ ॥
मलय मरुत, मराल-मधुकर-मोर-पिक-समुदाइ ।
मुदित-मन मृग बिहग बिहरत बिषम बैर बिहाइ ॥
रहत रबि अनुकूल दिन, ससि रजनि सजनि सुहाइ
सीय सुनि सादर सराहति सखिन्ह भलो मनाइ ॥
मोद-बिपिन-बिनोद चितवत लेत चितहि चोराइ ।
राम बिनु सिय सुखद बन तुलसी कहै किमि गाइ ॥ ३३ ॥

सुभ दिन, सुभ घरी, नीको नखत, लगन सुहाइ
पूत जाये जानकी द्वै मुनिबधू उठीं गाइ ॥
हरषि बरषत सुमन सुर गहगहे बधाए बजाइ ।
भुवन कानन आस्रमनि रहे मोद मंगल छाइ ॥
तेहि निसा तहँ सत्रुसूदन रहे बिधिबस आइ ।
माँगि मुनि सों बिदा गवने भोर सो सुख पाइ ॥
मातु मौसी बहिनहू तें सासु तें अधिकाइ ।
करहि तापस-तीय-तनया सीय-हित चित लाइ ॥
किए बिधि ब्यवहार मुनिबर बिप्रबृंद बोलाइ ।
कहत सब ऋषिकृपा को फल भयो आजु अघाइ ॥
सुरुह ऋषि सुख सुतनि को, सिय सुखद सकल सहाइ
सूल राम-सनेह को तुलसी न जिय तें जाइ ॥ ३४ ॥

मुनिबर करि छठी कीन्हीं बारहें की रीति ।
बन-बसन पहिराइ तापस, तोषि पोषे प्रीति ॥
नामकरन सुअन्नप्रासन बेदबाँधी नीति ।
समय सब ऋषिराज करत समाज साज समीति ॥
बाल लालहिं, कहहिं "करिहैं राज सब जग जीति" ।
राम सिय सुत गुरु अनुग्रह उचित अचल प्रतीति ॥
निरखि बाल-बिनोद तुलसी जात बासर बीति ।
पिय-चरित सिय-चित चितेरो लिखत नित हित-भीति ॥३५॥

बालक सीय के बिहरत मुदित मन दोउ भाइ।
नाम लव कुस राम-सिय-अनुहरति सुंदरताइ॥
देत मुनि मुनि-सिसु खेलौना ते लै धरत दुराइ।
खेल खेलत नृप-सिसुन्ह के बालबृंद बोलाइ॥
भूप भूषन बसन बाहन राज-साज सजाइ।
बरम चरम कृपान सर धनु तून लेत बनाइ॥
दुखी सिय पिय-बिरह तुलसी, सुखी सुत-सुख पाइ।
आँच पय उफनात सींचत सलिल ज्यों सकुचाइ॥ ३६॥

कैकेयी जौलौं जियति रही।
तौलौं बात मातु सों मुँह भरि भरत न भूलि कही॥
मानी राम अधिक जननी तें जननिहु गँस न गही।
सीय लषन रिपुदवन राम-रुख लखि सब की निबही॥
लोक-बेद-मरजाद दोष गुन गति चित चख न चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही॥ ३७॥

राग रामकली

रघुनाथ तुम्हारे चरित मनोहर गावहिं सकल अवधवासी।
अति उदार अवतार मनुज-बपु धरे ब्रह्म अज अबिनासी॥
प्रथम ताड़ुका हनि सुबाहु बधि, मख राख्यो द्विज-हितकारी।
देखि दुखी अति सिला सापबस रघुपति बिप्रनारि तारी॥
सब भूपन को गरब हर्‌यो हरि, भंज्यो संभु-चाप भारी।
जनकसुता समेत आवत गृह परसुराम अति मदहारी॥
तात-बचन तजि राज काज सुर चित्रकूट मुनिबेष धर्‌यो।
एक नयन कीन्हों सुरपतिसुत, बधि बिराध ऋषि-सोक हर्‌यो॥
पंचबटी पावन राघव करि सूपनखा कुरूप कीन्ही।
खर दूषन संहारि कपटमृग गीधराज कहँ गति दीन्ही॥
हति कबंध, सुग्रीव सखा करि, बेधे ताल, बालि मार्‌यो।
बानर रीछ सहाय अनुज संग सिंधु बाँधि जस बिस्तार्‌यो॥
सकुल पुत्र दल सहित दसानन मारि अखिल सुर-दुख टार्‌यो।
परमसाधु जिय जानि बिभीषन लंकापुरी तिलक सार्‌यो॥

३७—गँस = गाँस, वैरभाव।

सीता अरु लछिमन संग लीन्हें औरहु जिते दास आए।
नगर निकट बिमान आए सब नर नारी देखन धाए॥
सिव बिरंचि सुक नारदादि मुनि अस्तुति करत बिमल बानी।
चौदह भुवन चराचर हरषित, आए राम राजधानी॥
मिले भरत जननी गुरु परिजन चाहत परम अनंद भरे।
दुसह-बियोग-जनित दारुन दुख रामचरन देखत बिसरे॥
बेद पुरान बिचारि लगन सुभ महाराज अभिषेक कियो।
तुलसिदास तिय जानि सुअवसर भगति-दान तब माँगि लियो॥३८॥

श्रीकृष्णगीतावली

श्रीकृष्णगीतावली

राग बिलावल

माता लै उछंग गोविंदमुख बार बार निरखै।
पुलकित तनु आनंदघन छन छन मन हरषै॥
पूछत तोतरात बात मातहि जदुराई।
अतिसय सुख जाते तोहि मोहि कहु समुझाई॥
देखत तव बदन-कमल मन अनंद होई।
कहै कौन रसन मौन जानै कोइ कोई॥
सुंदर मुख मोहिं देखाउ, इच्छा अति मोरे।
मम समान पुन्यपुंज बालक नहि तोरे॥
तुलसी प्रभु प्रेमबस्य मनुज-रूप धारी।
बालकेलि लीलारस ब्रजजन-हितकारी॥ १॥

राग ललित

'छोटी मोटी मीसी रोटी चिकनी चुपरि कै तू दै री मैया'
'लै कन्हैया' 'सो कब ?' 'अबहि तात'।
'सिगरियै हौं हीं खैहौं, बलदाऊ को न देहौं',
सो क्यों भटू तेरो कहा कहि इत उत जात॥
बाल बोलि डहकि बिरावत, चरित लखि,
गोपीगन महरि मुदित पुलकित गात।
नूपुर की धुनि किंकिनि के कलरव सुनि,
कूदि कूदि किलकि किलकि ठाढ़े ठाढ़े खात॥
तनियाँ ललित कटि, बिचित्र टेपारो सीस,
मुनि-मन हरत बचन कहै तोतरात।
तुलसी निरखि हरषत बरषत फूल भूरिभागी,
ब्रजबासी बिबुध सिद्ध सिहात॥ २॥

राग आसावरी

तोहि स्याम की सपथ जसोदा आइ देखु गृह मेरे।
जैसी हाल करी यहि ढोटा छोटे निपट अनेरे॥

गोरस-हानि सहौं न कहौं कछु यहि ब्रजबास बसेरे।
दिनप्रति भाजन कौन बेसाहै? घर निधि काहूके रे॥
किए निहोरो हँसत, खिझे तें डाटत नयन तरेरे।
अबहीं तें ये सिखे कहाधौं चरित ललित सुत तेरे॥
बैठो सकुचि साधु भयो चाहत मातुबदन तन हेरे।
तुलसिदास प्रभु कहौं ते बातैं जे कहि भजे सबेरे॥ ३॥

मोकहँ झूठेहु दोष लगावहिं।
मैया! इन्हहिं बानि परगृह की, नाना जुगुति बनावहिं॥
इन्हके लिये खेलिबो छाँड़्यौ तऊ न उबरन पावहिं।
भाजन फोरि, बोरि कर गोरस देन उरहनो आवहिं॥
कबहुँक बाल रोवाइ पानि गहि मिस करि उठि उठि धावहिं
करहिं आपु सिर धरहिं आन के बचन बिरंचि हरावहिं॥
मेरी टेव बूझि हलधर को, संतत संग खेलावहिं।
जे अन्याउ करहिं काहूको ते सिसु मोहि न भावहिं॥
सुनि सुनि बचन-चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं
बाल गोपाल केलि-कल-कीरति तुलसिदास मुनि गावहिं॥ ४॥

कबहुँ न जात पराये धामहि।
खेलत ही देखौं निज आँगन सदा सहित बलरामहि।
मेरे कहा थाकु गोरस को नवनिधि मंदिर यामहिं।
ठाली ग्वालि ओरहने के मिस आइ बकहि बेकामहि॥
हौं बलि जाउँ जाहु कितहूँ जनि मातु सिखावति स्यामहि।
बिनु कारन हठि दोष लगावति तात गए गृह तामहि॥
हरिमुख निरखि परुष बानी सुनि अधिक अधिक अभिरामहि।
तुलसिदास प्रभु देख्योइ चाहति श्रीउर ललित-ललामहि॥ ५॥

अब सब साँची कान्ह तिहारी।
जो हम तजे पाइ गो मोहन गृह आए दै गारी॥
सुसुकि सभीत सकुचि रूखे मुख बातैं सकल सवाँरी।
साधु जानि हँसि हृदय लगाए परम प्रीति महतारी॥
कोटि जतन करि सपथ कहै हम मानै कौन हमारी?
तुमहिं बिलोकि आन की ऐसी क्यों कहिहै बर नारी॥

५—थाकु=सीमा।

जैसे हौ तैसे सुखदायक ब्रजनायक बलिहारी ।
तुलसिदास प्रभु मुखछबि निरखत मन सब जुगुति बिसारी ॥ ६ ॥

राग केदारा

महरि तिहारे पाँय परौं अपनो ब्रज लीजै ।
सहि देख्यो, तुम्हसों कह्यो, अब नाकहि आई, कौन दिनहु दिन छीजै ?
ग्वालिनि तौ गोरस सुखी ता बिनु क्यों जीजै ।
सुत समेत पाउँ धारिये, आपुहि भवन मेरे देखिये जो न पतीजै ॥
अति अनीति नीकी नहीं अजहूँ सिख दीजै ।
तुलसिदास प्रभु सों कहै उर लाइ जसोमति ऐसी बलि कबहूँ नहि कीजै ॥७॥

अबहिं उरहनो दै गई, बहुरो फिरि आई ।
सुनु मैया ! तेरी सौं करौ याकी टेव लरन की, सकुच बेंचि सी खाई ॥
या ब्रज में लरिका घने, हौंही अन्याई ।
मुँह लाए मूँड़हि चढ़ी अंतहु अहिरिनि तू सूधी करि पाई ॥
सुनि सुत की अति चातुरी जसुमति मुसुकाई ।
तुलसिदास ग्वालिनी ठगी, आयो न उतर कछु, कान्ह ठगौरी लाई ॥८॥

राग गौरी

अब ब्रजबास महरि किमि कीबो ? ।
दूध दह्यो माखन ढारत हैं हुतो पोसात दान दिन दीबो ॥
अब लौं कठिन कान्ह के करतब, तुम्ह हौ हँसति कहा कहि लीबो ?
लीजै गाँउ, नाउँ लै रावरो है जग ठाउँ कहूँ है जीबो ॥
ग्वालिबचन सुनि कहति जसोमति 'भलो न भूमि पर बादर छीबो ।
दैअहि लागि कहौ तुलसी-प्रभु अजहुँ न तजत पयोधर पीबो' ॥ ९ ॥

जानी है ग्वालि परी फिरि फीके ।
मातुकाज लागी लखि डाँटत, 'है बायनो दियो घर नीके ॥
अब कहि देउँ, कहति किन', यों कहि माँगत दहिउ धर्‌यो जो है छीके ।
तुलसी प्रभुमुख निरखि रही चकि, रह्यो न सयानप तन मन तीके ॥१०॥

जौलों हौ कान्ह ! रहौं गुन गोए ।
तौलों तुम्हहि पत्यात लोग सब, सुसुकि सभीत साँचु सो रोए ॥
हौ भले नग-फग परे गढ़ीबे, अब ए गढ़त महरि-मुख जोए ।
चुपकि न रहत, कह्यो कछु चाहत, ह्वैहै कीच कोठिला धोए ॥
गरजति कहा तरजनिन्ह तरजति बरजति सैन नयन के कोए ।
तुलसी मुदित मातु सुतगति लखि बिथकी है ग्वालि मैन-मन-मोए ॥११॥

भूलि न जात हौं काहूके काऊ।
नाखि सखा सब सुबल, सुदामा, देखिधौं बूझि बोलि बलदाऊ॥
यह तो मोहिं खिझाइ कोटि बिधि उलटि बिबादन आइ अगाऊ।
याहि कहा मैया मुँह लावति, गनति कि एक लँगरि झगराऊ॥
कहति परसपर बचन जसोमति, लखि नहिं सकति कपट सति भाऊ।
तुलसिदास ग्वालिनि अति नागरि, नट नागरमनि नंदललाऊ॥ १२॥

छाँड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई।
ऐहै सुत देखुवार कालि तेरे, बबै ब्याह की बात चलाई॥
डरिहै सासु ससुर चोरी सुनि, हँसिहै नई दुलहिया सुहाई।
उबटौं न्हाहु, गुहौं चोटिया, बलि, देखि भलो बर करिहिं बड़ाई॥
मातु कह्यो करि कहत बोलि दै, भई बड़ि बार कालि तौ न आई।
जब सोइबो तात यों हाँकहि, नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई॥
उठि कह्यो भोर भयो झँगुली दै, मुदित महरि लखि आतुरताई।
बिहँसी ग्वालि जानि तुलसी प्रभु सकुचि लगे जननी उर धाई॥ १३॥

राग केदारा

हरि को ललित बदन निहारु।
निपटहि डाँटति निठुर ज्यों, लकुट कर तें डारु॥
मंजु अंजन सहित जल-कन चुवत लोचन चारु।
स्यामसारस मग मनो ससि स्रवत सुधा-सिंगारु॥
सुभग उर दधिबुंद सुंदर लखि अपनपौ वारु।
मनहुँ मरकत-मृदु-सिखर पर लसत बिसद तुषारु॥
कान्हहू पर सतर भौंहै, महरि मनहिं बिचारु।
दास तुलसी रहित क्यों रिस निरखि नंदकुमार॥ १४॥

लेत भरि भरि नीर कान्ह कमलनैन।
फरक अधर डर निरखि लकुट कर, कहि न सकत कछु बैन॥
दुसह दाँवरी छोरि, थोरी खोरि कहा कीन्ही,
चीन्ही री सुभाय तेरो आजु लगे माई मैं न।
तुलसिदास नंदललन ललित लखि रिस क्यों रहति उर-ऐन॥ १५॥

हाहा री महरि बारो, कहा रिसबस भई, कोखि के
जाए सों रोषु केतो बड़ो कियो है।
ढीली करि दाँवरा, बावरी साँवरेहि देखि,
सकुचि सहमि सिसु भारी भय भियो है॥

दूध दधि माखन भो, लाखन गोधन धन
जबतें जनम हलधर हरि लियो है।
खायो, कै खवायो, कै बिगार्‌यो ढार्‌यो लरिका री,
ऐसे सुत पर कोह, कैसो तेरो हियो है?
मुनि कहैं सुकृती न नंद जसुमति सम,
न भयो, न भावी, नहि बिद्यमान बियो है।
कौन जानै कौने तप, कौने जोग जाग जप
कान्ह सो सुवन तोको महादेव दियो है॥
इन्हहीं के आए तें बधाए ब्रज नित नए,
नादत बाढ़त सब सब सुख जियो है।
नंदलाल-बाल-जस संत-सुर-सरबस
गाइ सो अमिय रस तुलसिहु पियो है॥ १६॥

ललित लालन निहारि, महरि मन बिचारि,
डारि दे घर-बसी लकुटी बेगि कर तें।
कछु न कहि सकत, ससुकत सकुचत,
डरहूँ को डर, कान्ह डरै तेरे डर तें॥
कह्यो मेरो मानि, हित जानि तू सयानी बड़ी,
बड़े भाग पायो पूत बिधि हरि हर तें।
ताहि बाँधिबे को धाई, ग्वालिनी गोरसहाँई,
लै लै आई बावरी दाँवरी घर घर तें॥
कुल-गुरु-तिय के बचन कमनीय सुनि,
सुधि भए बचन जे सुने मुनिबर तें।
छोरि लिये लाय उर, बरषैं सुमन सुर,
मंगल है तिहूँ पुर हाँक हलधर तें॥
आनँद-बधावनो मुदित गोप-गोपीगन
आजु परी कुसल कठिन करवर तें।
तुलसी जे तोरे तरु किए देव, दिये बरु,
कै न लहो कौन फल देव दामोदर तें॥ १८॥

राग मलार

ब्रज पर घन घमंड करि आए।
अति अपमान बिचारि आपनो कोपि सुरेस पठाए॥

१७—घरबसी = व्यंग्य से घर उजाड़नेवाली।

दमकति दुसह दसहुँ दिसि दामिनि, भयो तम गगन गँभीर।
गरजत घोर बारिधर धावत प्रेरित प्रबल समीर॥
बार बार पविपात, उपल घन बरपत बूँद बिसाल।
भीत-सभीत पुकारत आरत गो गोसुत गोपी ग्वाल॥
राखहु राम कान्ह यहि अवसर दुसह दसा भइ आइ।
नंद बिरोध कियो सुरपति सों सो तुम्हरो बल पाइ॥
सुनि हँसि उठ्यौ नंद को नाहरु, लियो कर कुधर उठाइ।
तुलसिदास मघवा अपने सो करि गयो गर्ब गँवाइ॥ १८॥

राग गौरी

टेरि कान्ह गोवर्धन चढ़ि गैया।
मथि मथि पियो बारि चारिक में भूख न जाति अघाति न धैया॥
सैल-सिखर चढ़ि चितै चकित चित अति हित बचन कह्यौ बलभैया।
बाँधि लकुट पट फेरि बोलाईं सुनि कल बेनु धेनु धुकि धैया॥
बलदाऊ देखियत दूरि तें आवति छाक पठाई मेरी मैया।
किलकि सखा सब नचत मोर ज्यों, कूदत कपि कुरंग की नैया॥
खेलत खात परसपर डहकत, छीनत कहत करत रोगदैया।
तुलसी बालकेलि-सुख निरखत बरषत सुमन सहित सुरसैया॥ १९॥

राग नट

गावत गोपाललाल नीके राग नट हैं।
चलि री आली देखन लोयन-लाहु पेखन ठाढ़े सुरतरु-तर तटनि के तट हैं॥
मोरचंदा चारु सिर मंजु गुंजापुंज धरे बनि बन-धातु तन ओढ़े पीत पट हैं।
मुरली तान-तरंग मोहे कुरंग बिहंग, जोहै मूरति त्रिभंग निपट निकट हैं॥
अंबर अमर हरषत बरषत फूल, सनेह-सिथिल गोप गाइन्ह के ठट हैं।
तुलसी प्रभु निहारि जहाँ तहाँ ब्रजनारि ठगी ठाढ़ी मग लिये रीते भरे घट हैं॥ २०॥

राग बिलावल

देखु सखी हरिबदन इंदु-पर।
चिक्कन कुटिल अलक-अवली-छबि, कहि न जाइ सोभा अनूप बर॥
बाल-भुअंगिनि-निकर मनहुँ मिलि रहीं घेरि रस जानि सुधाकर।
तजि न सकहिं नहि करहि पान कहो कारन कौन बिचारि डरहिं डर॥

१९—रोगदैया = अन्याय, बेईमानी।

अरुन बनज-लोचन, कपोल सुभ, स्रुति मंडित कुंडल अति सुंदर ।
मनहुँ सिंधु निज सुतहि मनावन पठए जुगुल बसीठ बारिचर ॥
नँदनंदन मुख की सुंदरता कहि न सकत स्रुति सेष उमावर ।
तुलसिदास त्रैलोक्य-बिमोहन रूप कपट नर त्रिबिध-सूलहर ॥ २१ ॥

आजु उनींदे आए मुरारी ।
आलसवंत सुभग लोचन सखि छिन मूँदत, छिन देत उघारी ॥
मनहुँ इंदु पर खंजरीट दोउ कछुक अरुन बिधि रचे सँवारी ।
कुटिल अलक जनु मार फंद कर गहे सजग ह्वै रह्यो सँभारी ॥
मनहुँ उड़न चाहत अति चंचल पलक पंख छिन देत पसारी ।
नासिक कीर, बचन पिक सुनि करि संगति मनु गुनि रहत बिचारी ॥
रुचिर कपोल, चारु कुंडल बर, भ्रुकुटि सरासन की अनुहारी ।
परम चपल तेहि त्रास मनहुँ खग प्रगटत दुरत न मानत हारी ॥
जदुपति मुखछबि कलप कोटि लगि कहि न जाइ जाके मुख चारी ।
तुलसिदास जेहि निरखि ग्वालिनी भजीं तात पति तनय बिसारी ॥२२॥

राग गौरी

गोपाल गोकुल-बल्लवी-प्रिय गोप-गोसुत-बल्लभं ।
चरनारबिंदमहं भजे भजनीय सुर-मुनि-दुर्लभं ॥
घनश्याम काम अनेक छबि, लोकाभिराम मनोहरं ।
किंजल्क-बसन, किसोर-मूरति, भूरि गुन करुनाकरं ॥
सिर केकि-पच्छ बिलोल कुंडल अरुन बनरुह-लोचनं ।
गुंजावतंस बिचित्र, सब अँग धातु भवभय-मोचनं ॥
कच कुटिल, सुंदर तिलक भ्रू राका-मयंक-समाननं ।
अपहरन तुलसीदास त्रास बिहार बृंदाकाननं ॥ २३ ॥

राग बिलावल

बिछुरत श्रीब्रजराज आजु इन नयनन की परतीति गई ।
उड़ि न लगे हरि संग सहज तजि, ह्वै न गए सखि स्याममई ॥
रूपरसिक लालची कहावत, सो करनी कछु तौ न भई ।
साँचेहु क्रूर कुटिल, सित मेचक, बृथा मीनछबि छीनि लई ॥
अब काहे सोचत मोचत जल समय गए नित सूल नई ।
तुलसिदास तब अपहु ते भए जड़, जब पलकनि हठि दगा दई ॥ २४ ॥

राग कान्हरा

नहिं कछु दोष स्याम को माई !
जो दुख मैं पायो सुनि सजनी सो तो सबै मन की चतुराई ॥
निज हित लागि तबहिं ए बंचक सब अंगनि बसि प्रीति बढ़ाई।
लियो जो सकल सुख हरि-अंग-संग को जहँ जिहि बिधि तहँ सोइ बनाई ॥
अब नँदलाल-गवन सुनि मधुबन तनहिं तजत नहिं बार लगाई।
रुचिर रूप-जल सो रसेस ह्वै मिलि न फिरन की बात चलाई ॥
एहि सरीर बसि सखि या सठ कहँ कहि न जाइ जो बिधि फबि आई।
तदपि कछू उपकार न कीन्हों निज मिलन्यौ नहिं मोहि सिखाई ॥
आपु मिल्यो यहि भाँति जाति तजि, तन मिल्यो जल पय की नाईं।
ह्वै मराल आयो सुफलकसुत लै गयो छीर नीर बिलगाई ॥
मन हौं तजी, कान्ह हौं त्यागी, प्रानौं चलिहैं परिमिति पाई।
तुलसिदास रीतेहु तनु ऊपर नयननि की ममता अधिकाई ॥ २५ ॥

राग धनाश्री

करी है हरि बालक की सी केलि।
हरष न रचत, बिषाद न बिगरत, डगरि चले हँसि खेलि ॥
बई बनाइ बारि बृंदावन प्रेम सँजीवनि-बेलि।
सींचि सनेहसुधा खनि काढ़ी लोक-बेद परहेलि ॥
तृन ज्यों तजी, पालितनु ज्यों हम बिधि बासव बल पेलि।
एतेहुँ पर भावत तुलसी प्रभु गए साहनी मेलि ॥ २६ ॥

आली अब कहौ निज नेह निहारि।
समुझि सहै हमारो है हित बिधि-बामता बिचारि ॥
सत्य सनेह सील सोभा सुख सब गुन उदधि अपारि।
देख्यो सुन्यो न कबहुँ काहु कहुँ मीन-बियोगी बारि ॥
कहियत काकु कूबरी हूँ को, सो कुबानि-बस नारि।
बिष तें बिषम बिनय अनहित को, सुधा सनेही गारि ॥
मन फेरियत कुतर्क कोटि करि कुबल भरोसे भारि।
तुलसी जग दूजो न देखियत कान्हकुँवर अनुहारि ॥ २७ ॥

लागियै रहति, नयननि आगे तें न टरति मोहन मूरति।
नीलनलिन स्याम, सोभा अगनित काम, पावन हृदय जेहि उर फुरति

२५—रसेस = लवण, नमक।

सारद अमित शेष नहिं कहि सकत अंग अंग मूरति ।
तुलसिदास बड़े भाग मन लागेहु तें सब सुख पूरति ॥ २८ ॥

जब तें ब्रज तजि गए कन्हाई ।
तब तें बिरह-रबि उदित एकरस सखि बिछुरनि-बृष पाई ॥
घटत न तेज, चलत नाहिंन रथ, रह्यो उर-नभ पर छाई ।
इंद्रिय रूपरासि सोचहिं सुठि, सुधि सब की बिसराई ॥
भयो सोक-भय-कोक-कोकनद भ्रम-भ्रमरनि सुखदाई ।
चित-चकोर, मनमोर-कुमुद-मुद सकल बिकल अधिकाई ॥
तनु-तड़ाग बलबारि सूखन लाग्यो परी कुरूपता काई ।
प्रानमीन दिन दीन दूबरे, दसा दुसह अब आई ॥
तुलसीदास मनोरथ-मन-मृग मरत जहाँ तहँ धाई ।
राम स्याम सावन भादों बिनु जिय की जरनि न जाई ॥ २९ ॥

ससि तें सीतल मोको लागै माई री ! तरनि ।
याके उए बरति अधिक अंग अंग दव, वाके उए मिटति रजनि-जनित जरनि ॥
सब बिपरीत भए माधव बिनु, हित जो करत अनहित की करनि ।
तुलसिदास स्यामसुंदर-बिरह की दुसह दसा सो मोपै परति नहीं बरनि ॥३०॥

संतत दुखद सखी ! रजनीकर ।
स्वारथरत तब, अबहुँ एकरस, मोको कबहुँ न भयो तापहर ॥
निज अंसनि सब लागि चतुर अति कीन्हीं है प्रथम निसा सुभ सुंदर ।
अब बिनु मन, तन दहत दया तजि, राखत रवि है नयन बारिधर ॥
जद्यपि है दारुन बड़वानल राख्यो है जलधि गँभीर धीरतर ।
ताहू तें परम कठिन जान्यो ससि तज्यो पिता तब भयो ब्योमचर ॥
सकल बिकार-कोस बिरहिनि-रिपु, को है जे याहि सराहत सुर नर ? ।
तुलसिदास त्रैलोक्य मान्य भयो कारन इहै गरो गिरिजाबर ॥ ३१ ॥

राग मलार

कोउ सखि नई चाह सुनि आई ।
यह ब्रजभूमि सकल सुरपति सों मदन मिलिक करि पाई ॥
घन-धावन, बगपाँति पटोसिर, बैरख-तड़ित सोहाई ।
बोलत पिक नकीब, गरजनि मिस मानहुँ फिरति दोहाई ॥
चातक मोर चकोर मधुप सुक सुमन समीर सहाई ।
चाहत कियो बास बृंदावन बिधि सों कछु न बसाई ।

सीव न चाँपि सको कोऊ तब जब हुते राम कन्हाई ।
अब तुलसी गिरिधर बिनु गोकुल कौन करिहि ठकुराई ? ॥ ३२ ॥

राग सोरठ

ऊधो या ब्रज की दसा बिचारो ।
ता पाछे यह सिद्धि आपनो जोगकथा बिस्तारो ॥
जा कारन पठए तुम माधव सो सोचहु मन माहीं ।
केतिक बीच बिरह परमारथ जानत हौ किधौं नाहीं ? ॥
परम चतुर निज दास स्याम के संतत निकट रहत हो ।
जल बूड़त अवलंब फेन को फिरि फिरि कहा कहत हो ? ॥
वह अति ललित मनोहर आनन कौने जतन बिसारौं ।
जोग जुगुति अरु मुकुति बिबिध बिधि वा मुरली पर वारौं ॥
जेहि उर बसत स्यामसुंदर घन तेहि निर्गुन कस आवै ।
तुलसिदास सो भजन बहाओ जाहि दूसरो भावै ॥ ३३ ॥

मधुकर कहहु कहन जो पारो ।
नाहिन, अलि, अपराध रावरो, सकुचि साध जनि मारो ॥
नहिं तुम ब्रज बसि नंदलाल को बालबिनोद निहारो ।
नाहिन रासरसिक रस चाख्यो, तातें डेल सो डारो ॥
तुलसी जौ न गए प्रीतम सँग प्रान त्यागि तनु न्यारो ।
तौ सुनिबो देखिबो बहुत अब, कहा करम सों चारो ? ॥ ३४ ॥

ऊधोजू कह्यो तिहारोइ कीबो ।
नीके जिय की जानि आपनपो समुझि सिखावन दीबो ॥
स्यामबियोगी ब्रज के लोगनि जोग जोग जो जानो ।
तौ सकोच परिहरि पालागौं परमारथहि बखानो ॥
गोपी ग्वाल गोसुत सब रहत रूप-अनुरागे ।
दीन मलीन छीन तनु डोलत मीन मजा सों लागे ॥
तुलसी है सनेह दुखदायक, नहिं जानत ऐसो को है ? ।
तऊ न होत कान्ह को सो मन, सबै साहिबहि सोहै ॥ ३५ ॥

राग बिलावल

सो कहौ मधुप जो मोहन कहि पठई ।
तुम सकुचत कत ? हौं ही नीके जानति, नंदनंदन हो निपट करी सठई ॥

३२—चाह = चर्चा ।
३४—डेल सो डारो = पत्थर सा मारते हो ।

हुतो न साँचो सनेह, मिट्यो मन को संदेह, हरि परे उघरि, संदेसहु ठठई ।
तुलसिदास कौन आस मिलन की, कहि गए सो तो कछु एकौ न चित ठई ॥

मेरे जान और कछु न मन गुनिए ।
कूबरीरवन कान्ह कही जो मधुप सों,
सोई सिख सजनी ! सुचित दै सुनिए ॥
काहे को करति रोष, देहि धौं कौने को दोष,
निज नयननि को बयो सब लुनिए ।
दारु सरीर, कीट पहिले सुख,
सुमिरि सुमिरि बासर निसि घुनिए ॥
ये सनेह सुचि अधिक अधिक रुचि,
बरज्यो न करत कितो सिर धुनिए ।
तुलसिदास अब नंदसुवन-हित
बिषम-बियोग-अनल तनु तुनिए ॥ ३७ ॥

भली कही, आली ! हमहुँ पहिचाने ।
हरि निर्गुन निर्लेप निरंतर निपट निठुर निज-काज सयाने ॥
ब्रज को बिरह, अरु संग महर को, कुबरिहि बरत न नेकु लजाने ।
समुझि सो प्रीति की रीति स्याम की सोइ बावरि जो परेखो उर आने ॥
सुनत न सिख लालची बिलोचन, एतेहु पर रुचि रूप लोभाने ।
तुलसिदास इहै अधिक कान्ह पहिं नीके ई लागत मन रहत समाने ॥३८॥

राग मलार

जोपै अलि ! अंत इहै करिबे हो ।
तौ अतुलित अहीर अबलनि को हठि न हियो हरिबे हो ॥
जौ प्रपंच परिनाम प्रेम फिरि अनुचित आचरिबे हो ।
तौ मथुराहि महामहिमा लहि सकल ढरनि ढरिबे हो ॥
दै कुबरिहि रूप ब्रजसुधि भए लौकिक डर डरिबे हो ।
ज्ञान बिराग काल कृत करतब हमरेहि सिर धरिबे हो ॥
उन्हहि राग रबि नीरद-जल ज्यों, प्रभु-परमिति परिबे हो ।
हमहुँ निठुर-निरुपाधि-नेहनिधि निज भुजबल तरिबे हो ॥

३९—उन्हहि राग......ज्यों = जैसे, सूर्य्य ही मेघ रूप में जल को आरोपित करता है पर उससे कोई राग या संबंध नहीं रखता । प्रभु-परिमिति परिबे हो = राजा की मर्य्यादा के पालन में पड़ना था ।

भलो भयो सब भाँति हमारो एकबार मरिबे हो।
तुलसी कान्हबिरह नित नव जर जरि जीवन भरिबे हो ॥ ३९ ॥

ऊधो ! यह ह्याँ न कछू कहिबे ही।
ज्ञानगिरा कूबरीरवन की सुनि बिचारि गहिबे ही ॥
पाइ रजाइ नाइ सिर गृह ह्वै गति परमिति लहिबे ही।
मति-मटुकी मृगजल भरि घृतहित मनहीं मन महिबे ही ॥
गाड़े भली, उखारे अनुचित, बनि आए बहिबे ही।
तुलसी प्रभुहिं तुम्हहिं हमहूँ हिय साँसति सी सहिबे ही ॥ ४० ॥

मधुकर ! कान्ह कहा ते न होंहीं।
के ये नई सिखी सिखई हरि निज-अनुराग-बिछोहीं ॥
राखी सचि कूबरी पीठ पर ये बातैं बकुचौहीं।
स्याम सो गाहक पाइ सयानी खोलि देखाई है गौंहीं ॥
नागरमनि सोभासागर जेहि जग जुवती हँसि मोहीं।
लियो रूप दै ज्ञान-गाँठरी भलो ठग्यो ठगु ओहीं ॥
है निगुन सारी बारिक, बलि, घरी करौ, हम जोहीं।
तुलसी ये नागरिन्ह जोगपट जिन्हहि आजु सब सोहीं ॥ ४१ ॥

मधुप तुम्ह कान्ह ही की कही क्यों न कहो है ?।
यह बतकही चपल चेरी की निपट चरेरीऐ रही है ॥
कब ब्रज तज्यो, ज्ञान कब उपज्यो ? कब बिदेहता लही है।
गए बिसारि रीति गोकुल की, अब निर्गुन गति गही है ॥
आयसु देहु करहि सोइ सिर धरि प्रीति-परमिति निरबही है।
तुलसी परमेस्वर न सहैगो, हम अबलनि सब सही है ॥ ४२ ॥

दीन्हीं है मधुप सबहि सिख नीकी।
सोइ आदरौ आस जाके जिय बारि बिलोवत घी की ॥
बूझी बात कान्ह कुबरी की, मधुकर कछु जनि पूछौ।
ठाली ग्वालि जानि पठए, अलि, कह्यो है पछोरन छूछो ॥
हमहूँ कछुक लखी ही तब की औरेबै नंदलला की।
ये अब लही चतुर चेरी पै चोखी चालि चलाकी ॥

४०—बहिबे ही बनि आए = आ पड़ने पर निबाहना ही होगा।

४१—बकुचौंही = बकुचा या गठरी बाँधकर। बारिक = बारीक। घरी करौ= तह लगाकर रखो।

गए कर तें, घर तें, आँगन तें, ब्रजहू तें ब्रजनाथ ।
तुलसी प्रभु गयो चहत मनहुँ तें सो तो है हमारे हाथ ॥ ४३ ॥

ताकी सिख ब्रज न सुनैगो कोउ भोरे ।
जाकी कहनि रहनि अनमिल, अलि, सुनत समुझियत थोरे ॥
आपु कंजमकरंद सुधाह्रद हृदय रहत नित बोरे ।
हम सों कहत बिरह-स्रम जैहै गगन कूप खनि खोरे ॥
धान को गाँव पयार तें जानिय ज्ञान बिषय मन मोरे ।
तुलसी अधिक कहे न रहे रस गूलरि को सो फल फोरे ॥४४॥

आली ! अति अनुचित उतरु न दीजै ।
सेवक सखा सनेही हरि के जो कछु कहैं सो कीजै ॥
देसकाल उपदेस सँदेसो सादर सब सुनि लीजै ।
कै समुझिबो, कै ये समुझैहैं हारेहु मानि सहीजै ॥
सखि सरोष प्रियदोष बिचारत प्रेम पीन पन छीजै ।
खग मृग मीन सलभ सरसिज गति सुनि पाहनौ पसीजै ॥
ऊधो परम हितू हित सिखवत परमिति पहुँचि पतीजै ।
तुलसिदास अपराध आपनो, नंदलाल बिनु जीजै ॥ ४५ ॥

ऊधो है बड़े, कहैं सोइ कीजै ।
अलि, पहिचानि प्रेम की परमिति उतरु फेरि नहिं दीजै ॥
जननी जनक जरठ जाने जन परिजन लोगु न छीजै ।
दै पठयो पहिलो बिढ़तो ब्रज सादर सिर धरि लीजै ॥
कंस मारि जदुबंस सुखी कियो, स्रवन सुजस सुनि जीजै ।
तुलसी त्यों त्यों होइगी गरुई ज्यों ज्यों कामरि भीजै ॥ ४६ ॥

कान्ह, अलि ! भए नये गुरु ज्ञानी ।
तुम्हरे कहत आपने समुझत, बात सही उर आनी ॥
लिए अपनाइ लाइ चन्दन तन, कछु कटु चाह उड़ानी ।
जरी सुँघाइ कूबरी कौतुक करि जोगी बघा-जुड़ानी ॥
ब्रज बसि रास-बिलास, मधुपुरी चेरी सों रति मानी ।
जोग-जोग ग्वालिनी बियोगिनि जान-सिरोमनि जानी ॥

४३—औरेबै = टेढ़ी चालें ।
४४—खोरे = स्नान करने से ।
४६—बिढ़तो = बिढ़ता, कमाई ।

३२

कहिबे कछू कछू कहि जैहै, रहौ, आलि ! अरगानी ।
तुलसी हाथ पराए प्रीतम, तुम्ह प्रिय-हाथ बिकानी ॥ ४७ ॥

सब मिलि साहस करिय सयानी ।
ब्रज आनियहि मनाइ पाँय परि कान्ह कूबरी रानी ॥
बसै सुबास, सुपास होहि सब फिरि गोकुल रजधानी ।
महरि महर जीवहि सुख-जीवन खुलहि मोद-मनि-खानी ॥
तजि अभिमान अनख अपनो हित कीजिय मुनिवर बानी ।
देखियो भरत दूसरेहु चौथेहु बड़ो लाभ, लघु हानी ॥
पावक परत निषिद्ध लाकरी होति अनल जग जानी ।
तुलसी सो तिहुँभुवन गाइबो नंदसुवन सनमानी ॥ ४८ ॥

कही है भली बात सब के मनमानी ।
प्रियतम प्रिय-सनेह-भाजन, सखि ! प्रीति-रीति जगजानी ॥
भूषन भूति गरल परिहरि कै हर गात उर आनी ? ।
मज्जन पान कियो कै सुरसरि कर्मनास-जल छानी ? ॥
पूछे सों प्रेम, बिरोध सींग सों, यहि बिचार हितहानी ।
कीजै कान्ह-कूबरी सों नित नेह करम मन बानी ॥
तुलसी तजिय कुचालि आलि अब सुधरै सबइ नसानी ।
आगे करि मधुकर मथुरा कहँ सोधिय सुदिन सगानी ॥ ४९ ॥

राग कान्हरा

हे हम समाचार सब पाए ।
अब बिसेष देखे तुम्ह देखे है कूबरी कहाँ से लाए ॥
मथुरा बड़ो नगर नागर जन जिन्ह जातहि जदुनाथ पढ़ाए ।
समुझि रहनि, सुनि कहनि बिरह ब्रन अनष अमिय औषध सरुहाए ॥
मधुकर रसिक सिरोमनि कहियत कौने यह रसरीति सिखाए ।
बिनु आपर को गीत गाइ गाइ चाहत ग्वालिनि ग्वाल रिझाए ॥
फल पहिले ही लह्यो ब्रजबासिन्ह, अब साधन उपदेसन आए ।
तुलसी अलि, अजहूँ नहि बूझत, कौन हेतु नँदलाल पठाए ॥ ५० ॥

४७—चाह उड़ानी = खबर उड़ी है । बघा-जुड़ानी = व्याघ्र को ठंढा अर्थात वश में करनेवाली क्रिया ।

४९—कै = किसने ?

५०—सरुहाए = चंगा किया (?)

कौन सुनै अलि की चतुराई ।
अपनिहि मतिविलास अकास महँ चाहत सियनि चलाई ॥
सरल सुलभ हरिभगति-सुधाकर निगम पुराननि गाई ।
तजि सोइ सुधा मनोरथ करि करि को मरिहै, री माई ॥
जद्यपि ताको सोइ मारगप्रिय जाहि जहाँ बनि आई ।
मैन के दसन, कुलिस के मोदक कहत सुनत बौराई ॥
सगुन छीरनिधि-तीर बसत ब्रज तिहुँ पर बिदित बड़ाई ।
आक दुहन तुम्ह कह्यो सो परिहरि हम यह मति नहि पाई ॥
जानत हैं जदुनाथ सबन की बुधि बिबेक जड़ताई ।
तुलसिदास जनि बकहिं, मधुप सठ ! हठ निसि दिन अँवराई ॥ ५१ ॥

राग केदारा

गोकुल प्रीति नित नई जानि ।
जाइ अनत सुनाइ मधुकर ज्ञानगिरा पुरानि ॥
मिलहिं जोगी जरठ तिन्हहिं दिखाउ निरगुन-खानि ।
नवल नंदकुमार के ब्रज सगुन सुजस बखानि ॥
तू जो हम आदर्‌यो सो तो नव कमल की कानि ।
तजहि तुलसी समुझि यह उपदेसिबे की बानि ॥ ५२ ॥

काहे को कहत बचन सवाँरि ।
ज्ञानगाहक नाहिंनै ब्रज मधुप अनत सिधारि ॥
जुगुति धूम बघारिबे की समुझिहैं न गँवारि ।
जोगिजन मुनिमंडली मों जाइ रीती ढारि ॥
सुनै तिन्ह की कौन तुलसी जिन्हहिं जीति न हारि ।
सकति खारो कियो चाहत मेघहू को बारि ॥ ५३ ॥

ऐसे हौं हूँ जानति भृंग ।
नाहिंनै काहू लह्यो सुख प्रीति करि इक अंग ॥
कौन भौर जो नीरदहि जेहि लागि रटत बिहंग ?
मीन जल बिनु तलफि तनु तजै, सलिल सहज असंग ॥
पीर कछू न मनिहिं जाके बिरह-बिकल भुअंग ।
ब्याध-बिसिष बिलोक नहिं कलगान-लुबुध कुरंग ॥
स्यामघन गुनबारि छबिमनि मुरलि-तान-तरंग ।
लग्यो मन बहु भाँति तुलसी होइ क्यों रसभंग ? ॥ ५४ ॥

५१—मैन = मोम ।

ऊधो ! प्रीति करि निरमोहियन सों को न भयो दुखदीन ?
सुनत समुझत कहत हम सब भईं अति अप्रवीन ॥
अहि कुरंग पतंग पंकज चारु चातक मीन ।
बैठि इनकी पाँति अब सुख चहत मन मतिहीन ॥
निठुरता अरु नेह की गति कठिन परति कही न ।
दासतुलसी सोच नित निज प्रेम जानि मलीन ॥ ५५ ॥

राग गौरी

सुनत कुलिस सम बचन तिहारे ।
चित दै मधुप सुनहु सोउ कारन जाते जात न प्रान हमारे ॥
ज्ञान कृपान समान लगत उर, बिहरत छिन छिन होत निनारे ।
अवधि-जरा जोरति हठि पुनि पुनि, याते तनु रहत सहत दुख भारे ॥
पावक-बिरह समीर-स्वास तनु-तूल मिले तुम्ह जारनिहारे ।
तिन्हहि निदरि अपने हित कारन राखत नयन निपुन रखवारे ॥
जीवन कठिन, मरन की यह गति दुसह बिपति ब्रजनाथ निवारे ।
तुलसिदास यह दसा जानि जिय उचित होइ सो कहौ अलि, प्यारे ॥५६॥

छपद ! सुनहु बर बचन हमारे ।
बिनु ब्रजनाथ ताप नयनन को कौन हरै, हरि अंतर-कारे ॥
उर-कुंभ भरि भरि बिरहजल बरषत सक्र जलधर जारे ।
कहा होइ सींच चातक को कारज स्वाति-बारि बिनु कोउ न सँवारे ।
स्याम गात कोमल किसोर स्यामता जेहि कुंद-अलक नयन हरि प्यारे ।
नहि उर क्यों समात बिराटवपु ज्यों सरित सिंधु मिलि आरे ॥
बहुत अति प्रेम प्रलय के घट ज्यों बिपुल जोग-जल बोरि न पारे ।
तुलसिदास ब्रजबनितन को अब समरथ को करि जतन निवारे ॥ ५७ ॥

मधुप ! समुझि देखहु मन माहीं ।
प्रेमपियूषरूप उडुपति बिनु कैसे हो अलि ! पैयत रबि पाहीं ॥
जद्यपि तुव हित लागि कहत सुनि स्रवन बचन नहि हृदय समाहीं ।
मिलहि न पावक महँ तुषार कन जो खोजत सत कलप सिराहीं ॥
तुम कहि रहे, हमहुँ पचि हारीं, लोचन हठी तजत हठ नाहीं ।
तुलसिदास सोइ जतन करहु कछु बारक स्याम इहाँ फिरि जाहीं ॥ ५८ ॥

५७—स्यों = सह, साथ ।

मोको अब नयन भए रिपु माई ।
हरि-बियोग तनु तजेहि परमसुख ए राखहिं सोइ है बरियाई ॥
बरु मन कियो बहुत हित मेरो बारहिबार काम दव लाई ।
बरषि नीर ये तबहिं बुझावहिं स्वारथ निपुन अधिक चतुराई ॥
ज्ञानपरसु दै मधुप पठायो बिरहबेलि कैसेहु कटि जाई ।
सो थाक्यो बरह्यो एकहि तक देखत इनकी सहज सिंचाई ॥
हारत हू न हारि मानत, सखि, सठ सुभाव कंदुक की नाईं ।
चातक जलज मीनहूँ ते भोरे समुझत नहिं उनको निठुराई ॥
ए हठ-निरत दरस लालचबस परे जहाँ बुधिबल न बसाई ।
तुलसिदास इन्हपर जो द्रवहिं हरि तौ पुनि मिलौं बैरु बिसराई ॥ ५९ ॥

राग आसावरी

कहा भयो कपट जुआ जो हौं हारी ?
समरधीर महाबीर पाँचपति क्यों दैहैं मोहि होन उघारी ॥
राजसमाज सभासद समरथ भीषम द्रोन धरमधुरधारी ।
अबला अनघ अनवसर अनुचित होति, हेरि करिहैं रखवारी ॥
यों मन गुनति दुसासन दुरजन तमक्यो तकि गहि दुहुँ कर सारी ।
सकुचि गात गोवति कमठी ज्यों हहरी हृदय, बिकल भइ भारी ॥
अपनेनि को अपनो बिलोकि बल सकल आस बिस्वास बिसारी ।
हाथ उठाइ अनाथनाथ सों 'पाहि पाहि, प्रभु पाहि !' पुकारी ॥
तुलसी परखि प्रतीति प्रीतिगति आरतपाल कृपालु मुरारी ।
बसनबेष राखी बिसेषि लखि बिरदावलि मूरति नरनारी ॥ ६० ॥

गहगह गगन दुंदुभी बाजी ।
बरषि सुमन सुरगन गावत जस हरष-मगन मुनि सुजन समाजी ॥
सानुज सगन ससोचत सुजोधन भए मुख मलिन खाइ खल खाजी ।
लाज गाज उनवनि कुचाल कलि परी बजाइ कहूँ कहुँ गाजी ॥
प्रीति प्रतीति द्रुपदतनया की भली भूरि भय भभरि न भाजी ।
कहि पारथ-सारथिहि सराहत गई-बहोरि गरीब-निवाजी ॥
सिथिल-सनेह मुदित मन ही मन बसन बीच बिच बधू बिराजी ।
सभासिंधु जदुपति जय जय जनु रमा प्रगटि त्रिभुवन भरि भ्राजी ॥

५९—बरह्यो = बरहे में । एकहि तक = एक ही तार, लगातार ।

जुग जुग जग साके केसव के समन-कलेस कुसाज-सुसाजी।
तुलसी को न होइ सुनि कीरति [illegible] पालु-भगतिपथ राजी ? ॥ ६१ ॥

६१—खाजी = खाद्य, अर्थात् अपने मुँह की खाकर।

अंतरअयन अयन भल, थन फल, बच्छ बेद-बिस्वासो।
गलकंबल बरुना बिभाति, जनु लूम लसति सरितासो॥
दंडपानि भैरव बिषान, मलरुचि खलगन भयदा सी।
लोलदिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा सी॥
मनिकर्निका-बदन-ससि सुंदर, सुरसरि सुखसुषमा सी।
स्वारथ-परमारथ-परिपूरन पंचकोस महिमा सी॥
बिस्वनाथ पालक कृपालु चित, लालति नित गिरिजा सी।
सिद्ध सची सारद पूजहिं, मन जोगवति रहति रमा सी॥
पंचाच्छरी प्रान, मुद माधव, गव्य सुपंचनदा सी।
ब्रह्म जीव सम राम नाम जुग आखर-बिस्वबिकासी॥
चारितु चरति करम कुकरम कर मरत जीवगन घासी।
लहत परमपद पय पावन जेहि, चहत प्रपंच-उदासी॥
कहत पुरान रची केसव निज कर-करतूति-कला सी।
तुलसी बसि हरपुरी राम जपु जो भयो चहै सुपासी॥ २२॥

राग बसंत

मन सोचबिमोचन चित्रकूट। कलिहरन, करनकल्यान बूट॥
सुचि अवनि सुहावनि आलबाल। कानन बिचित्र, बारी बिसाल॥
मंदाकिनि-मालिनि सदा सींच। बर-बारि बिषम नर नारि नीच॥
साखा, सुसृंग, भूरुह, सुपात। निरझर मधु, बर मृदु मलयबात॥
सुक-पिक-मधुकर-मुनिबर-बिहारु। साधन-प्रसून, फलचारि चारु॥
भवघोरघाम-हर सुखद छाँह। थप्यो थिर प्रभाउ जानकीनाह॥
साधक सुपथिक बड़ भाग पाइ। पावत अनेक अभिमत अघाइ॥
रस एक, रहित-गुनकर्मकाल। सिय राम लषन पालक कृपाल॥
तुलसी जो राम-पद चहिय प्रेम। सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम॥२३॥

राग कान्हरा

अब चित चेति चित्रकूटहि चलु।
कोपित कलि, लोपित मंगल-मगु, बिलसत बढ़त मोह-माया-मलु॥

२२—अंतर अयन = अंतर्गृही। अयन = आयन, दुग्धकोश। सरितासी = सरिता + असी। लोलदिनेस = लोलार्क (एक कुंड)। त्रिलोचन = एक स्थान। करनघंट = करनघंटा। पंचनदा=पंचगंगा। माधव = बिंदुमाधव। चारितु = आग।

२३—बूट = वृक्ष। बारि = बारी, बगीचा।

भूमि बिलोकु राम-पद-अंकित, बन बिलोकु रघुबर-बिहार-थलु।
सैलसृंग भवभंगहेतु लखु, दलन कपट-पाखंड-दंभ-दलु॥
जहँ जनमे जगजनक जगतपति बिधि हरि हर परिहरि प्रपंच छलु।
सकृत प्रबेस करत जेहि आस्रम बिगत-बिषाद भए पारथ नलु॥
न करु बिलंब, बिचारु चारु मति, बरष पाछिले सम अगिलो पलु।
मंत्र सो जाइ जपहि जो जपत भे अजर अमर हर अँचइ हलाहलु॥
राम-नाम-जप-जाग करत नित, मज्जत पय पावन पीवत जलु।
करिहैं राम भावतो मन को, सुख-साधन अनयास महा फलु॥
कामदमनि कामता-कलपतरु सो जुग जुग जागत जगतीतलु।
तुलसी तोहि बिसेष बूझिए एक प्रतीति, प्रीति, एकै बलु॥ २४॥

राग धनाश्री

जयति अंजनी-गर्भ-अंभोधि-संभूत-बिधु बिबुधकुल-कैरवानंदकारी।
केसरी-चारु-लोचन-चकोरक-सुखद, लोकगन-सोक-संतापहारी॥
जयति जय बालकपि-केलि-कौतुक-उदित-चंडकर-मंडल-ग्रास-कर्ता।
राहु-रवि-सक्र-पवि-गर्व-खर्वीकरन, सरन भयहरन, जय भुवन-भर्ता॥
जयति रनधीर रघुबीर-हित देवमनि रुद्र अवतार संसारपाता।
बिप्र-सुर-सिद्ध-मुनि-आसिषाकार-बपुष बिमल-गुन-बुद्धि-बारिधि बिधाता॥
जयति सुग्रीव-सिच्छादि-रच्छन-निपुन, बालि-बलसालि-बध-मुख्य-हेतू।
जलधि-लंघन-सिंह, सिंहिका-मद-मथन, रजनिचर-नगर-उत्पात-केतू॥
जयति भूनंदिनी-सोच-मोचन, बिपिनदलन, घननादबस-बिगतसंका।
लूम-लीला-अनलज्वालमालाकुलित, होलिकाकरन-लंकेसलंका॥
जयति सौमित्रिरघुनंदनानंदकर, रिच्छ-कपि-कटक-संघट-बिधाई।
बद्ध-बारिधि-सेतु, अमरमंगल-हेतु, भानुकुलकेतु-रनबिजयदाई॥
जयति जय बज्रतनु, दसन, नख, मुख बिकट, चंड-भुजदंड, तरु-सैल-पानी।
समर-तैलिकयंत्र तिल-तमीचर-निकर पेरि डारे सुभट घालि घानी॥
जयति दसकंठ-घटकरन-बारिदनाद-कदन-कारन, कालनेमि-हंता।
अघट-घटना-सुघट, सुघट-बिघटन-बिकट, भूमि-पाताल-जल-गगन-गंता॥

२४—पय = पयस्विनी।

२५—चंडकर मंडल=सूर्य-मंडल। संसारपाता = संसार की रक्षा करनेवाला। संघट-बिधाई = एकत्र करनेवाला। घटकरन = कुंभकर्ण। कदन = मरण, विनाश।

जयति बिस्व-बिख्यात बानैत, बिरुदावली बिदुष बरनत बेद बिमल बानी।
दास तुलसीत्रास-समन सीतारमन-संग सोभित राम राजधानी ॥ २५ ॥

जयति मर्कटाधीस मृगराज-बिक्रम महादेव मुदमंगलालय कपाली।
मोह-मद-कोह-कामादि-खल-संकुलाघोर संसार-निसि-किरनमाली ॥
जयति लसदंजनादितिज कपि-केसरी-कस्यप-प्रभव-जगदार्तिहर्ता।
लोक-लोकप-कोक-कोकनद-सोकहर-हंस हनुमान कल्यानकर्ता ॥
जयति सुबिसाल बिकराल-बिग्रह, बज्र-सार सर्बांग भुजदंड भारी।
कुलिस नख दसन बर, लसति बालधि बृहद बैरि-स्रस्त्रास्त्र-धर-कुधरधारी ॥
जयति जानकी-सोचसंताप-मोचन, रामलछिमनानंद बारिज-बिकासी।
कीस-कौतुक-केलि-लूम-लंका-दहन, दलन-कानन-तरुन-तेजरासी ॥
जयति पाथोधि पाषान-जलजान-कर जातुधान-प्रचुर-हरष-हाता।
दुष्ट-रावन-कुंभकरन-पाकारिजित-मर्मभित्-कर्म-परिपाक-दाता ॥
जयति भुवनैकभूषन, बिभीषन-बरद-बिहित-कृत, रामसंग्राम-साका।
पुष्पकारूढ़-सौमित्रि-सीता-सहित-भानु-कुलभानु-कीरति-पताका ॥
जयति पर-जंत्रमंत्राभिचार-ग्रसन, कारमनि-कूट-कृत्यादि-हंता।
साकिनी-डाकिनी-पूतना-प्रेत-बैताल-भूत-प्रमथ-जूथ-जंता ॥
जयति बेदांतबिद, बिबिध-बिद्या-बिसद-बेदबेदांग-बिद, ब्रह्मबादी।
ज्ञान-बैराग्य-बिज्ञान-भाजन बिभो! बिमलगुन गनत सुक नारदादी ॥
जयति काल-गुन-कर्म-माया-मथन, निश्चल-ज्ञानब्रत सत्यरत, धर्मचारी।
सिद्ध-सुरवृंद-जोगींद्र-सेवित सदा दासतुलसी प्रनत भय-तमारी ॥ २६ ॥

जयति मंगलागार, संसारभारापहर, बानराकार, बिग्रह-पुरारी।
राम-रोषानल-ज्वालमालामिस-ध्वांतचर-सलभ-संहारकारी ॥
जयति मरुदंजनामोद-मंदिर, नतग्रीव-सुग्रीव-दुःखैक-बंधो।
जातुधानोद्धत-क्रुद्ध-कालाग्निहर, सिद्ध-सुर-सज्जनानंद-सिंधो ॥
जयति रुद्राग्रणी, बिस्वबिद्याग्रणी, बिस्वबिख्यात भट चक्रवर्ती।
सामगाताग्रणी, कामजेताग्रणी, रामहित, रामभक्तानुवर्ती ॥
जयति संग्राम-जय, रामसंदेसहर, कौसला-कुसल-कल्यान-भाखी।
रामबिरहार्कसंतप्त भरतादिनर-नारि-सीतलकरन-कल्पसाखी ॥

२६—हंस = सूर्य। बालधि = पूँछ। पाकारिजित = इंद्रजीत। मेघनाद। मर्मभित = मर्मस्थानों को भेदनेवाले।

२७—ध्वांतचर = निश्चर। सलभ = फतिंगा। नतग्रीव = नीची गर्दनवाले। कल्पसाखी = कल्पवृक्ष। निर्भर = भरा।

जयति सिंहासनासीनसीतारमन निरखि निर्भर-हरष-नृत्यकारी ।
रामसम्राज-सोभा-सहित सर्वदा तुलसिमानस-रामपुर-बिहारी ॥ २७ ॥

जयति बातसंजात, बिख्यात [illegible] [illegible]बाहु, बलबिपुल, बालधिबिसाला ।
जातरूपाचलाकार-बिग्रह [illegible]-लोम[illegible] [illegible]ज्वालमाला ॥
जयति बालार्क-बर-बदन, पिंगल नयन, कपिस-कर्कस-जटाजूटधारी ।
बिकट भ्रुकुटि, बज्र दसन नख, बैरि-मदमत्त-कुंजर-पुंज-कुंजरारी ! ॥
जयति भीमार्जुन-ब्यालसूदन-गर्बहर धनंजय-रथत्रानकेतू ।
भीषम-द्रोन-करनादि-पालित कालदृक सुयोधन-चमू-निधनहेतू ॥
जयति गतराज-दातार, हरतार-संसार-संकट, दनुज-दर्पहारी ।
ईति अति भीति-ग्रह-प्रेत-चौरानल-ब्याधिबाधा समन घोर मारी ॥
जयति निगमागम-ब्याकरन-करनलिपि काब्य-कौतुक-कला-कोटि-सिंधो ।
सामगायक, भक्त-काम-दायक, बामदेव-श्रीराम-प्रियप्रेमबंधो ॥
जयति घर्मांसु-संदग्ध-संपाति-नवपच्छ-लोचन-दिब्यदेह-दाता
कालकलि-पाप-संताप-संकुल-सदा-प्रनत-तुलसीदास-तात-माता ॥ २८ ॥

जयति निर्भरानंद-संदोह कपिकेसरी केसरीसुवन भुवनैकभर्त्ता ।
दि[illegible] [illegible]-मंजुला[illegible], भगत-संताप-चितापहर्ता ॥
जयति धर्मार्थकामापवर्गद विभो ! ब्रह्मलोकादि-बैभव-बिरागी ।
बचन-मानस-कर्म सत्य-धर्मब्रती जानकीनाथ-चरनानुरागी ॥
जयति बिहगेस-बल-बुद्धि-बेगाति-मद-मथन, मन्मथ-मथन, ऊर्ध्वरेता ।
महानाटक-निपुन, कोटि-कबि[illegible], गानगुन-गर्ब-गंधर्ब-जेता ॥
जयति मंदोदरी-केसकर्षन बिद्यमान-दसकंठ-भटमुकुट-मानी ।
भूमिजा-दुःख-संजात-रोषांतकृत जातनाजंतु-कृत-जातुधानी ॥
जयति रामायन श्रवण-संजात-रोमांच-लोचनसजल-सिथिलबानी ।
रामपदपद्म-मकरंद-मधुकर पाहि ! दासतुलसी-सरन सूलपानी ॥ २९ ॥

२८—जातरूपाचल = सोने का पर्वत । कपिस = भूरा । ब्यालगदन = गरुड़ । करनलिपि = लेखक । घर्मांशु = सूर्य ।

२९—निर्भरानंद = पूर्णानंद । भूम्यंजनामंजुलाकरमणे (भूमि + अंजना + मंजुल + आकर + मणि) = अंजना रूपी भूमि की सुंदर खानि के रत्न । ऊर्ध्वरेता = जिसका वीर्य कभी च्युत न हुआ हो । भूमिजा = सीता । संजात = उत्पन्न । अंतकृत = यमराज । जातनाजंतु = वह जंतु जो मरणकाल की कष्ट भोग रहा हो ।

राग सारंग

जाके गति है श्री हनुमान की।
ताकी पैज पूजि आई यह रेखा कुलिस पषान की॥
अघटित-घटन, सुघट-बिघटन, ऐसी बिरुदावलि नहिं आन की।
सुमिरत संकट-सोच-बिमोचन मूरति मोदनिधान की॥
तापर सानुकूल गिरिजा, हर, लषन, राम अरु जानकी।
तुलसी कपि की कृपा-बिलोकनि खानि सकल कल्यान की॥३०॥

राग गौरी

ताकिहै तमकि ताकी ओर को ?
जाके है सब भाँति भरोसो कपि केसरीकिसोर को॥
जनरंजन, अरिगन-गंजन मुखभंजन खल बरजोर को।
बेद पुरान प्रगट पुरुषारथ, सकल सुभट-सिरमोर को॥
उथप-थपन, थपे-उथपन पन बिबुधबृंद-बँदिछोर को।
जलधि लँघि, दहि लंक प्रबल-दल-दलन निसाचर घोर को॥
जाको बालबिनोद समुझि जिय डरत दिवाकर भोर को।
जाकी चिबुकचोट चूरन किय रद-मद कुलिस कठोर को॥
लोकपाल अनुकूल बिलोकिबो चहत बिलोचन-कोर को।
सदा अभय, जय-मुद-मंगलमय जो सेवक रनरोर को॥
भगत-कामतरु नाम राम परिपूरन चंद चकोर को।
तुलसी फल चारो करतल, जस गावत गई-बहोर को॥ ३१॥

राग बिलावल

ऐसी तोहिं न बूझिए हनुमान हठीले।
साहेब कहूँ न राम से, तो से न बसीले॥
तेरे देखत सिंह को सिसु मेंढक लीले।
जानत हौ कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले॥
हाँक सुनत दसकंध के भए बंधन ढीले।
सो बल गयो, किधौं भए अब गर्ब-गहीले॥
सेवक को परदा फटै, तू समरथ सीले।

३१—उथपे-थपन=उजड़े हुए को स्थापित करनेवाले। बँदिछोर = बंदीखाने से छोड़ानेवाले। रदमद = अहंकार रूपी दाँत। रनरोर = रण में विजयी। गई-बहोर = गई हुई वस्तु को पुनः लौटानेवाले।

अधिक आपु तें आपनो सुनि मान सही ले ॥
साँसति तुलसीदास की सुनि सुजस तुही ले ।
तिहूँ काल तिनको भलो जे रामरँगीले ॥ ३२ ॥

समरथ सुवन समीर के रघुबीर पियारे ।
मोपर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया, रे ॥
तेरी महिमा तें चलैं चिंचिनी-चियाँ रे ।
अँधियारे मेरी बार क्यों ? त्रिभुवन-उजियारे ! ॥
केहि करनी जन जानि कै सनमान किया रे ।
केहि अघ अवगुन आपनो करि डारि दिया रे ॥
खायो खोंचो माँगि मैं तेरो नाम लिया रे ।
तेरे बल, बलि, आजु लौं जग जागि जिया रे ॥
जो तोसों होतो फिरौ मेरो हेतु हिया रे ।
तौ क्यों बदन देखावतो कहि बचन इया रे ॥
तो सो ज्ञाननिधान को सर्वज्ञ बिया रे ? ।
हौं समुझत साँई-द्रोहि की गति छार-छिया रे ॥
तेरे स्वामी राम से, स्वामिनी सिया रे ।
तहँ तुलसी के कौन को काको तकिया रे ? ॥ ३३ ॥

अति आरत, अति स्वारथी, अति दीन दुखारी ।
इनको बिलगु न मानिए बोलहिं न बिचारी ॥
लोक-रीति देखी सुनी, व्याकुल नर नारी ।
अति बरषे अनबरषे हूँ देहिं दैवहिं गारी ॥
नाकहि आयो नाथ सों साँसति भय भारी ।
"कहि आयो, कीबी छमा निज ओर निहारी" ॥
समय साँकरे सुमिरिए समरथ हितकारी ।
सो सब बिधि ऊपर करै अपराध बिसारी ॥

३२—बूझिये = चाहिए । वसीले = जरिये, द्वारा । गर्वगहीले = घमंडी ।

३३—कीबे = करना । भिया = भैया (संबोधन) । चिंचिनी-चियाँ = इमली का बीज । डारि दिया = त्याग किया । खोंचो = भिक्षा (बाजार की) । जागि = प्रसिद्ध होकर । इया = यह । बिया = दूसरा । छिया = गलीज़ । तकिया = शरण, आश्रय ।

बिगरी सेवक की सदा साहबहि सुधारी।
तुलसी पर तेरी कृपा निरुपाधि निरारी ॥ ३४ ॥

कटु कहिए गाढ़े परे सुनु समुझि सुसाईं।
करहि अनभले को भलो आपनी भलाई ॥
समरथ सुभ जो पावई, बीर, पीर पराई।
ताहि तकै सब ज्यों नदी बारिधि न बुलाई ॥
अपने अपने को भलो चहै लोग लुगाई।
भावै जो जेहि तेहि भजै सुभ असुभ सगाई ॥
बाँहबोल दै थापिए जो निज बरिआई।
बिन सेवा सों पालिए सेवक की नाई ॥
चूक चपलता मेरियै, तू बड़ो बड़ाई।
होत आदरे ढीठ हौ अति नीच निचाई ॥
बंदिछोर बिरुदावली निगमागम गाई।
नीको तुलसीदास को तेरि ही निकाई ॥ ३५ ॥

राग गौरी

मंगलमूरति मारुतनंदन। सकल-अमंगल-मूल-निकंदन ॥
पवनतनय संतन-हितकारी। हृदय बिराजत अवधबिहारी ॥
मातुपिता गुरु गनपति सारद। सिवा समेत संभु सुक नारद।
चरन बंदि बिनवौं सब काहू। देहु रामपद-नेह-निबाहू ॥
बंदौं राम लषन बैदेही। जे तुलसी के परम सनेही ॥ ३६ ॥

राग दंडक

लाल लाडिले लषन हितु हौ जन के।
सुमिरे संकटहारी, सकल सुमंगलकारी, पालक कृपालु आपने पन के ॥
धरनी-धरनहार भंजन-भुवनभार, अवतार साहसी सहसफन के।
सत्य-संध, सत्यव्रत, परमधरमरत, निरमल करम बचन अरु मन के ॥
रूपके निधान, धनुबान पानि, तूनकटि, महाबीर-बिदित, जितैया बड़े रन के।
सेवक-सुखदायक, सबल, सब लायक, गायक जानकीनाथ-गुनगन के ॥

३४—बिलग न मानिए = बुरा न मानिए। कृपा करे = पक्ष ग्रहण करता है, सहायता करता है। निरारी = निराली, अनोखी।

३५—सगाई = संबंध। बाँहबोलि = भुजबल का भरोसा।

भावते भरत के, सुमित्रा सीता के दुलारे, चातक चतुर राम-स्यामघन के।
बल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेहबस, धनी धनु तुलसी से निरधन के ॥३७॥

राग धनाश्री

जयति लक्ष्मणानंत भगवंत भूधर, भुजगराज, भुवनेश, भूभारहारी।
प्रलयप [illegible]ज्वाला-वमन, शमन-संताप, लीलावतारी ॥
जयति दाशरथि, समर-समरथ, सुमित्रासुवन, शत्रुसूदन, रामभरतबंधो।
चारु-चंपकबरन, वसनभूषन-धरन दिव्यतर, भव्य, लावण्यसिंधो ॥
जयति गाधेय-[illegible] विस्वकंटक-कुटिल-कोटिहंता।
बचन-चय-चातुरी-परसुधर-गर्वहर, सर्वदा रामभद्रानुगंता ॥
जयति सीतेस-सेवासरस, बिषयरस-निरस, निरुपाधि, धुरधर्मधारी।
बिपुल-[illegible], शार्दूलविक्रम, जलदनादमर्दन, महावीर भारी ॥
जयति संग्राम-सागर-भयंकर-तरण रामहित-करण-बरबाहु-सेतू।
उर्मिलारमण, कल्याणमंगलभवन, दासतुलसी-दोष-दवन-हेतू ॥ ३८ ॥
जयति भूमिजारमण पदकंज-मकरंद-रस-रसिक-मधुकर-भरत भूरिभागी।
भुवन-भूषण-भानुबंश-भूषण, भूमिपाल-मणि-रामचंद्रानुरागी ॥
जयति बिबुधेश-धनदादि-दुर्लभ महा-राज-सम्राज-सुखपद-बिरागी।
खड्गधार-व्रती-प्रथमरेखा प्रकट, शुद्ध-मति-युवति-पति प्रेम-पागी ॥
जयति निरुपाधि, भक्तिभावयंत्रित-हृदय, बंधुहित-चित्रकूटाद्रिचारी।
पादुकानृपसचिव पुहुमिपालक परम धीर गंभीर बर बीर भारी ॥
जयति संजीवनी-समय-संकट हनूमान धनु बान महिमा बखानी।
बाहुबल-बिपुल, परमिति पराक्रम अतुल, गूढ़गति जानकी-जानि जानी।
जयति रनअजिर-गंधर्वगनगर्वहर फेरि किये राम-गुनगाथ-गाता।
मांडवी-चित्तचातक-नवांबुद-बरण, सरन-तुलसीदास-अभयदाता ॥ ३९ ॥

जयति जय सत्रु-करि-केसरी सत्रुहन सत्रु-तम-तुहिनहर-किरनकेतू।
देव ! महिदेव-महि-धेनु-सेवक-सुजन-सिद्ध-मुनि [illegible] हेतू ॥
जयति सर्वांगसुंदर सुमित्रासुवन भुवनविख्यात भरतानुगामी।

३८—भूधर = पृथ्वी को धारण करनेवाले। [illegible]मालावमन = लपट का समूह मुँह से निकलनेवाले। गाधेय = विश्वामित्र।

३९—बिबुधेश = इंद्र। यंत्रित = ताला लगा हुआ। परमिति = हद से परे बेहद। गंधर्वगर्वहर = भरतजी के मामा युधाजित् को जब गंधर्वों ने तंग किया था तब उनकी सहायता के लिए भरतजी गए थे।

वर्म-चर्मासि-धनु-बाण-तूणीरधर सत्रुसंकट-समन यत्प्रनामी ॥
जयति लवणांबुनिधि-कुम्भसम्भव, महादनुज-दुर्जन-दवन, दुरितहारी ।
लक्ष्मणानुज, भरत-राम-सीता-चरनरेनु-भूषित-भालतिलकधारी ॥
जयति श्रुतिकीर्ति-वल्लभ सुदुर्लभ सुलभ नमत नर्मद-भक्ति-मुक्तिदाता ।
दासतुलसी चरनसरन सीदत, विभो! पाहि! दीनार्त्त-संताप-हाता ॥४०॥

राग केदारा

कबहुँक अंब अवसर पाइ ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु करुन-कथा चलाइ ॥

४०—किरनकेतु = सूर्य । वर्म, चर्म, असि = कवच, ढाल और तलवार । यत्प्रनामी = जो प्रणाम करनेवाले हैं उनको । लवणाम्बुनिधि = लवणासुर रूपी समुद्र । कुम्भसंभव = अगस्त्य मुनि, जिन्होंने समुद्र को सोख लिया था । श्रुति-कीर्त्ति = शत्रुघ्न की स्त्री । नर्मद = सुखदाता । सीदत = दुःख पाता है ।

बैजनाथ की सटीक विनयपत्रिका में ४१वाँ पद निम्नलिखित है, जो अन्य प्रतियों में नहीं है—

जयति श्रीजानकी भानुकुल-भानु की प्राणप्रिय-वल्लभे तरणि भूपे ?
राम-आनंद-चैतन्यघन-विग्रहा-शक्ति अह्लादनी साररूपे ॥
चित्त चरण चिंतनि जेहि धरत ही दूर हों काम भय कोह मद मोह माया ।
रुद्र बिधि विष्णु सुरसिद्ध बंदित पदे जयति सर्वेश्वरा रामजाया ॥
कर्म जप जोग विज्ञान वैराग्य लहि मोच्छ हित योगि जे प्रभु मनावैं ।
जयति वैदेहि सब-शक्ति-शिरभूषणे ते न तव दृष्टि बिन कबहुँ पावैं ॥
कोटि ब्रह्मांड जगदीश को ईस जेहि निगम मुनि बुद्धि ते अगम गावें ।
विदित यह गाथ अहदान कुलमाथ सो नाथ तव दान लै हाथ आवैं ॥
दिव्य शत वर्ष जप ध्यान जब शिव धर्‍यो राम गुरुरूप मिले पथ बताया ।
चितै हित लीन लखि कृपा कीनी तबै, देबि, अति दुर्लभहिं दरस पायो ॥
जयति श्री स्वामिनी सीय शुभनामिनी, दामिनी कोटि निज देह दरसैं ।
इंदिरा आदि दै मत्त-गजगामिनी देव-भामिनी सबै पाँव परसैं ॥
दुखित लखि भक्त बिन दरस निज रूप तप यजन जप यतन ते सुलभ नाहीं ।
कृपा करि पूर्ण नवकंज-दल-लोचना प्रगट भइ जनकनृप-अजिर माहीं ॥
रमित तव विपिन प्रियप्रेम प्रकटन करन लकपति व्याज कछु खेल ठान्यो ।
गोपिका कृष्ण तव तुल्य वहु यतन करि तोहि मिलि ईश आनंद मान्यो ॥
हीन तव सुमुख के संग रहि रंक सो बिमुख जो देव नाहि नाह नेरो ।
अधम उद्धरणि यह जानि गहि शरण तव दास तुलसी भयो आय चेरो ॥ ४१ ॥

दीन सब अँगहीन छीन मलीन अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥
बूझिहैं 'सो है कौन' ? कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत रामकृपालु के मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥
जानकी जगजननि जन की किए बचन-सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव-नाथ-गुनगन गाइ॥ ४१॥

कबहुँ समय सुधि द्याइबी मेरी मातु जानकी।
जन कहाइ नाम लेत हौं किए पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-पान की॥
सरलप्रकृति आपु जानिए करुनानिधान की।
निजगुन अरि-कृत अनहितौ दास-दोष सुरति चित रहति न दिए दान की॥
बानि बिसारनसील है मानद अमान की।
तुलसीदास न बिसारिए मन क्रम बचन जाके सपनेहुँ गति न आन की॥४२॥

जयति सच्चिदव्यापकानंद परब्रह्म-विग्रह-व्यक्त लीलावतारी।
बिकल-ब्रह्मादि-सुर-सिद्ध-संकोचवश-बिमल-गुण-गेह-नर-देह-धारी॥
जयति कोशलाधीश-कल्याण-कोशलसुता-कुशल, कैवल्य-फल-चारु चारी।
वेदबोधित-कर्म धर्म-धरणी-धेनु-विप्र-सेवक-साधु-मोदकारी॥
जयति ऋषि-मख-पाल, शमन सज्जनशाल, शापवश-मुनिवधू-पापहारी।
भंजि भवचाप, दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नतमाथ भारी॥
जयति धार्मिक-धुर धीर-रघुवीर ! गुरु-मातु-पितु-बंधु-वचनानुसारी।
चित्रकूटाद्रि-विंध्याद्रि-दंडकविपिन-धन्यकृत, पुन्यकानन-विहारी॥
जयति पाकारिसुत-काक-करतूति-फलदानि, खनि गर्त्त गोपित बिराधा।
दिव्य-देवी-वेष देखि, लखि निशिचरी जनु विडंबित करी विश्वबाधा॥
जयति खर-त्रिशिर-दूषण-चतुर्दशसहस-सुभट-मारीच-संहारकर्त्ता।
गृध्र-शबरी-भक्ति-विवश करुणासिंधु, चरित-निरुपाधि, त्रिविधार्ति-हर्त्ता॥
जयति मदअंध कुकबंध बधि, बालि-बलशालि बधि, करण-सुग्रीव-राजा।
सुभट-मर्कट-भालु-कटक-संघट सजत, नमत पद रावणानुज निवाजा॥

४१—द्याइबी = देना, दिखाइयेगा। अघाइ = भरपेट। प्रभुदासीदास = तुलसी। बचन सहाइ किए = वचनों द्वारा की गई सहायता से।

४२—बिसारनसील = विस्मरणशील, भूलने योग्य।

४३—कोशलाधीश = राजा दशरथ। कोशलसुता = कौशल्या। पाकारिसुत = इंद्र का पुत्र जयंत। गर्त्त = गड्ढा। बिडंबित करी = लज्जित की। संघट = समूह।

जयति पाथोधि-कृत-सेतु-कौतुक-हेतु, काल-मन-अगम लई ललकि लंका ।
सकुल सानुज सदल दलित दशकंठ रण, लोक-लोकप किए रहितशंका ॥
जयति सौमित्रि-सीता-सचिव-सहित चले पुष्पकारूढ़ निज राजधानी ।
दासतुलसी मुदित अवधवासी सकल, राम भे भूप, वैदेहि रानी ॥४३॥

जयति राजराजेंद्र राजीवलोचन राम-नाम-कलि-कामतरु, सामशाली ।
अनय-अंभोधि-कुंभज, निशाचर-निकर-तिमिर-घनघोर-खर-किरणमाली ॥
जयति मुनिदेव नरदेव दशरत्थ के, देव-मुनि-वंद्य किए अवधवासी ।
लोकनायक-कोक-सोक-संकट-शमन भानुकुल-कमल-कानन-विकासी ॥
जयति शृंगार-सर-तामरस-दाम-द्युति-देह, गुणगेह, विश्वोपकारी ।
सकल-सौभाग्य-सौंदर्य-सुषमारूप, मनोभव कोटि-गर्वापहारी ॥
जयति सुभग शारंग-सु-निषंग-सायक-शक्ति-चारु-चर्मासि-वरवर्म-धारी ।
धर्मधुर धीर रघुवीर भुजबल-अतुल, हेलया दलित भूभार भारी ॥
जयति कलधौत-मणि-मुकुट-कुंडल, तिलक-झलक भलि भाल विधुवदन शोभा ।
दिव्य-भूषन-वसन, पीत उपवीत, किय ध्यान कल्याण-भाजन न को भा? ॥
जयति भरत-सौमित्रि-शत्रुघ्न-सेवत सुमुख, सचिव-सेवक-सुखद-सर्वदाता ।
अधम आरत दीन पतित पातक-पीन, सकृत नतमात्र कहु पाहि पाता ॥
जयति जय भुवन दसचारि जस जगमगत, पुण्यमय, धन्य जय राम-राजा ।
चरित-सुरसरित कवि-मुख्य-गिरि निःसरित पिबत मज्जत मुदित संत समाजा ॥
जयति वर्णाश्रमाचार-पर-नारिनर, सत्य-शम-दम-दया-दान-शीला ।
विगत-दुखदोष, संताप सुख सर्वदा, सुनत गावत राम-राजलीला ॥
जयति वैराग्य-विज्ञान-वारांनिधे नमत नर्मद पाप-ताप-हर्ता ।
दासतुलसी चरणशरण संशयहरण देहि अवलंब वैदेहि-भर्ता ॥ ४४ ॥

राग गौरी

श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन हरण-भवभय-दारुणं ।
नवकंज-लोचन, कंजमुख, करकंज, पदकंजारुणं ॥
कंदर्प-अगणित-अमित-छवि, नवनील-नीरज-सुंदरं ।
पटपीत मानहु तड़ित-रुचि शुचि नौमि जनकसुता-वरं ॥

४४—सामशाली = साम नीतिवाले । अनय = अनीति । किरणमाली = सूर्य । मनोभव = कामदेव । हेलया = खेल ही में, सहज ही में । कलधौत = सोना । सकृत = एक बार । पाता = रक्षक । कविमुख्य = वाल्मीकि । निःसरित = निकली हुई । वारांनिधि = समुद्र । नर्मद = सुखदाता ।

भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्यवंश-निकंदनं ।
रघुनंद आनंदकंद कोशलचंद दशरथ-नंदनं ॥
सिर मुकुट, कुंडल तिलक चारु, उदार अंग विभूषणं ।
आजानुभुज, सरचाप-धर, संग्रामजित-खरदूषणं ॥
इति वदत तुलसीदास संकर-सेष-मुनि-मनरंजनं ।
मम हृदयकंज निवास करु कामादि-खल-दल-गंजनं ॥ ४५ ॥

राग रामकली

सदा राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, राम जपु, मूढ़ मन बारबारं ।
सकल-सौभाग्य-सुख-खानि जिय जानि, सठ! मानि विस्वास वद वेदसारं ॥
कोशलेंद्र नव-नीलकंजाभ-तनु मदनरिपु कंजहृद-चंचरीकं ।
जानकीरमन, सुखभवन, भुवनैक प्रभु, समर-भंजन, परम कारुणीकं ॥
दनुज-बन-धूमध्वज, पीन-आजानु-भुजदंड-कोदंडवर-चंड-बानं ।
अरुन कर चरन मुख, नयन राजीव, गुनअयन, बहु-मयन-शोभानिधानं ॥
वासना-वृंद-कैरव-दिवाकर, काम-क्रोध-मद-कंज-कानन-तुषारं ।
लोभ-अति-मत्तनागेंद्र-पंचानन, भक्तहित-हरन-संसारभारं ॥
केशवं क्लेशहं केश-वंदित-पदद्वंद्व-मंदाकिनी-मूलभूतं ।
सवदानंद-संदोह, मोहापहं, घोर-संसार-पाथोधि-पोतं ॥
शोक-संदेह-पाथोद-पटलानिलं, पाप-पर्वत-कठिन-कुलिसरूपं ।
संतजन-कामधुक-धेनु विश्रामप्रद, नाम-कलिकलुष-भंजन अनूपं ॥
धर्म-कल्पद्रुमाराम, हरिधाम-पथि-संबलं, मूलमिदमेव एकं ।
भक्ति वैराग्य विज्ञान सम दान दम नाम-आधीन साधन अनेकं ॥
तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्मजालं ।
येन श्रीराम-नामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालं ॥
श्वपच खल भिल्ल यवनादि हरिलोक-गत नामबल बिपुलमति मलिन-परसी ।
त्यागि सब आस संत्रास भवपास-असि-निसित हरिनाम जपु दासतुलसी ॥४६॥

४५—रुचि = शोभा ।

४६—धूमध्वज = अग्नि । केश = क + ईश = ब्रह्मा और महादेव । अनिल= वायु । पथि-संबल = मुसाफ़िरों के लिये कलेवा वा राह खर्च । मूलम् + इदम् + इव + एकम् = यही एकमात्र मूल है । तेन तप्तं हुतं......कालं = उसी ने तप, होम और सब दान कर लिए और उसीने सब कर्म समूह कर लिए, जिसने समय को देखकर रात दिन रामनाम-रूपी पवित्र अमृत का पान किया। निसित=पैनी।

ऐसी आरती राम रघुबीर की करहि मन ।
हरन दुखद्वंद्व गोबिंद आनंदघन ॥
अचर-चर-रूप हरि सर्वगत सर्वदा बसत, इति बासना धूप दीजै ।
दीप निज-बोध, गत क्रोध मद मोह तम, प्रौढ़ अभिमान-चितवृत्ति छीजै ॥
भाव अतिसय बिसद प्रवर नैवेद्य सुभ श्रीरमन परम-संतोषकारी ।
प्रेम तांबूल, गतसूल संसय सकल, बिपुल-भव-बासना-बीज-हारी ॥
असुभ-सुभकर्म घृत-पूर्ण दस वर्तिका, त्याग पावक, सतोगुन-प्रकासं ।
भगति-बैराग्य-बिज्ञान-दीपावली अर्पि नीराजनं जगनिवासं ॥
बिमल-हृदि-भवन कृत सांति-पर्यंक सुभ सयन बिस्राम श्रीरामराया ।
छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका, यत्र हरि तत्र नहिं भेदमाया ॥
(एहि) आरती निरत सनकादि श्रुति सेष सिव देवरिषि अखिलमुनि तत्त्वदरसी ।
करै सोइ तरै, परिहरै कामादि मल, बदति इति अमलमति दासतुलसी ॥४७॥

हरति सब आरती आरती राम की ।
दहति दुख दोष निर्मूलिनी काम की ॥
सुभग सौरभ धूप दीप बर मालिका ।
उड़त अघ-बिहग सुनि ताल करतालिका ॥
भक्त-हृदि-भवन अज्ञान-तम-हारिनी ।
बिमल-बिज्ञानमय, तेज-बिस्तारिनी ॥
मोह-मद-कोह-कलि-कंज-हिम जामिनी ।
मुक्ति की दूतिका, देह-दुति दामिनी ॥
प्रनतजन-कुमुदबन-इंदु-कर-जालिका ।
तुलसि अभिमान-महिषेस बहु कालिका ॥ ४८ ॥

दनुज-बन-दहन, गुनगहन, गोबिंद, नंदादि-आनंद-दाताऽविनासी ।
संभु सिव रुद्र संकर भयंकर भीम घोर-तेजायतन क्रोध-रासी ॥
अनंत भगवंत जगदंत अंतक-त्रास-समन श्रीरमन भुवनाभिरामं ।
भूधराधीस जगदीस ईसान बिज्ञानघन ज्ञानकल्यान-धामं ॥
वामनाव्यक्त पावन परावर बिभो, प्रगट परमातमा प्रकृति-स्वामी ।

४७—इति बासना = इस वासना की । निजबोध = आत्मज्ञान । प्रवर = श्रेष्ठ । वर्त्तिका = बत्ती । नीराजन = आरती, दीपदान । प्रमुख = आदि ।

४८—आरती = आर्त्ति, दुःख, पीड़ा । हिमजामिनी = जाड़े की रात । [illegible] । महिषेश=महिषासुर ।

चंद्रसेखर सूलपानि हर अनघ अज अमित अविछिन्न वृषभेसगामी ।
नीलजलदाभ-तनु स्याम बहु काम-छबि, राम राजीवलोचन कृपाला ।
कंबु-कर्पूर-वपु धवल निर्मल मौलि, जटा सुरतटिनि, सित सुमनमाला ।
बसन-किंजल्क धर चक्र सारंग दर-कंज-कौमोदकी अति बिसाला ।
मार-करि-मत्त मृगराज त्रयनयन हर नौमि अपहरन-संसारज्वाला ॥
कृष्न करुनाभवन, दवन-कालीय-खल विपुल-कंसादि-निर्बंसकारी ।
त्रिपुर-मद-भंगकर, मत्तगज-चर्म-धर, अंधकोरग-ग्रसन-पन्नगारी ॥
ब्रह्म व्यापक अकल सकलपर परम हित ज्ञानगोतीत गुनवृत्ति-हर्ता ।
सिंधुसुत गर्ब-गिरि-बज्र गौरीस, भव, दक्षमख-अखिल-विध्वंसकर्ता ॥
भक्तिप्रिय भक्तजन कामधुक-धेनु हरि हरन-दुर्घट-विकट-बिपति-भारी ।
सुखद नर्मद बरद बिरज अनवद्य अखिल, बिपिन-आनंद-बीथिन-बिहारी ।
रुचिर हरिसंकरी-नाम मंत्रावली द्वंद्वदुख-हरनि आनंदखानी ।
बिष्नु-सिव-लोक सोपान सम सर्वदा बदति तुलसीदास बिसद बानी* ॥४९॥

भानुकुल-कमल-रबि, कोटि-कंदर्प छबि, काल-कलि-ब्यालमिव बैनतेयं ।
प्रबल-भुजदंड-परचंड कोदंडधर, तूनवर बिसिख, बलमप्रमेयं ॥
अरुन राजीवदल-नयन सुषमा-अयन स्याम तनुकांति बर-बारिदाभं ।
तप्तकांचन-वस्त्र शस्त्रविद्या-निपुन सिद्धसुर-सेव्य पाथोजनाभं ॥
अखिल लावन्यगृह विश्वविग्रह परम प्रौढ़ गुनगूढ़ महिमा उदारं ।
दुर्द्धर्ष, दुस्तर, दुर्ग, स्वर्ग-अपवर्ग-पति, भग्न-संसार-पादप-कुठारं ॥
सापबस-मुनिबधू-मुक्तकृत, विप्रहित-यज्ञरच्छन-दच्छ पच्छकर्त्ता ।
जनकनृप-सदसि-सिवचाप-भंजन, उग्र-भार्गवागर्व-गरिमापहर्त्ता ॥
गुरुगिरा-गौरवामरसुदुस्त्यज-राज्य त्यक्त श्री सहित सौमित्रि-भ्राता ।
संग जनकात्मजा, मनुजमनुसृत्य, अज, दुष्टबधनिरत, त्रैलोक्य-त्राता ।
दंडकारन्य-कृत पुन्य-पावनचरन, हरन-मारीच-मायाकुरंगं ।
बालिबल-मत्तगजराज-इव केसरी सुहृद-सुग्रीव-दुखरासि-भंगं ॥

* यह पद रामभक्तों में हरिशंकरी के नाम से प्रसिद्ध है क्योंकि विष्णु और शिव के नाम साथ साथ आते गए हैं ।

४९—अंतक = यमराज । परावर विभो = सर्वत्र व्यापक । परावर = दूर और पास, सर्वत्र । किंजल्क = कमल की केसर के समान, जो पीले रंग की होती है । अंधकोरग = अंधक दैत्य रूपी सर्प । गुणवृत्ति = त्रिगुण व्यापार । सिंधुसुत = जलंधर । विरज = रजोगुण के प्रभाव से रहित । अनवद्य = दोष से रहित ।

रिच्छ मर्कट बिकट सुभट उद्भट, समर सैल-संकास रिपु-त्रासकारी।
बद्ध पथोधि, सुर-निकर-मोचन, सकुल-दलन-दससीस-भुजबीस-भारी॥
दुष्टबिबुधारि-संघात-महिभार-अपहरन अवतार कारन अनूपं।
अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन ब्रह्म सुमिरामि नरभूपरूपं॥
सेष स्रुति सारदा संभु नारद सनक गनत गुन, अंत नहिं तव चरित्रं।
सोइ राम कामारि-प्रिय अवधपति सर्वदा दासतुलसी-त्रासनिधि बहित्रं॥५०॥

जानकीनाथ रघुनाथ रागादितम-तरणि, तारुण्यतनु तेजधामं।
सच्चिदानंद आनंदकंदाकरं बिस्वबिस्राम रामाभिरामं॥
नीलनव-बारिधर सुभग-सुभ कांतिकर पीतकौसेय-बरबसन-धारी।
रत्नहाटक-जटित मुकुट मंडित मौलि भानुसत-सदृस-उद्योत कारी॥
स्रवन कुंडल, भाल तिलक, भ्रू रुचिर अति, अरुन अंभोज लोचन बिसालं।
वक्त्र-आलोक त्रैलोक्य-सोकापहं, माररिपु हृदय-मानस-मरालं॥
नासिका चारु, सुकपोल, द्विज बज्रदुति, अधर बिंबोपमा, मधुर हासं।
कंठ दर, चिबुक बर, बचन गम्भीरतर, सत्यसंकल्प सुरत्रासनासं॥
सुमन-सुविचित्र-नवतुलसिका-दलजुतं मृदुल बनमाल उर भ्राजमानं।
भ्रमत आमोदबस मत्तमधुकर-निकर मधुरतर मुखर कुर्वन्ति गानं॥
सुभग श्रीवत्स केयूर कंकन हार किंकिनी-रटनि कटितट रसालं।
बाम दिसि जनकजासीन-सिंहासनं कनक मृदुबल्लि-संग तरु-तमालं॥
आजानुभुजदंड, कोदंड मंडित बाम बाहु, दक्षिण पानि बानमेकं।
अखिल मुनिनिकर सुरसिद्ध गंधर्व बर नमत नर नाग अवनिप अनेकं॥
अनघ अविछिन्न सर्वज्ञ सर्वेस खलु सर्वतोभद्र दाताऽसमाकं।
प्रणतजन-खेदविच्छेद-विद्या-निपुन नौमि श्रीराम सौमित्रि-साकं॥
युगल पदपद्म सुखसद्म पद्मालयं, चिह्न कुलिसादि सोभातिभारी।
हनुमंत-हृदि बिमल कृत परममंदिर सदा दासतुलसी सरन-सोकहारी॥५१॥

५०—दुर्ग = दुर्गम। सदसि = सभा में। भार्गव = परशुराम। आर्गव = पूर्णगर्व। दुस्त्यज = कठिनता से त्यागने योग्य। अनुसृत्य = अनुसार, नाहिं। भंग = काटने के हेतु। वहित्र = जहाज।

५१—कौशेय = रेशमी। वक्त्र = मुख। दर = शंख। आमोद = सुगंध। श्रीवत्स = श्री का चिह्न। केयूर = बिजायठ। अविछिन्न = पूर्ण। खलु = निश्चय करके। सर्वतोभद्र = सब प्रकार से कल्याण रूप। असमाकं = अस्माकं, हमको। साकं = सहित। सद्म = घर।

कोसलाधीस जगदीस जगदेकहित अमितगुन, बिपुल बिस्तारलीला।
गायंति तव चरित सुपवित्र श्रुति सेस सुक संभु सनकादि मुनि मननसीला॥
वारिचर-बपुषधर, भक्त-निस्तारपर, धरनि कृत नाव महिमातिगुर्वी।
सकल यज्ञांसमय उग्र-विग्रह क्रोड, मर्दि दनुजेस उद्धरन उर्वी॥
कमठ अति विकट-तनु, कठिन पृष्ठोपरि भ्रमत मंदर कंडु-सुख मुरारी।
प्रगटकृत अमृत, गो, इंदिरा, इंदु वृंदारका-वृंद-आनंदकारी॥
मनुज-मुनि-सिद्ध-सुर-नाग-त्रासक दुष्ट दनुज द्विजधर्म-मर्य्याद-हर्त्ता।
अतुल मृगराजवपु धरित, विद्दरित अरि, भक्त-प्रहलाद-अहलादकर्त्ता।
छलन बलि कपट बटुरूप बामन ब्रह्म, भुवन-पर्यंत पद-तीनि-करणं।
चरन-नख-नीर त्रैलोक्यपावन परम, विबुधजननी-दुसह-शोकहरणं॥
क्षत्रियाधीस-करिनिकर-वर-केसरी परसुधर विप्र-ससि-जलदरूपं।
बीस-भुजदंड-दससीसखंडन चंडवेग सायक नौमि राम-भूपं॥
भूमि-भर-भारहर प्रगट परमातमा ब्रह्म नररूपधर-भक्तहेतू।
वृष्णिकुल-कुमुद-राकेस राधारमन कंस-बंसाटवी-धूमकेतू॥
प्रबल-पाखंड-महिमंडलाकुल देखि निंद्यकृत अखिल-मखकर्म-जालं।
शुद्धबोधैक घनज्ञान गुनधाम अज बुद्ध अवतार बंदे कृपालं॥
कालकलि-जनित-मल-मलिनमन सर्वनर, मोहनिसि-निबिड़यमनांधकारं।
विष्णुयश-पुत्र कल्कीदिवाकर उदित दासतुलसी हरन विपति-भारं॥५२॥

सर्व-सौभाग्यप्रद सर्वतोभद्र-निधि, सर्व सर्वेस सर्वाभिरामं।
शर्व-हृदि-कंज-मकरंदमधुकर रुचिररूप भूपालमनि नौमि रामं॥
सर्व सुखधाम गुनग्राम विश्रामपद नाम सर्वास्पद मति पुनीतं।
निर्मलं सांत सुविसुद्ध बोधायतन क्रोध-मद-हरन करुना-निकेतं॥
अजित निरुपाधि गोतीतमव्यक्त विभुमेकमनवद्यमजमद्वितीयं।
प्राकृतं प्रकट परमातमा परमहित प्रेरकानंत बंदे तुरीयं॥
भूधरं सुंदरं श्रीवरं मदन-मद-मथन सौंदर्य-सीमातिरम्यं।
दुष्प्राप्य दुष्प्रेक्ष्य दुस्तर्क्य दुष्पार संसारहर सुलभ मृदुभावगम्यं॥
सत्यकृत सत्यरत सत्यव्रत सर्वदा पुष्ट संतुष्ट संकष्टहारी।
धर्मवर्मणि ब्रह्मकर्मबोधैक द्विजपूज्य ब्रह्मण्य जनप्रिय मुरारी॥

५२—गुर्वी = बड़ी। क्रोड = शूकर। उर्वी = पृथ्वी। कंडुसुख = खुजलाने का सुख। विबुधजननी = अदिति। ससि = खेती। भर = भारी। अटवी=जंगल। विष्णुयश = एक ब्राह्मण जिसके पुत्ररूप में कल्कि अवतार होगा।

नित्य निर्मम, नित्य मुक्त निर्मान हरि ज्ञानघन सच्चिदानंद मूलं ।
सर्वरक्षक सर्वभक्षकाध्यक्ष कूटस्थ गूढ़ार्चि भक्तानुकूलं ॥
सिद्धि साधक साध्य, वाच्य वाचक रूप, मंत्र-जापक जाप्य, सृष्टि स्रष्टा ।
परमकारन, कंजनाभ, जलदाभतनु, सगुन निर्गुन, सकल-दृश्य-द्रष्टा ॥
व्योम-व्यापक बिरज ब्रह्म बरदेस बैकुंठ बामन बिमल ब्रह्मचारी ।
सिद्ध वृंदारकावृंद-वंदित सदा खंडि पाखंड निर्मूलकारी ॥
पूरनानंद-संदोह अपहरन-संमोह-अज्ञान-गुनसन्निपातं ।
बचन मन कर्म गतसरन तुलसीदास, त्रास-पाथोधि-इव कुंभजातं ॥ ३ ॥

विश्वविख्यात विश्वेश विश्वायतन विश्वमर्याद व्यालादृगामी ।
ब्रह्म बरदेश वागीश व्यापक विमल बिपुल बलवान निर्बानस्वामी ॥
प्रकृति, महतत्व, सब्दादि, गुन, देवता, व्योम मरुदग्नि, अमलांबु उर्वी ।
बुद्धि मन इंद्रिय प्रान चित्तातमा काल-परमानु चिच्छक्ति गुर्वी ॥
सर्वमेवात्र त्वद्रूप भूपालमनि व्यक्तमव्यक्त गतभेद, विष्णो ।
भुवन भवदंस कामारि-वंदित-पदद्वंद्व-मंदाकिनी-जनक जिष्णो ॥
आदिमध्यांत भगवंत त्वं सर्वगतमीस पश्यंति ये ब्रह्मवादी ।
जथा पट-तंतु, घट-मृत्तिका, सर्प-स्रग, दारु-करि, कनक-कटकांगदादी ॥
गंभीर सर्वज्ञ गूढ़ार्थवित गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता ।
ज्ञेय ज्ञानप्रिय प्रचुर गरिमागार घोर-संसार-परपार-दाता ॥
सत्यसंकल्प अतिकल्प कल्पांतकृत कल्पनातीत अहि-तल्पवासी ।

५३—शर्व = महादेव । सर्वास्पद = सब वस्तुओं का मूलस्थान । प्राकृत = प्रकृति से बद्ध, मनुष्यरूपधारी । तुरीय = मोक्षरूप । भूधर = भूमि को धारण करनेवाले । ब्रह्मकर्म = ब्रह्म विद्या और कर्मकांड । निर्मान = बेहद, अपार । गूढ़ार्चि = गुप्त तेजवाला । वाच्य = अर्थ । वाचक = शब्द । स्रष्टा = सृष्टि का रचयिता । विरज = रजोगुण रहित (शुद्ध सत्व स्वरूप) । बरद + ईश = देवताओं के स्वामी । संमोह = भारी मोह । सन्निपात = समूह, ढेर ।

५४—जिष्णो = हे जयशील । सर्पस्रग = सर्प में माला के समान अर्थात् भ्रम रूप वस्तु में सत्य वस्तु के समान । वेदांत के अनुसार इस मिथ्या संसार की जो सत्ता प्रतीत होती है वह ब्रह्मरूप सत्य वस्तु के कारण । ज्ञानप्रिय = ज्ञाता । अतिकल्प = कल्प से परे । तल्प = शय्या । वेदगर्भ = ब्रह्मा । अर्भक = पुत्र । वेदगर्भार्भक = सनकादिक । अर्वाक पर = यह और वह अर्थात् परा अपरा विद्या । तमी = रात्रि । वंदारु = वंदना करनेवाले ।

बनज-लोचन बनज-नाभ बनदाभ-वपु बनचर-ध्वज-कोटि लावन्यरासी ॥
सुकर दुष्कर दुराराध्य दुर्व्यसनहर दुर्ग दुर्द्धर्ष दुर्गार्ति-हर्त्ता ।
वेदगर्भार्भकादभ्रगुण-गर्व-अर्वापर-गर्व-निर्वापकर्त्ता ॥
भक्त-अनुकूल, भवशूल-निर्मूलकर, तूलअघ-नामपावक-समानं ।
तरल-तृष्णा-तमी-तरणि धरनाधरन सरन-भय-हरन करुनानिधानं ॥
बहुल बंदारु-बृंदारकाबृंद-पद-द्वंद्व, मंदारमालोरधारी ।
पाहि मामीस संतापसंकुल सदा दासतुलसी प्रनत रावनारी ॥ ५४ ॥

संत-संतापहर विश्वविश्राम कर राम कामारि-अभिरामकारी ।
सुद्धबोधायतन सच्चिदानंदघन सज्जनानंदवर्द्धन खरारी ॥
सील-समता-भवन विषमता-मति-समन राम रामारमन रावनारी ।
खड्गकर चर्मवर-वर्मधर, रुचिर कटि तूण, सर-सक्ति-सारंगधारी ॥
सत्यसंधान निर्वानप्रद सर्वहित सर्वगुन-ज्ञान-विज्ञानसाली ।
सघन-तम-घोर-संसार-भर-शर्वरी-नामदिवसेस-खर-किरनमाली ॥
तपन तीछन तरुन, तीव्रतापघ्न तपरूप तनुभूप तमपर तपस्वी ।
मान-मद-मदन-मत्सर-मनोरथ-मथन मोह-अंभोधि-मंदर मनस्वी ॥
वेदविख्यात वरदेस वामन विरज विमल वागीस बैकुंठस्वामी ।
काम-क्रोधादि-मर्दन विवर्धन-छमा शांतविग्रह विहंगराज-गामी ॥
परम पावन, पापपुंज-मुंजाटवी अनल इव निमिष निर्मूलकर्त्ता ।
भुवनभूषन, दूषनारि, भुवनेस, भूनाथ श्रुतिमाथ जय भुवनभर्त्ता ॥
अमल अविचल अकल सकल संतप्त कलि-विकलता-भंजनानंदरासी ।
उरग-नायक-सयन, तरुन-पंकज-नयन, क्षीरसागर-अयन, सर्ववासी ॥
सिद्ध-कवि-कोविदानंददायक पदद्वंद्व मंदात्ममनुजैर्दुरापं ।
यत्र संभूत अति पूत जल सुरसरी दर्शनादेव अपहरित पापं ॥
नित्य निर्मुक्त संयुक्तगुन निर्गुनानंत भगवंत नियामक नियंता ।
विश्व-पोषन-भरन विश्वकारन-करन, सरन-तुलसीदास-त्रासहंता ॥ ५५ ॥

दनुजसूदन दयासिंधु दंभापहन दहन-दुर्दोष दुष्पापहर्त्ता ।
दुष्टतादमन, दमभवन, दुःखौघहर दुर्ग-दुर्वासना-नासकर्त्ता ॥
भूरिभूषन भानुमंत भगवंत भवभंजनाभयद भुवनेस भारी ।

५५—अभिराम = आनंद । सत्यसंधान = सत्यप्रतिज्ञ । तपन = सूर्य्य । तमपर = तमोगुण के परे । श्रुतिमाथ = वेदों के मस्तक अर्थात् मुख्य तत्व । दुराप = कठिनता से मिलनेवाले । करन = सामग्री ।

भावनातीत भववंद्य भव-भक्तहित भूमि-उद्धरन भूधरन-धारी ॥
वरद वनदाभ वागीस विश्वातमा बिरज बैकुंठ मंदिर-विहारी।
व्यापकव्योम बंद्यांघ्रि बामन बिभो ब्रह्मविद्-ब्रह्मचिंतापहारी ॥
सहज सुंदर सुमुख सुमन सुभ सर्वदा सुद्ध सर्वज्ञ स्वच्छंदचारी।
सर्वकृत सर्वभृत सर्वजित सर्वहित सत्यसंकल्प कल्पांतकारी ॥
नित्य निर्मोह निर्गुन निरंजन निजानंद निर्वाण निर्वाणदाता।
निर्भरानंद निःकंप निःसीम निर्मुक्त निरुपाधि निर्मम विधाता ॥
महामंगलमूल मोद-महिमायतन मुग्ध मधु-मथन मानद अमानी।
मदनमर्दन मदातीत मायारहित मंजु मानाथ पाथोज-पानी ॥
कमललोचन, कलाकोस, कोदंडधर, कोसलाधीस, कल्यानरासी।
यातुधान-प्रचुर-मत्तकरि-केसरी भक्त मनपुन्य-आरन्यवासी ॥
अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज अमित अविकार आनंदसिंधो।
अचल अनिकेत अविरल अनामय अनारंभ अंभोदनादघ्न बंधो ॥
दासतुलसी खेदखिन्न, आपन्न, इह सोकसंपन्न अतिसय सभीतं।
प्रनतपालक राम परम करुनाधाम पाहि मामुर्विपति दुर्विनीतं ॥ ५६ ॥

देहि सतसंग निजअंग, श्रीरंग, भवभंग-कारन, सरन सोकहारी।
येतु भवदंघ्रि-पल्लव-समाश्रित सदा भक्तिरत बिगतसंसय मुरारी !
असुर सुर नाग नर यक्ष गंधर्व खग रजनिचर सिद्ध ये चापि अन्ये।
संतसंसर्ग त्रयवर्गपर परमपद प्राप, निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने ॥
वृत्र बलि बाण प्रहलाद मय व्याध गज गृद्ध द्विजबंधु निजधर्म-त्यागी।
साधुपद-सलिल-निर्धूत-कल्मष सकल, स्वपच यवनादि कैवल्यभागी।
शांत निरपेक्ष निर्मम निरामय अगुन शब्द ब्रह्मैक पर-ब्रह्म-ज्ञानी।

५६—भानुभा = सूर्य के समान प्रकाशवाले। ब्रह्मचिंता = ब्राह्मणों की चिंता। निजानंद = आत्मानंद स्वरूप। मानाथ = लक्ष्मीपति। अविरल = अनवच्छिन्न। आपन्न = ग्रस्त। इहसोक = संसार का दुःख। अंभोदनाद = मेघनाद + घ्न = नाशक अर्थात् लक्ष्मणजी। आपन्न = विपद ग्रस्त। इह = संसार। उर्विपति = पृथ्वी के मालिक। दुर्विनीतं = नम्रतारहित।

५७—श्रीरंग = लक्ष्मीपति। येतु = जो। भवत् + अंघ्रि = तुम्हारे चरण। त्रयवर्गपर = अर्थ, धर्म और काम से परे। प्राप = पाते हैं। द्विजबंधु = नीच ब्राह्मण। स्वदक = अपनी ओर अर्थात् अपने दयालु स्वभाव की ओर देखनेवाले।

दच्छ, समदृक स्वदृक विगत-अति स्वपरमति परमरति तव बिरति चक्रपानी ॥
बिश्व उपकारहित व्यग्र-चित सर्वदा, त्यक्तमदमन्यु, कृत-पुन्यरासी।
यत्र तिष्ठंति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छंति छीराब्धिवासी ॥
वेद-पय-सिंधु, सुबिचार-मंदर महा अखिल-मुनिवृंद निर्मथनकर्त्ता।
सार-सतसंगमुद्धृत्य इति निश्चितं बदति श्रीकृष्ण*वैदर्भिभर्त्ता ॥
सोक संदेह भय हर्षतम तर्षगण साधु-सद्युक्ति-विच्छेदकारी।
यथा रघुनाथ-सायक निसाचरचमू-निचय-निर्दलन-पटु वेग भारी ॥
यत्रकुत्रापि मम जन्म निज कर्मबश भ्रमत जगयोनि संकट अनेकम्।
तत्र त्वद्भक्ति सज्जन-समागम सदा भवतु मे रामविश्राममेकम ॥
प्रबल भवजनित-त्रैब्याधि-भेषज भक्ति, भक्त भैषज्यमद्वैतदरसी।
संत-भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि मतिमलिन कह दासतुलसी ॥५७॥

देहि अवलंब कर-कमल कमलारमन दमनदुख समन-संताप-भारी।
अज्ञान-राकेस-ग्रासन बिधुंतुद, गर्ब-काम-करिमत्त-हरि दूषनारी ॥
वपुष ब्रह्मांड सो, प्रवृत्ति लंका-दुर्ग रचित मन-दनुज-मयरूपधारी।
विविध कोसौघ अति रुचिर मंदिरनिकर सत्वगुन-प्रमुख त्रय-कटककारी।
कुनप-अभिमान-सागर भयंकर घोर बिपुल अवगाह दुस्तर अपारम्।
नक्र-रागादि-संकुल मनोरथ सकल संगसंकल्प-बीची बिकारम् ॥
मोह दसमौलि, तद्‌भ्रात अहंकार, पाकारिजित्-काम बिश्रामहारी।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध-पापिष्ट बिबुधांतकारी ॥
द्वेष-दुर्मुख, दंभ-खर, अकंपन-कपट, दर्प मनुजाद-मद सूलपानी।
अमितबल परम दुर्जय निसाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो-यातुधानी ॥
जीव भवदंघ्रि सेवक-बिभीषन बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसितचिंता।
नियम यम सकल-सुरलोक लोकेस लंकेसबस नाथ ! अत्यंत भीता ॥
ज्ञान अवधेस, गृह-गेहिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभारहर्त्ता।
भक्त संकष्ट अवलोकि पितुवाक्य-कृत गमन किय गहन वैदेहि-भर्त्ता ॥
कैवल्य-साधन अखिल भालु मर्कट बिपुल, ज्ञान-सुग्रीव कृत जलधिसेतु।
प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजनतनय विषय-बन-दहनमिव धूमकेतू ॥
दुष्ट-दनुजेस निर्बंस कृत दासहित बिश्वदुख-हरन बोधैकरासी।
अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दासतुलसी-हृदय कमलवासी ॥५८॥

---

* यथा भागवत में—न रोधयति माँ योगो न सांख्यं धर्म उद्धव !......
यथावरुधोसत्संगः सर्वसंगापहोहि माम्।
५८—कुनप = शरीर।

दत्त, समदृक स्वदृक विगत-अति स्वपरमति परमरति तव बिरति चक्रपानी ॥
विश्व उपकारहित व्यग्र-चित सर्वदा, त्यक्तमदमन्यु, कृत-पुन्यरासी।
यत्र तिष्ठंति तत्रैव अज शर्व हरि सहित गच्छंति छीराब्धिवासी ॥
वेद-पय-सिंधु, सुविचार-मंदर महा. अखिल-मुनिबृंद निर्मथनकर्त्ता।
सार-सतसंगमुद्धृत्य इति निश्चितं बदति श्रीकृष्णक्षवैदर्भिभर्त्ता ॥
सोक संदेह भय हर्षतम तर्षगण साधु-सद्युक्ति-विच्छेदकारी।
यथा रघुनाथ-सायक निसाचरचमू-निचय-निर्दलन-पटु वेग भारी ॥
यत्रकुत्रापि मम जन्म निज कर्मबश भ्रमत जगयोनि संकट अनेकम्।
तत्र त्वद्भक्ति सज्जन-समागम सदा भवतु मे रामविश्राममेकम् ॥
प्रबल भवजनित-त्रैब्याधि-भेषज भक्ति, भक्त भैषज्यमद्वैतदरसी।
संत-भगवंत अंतर निरंतर नहीं किमपि मतिमलिन कह दासतुलसी ॥५७॥

देहि अवलंब करकमल कमलारमन दमनदुख समन-संताप-भारी।
अज्ञान-राकेस-ग्रासन बिधुंतुद, गर्ब-काम-करिमत्त-हरि दूषनारी ॥
वपुष ब्रह्मांड सो, प्रवृत्ति-लंकादुर्ग रचित मन-दनुज-मयरूपधारी।
विविध कोसौघ अति रुचिर मंदिरनिकर सत्वगुन-प्रमुख त्रय-कटककारी।
कुनप-अभिमान-सागर भयंकर घोर बिपुल अवगाह दुस्तर अपारम्।
नक्र-रागादि-संकुल मनोरथ सकल संगसंकल्प-बीची-बिकारम् ॥
मोह दसमौलि, तद्भ्रात अहंकार, पाकारिजित्-काम विश्रामहारी।
लोभ अतिकाय, मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध-पापिष्ठ बिबुधांतकारी ॥
द्वेष-दुर्मुख, दंभ-खर, अकंपन-कपट, दर्प मनुजाद-मद सूलपानी।
अमितबल परम दुर्जय निसाचर-निकर सहित षड्वर्ग गो-यातुधानी ॥
जीव भवदंघ्रि सेवक-बिभीषन बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसितचिंता।
नियम यम सकल-सुरलोक लोकेस लंकेसबस नाथ! अत्यंत भीता ॥
ज्ञान अवधेस, गृह-गेहिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभारहर्त्ता।
भक्त संकष्ट अवलोकि पितुवाक्य-कृत गमन किय गहन वैदेहि-भर्त्ता ॥
कैवल्य-साधन अखिल भालु मर्कट बिपुल, ज्ञान-सुग्रीव कृत जलधिसेतू।
प्रबल वैराग्य दारुण प्रभंजनतनय विषय-बन-दहनमिव धूमकेतू ॥
दुष्ट-दनुजेस निर्बंस कृत दासहित बिश्वदुख-हरन बोधैकरासी।
अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दासतुलसी-हृदय कमलबासी ॥५८॥

---

* यथा भागवत में—न रोधयति माँ योगो न सांख्यं धर्म उद्धव !......
यथावरुधोसत्संगः सर्वसंगापहोहि माम्।

५८—कुनप = शरीर।

दीनउद्धरन रघुवर्य करुनाभवन समनसंताप पापौघहारी ।
बिमल-बिज्ञान बिग्रह अनुग्रहरूप भूपबर बिबुध-नर्मद खरारी ॥
संसारकांतार अतिघोर गंभीर घन गहन तरुकर्म-संकुल, मुरारी
बासना-बल्लि खर-कंटकाकुल बिपुल निबिड़ बिटपाटवी कठिन भारी ॥
बिबिध चितबृत्ति खग-निकर सेनोलूक काक बक गृध्र आमिष-अहारी ।
अखिलखल निपुन-छल-छिद्र निरखत सदा जीव-जन-पथिक-मन-खेदकारी ॥
क्रोध करि मत्त, मृगराज कंदर्प, मद-दर्प वृक भालु अति उग्रकर्म्मा ।
महिष मत्सर क्रूर, लोभ सूकर रूप, फेरु छल, दंभ मार्जार-धर्म्मा ॥
कपट मर्कट, बिकट ब्याघ्र पाखंडमुख दुखद-मृगव्रात उतपातकर्त्ता ।
हृदय अवलोकि यह सोक सरनागतं, पाहि, मां पाहि, भो बिश्वभर्त्ता ॥
प्रबल अहंकार दुर्घट महीधर, महामोह गिरिगुहा निबिड़ांधकारम् ।
चित्त बैताल, मनुजाद मन, प्रेतगन रोग भोगौघ बृश्चिक-बिकारम् ॥
बिषय-सुख-लालसा दंस-मसकादि, खलझिल्लि रूपादि सब सर्प स्वामी ।
तत्र आक्षिप्त तव बिषम माया, नाथ ! अंध मैं मंद ब्यालादगामी ॥
घोर अवगाह भव-आपगा, पापजल-पूर, दुष्प्रेक्ष्य, दुस्तर अपारा ।
मकर षड्वर्ग, गो नक्र, चक्राकुला, कूल सुभ-असुभ, दुख तीव्र धारा ॥
सकल संघट पोच, सोचबस सर्वदा दासतुलसी बिषय-गहन-ग्रस्तम् ।
त्राहि रघुबंसभूषन कृपाकर कठिनकाल-बिकराल-कलि-त्रासत्रस्तम् ॥५९॥

नौमि नारायणं नरं करुणायनं ध्यानपारायणं ज्ञानमूलम् ।
अखिल-संसार-उपकार-कारन सदय-हृदय तपनिरत प्रणतानुकूलम् ॥
श्याम-नव-तामरस-दाम-द्युतिवपुष-छबि, कोटि-मदनार्क अगणित प्रकाशम् ।
तरुण रमणीय राजीव लोचन बदन राकेश, करनिकर हासम् ॥
सकल-सौंदर्य्य-निधि, विपुल-गुण-धाम विधि-वेदबुधशंभुसेवित अमानम् ।
अरुण-पदकंज-मकरंद-मंदाकिनी मधुप-मुनिवृंद कुर्वन्ति पानम् ॥
शक्र-प्रेरित-घोर-मारमद-भंगकृत, क्रोधगत, बोधरत, ब्रह्मचारी ।
मारकंडेय मुनिवर्य हित कौतुका, बिनहिं कल्पांत प्रभु प्रलयकारी ॥
पुन्यबन शैल सरि बदरिकाश्रम सदाऽसीनपद्मासनं एकरूपं ।
सिद्ध-योगींद्र-वृंदारकानंदप्रद भद्रदायक दरस अति अनूपं ॥
मान मनभंग, चितभंग मद, क्रोध लोभादिपर्वतदुर्ग, भुवनभर्त्ता ।

५९—कांतार = जंगल । खर = तीक्ष्ण । ब्रात = झुंड । भो = हे ।
चक्राकुला = भँवरवाली । संघट = जमघट, जमावड़ा ।

द्वेष मत्सर-रागप्रबल प्रत्यूह प्रति, भूरि निर्दय, क्रूर-कर्म-कर्त्ता ॥
विकटतर बक्र क्षुरधार प्रमदा, तीव्र-दर्प कंदर्प खर खड्गधारा ।
धीर-गंभीर-म॰ -पीरकारक तत्र के वराका वयं बिगतसारा ॥
परम दुर्घट पंथ, खल असंगत साथ, नाथ नहि हाथ बर बिरति-यष्टी ।
दरशनारत दास, त्रसित-माया-पास, त्राहि त्राहि ! दास कष्टी ॥
दासतुलसी दीन, धर्मसंबलहीन श्रमित अति खेद, मति मोहनाशी ।
देहि अवलंब न बिलंब अंभोजकर-चक्रधर तेज-बलशर्म-राशी ॥ ६० ॥

सकलसुखकंद आनंदबन-पुण्यकृत बिंदुमाधव द्वंद्व-बिपति-हारी ।
यस्यांघ्रिपाथोज अज शंभु सनकादि सुक शेष मुनिवृंद अलि निलयकारी
अमलमरकत श्याम, काम-सतकोटि-छबि, पीतपट तड़ित इव जलदनीलम् ।
अरुणशतपत्र-लोचन, बिलोकनिचारु, प्रणतजन-सुखद, करुणार्द्रशीलम् ॥
काल-गजराज-मृगराज, दनुजेश-बन-दहन-पावक, मोह-निशि-दिनेशम् ।
चारिभुज चक्र कौमोदकी जलज दर सरसिजोपरि यथा राजहंसम् ॥
मुकुट कुंडल तिलक, अलकअलिव्रातइव, भृकुटिद्विजअधरबरचारुनासा ।
रुचिर सुकपोल, दर ग्रीव सुखसींव, हरि, इंदुकर-कुंदमिव मधुरहासा ॥
उरसि बनमाल सुबिशाल, नव मंजरी भ्राज श्रीवत्स-लांछन, उदारम् ।
परम ब्रह्मण्य, अति धन्य गतमन्यु अज अमित बल बिपुल महिमाअपारम्
हार केयूर, कर कनक-कंकण, रतनजटित मणि मेखला कटिप्रदेशम् ।
युगल पद नूपुरा मुखर कलहंसवत, सुभग सर्वांग, सौंदर्यवेषम् ॥
सकल-सौभाग्य-संयुक्त त्रैलोक्यश्री, दक्षदिशि रुचिर बारीशकन्या ।
बसत बिबुधापगा निकट तट सदन बर, नयन निरखंति नर तेऽतिधन्या
अखिल-मंगल-भवन, निबिड़-संशय-शमन, दमन व्रजिनाटवी कष्टहर्त्ता ।
बिश्वधृत बिश्वहित अजित गोतीत शिव बिश्व-पालन-हरण, बिश्वकर्त्ता ॥
ज्ञानबिज्ञान-बैराग्यऐश्वर्य-निधि, सिद्धि अणिमादि दे भूरि दानम् ।
ग्रसित-भवव्याल अतित्रास तुलसीदास त्राहि श्रीरामउरगारियानम् ॥६१॥

६०—मारकंडेय...... = मारकंडेयजी के कहने से नारायण ने उन्हें प्रलय का दृश्य दिखाया था। मनभंग, चितभंग, क्षुरधार, खड्गधार = बदरिकाश्रम के पर्वतों के नाम। बराका = बेचारा। यष्टी = छड़ी। कष्टी = कष्टवाला।

६१—दक्षदिशि = दक्षिण की ओर। बिंदुमाधव की मूर्ति के साथ लक्ष्मी की मूर्ति दाहिनी ओर थी। यह पुरानी मूर्ति अभी तक है। व्रजिनाटवी = पापों का जंगल।

राग आसावरी

इहै परम फल परम बड़ाई ।
नखसिख रुचिर बिंदुमाधव-छबि निरखहिं नयन अघाई ॥
बिसद किसोर पीन सुंदर बपु स्याम सुरुचि अधिकाई ।
नीलकंज बारिद तमाल मनु इन तनु तें दुति पाई ॥
मृदुल चरन सुभ चिह्न पदज नख अति अद्भुत उपमाई ।
अरुन नील पाथोज प्रसव जनु मनिजुत दल समुदाई ॥
जातरूप मनिजटित मनोहर नूपुर जन-सुखदाई ।
जनु हर उर हरि बिबिध रूप धरि रहे बर भवन बनाई ॥
कटितट रटति चारु किंकिनि, रव अनुपम बरनि न जाई ।
हेमजलज कल कलित मध्य जनु मधुकर मुखर सोहाई ॥
उर बिसाल भृगुचरन चारु अति सूचत कोमलताई ।
कंकन चारु बिबिध भूषन बिधि रचि निज कर मन लाई ॥
गजमनि-माल बीच भ्राजत कहि जाति न पदिक-निकाई ।
जनु उडुगन-मंडल बारिद पर नवग्रह रची अथाई ॥
भुजँग-भोग भुजदंड, कंज दर चक्र गदा बनि आई ।
सोभासींव ग्रीव चिबुकाधर बदन अमित छबि छाई ॥
कुलिस-कुंदकुडमल-दामिनि-दुति दसननि देखि लजाई ।
नासा नयन कपोल ललित, श्रुति कुंडल भ्रू मोहि भाई ॥
कुंचित कच सिर मुकुट भाल पर तिलक कहौं समुझाई ।
अलप तड़ित जुगरेख इंदु महँ रहि तजि चंचलताई ॥
निर्मल पीत दुकूल अनूपम उपमा हिय न समाई ।
बहु मनिजुत गिरिनील-सिखर पर कनक-बसन रुचिराई ॥
दच्छभाग अनुराग सहित इंदिरा अधिक ललिताई ।
हेमलता जनु तरु तमाल ढिग नील निचोल ओढ़ाई ॥
सत सारदा सेस स्रुति मिलि करि सोभा कहि न सिराई ।
तुलसिदास मतिमंद द्वंद्वरत कहै कौन बिधि गाई ? ॥ ६२ ॥

६२—हरि = कामदेव । पदिक छाती पर पहिनने का एक भूषण विशेष । अथाई = बैठक, सभा । भुजंगभोग = भुजंग = नाग = हाथी + भोग = सूँड़, [illegible]

सब साधनफल कूप-सरित-सर-सागर-सलिल निरासा।
रामनाम-रति स्वाति-सुधा सुभ-सीकर प्रेम-पियासा॥
गरजि तरजि पाषान बरषि पवि प्रीति परखि जिय जानै।
अधिक अधिक अनुराग उमँग उर, पर परमिति पहिचानै॥
रामनाम गति, रामनाम मति, रामनाम-अनुरागी।
ह्वै गए, हैं, जे होहिंगे आगे तेइ गनियत बड़भागी॥
एकअंग मग अगम गवन करि बिलमु न छिन छिन छाहैं।
तुलसी हित अपनो अपनी दिसि निरुपधि नेम निबाहैं॥ ६५॥

राम जपु, राम जपु, राम जपु, बावरे!
घोर भव-नीरनिधि नाम निजु नाव, रे!
एकहि साधन सब रिधि सिधि साधि, रे!
ग्रसे कलि रोग जोग संयम समाधि, रे!
भलो जो है, पोच जो है, दाहिनो जो बाम, रे!
रामनाम ही सों अंत सबही को काम, रे!
जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि, रे!
धुवाँ के से धौरहर देखि तू न भूलि, रे!
रामनाम छाँड़ि जो भरोसो करै और, रे!
तुलसी परोसो त्यागि माँगै कूर कौर, रे!॥ ६६॥

रामनाम जपु जिय सदा सानुराग, रे!
कलि न बिराग जोग जाग तप त्याग, रे!
राम-सुमिरन सब बिधि ही को राज, रे!
राम को बिसारिबो निषेध-सिरताज, रे!
रामनाम महामनि, फनि जगजाल, रे!
मनि बिना फनि जियै ब्याकुल बिहाल, रे!
रामनाम कामतरु देत फल चारि, रे!
कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि, रे!
रामनाम प्रेम परमारथ को सार, रे!
रामनाम तुलसी को जीवन-अधार, रे!॥ ६७॥

६५—एक अंग = अनन्य, एकांगी।

६७—बिधि को राज = वेदशास्त्र की सारी विधियों या आज्ञाओं में श्रेष्ठ। निषेध-सिरताज = सब निषिद्ध बातों से बढ़कर।

राम राम राम जीव जौलों तू न जपिहै ।
तौ लौं तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपिहै ॥
सुरसरि-तीर बिनु नीर दुख पाइहै ।
सुरतरु तरे तोहि दारिद सताइहै ॥
जागत बागत सपने न सुख सोइहै ।
जनमि जनमि जुग जुग जग रोइहै ॥
छूटिबे के जतन बिसेष बाँध्यो जायगो ।
ह्वैहै बिष भोजन जो सुधा सानि खायगो ॥
तुलसी तिलोक तिहूँ काल तोसे दीन को ।
रामनाम ही की गति जैसे जल मीन को ॥ ६८ ॥

सुमिरु सनेह सों तू नाम रामराय को ।
संबल निसंबल को, सखा असहाय को ॥
भाग है अभागे हू को, गुन गुनहीन को ।
गाँहक गरीब को दयालु दानि दीन को ॥
कुल अकुलीन को सुन्यो है, बेद साखि है ।
पाँगुरे को हाथ पाँय, आँधरे को आँखि है ॥
माय बाप भूखे को, अधार निराधार को ।
सेतु भवसागर को, हेतु सुखसार को ॥
पतित-पावन रामनाम सों न दूसरो ।
सुमिरि सुभूमि भयो तुलसी सो ऊसरो ॥ ६९ ॥

भलो भली भाँति है जो मेरे कहे लागिहै
मन रामनाम सों स्वभाव अनुरागि है ॥
रामनाम को प्रभाव जानु जूड़ी आगिहै ।
सहित सहाय कलिकाल भीरु भागिहै ॥
राग रामनाम सों, बिराग जोग जागिहै ।
आगे बिधि भाल हू न कर्म-दाग दागिहै ॥
रामनाम-मोदक सनेह-सुधा पागिहै ।
पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै ॥
कामतरु रामनाम, जोइ जोइ माँगिहै ।
तुलसिदास स्वारथ परमारथ न खाँगिहै ॥ ७० ॥

६९—संबल = [सबल] कलेवा, राहखर्च ।
७०—खाँगिहै = कम होगा ।

ऐसेउ साहब की सेवा सों होत चोर, रे !
आपनी न बूझि, ना कहै को राढ़रोर, रे !
मुनि-मन-अगम, सुगम माइ बाप सो।
कृपासिंधु, सहज सखा, सनेही आप सो ॥
लोक-वेद-विदित बड़ो न रघुनाथ सो।
सब दिन, सब देस, सबही के साथ सो ॥
स्वामी सर्वज्ञ सों चलै न चोरी चार की।
प्रीति-पहिचानि, यह रीति दरबार की ॥
काय न कलेस लेस, लेत मानि मन की।
सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की ॥
रीझे बस होत, खीझे देत निज धाम, रे !
फलत सकल फल कामतरु-नाम, रे !
बेंचे खोटो दाम न मिलै, न राखे काम, रे !
सोउ तुलसी निवाज्यो ऐसो राजा राम, रे ! ॥ ७१ ॥

मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई।
हौं तो साईं-द्रोही, पै सेवक-हितु साँई ॥
राम सों बड़ो है कौन ? मोसों कौन छोटो ?
राम सों खरो है कौन ? मो सों कौन खोटो ?
लोक कहै राम को गुलाम हौं, कहावौं।
एतो बड़ो अपराध, भो न मन बावों ॥
पाथ-माथे चढ़े तृन तुलसी जो नीचो।
बोरत न बारि ताहि जानि आपु सींचो ॥ ७२ ॥

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग-जामिनी।
देह गेह नेह जानु जैसे घन-दामिनी ॥
सोवत सपने सहै संसृति-संताप, रे
बूड़ो मृगबारि, खायो जेंवरी को साँप, रे !
कहैं बेद बुध तू तौ बूझि मन माहिं रे
दोष दुख सपने के जागे ही पै जाहिं, रे !
तुलसी जागे तें जाइ ताप तिहूँ ताय, रे !
रामनाम सुचि रुचि सहज सुभाय, रे ! ॥ ७३ ॥

७१—राढ़ + रोर = बेकाम और उद्दंड। चार = नौकर, दूत।
७२—बावों = रखते हैं। पाथ माथे = पानी के ऊपर।

राग विभास

जानकीस की कृपा जगावती, सुजान जीव !
जागि त्यागु मूढ़तानुरागु श्री हरे ।
करु बिचार, तजु बिकार, भजु उदार रामचंद्र,
भद्रसिंधु दीनबंधु, बेद बदत, रे !
मोहमय कुहू-निसा बिसाल काल बिपुल सोयो,
खोयो सो अनूप रूप स्वप्न हू परे ।
अब प्रभात प्रगट ज्ञान-भानु के प्रकास,
बासना-सराग-मोह-द्वेष-निबिड़-तम टरे ।
भागे मद-मान-चोर भोर जानि जातुधान,
काम-क्रोध-लोभ-छोभ-निकर अपडरे ।
देखत रघुबर-प्रताप बीते संताप पाप,
ताप त्रिबिध प्रेम-आप दूर ही करे ।
स्रवन सुनि गिरा गँभीर जागे अति धीर,
बीर बर बिराग तोष सकल संत आदरे ।
तुलसिदास प्रभु कृपालु निरखि जीवजन बिहालु
भंज्यो भवजालु परम मंगलाचरे ॥ ७४ ॥

राग ललित

खोटो खरो रावरो हौं, रावरी सौं; रावरे सों
झूठ क्यों कहौंगो ? जानौ सबही के मन की
करम बचन हिये कहौं न कपट किये,
ऐसी हठ जैसी गाँठि पानी परे सन की ॥
दूसरो भरोसो नाहिं, बासना उपासना को
बासव, बिरंचि, सुर, नर, मुनिगन की ।
स्वारथ के साथी, मेरे हाथ सों न लेवा देई,
काहू तो न पीर रघुबीर दीनजन की ॥

७४—प्रेम-आप = प्रेम रूपी जल ।

७५—साँप सभा = दिव्य परीक्षा जिसमें सर्प, अग्नि आदि द्वारा अभियुक्त के दोषी या निर्दोष होने का निश्चय किया जाता था। दिव्य देना = परीक्षा देना। रोटी लूगा = अन्न वस्त्र ।

साँप सभा साबर लबार भए देव दिव्य,
　　दुसह साँसति कीजै आगे दै या तन की।
साँचे परे पाऊँ पान, पंचन में पन प्रमान,
　　तुलसी-चातक-आस राम-स्याम-घन की॥ ७५॥

राम को गुलाम नाम रामबोला राख्यो राम,
　　काम यहै नाम द्वै हौं कबहुँ कहत हौं।
रोटी लूगा नीके राखै, आगे हू की बेद भाषै
　　भलो ह्वैहै तेरो, ताते आनँद लहत हौं॥
बाँधो हौं करम जड़ गरब गूढ़ निगड़
　　सुनत दुसह हौं तो साँसति सहत हौं।
आरत-अनाथ-नाथ कौसलपाल कृपाल
　　लीन्हौं छीनि दीन देख्यो दुरित दहत हौं॥
बूझ्यो ज्योंहीं, कह्यो "मैं हूँ चेरो ह्वैहौं रावरो जू,
　　मेरो कोऊ कहूँ नाहिं, चरन गहत हौं।
मीजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि,
　　सेवक सुखद सदा बिरद बहत हौं॥
लोग कहैं पोचु, सो न सोचु न सँकोचु,
　　मेरे ब्याह न बरेखी, जाति पाँति न चहत हौं।
तुलसी अकाज काज राम ही के रीझे खीझे,
　　प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं॥ ७६॥

जानकी-जीवन, जगजीवन, जगतहित,
　　जगदीस, रघुनाथ, राजीव-लोचन राम।
सरद-बिधु-बदन, सुखसील, श्रीसदन,
　　सहज सुंदर तनु, सोभा अगनित काम॥
जग सुपिता, सुमातु, सुगुरु, सुहित, सुमीत,
　　सबको दाहिनो, दीनबंधु काहू को न बाम।
आरतहरन, सरनद, अतुलित दानि,
　　प्रनतपाल, कृपालु, पतित-पावन नाम॥
सकल-बिस्व-बंदित, सकल-सुर-सेवित,
　　आगम निगम कहैं रावरे ई गुनग्राम।
इहै जानिकै तुलसी तिहारो जन भयो,
　　न्यारो कै गनिबो जहाँ गने गरीब गुलाम॥ ७७॥

राग टोडी

दीन को दयालु दानि दूसरो न कोऊ।
जाहि दीनता कहौं हौं दीन देखौं सोऊ॥
मुनि सुर नर नाग असुर साहिब तौ घनेरे।
पै तौलौं जौलौं रावरे न नेकु नयन फेरे॥
त्रिभुवन तिहुँ काल बिदित, बदत बेद चारी।
आदि अंत मध्य राम साहिबी तिहारी॥
तोहि माँगि माँगनो न माँगनो कहायो।
सुनि सुभाव सील सुजस जाचन जन आयो॥
पाहन, पसु, बिटप, बिहँग अपने करि लीन्हें।
महाराज दसरथ के! रंक राय कीन्हें॥
तू गरीब को निवाज, हौं गरीब तेरो।
बारक कहिये कृपालु! तुलसिदास मेरो॥ ७८॥

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुंज-हारी॥
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मोसो?
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसो॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तुही ठाकुर, हौं चेरो।
तात, मात, गुरु, सखा तू सब बिधि हितु मेरो॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन सरन पावै॥ ७९॥

और काहि माँगिए को माँगिबो निवारै?
अभिमतदातार कौन दुखदरिद्र दारै?
धरम-धाम राम काम-कोटि-रूप रूरो।
साहिब सब बिधि सुजान, दान-खड्ग-सूरो॥
सुसमय दिन द्वै निसान सब के द्वार बाजै।
कुसमय दसरथ के दानि! तैं गरीब निवाजै॥
सेवा बिनु, गुन-बिहीन दीनता सुनाए।
जे जे तैं निहाल किए फूले फिरत पाए॥
तुलसिदास जाचक-रुचि जानि दान दीजै।
रामचंद्र चंद्र तू! चकोर मोहिं कीजै॥ ८०॥

७८— माँगनो = मगन, याचक।

दीनबंधु, सुखसिंधु, कृपाकर, कारुनीक रघुराई ।
सुनहु नाथ ! मन जरत त्रिबिध ज्वर, करत फिरत बौराई ॥
कबहुँ जोगरत, भोगनिरत सठ, हठ बियोग बस होई ।
कबहुँ मोहबस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई ॥
कबहुँ दीन मतिहीन रंकतर, कबहुँ भूप अभिमानी ।
कबहुँ मूढ़ पंडित बिडंबरत, कबहुँ धरम-रत ज्ञानी ॥
कबहुँ देख जग धनमय रिपुमय, कबहुँ नारिमय भासै ।
संसृति-सन्निपात दारुन दुख बिनु हरिकृपा न नासै ॥
संजम जप तप नेम धरम ब्रत बहु भेषज समुदाई ।
तुलसिदास भवरोग रामपद-प्रेमहीन नहिं जाई ॥ ८१ ॥

मोहजनित मल लाग बिबिध बिधि, कोटिहु जतन न जाई ।
जनम जनम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक लपटाई ॥
नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन बिषय सँग लागे ।
हृदय मलिन बासना मान मद, जीव सहज सुख त्यागे ॥
परनिंदा सुनि स्रवन मलिन भए, बचन दोष पर गाए ।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ चरन बिसराए ॥
तुलसिदास ब्रत दान ज्ञान तप सुद्धिहेतु स्रुति गावै ।
रामचरन-अनुराग-नीर बिनु मल अति नास न पावै ॥ ८२ ॥

राग जयतश्री

कछु ह्वै न आइ गयो जनम जाय ।
अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि भजे न राम मन बचन काय ॥
लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चौगुनी चाय ।
जोबन-जुर जुबती-कुपथ्य करि भयो त्रिदोष भरि मदन बाय ॥
मध्य बयस धनहेतु गँवाई कृषी बनिज नाना उपाय ।
रामबिमुख सुख लह्यो न सपनेहुँ, निसि बासर तयो तिहूँ ताय ॥
सेये नहिं सीतापति-सेवक साधु सुमति भलि भगति भाय ।
सुने न पुलकि तनु, कहे न मुदित मन, किए जे चरित रघुबंसराय ॥
अब सोचत मनि बिनु भुअंग ज्यों बिकल अंग दले जरा धाय ।
सिर धुनि धुनि पछितात मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दाय ॥
जिन्ह लगि निज परलोक बिगार्‌यो ते लजात होत ठाढ़े ठायँ ।
तुलसी अजहुँ सुमिरि रघुनाथहि तर्‌यो गयंद जाके अर्द्ध नायँ ॥ ८३ ॥

तौ तू पछितैहै मन मींजि हाथ।
भयो सुगम तो को अमर-अगम तनु समुझि धौं कत खोवत अकाथ॥
सुखसाधन हरि बिमुख बृथा, जैसे श्रम-फल घृतहित मथे पाथ।
यह बिचारि तजि कुपथ कुसंगति चलु सुपंथ मिलि भले साथ॥
देखु राम-सेवक सुनु कीरति, रटहि नाम करि गान गाथ।
हृदय आनु धनुबान-पानि प्रभु लसे मुनिपट कटि कसे भाथ॥
तुलसिदास परिहरि प्रपंच सब नाउ रामपद-कमल माथ।
जनि डरपहि तो से अनेक खल अपनाये जानकीनाथ॥ ८४॥

राग धनाश्री

मन, माधव को नेकु निहारहि।
सुनु सठ, सदा रंक के धन ज्यों छिन-छिन प्रभुहिं सँभारहि॥
सोभासील ज्ञान गुन-मंदिर सुंदर परम उदारहि।
रंजन-संत अखिल-अघ-गंजन-भंजन-बिषय-बिकारहि॥
जौ बिनु जोग जग्य ब्रत संजम गयो चहहि भव पारहि।
तौ जनि तुलसिदास निसि बासर हरिपद-कमल बिसारहि॥ ८५॥

इहै कह्यो सुत, बेद चहूँ।
श्री रघुबीर-चरन-चिंतन तजि नाहिन ठौर कहूँ॥
जाके चरन बिरंचि सेइ सिधि पाई संकर हूँ।
सुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ॥
जद्यपि परम चपल श्री संतत, थिर न रहति कतहूँ।
हरिपद-पंकज पाइ अचल भइ करम बचन मनहूँ॥
करुनासिंधु भगत-चिंतामनि सोभा सेवत हूँ।
और सकल सुर असुर ईस सब खाए उरग छहूँ॥
सुरुचि कह्यो सोई सत्य, तात! अति परुष बचन जबहूँ।
तुलसिदास रघुनाथ-बिमुख नहि मिटै बिपति कबहूँ॥ ८६॥

सुनु मन मूढ़, सिखावन मेरो।
हरिपद-बिमुख लह्यो न काहु सुख सठ यह समुझि सबेरो॥
बिछुरे ससि रबि, मन नयननि तें पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो॥

८३—दाय = दावँ या अवसर।

जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित बहिबो ताहू केरो॥
छुटै न बिपति भजे बिनु रघुपति स्रुति संदेह निबेरो।
तुलसिदास सब आस छाँड़ि करि होहि राम कर चेरो॥ ८७॥

कबहूँ मन बिस्राम न मान्यो।
निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज सुख जहँ तहँ इंद्रिन तान्यो॥
जदपि बिषय सँग सह्यो दुसह दुख बिषम जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममताबस, जानतहूँ नहिं जान्यो॥
जनम अनेक किए नाना बिधि करम-कीच चित सान्यो।
होइ न बिमल बिबेक-नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो॥
निज हित नाथ पिता गुरु हरि सों हरषि हृदय नहिं आन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाइ ? सर खनतहि जनम सिरान्यो॥ ८८॥

मेरो मन हरि ! हठ न तजै।
निसि दिन नाथ ! देउँ सिख बहु बिधि, करत सुभाय निजै॥
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै॥
लोलुप भ्रम गृहपसु ज्यों जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै।
तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै॥
हौं हार्‌यो करि जतन बिबिध बिधि, अतिसय प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै॥ ८९॥

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि रामभगति-सुरसरिता आस करत ओसकन की॥
धूमसमूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होति लोचन की॥
ज्यों गच-काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति मन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की॥ ९०॥

८६—उरग छहूँ=काम, क्रोध आदि षड् रिपु। सुरुचि=ध्रुव की सौतेली माता। यह भजन ध्रुव की माता के उपदेश के रूप में है, जो उन्होंने ध्रुव को दिया था।

८९—गृहपसु=कुत्ता।

९०—मति=सदृश (पूरबी-मतिन)।

नाचत ही निसि दिवस मर्यो।
तब ही तें न भयो हरि! थिर जब तें जिव नाम धर्यो।
बहु बासना, बिबिध कंचुक-भूषन-लोभादि भर्यो।
चर अरु अचर गगन जल थल में कौन स्वाँगु न कर्यो?
देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिं जाँचत कोउ उबर्यो।
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तौ न हर्यो॥
थके नयन पद पानि सुमति बल, संग सकल बिछुर्यो।
अब रघुनाथ सरन आयो जन भवभय-बिकल डर्यो॥
जेहि गुन तें बस होहु रीझि करि सो मोहि सब बिसर्यो।
तुलसिदास निज भवनद्वार प्रभु दीजै रहन पर्यो॥ ९१॥

माधव जू मो सम मंद न कोऊ।
जद्यपि मीन पतंग हीनमति मोहिं नहिं पूजहिं ओऊ॥
रुचिर रूप-आहार-बस्य उन पावक लोह न जान्यो।
देखत बिपति बिषय न तजत हौं, तातें अधिक अजान्यो॥
महामोह-सरिता अपार महँ संतत फिरत बह्यो।
श्रीहरिचरन-कमल नौका तजि फिरि फिरि फेन गह्यो॥
अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति ज्यों भरि मुख पकर्यो।
निज तालूगत रुधिर पान करि मन संतोष धर्यो॥
परम-कठिन-भवब्याल-ग्रसित हौं, त्रसित भयो अति भारी।
चाहत अभय भेक सरनागत खगपति-नाथ बिसारी॥
जलचर बृंद जाल-अंतरगत होत सिमिटि इक पासा।
एकहि एक खात लालच-बस, नहिं देखत निज नासा॥
मेरे अघ सारद अनेक जुग गनत पार नहिं पावै।
तुलसीदास पतित-पावन प्रभु यह भरोस जिय आवै॥ ९२॥

कृपा सो धौं कहाँ बिसारी राम?
जेहि करुना सुनि श्रवन दीन-दुख धावत हौ तजि धाम॥
नागराज निज बल बिचारि हिय हारि चरन चित दीन।
आरत गिरा सुनत खगपति तजि चलत बिलंब न कीन॥
दितिसुत-त्रास-त्रसित निसि दिन प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी।
अतुलित बल मृगराज-मनुज तनु दनुज हत्यो श्रुति साखी॥
भूप सदसि सब नृप बिलोकि प्रभु राखु कह्यो नर-नारी।
बसन पूरि, अरि-दरप दूरि करि भूरि कृपा दनुजारी॥

एक एक रिपु ते त्रासित जन तुम राखे रघुबीर ।
अब मोहिं देत दुसह दुख बहु रिपु कस न हरहु भवपीर ॥
लोभ ग्राह, दनुजेस क्रोध, कुरुराज-बंधु खल मार ।
तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख भंजहु राम उदार ॥ ९३ ॥

काहे तें हरि मोहिं बिसारो ।
जानत निज महिमा, मेरे अघ, तदपि न नाथ सँभारो ॥
पतितपुनीत दीनहित असरन-सरन कहत श्रुति चारो ।
हौं नहिं अधम सभीत दीन ? किधौं बेदन मृषा पुकारो ? ॥
खग-गनिका-गज-ब्याध-पाँति जहँ तहँ हौं हूँ बैठारो ।
अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो टारो ॥
जो कलिकाल प्रबल अति होतो तुव निदेस तें न्यारो ।
तौ हरि रोस भरोस दोस गुन तेहि भजते तजि गारो ॥
मसक बिरंचि, बिरंचि मसक सम करहु प्रभाव तुम्हारो ।
यह सामर्थ्य अछत मोहि त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो ॥
नाहिंन नरक परत मो कहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो ।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु नामहु पाप न जारो ॥ ९४ ॥

तऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं ।
जौं जमराज काज सब परिहरि यही ख्याल उर अनिहैं ॥
चलिहैं छूटि पुंज पापिन के असमंजस जिय जनिहैं ।
देखि खलल अधिकार प्रभू सों (मेरी) भूरि भलाई भनिहैं ॥
हँसि करिहैं परतीति भगत की भगतसिरोमनि मनिहैं ।
ज्यों त्यों तुलसिदास कोसलपति अपनायहि पर बनिहैं ॥ ९५ ॥

जौ पै जिय धरिहौ अवगुन जन के ।
तौ क्यों कटत सुकृत-नख तें मोपै बिटप-बृंद अघ-बन के ॥
कहिहै कौन कलुष मेरे कृत करम बचन अरु मन के ।
हारहिं अमित सेष सारद श्रुति गिनत एक एक छन के ॥
जो चित चढ़ै नाम-महिमा निज गुन-गन पावन पन के ।
तौ तुलसिहिं तारिहौ बिप्र ज्यों दसन तोरि जमगन के ॥ ९६ ॥

९३—मृगराज-मनुज = नरसिंह । नर-नारी = अर्जुन की स्त्री द्रौपदी ।
९४—पनवारो = पत्तल । गारो=गर्व या गौरव ।

जो पै हरि जन के अवगुन गहते।
तौ सुरपति कुरुराज बालि सों कत हठि बैर बिसहते ?
जौ जप-जाप-जोग-ब्रत-बरजित केवल प्रेम न चहते।
तौ कत सुर मुनिबर बिहाय ब्रज गोपगेह बसि रहते ?
जौ जहँ तहँ पन राखि भगत को भजन-प्रभाव न कहते।
तौ कलि कठिन करम-मारग जड़ हम केहि भाँति निबहते ?
जो सुतहित लिए नाम अजामिल के अघ अमित न दहते।
तौ जमभट साँसति-हर हम से बृषभ खोजि खोजि नहते ॥
जौ जग-बिदित पतित-पावन अति बाँकुर बिरद न बहते।
तौ बहुकलप कुटिल तुलसी से सपनेहुँ सुगति न लहते ॥ ९७ ॥

ऐसी हरि करत दास पर प्रीती।
निज प्रभुता बिसारि जन के बस होत सदा यह रीती ॥
जिन बाँधे सुर असुर नाग नर प्रबल करम की डोरी।
सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि बाँध्यो सकत न छोरी ॥
जाकी मायाबस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो।
करतल ताल बजाइ ग्वाल-जुवतिन तेहि नाच नचायो ॥
बिस्वंभर, श्रीपति, त्रिभुवन-पति बेद-बिदित यह लीख।
बलि सों कछु न चली प्रभुता बरु ह्वै द्विज माँगी भीख ॥
जाको नाम लिए छूटत भव जनम-मरन-दुखभार।
अंबरीष हित लागि कृपानिधि सोइ जनम्यो दस बार ॥
जोग बिराग ध्यान जप तप करि जेहि खोजत मुनि ज्ञानी।
बानर भालु चपल पसु पाँवर, नाथ तहाँ रति मानी ॥
लोकपाल, जम, काल, पवन, रवि, ससि सब आज्ञाकारी।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के द्वार बेत-करधारी ॥ ९८ ॥

बिरद गरीबनिवाज राम को।
गावत बेद पुरान संभु सुक प्रगट प्रभाव नाम को ॥
ध्रुव, प्रह्लाद, बिभीषन, कपि, जदुपति, पांडव, सुदाम को।
लोक सुजस, परलोक सुगति इनमें को हो राम काम को ॥

९७—नहते = नाँधते, जोतते। ९८—लीख = लकीर, पक्की बात।
९८—बेत-करधारी = छड़ी बरदार।

गनिका, कोल, किरात, आदि-कवि, इनतें अधिक बाम को ?
बाजिमेध कब कियो अजामिल, गज गायो कब साम को ?
छली मलीन हीन सबही अँग, तुलसी सो छीन छाम को ?
नाम-नरेस-प्रताप प्रबल जग जुग जुग चालत चाम को ॥ ९९ ॥

सुनि सीतापति सील सुभाउ।
मोद न मन, तन पुलक, नयन जल सो नर खेहर खाउ॥
सिसुपन तें पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ।
कहत राम-बिधु-बदन रिसौहैं सपनेहुँ लख्यो न काउ॥
खेलत संग अनुज बालक नित जोगवत अनट अपाउ।
जीति हारि चुचुकारि दुलारत, देत दिवावत दाउ॥
सिला साप-संताप-बिगत भइ परसत पावन पाउ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुए पछिताउ॥
भवधनु भंजि निदरि भूपति भृगुनाथ खाइ गए ताउ।
छमि अपराध छमाइ पाँइ परि, इतौ न अनत समाउ॥
कह्यो राज, बन दियो नारिबस, गरि गलानि गयो राउ।
ता कुमातु को मन जोगवत ज्यों निज तनु मरम कुघाउ॥
कपि सेवाबस भए कनौड़े, कह्यो, पवनसुत आउ।
देबे को न कछू रिनियाँ हौं, धनिक तु पत्र लिखाउ॥
अपनाए सुग्रीव बिभीषन, तिन न तज्यो छल-छाउ।
भरतसभा सनमानि सराहत होत न हृदय अघाउ॥
निज करुना करतूति भगत पर चपत चलत चरचाउ।
सकृत प्रनाम प्रनत-जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ॥
समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास रामपद पाइहै प्रेम-पसाउ॥ १०० ॥

जाउँ कहाँ तजि चरन तुम्हारे ?
काको नाम पतितपावन जग ? केहि अति दीन पियारे ?
कौने देव बराय बिरद-हित हठि हठि अधम उधारे ?

९९—जदुपति = उग्रसेन। सुदाम = सुदामा। नाम को चालत = नाम का सिक्का चलाता है।

१००—अनट = अन्याय। अपाउ = नटखटी। समाउ = समाई, जगह सहन शक्ति। पसाउ = प्रसाद।

खग, मृग, ब्याध, पषान, बिटप, जड़ जवन कवन सुर तारे ?
देव, दनुज, मुनि, नाग, मनुज सब माया-बिबस बिचारे।
तिनके हाथ दासतुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारे ? ॥ १०१ ॥

हरि तुम बहुत अनुग्रह कीन्हों।
साधन-धाम बिबुध-दुर्लभ तनु मोहि कृपा करि दीन्हों ॥
कोटिहुँ मुख कहि जायँ न प्रभु के एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और माँगिहौं दीजै परम उदार ॥
बिषय-बारि मन-मीन भिन्न नहिं होत कबहुँ पल एक।
तातें सहिय बिपति अति दारुन जनमत जोनि अनेक ॥
कृपा-डोरि, बंसी-पद-अंकुस, परम प्रेम-मृदु-चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो ॥
है स्रुति-बिदित उपाय सकल सुर केहि केहि दीन निहोरै ?
तुलसिदास यहि जीव मोह-रजु जेहि बाँध्यो सोइ छोरै ॥ १०२ ॥

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस बिस्वास भरोसो हरो जीव-जड़ताई ॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति, कछु रिधि सिधि, बिपुल बड़ाई।
हेतुरहित अनुराग रामपद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥
कुटिल करम लै जाय मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जिनि छिन छोह छाँड़ियो कमठ-अंड की नाईं ॥
यहि जग में जहँ लगि या तनु की प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं ॥ १०३ ॥

जानकीजीवन की बलि जैहौं।
चित कहै रामसीय-पद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहौं ॥
उपजी उर प्रतीति, सपनेहुँ सुख प्रभुपद बिमुख न पैहौं।
मन समेत या तन के बासिन इहै सिखावन दैहौं ॥
स्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहौं।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहौं ॥
नातो नेह नाथ सों करि सब नातो नेह बहैहौं।
यह छरभार ताहि तुलसी जग जाको दास कहैहौं ॥ १०४ ॥

१०१—बराय = चुन चुन कर।

१०४—छरभार = उत्तरदायित्व का बोझा, कामों की सँभाल।

अब लौं नसानी अब न नसैहौं।
रामकृपा भवनिसा सिरानी जागे फिर न डसैहौं॥
पायो नाम चारु चिंतामनि, उर-कर तें न खसैहौं।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहि कसैहौं॥
परबस जानि हँस्यो इन इंद्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥ १०५॥

राग रामकली

महाराज राम आदर्‍यो धन्य सोई।
गरुअ, गुनरासि, सर्वज्ञ, सुकृती, सूर, सीलनिधि, साधु तेहि सम न कोई॥
कीस, केवट, उपल, भालु, निसिचर, सबरि, गीध सम-दम-दया-दान-हीने।
नाम लिए राम किए परमपावन सकल नरन तर तिनके गुनगान कीने॥
ब्याध-अपराध की साध राखी कौन? पिंगला कौन मति भगति भेई?
कौन धौं सोमजागी अजामिल अधम? कौन गजराज धौं बाजपेयी?
पंडुसुत, गोपिका, बिदुर, कुबरी सबरि सोध किए सुद्धता लेस कैसो।
प्रेम लखि कृष्ण किए आपने तिनहुँ को, सुजस संसार हरिहर को जैसो॥
कोल, खस, भिल्ल, जमनादि खल राम कहि नीच ह्वै ऊँच पद को न पायो?
दीन-दुख-दमन श्रीरमन करुनाभवन पतित-पावन बिरद बेद गायो॥
मंदमति, कुटिल, खल-तिलक तुलसी सरिस भो न तिहुँ लोक तिहुँ काल कोऊ।
नाम की कानि पहिचानि जन आपनो
ग्रसत कलिब्याल राख्यो सरन सोऊ॥ १०६॥

राग बिलावल

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम।
सुभग सरोरुह-लोचन सुठि सुंदर स्याम॥
सिय समेत सोभित सदा छबि अमित अनंग।
भुज बिसाल सर धनु धरे, कटि चारु निषंग॥
बलि पूजा चाहत नहीं चाहै एक प्रीति।
सुमिरत ही मानै भलो, पावन सब रीति॥
देइ सकल सुख, दुख दहै आरत-जन-बंधु।
गुन गहि अघ अवगुन हरै, अस करुनासिंधु॥
देस काल पूरन सदा, बद बेद पुरान।
सब को प्रभु, सब में बसै, सब की गति जान॥

१०६—भेई = भिगोई, डुबाई। सोमजागी = सोम याग करनेवाला।

को करि कोटिक कामना पूजै बहु देव ?
तुलसिदास तेहि सेइए संकर जेहि सेव ॥ १०७ ॥

बीर महा अवराधिए साधे सिधि होय ।
सकल काम पूरन करै जानै सब कोय ॥
बेगि, बिलंब न कीजिए, लीजै उपदेस ।
बीज-मंत्र जपिए सोई जो जपत महेस ॥
प्रेमबारि तर्पन भलो, घृत सहज सनेह ।
संसय समिधि, अगिनि छमा, ममता बलि देह ॥
अघ उचाटि मन बस करै, मारै मद मार ।
आकरषै सुख संपदा संतोष बिचार ॥
जे यहि भाँति भजन किए मिले रघुपति ताहि ।
तुलसिदास प्रभु पथ चढ्यो, जो लेहु निबाहि ॥ १०८ ॥

कस न करहु करुना हरे ! दुखहरन मुरारि !
त्रिबिध-ताप-संदेह-सोक-संसय-भय-हारि ॥
यह कलिकाल-जनित मल मतिमंद मलिनमन ।
तेहि पर प्रभु नहिं कर सँभार, केहि भाँति जियै जन ?
सब प्रकार समरथ, प्रभो ! मैं सब बिधि दीन ।
यह जिय जानि द्रवहु नहीं मैं करम-बिहीन ॥
भ्रमत अनेक जोनि रघुपति ! पति आन न मोरे ।
दुख सुख सह्यौ रह्यौ सदा, सरनागत तोरे ॥
तो सम देव न कोउ कृपालु समुझौं मन माहीं ।
तुलसिदास हरि तोषिए सो साधन नाहीं ॥ १०९ ॥

कहु केहि कहिए कृपानिधे ! भवजनित बिपति अति ।
इंद्रिय सकल बिकल सदा निज निज सुभाउ रति ॥
जो सुख संपति, सरग नरक संतत सँग लागी ।
हरि परिहरि सोइ जतन करत मन मोर अभागी ॥
मैं अति दीन, दयालु देव, सुनि मन अनुरागे ।
जो न द्रवहु, रघुबीर धीर ! काहे न दुख लागे ॥
जद्यपि मैं अपराध-भवन, दुखसमन मुरारे ।
तुलसिदास कहँ आस इहै बहु पतित उधारे ॥ ११० ॥

१०८--समिधि = लकड़ी ।

केसव कहि न जाइ का कहिए ?
देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए ॥
सून्य भीति पर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे ।
धोए मिटै न, मरै भीति-दुख, पाइय यहि तनु हेरे ॥
रबिकर-नीर बसै अति दारुन मकररूप तेहि माहीं ।
बदनहीन सो ग्रसै चराचर पान करन जे जाहीं ॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम सो आपन पहिचानै ॥ १११ ॥

केसव, कारन कौन गुसाईं ।
जेहि अपराध असाधु जानि मोहि तजेहु अग्य की नाईं ॥
परम पुनीत संत कोमलचित तिनहिं तुमहिं बनि आई ।
तौ कत बिप्र ब्याध गनिकहिं तारेहु ? कछु रही सगाई ॥
काल करम, गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे ।
सोइ कछु करहु हरहु ममता सम फिरहुँ न तुमहि बिसारे ॥
जौ तुम तजहु भजौं न आन प्रभु, यह प्रमान पन मोरे ।
मन क्रम बचन नरक सुरपुर जहँ तहँ रघुबीर निहोरे ॥
जद्यपि नाथ उचित न होत अस प्रभु सों करौं ढिठाई ।
तुलसिदास सीदत निसि दिन देखत तुम्हारि निठुराई ॥ ११२ ॥

माधव ! अब न द्रवहु केहि लेखे ?
प्रनतपाल पन तोर, मोर पन जिअउँ कमलपद देखे ॥
जब लगि मैं न दीन, दयालु तैं, मैं न दास, तैं स्वामी ।
तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं, जद्यपि अंतरजामी ॥
तैं उदार, मैं कृपन, पतित मैं, तैं पुनीत स्रुति गावै ।
बहुत नात रघुनाथ तोहि मोहि, अब न तजे बनि आवै ॥
जनक जननि, गुरु बंधु सुहृद पति सब प्रकार हितकारी ।
द्वैतरूप तमकूप परौं नहिं अस कछु जतन बिचारी ॥
सुनु अदभ्र-करुना, बारिज-लोचन, मोचन-भय-भारी ।
तुलसिदास प्रभु तव प्रकास बिनु संसय टरै न टारी ॥ ११३ ॥

१११—रबिकर नीर = मृगतृष्णा का जल । कोउ कह......मानै = न्याय, वेदांत और सांख्य के अनुसार संसार और ब्रह्म के सत्यासत्य के सिद्धांत अर्थात् नाना दार्शनिक वाद ।

११२—सीदत = दुःख पाता है ।

माधव ! मो समान जग माहीं ।
सब बिधि हीन, मलीन, दीन अति लीन-विषय कोउ नाहीं ॥
तुम सम हेतु-रहित कृपालु, आरत-हित, ईसहि त्यागी ।
मैं दुख-सोक-बिकल कृपालु ! केहि कारन दया न लागी ?
नाहिंन कछु अवगुन तुम्हार, अपराध मोर मैं माना ।
ज्ञानभवन तनु दिएहु, नाथ ! सोउ पाय न मैं प्रभु जाना ॥
बेनु करील, श्रीखंड बसंतहि दूषन मृषा लगावै ।
सार-रहित, हतभाग्य सुरभि पल्लव सो कहु कहँ पावै ॥
सब प्रकार मैं कठिन, मृदुल हरि, दृढ़ बिचार जिय मोरे ।
तुलसिदास प्रभु मोह-शृंखला छूटिहि तुम्हारे छोरे ॥ ११४ ॥

माधव ! मोह फाँस क्यों टूटै ?
बाहिर कोटि उपाय करिय, अभ्यंतर ग्रंथि न छूटै ॥
घृतपूरन कराह अंतरगत ससि प्रतिबिंब दिखावै ।
ईंधन अनल लगाइ कलप सत औटत नास न पावै ॥
तरु-कोटर महँ बस बिहंग, तरु काटे मरै न जैसे ।
साधन करिय बिचार-हीन मन सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥
अंतर मलिन, बिषय मन अति, तन पावन करिय पखारे ।
मरै न उरग अनेक जतन बलमीक बिबिध बिधि मारे ॥
तुलसिदास हरि-गुरु-करुना-बिनु बिमल बिबेक न होई ।
बिनु बिबेक संसार घोर निधि पार न पावै कोई ॥ ११५ ॥

माधव ! अस तुम्हारि यह माया ।
करि उपाय पचि मरिय, तरिय नहिं जब लगि करहु न दाया ॥
सुनिय, गुनिय, समुझिय, समुझाइय दसा हृदय नहिं आवै ।
जेहि अनुभव बिनु मोह-जनित दारुन भव-बिपति सतावै ॥
ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो पै मन सो रस पावै ।
तौ कत मृगजल-रूप बिषय कारन निसि बासर धावै ॥
जेहि के भवन बिमल चिंतामनि सो कत काँच बटोरै ।
सपने परबस परयो जागि देखत केहि जाइ निहोरै ?
ज्ञान भगति साधन अनेक सब सत्य, झूठ कछु नाहीं ।
तुलसिदास हरि-कृपा मिटै भ्रम, यह भरोस मन माहीं ॥ ११६ ॥

११६—अर्थ = इंद्रियों के विषय ।

हे हरि ! कवन दोष तोहि दीजै ?
जेहि उपाय सपनेहुँ दुर्लभ गति सोइ निसि बासर कीजै ॥
जानत अर्थ अनर्थ-रूप, तमकूप परब यहि लागे ।
तदपि न तजत स्वान, अज, खर ज्यों फिरत बिषय-अनुरागे ॥
भूत-द्रोह-कृत मोह-बस्य हित आपन मैं न बिचारो ।
मद, मत्सर, अभिमान, ज्ञान-रिपु इन महँ रहनि अपारो ॥
बेद पुरान सुनत समुझत रघुनाथ सकल जगव्यापी ।
भेदत नहिं श्रीखंड बेनु इव सारहीन मन पापी ॥
मैं अपराध-सिंधु करुनाकर ! जानत अंतरजामी ।
तुलसिदास भवब्याल-ग्रसित तव सरन उरग-रिपु-गामी ॥ ११७ ॥

हे हरि ! कवन जतन सुख मानहु ?
जिमि गज-दसन तथा मम करनी सब प्रकार तुम जानहु ॥
जो कछु कहिय करिय भवसागर तरिय बत्सपद जैसे ।
रहनि आन बिधि, कहिय आन, हरिपद सुख पाइय कैसे ॥
देखत चारु मयूर बयन-सुभ, बोलि सुधा इव सानी ।
सबिष उरग आहार निठुर अस, यह करनी वह बानी ॥
अखिल-जीव-वत्सल निर्मत्सर, चरन-कमल-अनुरागी ।
ते तव प्रिय रघुबीर ! धीरमति अतिसय निज-पर-त्यागी ॥
जद्यपि मम अवगुन अपार संसार-जोग्य रघुराया ।
तुलसिदास निज गुन बिचारि करुना-निधान करु दाया ॥ ११८ ॥

हे हरि ! कवन जतन भ्रम भागै ?
देखत सुनत बिचारत यह मन निज सुभाव नहिं त्यागै ॥
भगति, ज्ञान, बैराग्य सकल साधन यहि लागि उपाई ।
कोउ भल कहहु, देउ कछु कोऊ, असि बासना न उर तें जाई ॥
जेहि निसि सकल जीव सूतहिं तव कृपापात्र जन जागै ।
निज करनी बिपरीत देखि मोहिं समुझि महा भय लागै ॥
जद्यपि भग्न-मनोरथ बिधि-बस सुख इच्छत दुख पावै ।
चित्रकार करहीन जथा स्वारथ बिनु चित्र बनावै ॥
हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे ।
तुलसिदास इंद्रिय-संभव दुख हरे बनिहि प्रभु तोरे ॥ ११९ ॥

हे हरि ! कस न हरहु भ्रम भारी ?
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ॥

अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाईं।
बिनु बाँधे निज हठ सठ परबस पर्यो कीर की नाईं॥
सपने ब्याधि बिबिध बाधा भइ, मृत्यु उपस्थित आई।
बैद अनेक उपाय करहिं, जागे बिनु पीर न जाई॥
स्रुति-गुरु-साधु-सुमृति-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी।
तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति बिपति सकै को टारी॥
बहु उपाय संसार-तरन कहँ बिमल गिरा स्रुति गावै।
तुलसिदास 'मैं मोर' गए बिनु जिय सुख कबहुँ न पावै॥ १२०॥

हे हरि! यह भ्रम की अधिकाई।
देखत सुनत कहत समुझत संसय संदेह न जाई॥
जो जग मृषा ताप-त्रय-अनुभव होइ कहहु केहि लेखे।
कहि न जाइ मृगबारि सत्य, भ्रम तें दुख होइ बिसेखे॥
सुभग सेज सोवत सपने बारिधि बूड़त भय लागै।
कोटिहुँ नाव न पार पाव सो जब लगि आपु न जागै॥
अनबिचार रमनीय सदा, संसार भयंकर भारी।
सम संतोष दया बिबेक तें ब्यवहारी सुखकारी॥
तुलसिदास सब बिधिप्रपंच जग जदपि झूठ स्रुति गावै।
रघुपति-भगति संत-संगति बिनु को भवत्रास नसावै॥ १२१॥

मैं हरि साधन करै न जानी।
जस आमय भेषज न कीन्ह तस, दोष कहा दिरमानी॥
सपने नृप कहँ घटै बिप्रबध, बिकल फिरै अघ लागे।
बाजिमेध सत कोटि करै नहिं सुद्ध होय बिनु जागे॥
स्रग महँ सर्प बिपुल भयदायक प्रगट होइ अबिचारे।
बहु आयुध धरि, बल अनेक करि हारहिं, मरै न मारे॥
निज भ्रम तें रबिकर-संभव सागर अति भय उपजावै।
अवगाहत बोहित नौका चढ़ि कबहूँ पार न पावै॥
तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निर्मूल न जाई।
तब लगि कोटि कलप उपाय करि मरिय, तरिय नहिं भाई॥ १२२॥

१२०—अर्थ = इंद्रियों के विषय।

१२२—दिरमानी = वैद्य।

अस कछु समुझि परत, रघुराया !
बिनु तव कृपा दयालु दासहित मोह न छूटै माया ॥
वाक्यज्ञान अत्यंत निपुन भवपार न पावै कोई ।
निसि गृह मध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई ॥
जैसे कोउ इक दीन दुखी अति असन-हीन दुख पावै ।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह लिखे न बिपति नसावै ॥
षट रस बहु प्रकार भोजन कोउ दिन अरु रैनि बखानै ।
बिनु बोले संतोष-जनित सुख खाइ सोइ पै जानै ॥
जब लगि नहिं निज हृदि प्रकास, अरु बिषय-आस मन माहीं ।
तुलसिदास तब लगि जग-जोनि भ्रमत, सपनेहुँ सुख नाहीं ॥ १२३ ॥

जौ निज मन परिहरै बिकारा ।
तौ कत द्वैत-जनित संसृति-दुख, संसय, सोक अपारा ॥
सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये मन कीन्हें बरिआईं ।
त्यागब गहब उपेच्छनीय अहि हाटक तृन की नाईं ॥
असन, बसन, बसु, बस्तु बिबिध बिधि सब मनि महँ रह जैसे ।
सरग, नरक, चर अचर लोक बहु बसत मध्य मन तैसे ॥
बिटप मध्य पुत्रिका, सूत्र महँ कंचुक बिनहिं बनाए ।
मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाए ॥
रघुपति-भगति-बारि-छालित चित बिनु प्रयास ही सूझै ।
तुलसिदास कह चिद-बिलास जग बूझत बूझत बूझै ॥ १२४ ॥

मैं केहि कहौं बिपति अति भारी । श्रीरघुबीर धीर हितकारी ॥
मम हृदय भवन प्रभु तोरा । तहँ बसे आइ बहु चोरा ॥
अति कठिन करहिं बरजोरा । मानहिं नहिं बिनय निहोरा ॥
तम, मोह, लोभ, अहँकारा । मद, क्रोध, बोध-रिपु, मारा ॥
अति करहिं उपद्रव नाथा । मरदहिं मोहि जानि अनाथा ॥
मैं एक, अमित बटपारा । कोउ सुनै न मोर पुकारा ॥
भागेहु नहिं नाथ उबारा । रघुनायक करहु सँभारा ॥
कह तुलसिदास सुनु रामा । लूटहिं तस्कर तव धामा ॥
चिंता यह मोहि अपारा । अपजस नहिं होय तुम्हारा ॥ १२५ ॥

१२४—बसु = धन । पुत्रिका = पुतली । छालित=प्रक्षालित, धोया हुआ ।

मन मेरे मानहि सिख मेरी। जो निजु भगति चहै हरि केरी॥
उर आनहि प्रभु कृत हित जेते। सेवहि तजे अपनपौ, चेते॥
दुख सुख अरु अपमान बड़ाई। सब सम लेखहि बिपति बिहाई॥
सुनु सठ काल-ग्रसित यह देही। जनि तेहि लागि बिदूषहि केही॥
तुलसिदास बिनु असि मति आये। मिलहिं न राम कपट लय लाये॥१२६

मैं जानी हरिपद-रति नाहीं। सपनेहु नहिं बिराग मन माहीं॥
जे रघुबीर-चरन अनुरागे। तिन्ह सब भोग रोग-सम त्यागे॥
काम, भुअंग डसत जब जाही। बिषय-नींब कटु लगति न ताही॥
असमंजस अस हृदय बिचारी। बढ़त सोच नित नूतन भारी॥
जब कब रामकृपा दुख जाई। तुलसिदास नहिं आन उपाई॥ १२७॥

सुमिरु सनेह सहित सीतापति। रामचरन तजि नहिंन आन गति॥
जप, तप, तीरथ, जोग, समाधी। कलि मति बिकल, न कछु निरुपाधी॥
करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। रकतबीज जिमि बाढ़त जाहीं॥
हरनि एक अघ-असुर-जालिका। तुलसिदास प्रभु-कृपा-कालिका॥ १२८

रुचिर रसना तू राम राम क्यों न रटत।
सुमिरत सुख सुकृत बढ़त, अघ अमंगल घटत॥
बिनु स्रम कलि-कलुष-जाल कटु कराल कटत।
दिनकर के उदय जैसे तिमिर-तोम फटत॥
जोग, जाग, जप, बिराग, तप, सुतीरथ अटत।
बाँधिबे को भवगयंद रेनु की रजु बटत॥
परिहरि सुरमनि सुनाम गुंजा लखि लटत।
लालच लघु तेरो लखि तुलसी तोहि हटत॥ १२९॥

राम, राम, राम, राम, राम, राम जपत।
मंगल मुद उदित होत, कलिमल छल छपत॥
कहु के लहे फल रसाल बबुर-बीज बपत।
हारहि जनि जनम जाय गालगूल गपत॥
काल, करम, गुन, सुभाव सबके सीस तपत।
रामनाम-महिमा की चरचा चले चपत॥
साधन बिनु सिद्धि सकल बिकल लोग लपत।

१२९—लटत = ललचाता है। हटत = हटकता है, मना करता है (ऐसा मत कर)।

कलिजुग बर बनिज बिपुल नाम नगर खपत ॥
नाम सों प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत ।
पावन किय रावन-रिपु तुलसिहु से अपत ॥ १३० ॥

पावन प्रेम-रामचरन जनम लाहु परम ।
रामनाम लेत होत सुलभ सकल धरम ॥
जोग, मख, बिबेक बिरति बेद-बिदित करम ।
करिबे कहँ कटु कठोर, सुनत मधुर नरम ॥
तुलसी सुनि जानि बूझि भूलहि जनि भरम ।
तेहि प्रभु को होहि जाहि सबही की सरम ॥ १३१ ॥

राम से प्रीतम की प्रीति-रहित जीव जाय जियत !
जेहि सुख सुख मानि लेत सुख सो समुझ कियत ॥
जहँ जहँ जेहि जोनि जनम महि पताल बियत ।
तहँ तहँ तू बिषय-सुखहिं चहत, लहत नियत ॥
कत बिमोह लट्यो फट्यो गगन मगन सियत ।
तुलसी प्रभु-सुजस गाइ क्यों न सुधा पियत ॥ १३२ ॥

तोसों हौं फिरि फिरि हित प्रिय बचन कहत ।
सुनि मन गुनि समुझि क्यों न सुगम सुमग गहत ॥
छोटो बड़ो, खोटो खरो जग जो जहँ रहत ।
अपने अपने को भलो कहहु को न चहत ?
बिधि लगि लघु कीट अवधि सुख सुखी, दुख दहत ।
पसु लौं पसुपाल ईस बाँधत छोरत नहत ॥
बिषय मुद निहारि भार सिर ज्यों काँधे बहत ।
योंही जिय जानि मानि सठ तू साँसति सहत ॥
पायो केहि घृत बिचारु हरिनबारि महत ।
तुलसी तकु तासु सरन जाते सब लहत ॥ १३३ ॥

ताते हौं बार बार देव ! द्वार परि पुकार करत ।
आरत नत दीनता कहे प्रभु संकट हरत ॥

१३०—गाल गूल = अनाप शनाप, व्यर्थ की बात । गाल = गप मारते, बकते हुए । खपत = खपते हैं । अपत = पति-हीन, गया बीता ।

१३२—कियत = कितना है । बियत = आकाश ।

१३३—हरिनबारि = मृगतृष्णा का जल । मथत = मथते हुए ।

लोकपाल सोकबिकल रावन-डर डरत ।
का सुनि सकुचे कृपालु नरसरीर धरत ?
कौसिक, मुनितीय, जनक सोच-अनल जरत ।
साधन केहि सीतल भये सो न समुझि परत ॥
केवट, खग, सबरि सहज चरनकमल न रत ।
सनमुख तोहिं होत नाथ कुतरु सुफर फरत ॥
बंधुबैर कपि बिभीषन गुरु गलानि गरत ।
सेवा केहि रीझि राम किए सरिस भरत ?
सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत ।
ताको लिए नाम राम सबको सुढर ढरत ॥
जाने बिनु राम-रीति पचि पचि जग मरत ।
परिहरि छल सरन गए तुलसिहु से तरत ॥ १३४ ॥

राग सूहो बिलावल

राम सनेही सों तैं न सनेह कियो ।
अगम जो अमरनि हूँ सो तनु तोहिं दियो ॥
दियो सुकुल जनम सरीर सुंदर हेतु जो फल चारि को ।
जो पाइ पंडित परमपद पावत पुरारि मुरारि को ॥
यह भरतखंड समीप सुरसरि, थल भलो, संगति भली ।
तेरी कुमति कायर कलपबल्ली चहति बिषफल फली ॥ १ ॥
अजहूँ समुझि चित्त दै सुनु परमारथ ।
है हित सो जगहूँ जाहि ते स्वारथ ॥
स्वारथहि प्रिय, स्वारथ सो काते, कौन बेद बखानई ।
देखु खल अहिखेत परिहरि सो प्रभुहि पहिचानई ॥
पितु, मातु गुरु, स्वामी, अपनपौ, तिय, तनय, सेवक, सखा ।
प्रिय लगत जाके प्रेम सों बिनु हेतु हित नहिं तैं लखा ॥ २ ॥
दूरि न सो हितू हेरि हिये ही है ।
छलहि छाँड़ि सुमिरे छोह किए ही है ॥
किए छोह छाया कमल कर की भगत पर भजतहि भजे ।
जगदीस जीवन जीव को जो साज सब सबको सजै ॥
हरिहि हरिता, बिधिहि बिधिता, सिवहि सिवता जो दई ।
सोइ जानकी-पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई ॥ ३ ॥

ठाकुर अतिहि बड़ो सील सरल सुठि।
ध्यान-अगम सिवहू, भेंट्यो केवट उठि॥
भरि अंक भेंट्यो सजल नयन सनेह सिथिल सरीर सो।
सुर सिद्ध मुनि कबि कहत कोउ न प्रेमप्रिय रघुबीर सो॥
खग सबरि निसिचर भालु कपि किए आपु तें बंदित बड़े।
तापर तिनकी सेवा सुमिरि जिय जात जनु सकुचनि गड़े॥ ४॥
स्वामी को सुभाव कह्यो सो जब उर आनिहै।
सोच सकल मिटिहैं, राम भलो मानिहैं॥
भलो मानिहैं रघुनाथ जोरि जो हाथ माथो नाइहै।
ततकाल तुलसीदास जीवन जनम को फल पाइहै॥
जपि नाम करहि प्रनाम कहि गुनग्राम रामहि धरि हिये।
बिचरहि अवनि अवनीस-चरन-सरोज मन मधुकर किये॥५॥१३५॥

जिय जब तें हरि तें बिलगान्यो। तब तें देह गेह निज जान्यो॥
मायाबस सरूप बिसरायो। तेहि भ्रम तें दारुन दुख पायो॥
पायो जो दारुन दुसह दुख सुखलेस सपनेहुँ नहिं मिल्यो।
भवसूल सोक अनेक जेहि तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो॥
बहु जोनि जन्म जरा बिपति, मतिमंद हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम-बिनु बिश्राम मूढ़! बिचारि लखि पायो कहीं॥ १॥
आनँदसिंधु मध्य तव बासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा॥
मृगभ्रम-बारि सत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानी॥
तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीं जहाँ।
निज सहज अनुभव रूप तव खल भूलि चलि आयो तहाँ॥
निर्मल निरंजन निर्बिकार उदार सुख तैं परिहर्‍यो।
निःकाज राज बिहाय नृप इव स्वप्न-कारागृह पर्‍यो॥ २॥
तैं निज कर्मडोरि दृढ़ कीन्ही। अपने करनि गाँठि गहि दीन्ही॥
तातें परबस पर्‍यो अभागे। ता फल गर्भबास दुख आगे॥
आगे अनेक समूह संसृति, उदरगति जान्यो सोऊ।
सिर हेट, ऊपर चरन, संकट बात नहिं पूछै कोऊ॥
सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवहीं।
कोमल सरीर, गँभीर बेदन, सीस धुनि धुनि रोवहीं॥ ३॥

१३६—३—हेट = नीचे।

तू निज कर्मजाल जहँ घेरो। श्रीहरि संग तज्यो नहिं तेरो॥
बहु बिधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हों। परम कृपालु ज्ञान तोहि दीन्हों॥
तोहि दियो ज्ञान बिवेक जन्म अनेक की तब सुधि भई।
तेहि ईस की हौं सरन जाकी बिषम माया गुनमई॥
जेहि किए जीव-निकाय बस रस हीन दिन दिन अति नई।
सो करौ बेगि सँभार श्रीपति बिपति महँ जेहि मति दई॥ ४॥

पुनि बहु बिधि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजौं चक्रपानी॥
ऐसेहि करि बिचार चुप साधी। प्रसवपवन प्रेरेउ अपराधी॥
प्रेर्यो जो परम प्रचंड मारुत कष्ट नाना तैं सह्यो।
सो ज्ञान ध्यान बिराग अनुभव जातना-पावक दह्यो॥
अति खेद-ब्याकुल अलप बल छिन एक बोलि न आवई।
तब तीव्र कष्ट न जान कोउ सब लोग हर्षित गावई॥ ५॥

बाल-दसा जेते दुख पाए। अति असीस नहिं जायँ गनाए॥
छुधा ब्याधि बाधा भइ भारी। बेदन नहिं जानै महतारी॥
जननी न जानै पीर सो केहि हेतु सिसु रोदन करै।
सोइ करै बिबिध उपाय जातें अधिक तुव छाती जरै॥
कौमार, सैसव अरु किसोर अपार अघ को कहि सकै।
व्यतिरेक तोहि निर्दय महा खल आन कहु को सहि सकै? ॥ ६॥

जौबन जुवति-संग रंग रात्यो। तब तू महा मोह मद मात्यो॥
तातें तजी धर्म मरजादा। बिसरे तब सब प्रथम बिषादा॥
बिसरे बिषाद निकाय-संकट समुझि नहिं फाटत हियो।
फिरि गर्भगत-आवर्त्त संसृति-चक्र जेहि होइ सोइ कियो॥
कृमि-भस्म-बिट-परिनाम तनु तेहि लागि जगु बैरी भयो।
परदार परधन द्रोहपर संसार बाढ़ै नित नयो॥ ७॥

देखत ही आई बिरुधाई। जो तैं सपनेहु नाहिं बुलाई॥
ताके गुन कछु कहे न जाहीं। सो अब प्रगट देखु तन माहीं॥
सो प्रगट तनु जर्जर जराबस ब्याधि सूल सतावई।
सिरकंप, इंद्रिय-सक्ति प्रतिहत बचन काहु न भावई॥

१३६—६—अनीस = अनाथ। व्यतिरेक = सिवाय।
१३६—७—विट = विष्ठा।

गृहपाल हू तें अति निरादर, खान पान न पावई।
ऐसिहु दसा न बिराग, तहँ तृष्णा तरंग बढ़ावई॥ ८॥
कहि को सकै महा भव तेरे। जन्म एक के कछुक गने रे॥
खानि चारि संतत अवगाही। अजहुँ तो करु बिचार मन माहीं॥
अजहूँ बिचारि बिकार तजि भजु राम जन-सुखदायकं।
भवसिंधु दुस्तर जलरथं, भजु चक्रधर सुर-नायकं॥
बिनु हेतु करुनाकर उदार अपार-माया-तारनं।
कैवल्य-पति, जगपति, रमापति, प्रानपति गतिकारनं॥ ९॥
रघुपति भगति सुलभ सुखकारी। सो त्रयताप-सोक-भय-हारी॥
बिनु सतसंग भगति नहि होई। ते तब मिलैं द्रवै जब सोई॥
जब द्रवै दीनदयालु राघव साधु-संगति पाइए।
जेहि दरस परस समागमादिक पापरासि नसाइए॥
जिन्हके मिले दुख सुख समान, अमानतादिक गुन भए।
मद मोह लोभ बिषाद क्रोध सुबोध तें सहजहि गए॥ १०॥
सेवत साधु द्वैत-भय भागे। श्रीरघुबीर-चरन लय-लागे॥
देहजनित बिकार सब त्यागे। तब फिरि निज स्वरूप अनुरागे॥
अनुराग सो निज रूप जो जग तें बिलच्छन देखिए।
संतोष सम सीतल सदा दम देहवंत न लेखिए।
निर्मल निरामय एकरस, तेहि हर्ष सोक न ब्यापई।
त्रैलोक्य-पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई॥ ११॥
जो तेहि पंथ चलै मन लाई। तौ हरि काहे न होहि सहाई॥
जो मारग स्रुति साधु बतावै। तेहि पथ चलत सबै सुख पावै॥
पावै सदा सुख हरिकृपा, संसार-आसा तजि रहै।
सपनेहुँ नहीं दुख द्वैत दरसन, बात कोटिक को कहै॥
द्विज देव गुरु हरि संत बिनु संसार पार न पावई।
यह जानि तुलसीदास त्रासहरन रमापति गावई॥ १२॥ १३६॥

राग बिलावल

जौपै कृपा रघुपति कृपालु की बैर और के कहा सरै?
होइ न बाँको बार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै।

१३६—८—गृहपाल = कुत्ता।

१३६—९—भव = जन्म। खानि चारि = स्वेदज, अंडज, पिंडज, उद्भिज, ये चार प्रकार के जीव।

तकै नीच जो मीच साधु की सोइ पामर तेहि मीच मरै।
बेद-बिदित प्रहलाद कथा सुनि को न भगति-पथ पाउँ धरै ?
गज उधारि हरि थप्यो बिभीषन, ध्रुव अबिचल कबहूँ न टरै।
अंबरीष की साप सुरति करि अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै॥
सो न कहा जो कियो सुजोधन, अबुध आपने मान जरै।
प्रभु-प्रसाद सौभाग्य बिजय-जस पांडु-तनय बरिआइ बरै॥
जो जो कूप खनैगो पर कहँ, सो सठ फिरि तेहि कूप परै।
सपनेहु सुख न संतद्रोही कहँ, सुरतरु सोउ बिष-फरनि फरै॥
है काके द्वै सीस ईस के जो हठि जन की सीम चरै ?
तुलसिदास रघुबीर-बाहुबल सदा अभय काहू न डरै॥ १३७॥

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक धरिहौ, नाथ! सीस मेरे।
जेहि कर अभय किए जन आरत बारक बिबस नाम टेरे॥
जेहि कर-कमल कठोर संभुधनु भंजि जनक-संसय मेट्यो।
जेहि कर-कमल उठाइ बंधु ज्यों परम प्रीति केवट भेंट्यो॥
जेहि कर-कमल कृपालु गीध कहँ पिंडोदक दै धाम दियो।
जेहि कर बालि बिदारि दास-हित कपिकुल-पति सुग्रीव कियो॥
आयो सरन सभीत बिभीषन जेहि कर-कमल तिलक कीन्हो।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति अभयदान देवन दीन्हो॥
सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप, ताप, माया।
निसि बासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया॥ १३८॥

दीनदयालु दुरित दारिद दुख दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देव-दुआर पुकारत आरत सब की सब सुखहानि भई है॥
प्रभु के बचन बेद-बुध-सम्मत मम मूरति महिदेव-मई है।
तिन्हकी मति रिस, राग, मोह, मद, लोभ लालची लीलि लई है॥
राज-समाज कुसाज कोटि कटु कलपत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति हेतु-बाद हठि हेरि हई है॥
आस्रम-बरन-धरम-बिरहित जग लोक-बेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पापरत, अपने अपने रंग रई है॥

१३९—दुनी=दुनिया। हेतवाद=तर्क। रई है=रँगी है, मग्न है। सिद्धि सई=सिद्धि और सार। बिनु टहल टई=बिना काम का काम। टोल दई है=जाने देते है, छोड़ देते हैं, ध्यान नहीं देते हैं, रोक टोक नहीं करते हैं।

भाँति भली सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट-कलई है ।
सीदत साधु साधुता सोचति, खल बिलसत, हुलसति खलई है ॥
परमारथ स्वारथ-साधन भए अफल सकल, नहिं सिद्धि सई है ।
कामधेनु धरनी कलि-गोमर-बिबस बिकल, जामति न बई है ॥
कलि-करनी बरनिए कहाँ लौं करत फिरत बिनु टहल टई है ।
तापर दाँत पीसि कर मींजत, को जानै चित कहा ठई है ॥
त्यों त्यों नीच चढ़त सिर ऊपर ज्यों ज्यों सीलबस ढील दई है ।
सरुष बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कुम्हड़े की जई है ॥
दीजै दादि देखि नातो बलि, मही-मोद-मंगल-रितई है ।
भरे भाग अनुराग लोग कहैं राम अवध चितवनि चितई है ॥
बिनती सुनि सानंद हेरि हँसि करुना-बारि भूमि भिजई है ।
रामराज भयो काज सगुन सुभ, राजा राम जगत-बिजई है ॥
समरथ बड़ो सुजान सुसाहिब सुकृत-सेन हारत जितई है ।
सुजन सुभाव सराहत सादर अनायास साँसति बितई है ॥
उथपे-थपन, उजार-बसावन, गई-बहोर बिरद सदई है ।
तुलसी प्रभु आरत-आरतिहर अभय-बाँह केहि केहि न दई है ? ॥१३९॥

ते नर नरकरूप जीवत जग भव-भंजन-पद बिमुख अभागी ।
निसि बासर रुचि पाप, असुचि मन, खल मति-मलिन निगमपथ-त्यागी ॥
नहिं सतसंग भजन नहिं हरि को स्रवन न राम-कथा अनुरागी ।
सुत-बित-दार-भवन-ममता-निसि सोवत अति, न कबहुँ मति जागी ॥
तुलसिदास हरि-नाम-सुधा तजि सठ हठि पियत बिषय-बिष माँगी ।
सूकर स्वान सृगाल सरिस जन जनमत जगत जननि-दुख लागी ॥१४०॥

रामचंद्र रघुनायक ! तुम सों हौं बिनती केहि भाँति करौं ?
अघ अनेक अवलोकि आपने अनघ नाम अनुमानि डरौं ।
परदुख दुखी, सुखी परसुख तें संतसील नहिं हृदय धरौं ।
देखि आन की बिपति परम सुख सुनि संपति बिनु आगि जरौं ॥
भक्ति, बिराग, ज्ञान साधन कहि बहु बिधि डहँकत लोग फिरौं ।
सिव-सरबस सुखधाम नाम तव बेंचि नरकप्रद उदर भरौं ॥

१३९—जई = फल का अंकुर । नातो बलि = बलि से आपने पृथ्वी दान में ली है, इससे उसकी देखभाल रखनी चाहिए । रितई = खाली की हुई, रीती की हुई । अवध = अबाध्य । सदई = सदैव ।

जानत हूँ निज पाप-जलधि जिय जल-सीकर सम सुनत लरौं ।
रज सम पर अवगुन सुमेरु करि गुन-गिरि सम रज ते निदरौं ॥
नाना वेष बनाइ दिवस निसि परबित जेहि तेहि जुगुति हरौं ।
एकौ पल न कबहुँ अलोल-चित हित दै पद-सरोज सुमिरौं ॥
जो आचरन बिचारहु मेरो कलप कोटि लगि अवटि मरौं ।
तुलसिदास प्रभु-कृपा-बिलोकनि गोपद ज्यों भवसिंधु तरौं ॥१४१॥

सकुचत हौं अति, राम कृपानिधि! क्यों करि बिनय सुनावौं ?
सकल धर्म बिपरीत करत, केहि भाँति नाथ मन भावौं ?
जानत हूँ हरि रूप चराचर मैं हठि नयन न लावौं ।
अंजन-केस-सिखा जुवती तहँ लोचन-सलभ पठावौं ॥
स्रवनन को फल कथा तिहारी यह समुझौं समुझावौं ।
तिन्ह स्रवनन परदोष निरंतर सुनि सुनि भरि भरि तावौं ॥
जेहि रसना गुन गाइ तिहारे बिनु प्रयास सुख पावौं ।
तेहि मुख पर-अपवाद भेक ज्यों रटि रटि जनम नसावौं ॥
'करहु हृदय अति बिमल बसहिं हरि' कहि कहि सबहि सिखावौं ।
हौं निज उर अभिमान-मोह-मद-खल-मंडली बसावौं ॥
जो तनु धरि हरिपद साधहिं जन सो बिनु काज गवावौं ।
हाटक घट भरि धर्‍यो सुधा गृह तजि नभ कूप खनावौं ॥
मन क्रम बचन लाइ कीन्हें अघ ते करि जतन दुरावौं ।
पर-प्रेरित इरषा-बस कबहुँक कियो कछु सुभ, सो जनावौं ॥
बिप्रद्रोह जनु बाँट पर्‍यो, हठि सब सों बैर बढ़ावौं ।
ताहू पर निज मति-बिलास सब संतन माँझ गनावौं ॥
निगम, सेष, सादर निहोरि जो अपने दोष कहावौं ।
तौ न सिराहिं कलपसत लगि, प्रभु, कहा एक मुख गावौं ? ॥
जो करनी आपनी बिचारौं तौ कि सरन हौं आवौं ।
मृदुल सुभाव सील रघुपति को, सो बल मनहिं दिखावौं ॥
तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं जेहि सपनेहुँ तुमहिं रिझावौं ।
नाथकृपा भवसिंधु धेनुपद सम जिय जानि सिरावौं ॥ १४२ ॥

१४१—अवटि = भरम कर, चक्कर खाकर ।

१४२—अंजन-केस = दीपक । तावौं = मूँदता हूँ, बंद करके यत्न से रखता हूँ । बाँट पर्‍यो = मेरे हिस्से में आया है । मति-विलास = मन की मौज से ।

सुनहु राम रघुबीर गुसाईं ! मन अनीति-रत मेरो ।
चरन-सरोज बिसारि तिहारे निसि दिन फिरत अनेरो ॥
मानत नाहि निगम-अनुसासन, त्रास न काहू केरो ।
भूल्यो सूल करम-कोल्हुन तिल ज्यों बहु बारनि पेरो ॥
जहँ सतसंग कथा माधव की सपनेहुँ करत न फेरो ।
लोभ-मोह-मद-काम-कोधरत तिन सों प्रेम घनेरो ॥
पर-गुन सुनत दाह, पर-दूषन सुनत हरष बहुतेरो ।
आप पाप को नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो ॥
साधन-फल, स्रुति-सार नाम तव, भव-सरिता कहँ बेरो ।
सो पर कर काँकिनी लागि सठ बेंचि होत हठि चेरो ॥
कबहुँक हौं संगति-प्रभाव ते जाउँ सुमारग नेरो ।
तब करि क्रोध संग कुमनोरथ देत कठिन भट-भेरो ॥
इक हौं दीन मलीन हीनमति बिपति-जाल अति घेरो ।
तापर सहि न जात करुनानिधि मन को दुसह दरेरो ॥
हारि पर्‌यो करि जतन बहुत बिधि, तातें कहत सबेरो ।
तुलसिदास यह त्रास मिटै जब हृदय करहु तुम डेरो ॥ १४३ ॥

सो धौं को जो नाम-लाज ते नहिं राख्यो रघुबीर ?
कारुनीक बिनु कारन ही हरि, हरी सकल भवभीर ॥
बेद-बिदित जग-बिदित अजामिल बिप्रबंधु अघ-धाम ।
घोर जमालय जात निवार्‌यो सुत-हित सुमिरत नाम ॥
पसु पाँवर अभिमान-सिंधु गज ग्रस्यो आइ जब ग्राह ।
सुमिरत सकृत सपदि आए प्रभु हर्‌यो दुसह उर-दाह ।
ब्याध, निषाद, गीध, गनिकादिक अगनित अवगुन-मूल ।
नाम ओट ते राम सबनि की दूरि करी सब सूल ॥
केहि आचरन घाटि हौं तिन्ह तें, रघुकुल-भूषन भूप !
सीदत तुलसिदास निसि बासर पर्‌यो भीम तमकूप ॥ १४४ ॥

कृपासिंधु ! जन दीन दुवारे दादि न पावत काहे ?
जब जहँ तुमहि पुकारत आरत तब तिन्हके दुख दाहे ॥
गज, प्रहलाद, पांडुसुत, कपि सब के रिपु-संकट मेट्यो ।
प्रनत बंधुभय-बिकल बिभीषन उठि सो भरत ज्यों भेंट्यो ॥

१४३—अनेरो = व्यर्थ । खेरो = खेड़ा, गाँव । काँकिनी = कौड़ी ।
१४४—बिप्रबंधु = नीच ब्राह्मण ।

मैं तुम्हरो लै नाम ग्राम इक उर आपने बसावौं।
भजन, बिबेक, बिराग लोग भले करम करम करि ल्यावौं।
सुनि रिस भरे कुटिल कामादिक करहिं जोर बरिआईं।
तिन्हहिं उजारि नारि अरि धन पुर राखहिं राम गुसाईं॥
सम सेवा छल दान दंड हौं रचि उपाय पचि हार्‌यो।
बिनु कारन के कलह बड़ो दुख, प्रभु सों प्रगटि पुकार्‌यो॥
सुर स्वारथी, अनीस, अलायक, निठुर, दया चित नाहीं।
जाउँ कहाँ, को बिपति-निवारक भव-तारक जग माहीं?॥
तुलसी जदपि पोच तउ तुम्हरो, और न काहू केरो।
दीजै भगति बाँह बैरक ज्यों, सुबस बसै अब खेरो॥ १४५॥

हौं सब बिधि राम रावरो चाहत भयो चेरो।
ठौर ठौर साहिबी होति है ख्याल काल कलि केरो॥
काल कर्म इंद्रिय-बिषय गाहकगन घेरो।
हौं न कबूलत बाँधि के मोल करत करेरो॥
बंदि-छोर तेरो नाम है, बिरुदैत बड़ेरो।
मैं कह्यों तब छल-प्रीति कै माँगै उर डेरो॥
नाम-ओट अब लगि बच्यो मलजुग जग जेरो।
अब गरीब जन पोषिए, पायबो न हेरो॥
जेहि कौतुक बक स्वान को प्रभु न्याव निबेरो।
तेहि कौतुक कहिए कृपालु तुलसी है मेरो॥ १४[illegible]॥

कृपासिंधु ताते रहौं निसि दिन मन मारे।
महाराज लाज आपुही निज जाँघ उघारे॥
मिले रहैं, मार्‌यो चहैं कामादि संघाती।
मो बिनु रहैं न, मेरियै जारैं छल छाती॥
बसत हिये हित जानि मैं सबकी रुचि पाली।
कियो कथिक को दंड हौं जड़ कर्म कुचाली॥

१४५—करम करम करि = क्रम क्रम से, धीरे धीरे। अनीस = अच्छे स्वामी नहीं। अलायक = [हि० अ + फा० लायक] अयोग्य। बैरक=(अरबी) झंडा, पताका।

१४६—मलजुग = कलियुग। जेरो = ज़ेर किया है; वशीभूत किया है; जीत लिया है।

देखी सुनी न आजु लौं अपनायत ऐसी ।
करहिं सबै, सिर मेरेही फिरि परै अनैसी ॥
बड़े अलेखी लखि परैं, परिहरे न जाहीं ।
असमंजस में मगन हौं, लीजै गहि बाहीं ॥
बारक बलि अवलोकिए कौतुक जन जी को ।
अनायास मिटि जाइगो संकट तुलसी को ॥ १४७ ॥

कहौं कौन मुँह लाइ कै रघुबीर गुसाईं !
सकुचत समुझत आपनी सब, साइँ दोहाई !
सेवत बस, सुमिरत सखा, सरनागत सो हौं ।
गुनगन सीतानाथ के चित करत न हौं हौं ॥
कृपासिंधु बंधु दीन के आरत-हितकारी ।
प्रनतपाल बिरुदावली सुनि जानि बिसारी ॥
सेइ न धेइ न सुमिरि कै पदप्रीति सुधारी ।
पाइ सुसाहिब राम सो भरि पेट बिगारी ॥
नाथ गरीबनिवाज है, मैं गही न गरीबी ।
तुलसी प्रभु निज ओर तें बनि परै सो कीबी ॥ १४८ ॥

कहाँ जाउँ, कासों कहौं और ठौर न मेरो ?
जनम गँवायो तेरेहि द्वार, मैं किंकर तेरो ॥
मैं तो बिगारी नाथ सों आरति के लीन्हें ।
तोहिं कृपानिधि क्यों बनै मेरी सी कीन्हें ?
दिन दुरदिन, दिन दुरदसा, दिन दुख, दिन दूषन ।
जब लौं तू न बिलोकिहै रघुबंस-बिभूषन ॥
दई पीठ बिनु डीठ मैं, तुम बिस्व-बिलोचन ।
तोसों तुही न दूसरो नत-सोच-बिमोचन ॥
पराधीन देव, दीन हौं, स्वाधीन गुसाईं ।
बोलनिहारे सों करै, बलि, बिनय कि झाईं ॥
आपु देखि मोहि देखिये जन मानिय साँचो ।
बड़ी ओट राम नाम की जेहि लई सो बाँचो ॥

१४७—अलेखी = बेढब, अन्यायी ।

१४८—आपनी = अपनी करनी । धेइ = ध्याइ, ध्यान करके ।

रहनि रीति राम रावरी नित हिय हुलसी है।
ज्यों भावै त्यों करु कृपा तेरो तुलसी है॥ १४९॥

रामभद्र मोहिं आपनो सोच है अरु नाहीं।
जीव सकल संताप के भाजन जग माहीं॥
नातो बड़े समर्थ सों एक ओर किधौं हूँ।
तोको मोसे अति घने, मोको एकै तूँ॥
बड़ी गलानि हिय हानि है, सर्वज्ञ गुसाईं?
कूर कुसेवक कहत हौं सेवक की नाईं॥
भलो पोच राम को कहैं मोहिं सब नर नारी।
बिगरे सेवक स्वान ज्यों साहिब-सिर गारी॥
असमंजस मन को मिटै, सो उपाय न सूझै।
दीनबंधु, कीजै सोई बनि परै जो बूझै॥
बिरुदावली बिलोकिए तिन्ह में कोउ हौं हौं।
तुलसी प्रभु को परिहर्‌यो सरनागत सो हौं॥ १५०॥

जो पै चेराई राम की करतो न लजातो।
तौ तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो॥
जपत जीह रघुनाथ को नाम नहिं अलसातो।
बाजीगर के सूम ज्यों, खल! खेह न खातो॥
जो तू मन मेरे कहे राम-नाम कमातो।
सीतापति-सनमुख सुखी सब ठाँव समातो॥
राम सोहाते तोहिं जौं तू सबहिं सोहातो।
काल करम कुल कारनी कोऊ न कोहातो॥
राम-नाम-अनुराग ही जिय जो रतिआतो।
स्वारथ-परमारथ-पथी तोहिं सब पतिआतो॥
सेइ साधु, सुनि समुझि कै पर-पीर पिरातो।
जनम कोटि को कँदैलो हृद-हृदय थिरातो॥
भव-मग अगम अनंत है बिनु स्रमहि सिरातो।
महिमा उलटे नाम की मुनि कियो किरातो॥

८०.—बोलनिहारा = बोलता शुद्ध आत्मा, चैतन्य। झाईं = प्रतिबिंब
स्वरूप जीव।

अमर अगम तनु पाइ सो जड़ जाय न जातो।
होतो मंगलमूल तू, अनुकूल बिधातो॥
जो मन प्रीति प्रतीति सों राम नामहिं रातो।
तुलसी रामप्रसाद सों तिहुँताप न तातो॥ १५१॥

राम भलाई आपनी भल कियो न काको?
जुग जुग जानकी-नाथ को जग जागत साको॥
ब्रह्मादिक बिनती करि कहि दुख बसुधा को।
रविकुल-कैरव-चंद भो आनंद सुधा को।
कौसिक गरत तुषार ज्यों तकि तेज तिया को।
प्रभु अनहित-हित को दियो फल कोप-कृपा को॥
हर्‍यो पाप आप जाइकै संताप सिला को।
सोच-मगन काढ्यो सही साहिब मिथिला को॥
रोषरासि भृगुपति धनी अहमिति ममता को।
चितवत भाजन करि लियो उपसम समता को॥
मुदित मानि आयसु चले बन मातु पिता को।
धरम-धुरंधर धीरधुर गुन-सील जिता को?
गुह गरीब गत-ज्ञाति हूँ जेहि जिउ न भखा को॥
पायो पावन प्रेम ते सनमान सखा को?
सद्‌गति सबरी गिद्ध की सादर करता को।
सोच-सींव सुग्रीव के संकट-हरता को॥
राखि बिभीषन को सकै अस काल-गहा को।
आज बिराजत राज है दसकंठ जहाँ को।
बालिस बासी अवध को बूझिए न खाको।
सो पाँवर पहुँचो तहाँ जहँ मुनि मन थाको॥
गति न लहै रामनाम सों बिधि सो सिरजा को?
सुमिरत कहत प्रचारि कै बल्लभ गिरिजा को॥
अकनि अजामिल की कथा सानंद न भो को?
नाम लेत कलिकाल हूँ हरिपुरहिं न गो को?

१५१—कुसल कारनी = सब के कारण। रतिरातो = प्रीति करता। दह = ताल। कर्दैलो = कीचड़वाला। जाय = व्यर्थ।

रामनाम-महिमा करै काम-भूरुह आको।
साखी बेद पुरान है तुलसी तन ताको ॥ १५२ ॥

मेरे रावरिये गति है रघुपति बलि जाउँ।
निलज, नीच, निरधन, निरगुन कहँ जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ ॥
है घर घर बहु भरे सुसाहिब, सूझत सबनि आपनो दाउँ।
बानर-बंधु, बिभीषन-हित बिनु कोसलपाल कहूँ न समाउँ ॥
प्रनतारति-भंजन जनरंजन सरनागत पबि-पंजर नाउँ।
कीजै दास दास तुलसी अब कृपासिंधु बिनु मोल बिकाउँ ॥ १५३ ॥

देव ! दूसरो कौन दीन को दयालु ?
सील-निधान, सुजान-सिरोमनि, सरनागत-प्रिय, प्रनत-पालु ॥
को समर्थ सर्बज्ञ सकल प्रभु सिव-सनेह-मानस-मरालु ?
को साहिब किए मीत-प्रीति बस खग निसिचर कपि भील भालु ?
नाथ-हाथ माया-प्रपंच सब जीव दोष गुन करम कालु।
तुलसिदास भलो पोच रावरो, नेकु निरखि कीजै निहालु ॥ १५४ ॥

राग सारंग

बिस्वास एक राम नाम को।
मानत नहिं परतीति अनत ऐसोइ सुभाव मन बाम को ॥
पढ़िबो पर्यो न छठी छ मत, ऋगु, जजुर, अथर्बन, साम को।
ब्रत तीरथ, तप सुनि सहमत, पचि मरै करै तन छाम को ?
करमजाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को।
ज्ञान, बिराग, जोग, जप, तप, भय, लोभ, मोह, कोह, काम को ॥
सब दिन सब लायक भयो गायक रघुनायक-गुन-ग्राम को।
बैठे नाम-कामतरु तर डर कौन घोर घन घाम को ?
को जानै को जैहै जमपुर को सुरपुर परधाम को।
तुलसिहिं बहुत भलो लागत जग जीवन रामगुलाम को ॥ १५५ ॥

१५२—जागत साको = साका जगता है, कीर्ति चली जाती है। तिया = [illegible]का। काल-गहा = कालग्रस्त। आलिस = मूर्ख। कामभुरुह = कल्पवृक्ष। आको = आक या मदार भी।

१५३—पवि-पंजर = रक्षा के लिए वज्र का पिंजरा।

१५५—छठी न पर्यो = भाग्य में न लिखा गया। मत = शास्त्र। दाम = धन।

कलि नाम कामतरु राम को ।
दलनिहार दारिद दुकाल दुख दोष घोर घन घाम को ॥
नाम लेत दाहिनो होत मन बाम बिधाता बाम को ।
कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधे नाम को ॥
भलो लोक परलोक तासु जाके बल ललित-ललाम को ।
तुलसी जग जानियत नाम ते सोच न कूच मुकाम को ॥ १५६ ॥

सेइय सुसाहिब राम सो ।
सुखद, सुसील, सुजान, सूर, सुचि, सुंदर कोटिक काम सो ॥
सारद, सेस, साधु महिमा कहैं, गुनगन-गायक साम सो ।
सुमिरि सप्रेम नाम जासों रति चाहत चंद्र-ललाम सो ॥
गमन बिदेस न लेस कलेस को सकुचत सकृत प्रनाम सो ।
साखी ताको बिदित बिभीषन बैठो है अबिचल धाम सो ॥
टहल सहज जन महल महल जागत चारो जुग जाम सो ।
देखत दोष न खीझत रीझत सुनि सेवक गुनग्राम सो ॥
जाके भजे तिलोक-तिलक भए त्रिजग-जोनि तनु तामसो ।
तुलसी ऐसे प्रभुहि भजै जो न, ताहि बिधाता बाम सो ॥ १५७ ॥

राग नट

कैसे देउँ नाथहिं खोरि ?
काम-लोलुप भ्रमत मन हरि-भगति परिहरि तोरि ॥
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि ।
देत सिख, सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ॥
किये सहित सनेह जे अघ हृदय राखे चोरि ।
संग बस किये सुभ सुनाए सकल लोक निहोरि ॥
करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत-सिला बटोरि ।
पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि ॥
लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों गरे आसा-डोरि ।
बात कहौं बनाइ बुध ज्यों बर बिराग निचोरि ॥
एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत लाज अचई घोरि ।
निलजता पर रीझि रघुबर देहु तुलसिहि छोरि ॥ १५८ ॥

१५६—ललित ललाम = सुन्दर राम नाम ।
१५७—तनु तामसो=तामस शरीर वाले (राक्षस) भी ।
१५८—अँजोरि लेत = खोज लेना है ।

है प्रभु मेरोई सब दोसु।
सीलसिंधु, कृपालु, नाथ, अनाथ-आरत पोसु॥
बेष, बचन, बिराग, मन, अघ, अवगुननि को कोसु।
राम-प्रीति-प्रतीति पोली, कपट करतब ठोसु॥
राग रंग कुसंग ही सों, साधु-संगति रोसु।
चहत केहरि-जसहिं सेइ सृगाल ज्यों खरगोसु॥
संभु-सिखवन रसन हूँ नित रामनामहि घोसु।
दंभ हूँ कलि नाम-कुंभज सोच-सागर-सोसु॥
मोद-मंगल-मूल अति अनुकूल निज निरजोसु।
रामनाम-प्रभाव सुनि तुलसिहुँ परम संतोसु॥ १५९॥

मैं हरि पतितपावन सुने।
मैं पतित, तुम पतितपावन, दोउ बानक बने॥
ब्याध, गनिका, गज अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे, जात कापै गने ?
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने।
दास तुलसी सरन आयो राखिए आपने॥ १६०॥

राग मलार

तोसो प्रभु जो पै कहुँ कोउ होतो।
तौ सहि निपट निरादर निसि दिन रटि लटि ऐसो घटि को तो।
कृपासुधा जलदान माँगिबो कहौं सो साँच निसोतो।
स्वाति-सनेह-सलिल सुख चाहत चित-चातक सो पोतो॥
काल करम बस मन कुमनोरथ कबहुँ कबहुँ कछु भो तो।
ज्यों मुदमय बसि मीन बारि तजि उछरि भभरि लेत गोतो।
जितो दुराउ दास तुलसी उर क्यों कहि आवत ओतो।
तेरे राज राय दसरथ के लयो बयो बिनु जोतो॥ १६१॥

राग सोरठ

ऐसो को उदार जग माहीं ?
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाहीं॥

१५९—निरजोसु = निश्चय।
१६०—मने = वर्जित हुआ, ले जाना मना किया गया।
१६१—को तो = कौन था ? निसोतो = खरा। पोतो = बच्चा।

जो गति जोग बिराग जतन करि नहि पावत मुनि ज्ञानी।
सो गति देत गीध सबरी कहँ प्रभु न बहुत जिय जानो॥
जो संपति दससीस अरपि करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो संपदा बिभीषन कहँ अति सकुच सहित हरि दीन्हीं॥
तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करे कृपानिधि तेरो॥ १६२॥

एकै दानि-सिरोमनि साँचो।
जोइ जाच्यो सोइ जाचकता-बस फिरि बहु नाच न नाच्यो॥
सब स्वारथी असुर, सुर, नर, मुनि, कोउ न देत बिनु पाए।
कोसलपाल कृपालु कल्पतरु द्रवत सकृत सिर नाए॥
हरिहु और अवतार आपने राखी बेद-बड़ाई।
लै चिउरा निधि दई सुदामहि जद्यपि बाल-मिताई॥
कपि, सबरी, सुग्रीव, बिभीषन को नहिं कियो अजाचो।
अब तुलसिहि दुख देति दयानिधि! दारुन आस-पिसाची॥ १६३॥

जानत प्रीति रीति रघुराई।
नाते सब हाते करि राखत राम-सनेह-सगाई॥
नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई।
ऐसेहु पितु तें अधिक गीध पर ममता गुन गरुआई।
तिय-बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रानप्रिया बिसराई।
रन पर्‌यो बंधु बिभीषन ही को सोच हृदय अधिकाई॥
घर गुरुगृह प्रियसदन सासुरे भइ जब जहँ पहुनाई।
तब तहँ कहि सबरी के फलनि की रुचि माधुरी न पाई॥
सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई।
केवट-मीत कहे सुख मानत, बानर बंधु-बड़ाई॥
प्रेम कनौड़ो राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई।
तेरो रिनी कह्यो हौं कपीस सों, ऐसी मानिहि को सेवकाई॥
तुलसी राम सनेह सील लखि जो न भगति उर आई।
तौ तोहि जनमि जाय जननी जड़ तनु-तरुनता गँवाई॥ १६४॥

१६४—हाते करि राखत=अलग रखते हैं, दूर करते हैं। जनमि=जनम कर, जन कर।

रघुबर ! रावरि यहै बड़ाई ।
निदरि गनी आदर गरीब पर करत कृपा अधिकाई ।।
थके देव साधन करि सब, सपनेहुँ नहि देत दिखाई ।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप कियो सकल सँग भाई ।
मिलि मुनिवृंद फिरत दंडकबन, सो चरचौ न चलाई ।
बारहि बार गीध सबरी की बरनत प्रीति सुहाई ।।
स्वान कहे तें कियो पुर बाहिर जती गयंद चढ़ाई ।
तिय-निंदक मतिमंद प्रजा रज निज नय नगर बसाई ।।
यहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई ।
दीनदयालु दीन तुलसी की काहु न सुरति कराई ।। १६५ ।

ऐसे राम दीनहितकारी ।
अति कोमल करुनानिधान बिनु कारन पर-उपकारी ।।
साधनहीन दीन निज अघबस सिला भई मुनि-नारी ।
गृह तें गवनि परसि पद पावन घोर साप तें तारी ।।
हिंसारत निषाद तामस बपु पसु समान बन चारी ।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेमबस नहिं कुल जाति बिचारी ।।
जद्यपि द्रोह कियो सुरपति-सुत कहि न जाइ अति भारी ।
सकल लोक अवलोकि सोक-हत सरन गए भय टारी ।।
बिहँग जोनि आमिष अहार-पर, गीध कौन ब्रतधारी ।
जनक समान क्रिया ताकी निज कर सब भाँति सँवारी ।।
अधम जाति सबरी जोषित जड़ लोक बेद तें न्यारी ।
जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोउ रघुनाथ उधारी ।।
कपि सुग्रीव बंधुभय-ब्याकुल आयो सरन पुकारी ।
सहि न सके दारुन दुख जन के हत्यो बालि सहि गारी ।।
रिपु को अनुज बिभीषन निसिचर कौन भजन अधिकारी ।
सरन गए आगे ह्वै लीन्हों भेंट्यो भुजा पसारी ।।
असुभ होइ जिनके सुमिरे ते बानर रीछ बिकारी ।
बेदबिदित पावन किए ते सब, महिमा नाथ तुम्हारी ।
कहँ लगि कहौं दीन अगनित जिन्हकी तुम बिपति निवारी ।
कलिमल-ग्रसित दास तुलसी पर काहे कृपा बिसारी ।। १६६ ।

१६५—कौनप=पातकी ।

रघुपति ! भक्ति करत कठिनाई ।
कहत सुगम, करनी अपार, जानै सोइ जेहि बनि आई ॥
जो जेहि कला कुसल ता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी ।
सफरी सनमुख जल प्रवाह, सुरसरी बहै गज भारी ॥
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ बल तें न कोउ बिलगावै ।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै ॥
सकल दृस्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी ।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत-बियोगी ॥
सोक, मोह, भय, हरष, दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं ।
तुलसिदास यहि दसाहीन संसय निर्मूल न जाहीं ॥ १६७ ॥

जौ पै रामचरन रति होती ।
तौ कत त्रिबिध सूल निसि बासर सहते बिपति निसोती ॥
जौ संतोष सुधा निसि बासर सपनेहुँ कबहुँक पावै ।
तौ कत बिषय बिलोकि झूठ जल मन कुरंग ज्यों धावै ॥
जौ श्रीपति-महिमा बिचारि उर भजते भाव बढ़ाए ।
तौ कत द्वार द्वार कूकर ज्यों फिरते पेट खलाए ॥
जे लोलुप भए दास आस के ते सबही के चेरे ।
प्रभु बिस्वास आस जीती जिन्ह ते सेवक हरि केरे ॥
नहिं एकौ आचरन भजन को बिनय करत हौं ताते ।
कीजै कृपा दासतुलसी पर, नाथ ! नाम के नाते ॥ १६८ ॥

जौ मोहिं राम लागते मीठे ।
तौ नवरस, षटरस-रस अनरस ह्वै जाते सब सीठे ॥
बंचक बिषय बिबिध तनु धरि अनुभवे सुने अरु डीठे ।
यह जानत हौं हृदय आपने सपने न अघाइ उबीठे ॥
तुलसिदास प्रभु सों एकहि बल बचन कहत अति ढीठे ।
नाम की लाज राम करुनाकर केहि न दिये करि चीठे ॥ १६९ ॥

यों मन कबहूँ तुमहिं न लाग्यो ।
ज्यों छल छाँड़ि सुभाव निरंतर रहत बिषय अनुराग्यो ॥

१६७—यहि दसा-हीन = इस दशा को प्राप्त हुए बिना ।
१६८—निसोती=शुद्ध, खालिस ।
१६९—उबीठे = ऊबे, मन हटा ।

ज्यों चितई परनारि, सुने पातक-प्रपंच घर घर के ।
त्यों न साधु, सुरसरि-तरंग-निर्मल गुनगन रघुबर के
ज्यों नासा सुगंधरस-बस, रसना षटरस-रति मानी ।
रामप्रसाद-माल, जूठनि लगि त्यों न ललकि ललचानी ॥
चंदन चंद्रबदनि भूषन पट ज्यों चह पाँवर परस्यो ।
त्यों रघुपति पद-पदुम परस को तनु पातकी न तरस्यो ॥
ज्यों सब भाँति कुदेव कुठाकुर सेए बपु बचन हिये हूँ ।
त्यों न राम सुकृतज्ञ जे सकुचत सकृत प्रनाम किए हूँ ॥
चंचल चरन लोभ लगि लोलुप द्वार द्वार जग बागे ।
रामसीय-आस्रमनि चलत त्यों भए न श्रमित अभागे ॥
सकल अंग पद-बिमुख नाथ मुख नाम की ओट लई है ।
है तुलसिहिं परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है ॥ १७० ॥

कीजै मोको जमजातनामई ।
राम तुम से सुचि सुहृद साहिबहिं मैं सठ पीठि दई ॥
गरभबास दस मास पालि पितुमातुरूप हित कीन्हों ।
जड़हि बिबेक, सुसील खलहिं, अपराधिहिं आदर दीन्हों ॥
कपट करौं अंतरजामिहुँ सों, अघ ब्यापकहिं दुरावौं ।
ऐसेहु कुमति कुसेवक पर रघुपति न कियो मन बावौं ॥
उदर भरौं किंकर कहाइ, बेंच्यो बिषयनि हाथ हियो है ।
मोसे बंचक को कृपालु छल छाँड़ि के छोह कियो है ॥
पल पल के उपकार रावरे जानि बूझि सुनि नीके ।
भिद्यो न कुलिसहुँ तें कठोर चित कबहुँ प्रेम सिय-पी के ॥
स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साँइ-द्रोहाई ।
मैं मति-तुला तौलि देखी भइ मेरिहि दिसि गरुआई ॥
एतेहु पर हित करत नाथ मेरो, करि आयो अरु करिहैं ।
तुलसी अपनी ओर जानियत प्रभुहि कनौड़ो भरिहैं ॥ १७१ ॥

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा ते संत सुभाव गहौंगो ॥
यथालाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो ।
परहित-निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥

१७१—साँइ-द्रोहाई = स्वामी के विरुद्ध आचरण ।

परुषबचन अतिदुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहैंगो।
बिगत मान, सम सीतल मन, पर-गुन, नहिं दोष कहैंगो॥
परिहरि देहजनित चिंता, दुख सुख समबुद्धि सहैंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरिभक्ति लहैंगो॥ १७२॥

नाहिंन आवत आन भरोसो।
यहि कलिकाल सकल साधनतरु है स्रम-फलनि फरो सो॥
तप, तीरथ, उपवास, दान, मख जेहि जो रुचै करो सो।
पाएहि पै जानिबो करम-फल, भरि भरि बेद परोसो॥
आगम-बिधि, जप, जाग करत नर सरत न काज खरो सो।
सुख सपनेहु न जोग-सिधि-साधन, रोग बियोग धरो सो॥
काम, क्रोध, मद लोभ मोह मिलि ज्ञान बिराग हरो सो।
बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो॥
बहु मत सुनि बहु पंथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरो सो।
गुरु कह्यो रामभजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो॥
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि फिरि पचि मरै मरो सो।
रामनाम बोहित भवसागर, चाहै तरन तरो सो॥ १७३॥

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो छाँड़िए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषन बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-बनितनि, भए मुद-मंगलकारी॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद; एतो मतो हमारो॥ १७४॥

जो पै रहनि राम सों नाहीं।
तौ नर खर कूकर सूकर से जाय जियत जग माहीं॥
काम, क्रोध, मद, लोभ, नींद, भय, भूख, प्यास सबही के।
मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय-पी के॥
सूर, सुजान, सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई।

१७३—आम घरो = कच्चा घड़ा।

बिनु हरिभजन इँनारुन के फल. तजत नहीं करुआई ॥
कीरति, कुल, करतूति, भूति भलि, सील, सरूप सलोने ।
तुलसी प्रभु-अनुराग-रहित जस सालन साग अलोने ॥ १७५ ॥

राख्यो राम सुस्वामी सों नीच नेह न नातो ।
एते अनादर हूँ तोहि तें न हातो ॥
जोरे नए नाते नेह फोकट फीके ।
देह के दाहक, गाहक जी के ॥
अपने अपने को सब चाहत नीको ।
मूल दुहूँ को दयालु दूलह सी को ।
जीव को जीवन, प्रान को प्यारो ।
सुखहू को सुख राम सो बिसारो ॥
कियो, करैगो तोसे खल को भलो ।
ऐसे सुसाहिब सों तू कुचाल क्यो चलो ॥
तुलसी तेरी भलाई अजहूँ बूझै ।
राढ़उ राउत होत फिरि कै जूझै ॥ १७६ ॥

जौ तुम त्यागो राम हौं तो नहि त्यागों ।
परिहरि पाँय काहि अनुरागों ॥
सुखद सुप्रभु तुमसों जग माहीं ।
स्रवन-नयन-मन-गोचर नाहीं ॥
हौं जड़ जीव, ईस रघुराया ।
तुम मायापति, हौं बस माया ॥
हौं तो कुजाचक, स्वामि सुदाता ।
हौ कुपूत, तुमहीं पितु माता ॥
जो पै कहुँ कोउ बूझत बाता ।
तौ तुलसी बिनु मोल बिकाता ॥ १७७ ॥

भए हूँ उदास राम मेरे आस रावरी ।
आरत स्वारथी सब कहैं बात बावरी ॥
जीवन को दानी घन कहा ताहि चाहिए
प्रेम-नेम के निबाहे चातक सराहिए ॥

१७६—हातो = अलग, दूर । फोकट = व्यर्थ । राढ़उ = कायर भी ।

मीन तें न लाभ-लेस पानी पुन्य-पीन को ?
जल बिनु थल कहा मीच-बिनु मीन को ?
बड़े ही की ओट, बलि, बाँचि आए छोटे है ।
चलत खरे के संग जहाँ तहाँ खोटे हैं ॥
यहि दरबार भलो दाहिनेहु-बाम को ।
मोको सुभदायक भरोसो रामनाम को ॥
कहत नसानी ह्वैहै हिये नाथ नीकी है ।
जानत कृपानिधान तुलसी के जी की है ॥ १५८ ॥

राग बिलावल

कहाँ जाउँ ? कासों कहौं ? को सुनै दीन की ?
त्रिभुवन तुहीं गति सब अंगहीन की ॥
जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं ।
निराधार को अधार गुनगन तेरे हैं ॥
गजराज-काज खगराज तजि धायो को ।
मोसे दोस-कोस पोसे, तोसे माय जायो को ॥
मोसे कूर कायर कुपूत कौड़ी आध के ।
किए बहुमोल तैं करैया गीधस्राध के ॥
तुलसी की तेरे ही बनाए, बलि, बनैगी ।
प्रभु की बिलंब-अंब दोष दुख जनैगी ॥ १५९ ॥

बारक बिलोकि बलि कीजै मोहि आपनो ।
राय दसरथ के तू उथपन-थापनो ॥
साहिब सरनपाल सबल न दूसरो ।
तेरो नाम लेत ही सुखेत होत ऊसरो ॥
बचन करम तेरे मेरे मन गड़े हैं ।
देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं ॥
कौन कियो समाधान सनमान सीला को ?
भृगुनाथ सो ऋषी जितैया कौन लीला को ?
मातु-पितु-बंधु-हित, लोक-बेदपाल को ?
बोल को अचल, नत करत निहाल को ?
संग्रही सनेहबस अधम असाधु को ?
गीध सबरी को, कहो, करिहै सराध को ?
निराधार को अधार, दीन को दयालु को ?

मीत कपि केवट, रजनिचर भालु को ॥
रंक निरगुनी नीच जितने निवाजे है।
महाराज सुजन, समाज ते बिराजे है ॥
साँची बिरुदावली न बढ़ि कहि गई है।
सीलसिंधु ढील तुलसी की बार भई है ॥ १८० ॥

केहू भाँति कृपासिंधु मेरी ओर हेरिए।
मोको और ठौर न, सुटेक एक तेरिए ॥
सहस सिला ते अति जड़ मति भई है।
कासों कहौं, कौने गति पाहनहिं दई है ?
पद-राग-जाग चहौं कौसिक ज्यों कियो हौं।
कलिमल खल देखि भारी भीति भियो हौं ॥
करम-कपीस बालि बली त्रास त्रस्यो हौं।
चाहत अनाथ-नाथ तेरी बाँह बस्यो हौं ॥
महामोह-रावन बिभीषन ज्यों हयो हौं।
त्राहि तुलसीस ! त्राहि तिहूँ ताप तयो हौं ॥ १८१ ॥

नाथ-गुनगाथ सुनि होत चित चाउ सो।
राम रीझिबे को जानौ भगति न भाउ सो ॥
करम सुभाव काल ठाकुर न ठाँउ सो।
सुधन न, सुतन न, सुमन सुआउ सो ॥
जाँचों जल जाहि कहै अमिय पिआउ सो।
कासों कहौं काहू सों न बढ़त हिआउ सो ॥
बाप बलि जाउँ आपु करिए उपाय सो।
तेरेहि निहारे परै हारेउ सुदाउँ सो ॥
तेरेहि सुझाए सूझै असुझ सुझाउ सो।
तेरे ही बुझाए बूझै अबुझ बुझाउ सो ॥
नाम-अवलंब-अंबु दीन मीन-राउ सो।
प्रभु सों बनाइ कहौं जीह जरि जाउ सो ॥
सब भाँति बिगरी है एक सुबनाउ सो।
तुलसी सुसाहिबहि दियो है जनाउ सो ॥ १८२ ॥

१८१—पद-राग-जाग = चरणोंमें स्नेहरूपी यज्ञ। भियो हौं = डरा हूँ।
१८२—सुआउ = दीर्घायु।

राग आसावरी

राम प्रीति की रीति आप नीके जनियत है।
बड़े की बड़ाई, छोटे की छोटाई दूरि करै
ऐसी बिरुदावलि बलि बेद मनियत है॥
गीध को कियो सराध, भीलिनी को खायो फल
सोऊ साधु-सभा भली भाँति भनियत है।
रावरे आदरे लोक बेद हूँ आदरियत
जोग ज्ञान हू तें गरू गनियत है॥
प्रभु की कृपा कृपालु कठिन कलिहूँ काल
महिमा समुझि उर अनियत है।
तुलसी पराये बस भये रस अनरस,
दीनबंधु-द्वारे हठ ठनियत है॥ १८३॥

रामनाम के जपे जाइ जिय की जरनि।
कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भए
जैसे तम नासिबे को चित्र के तरनि॥
करम-कलाप, परिताप, पाप साने सब
ज्यों सुफूल फूले तरु फोकट फरनि।
दंभ, लोभ, लालच उपासना बिनासि नीके
सुगति साधन भई उदर भरनि॥
जोग न समाधि निरुपाधि न बिराग ज्ञान
बचन बिसेष बेष, कहूँ न करनि।
कपट कुपथ कोटि, कहनि रहनि खोटि
सकल सराहैं निज निज आचरनि॥
मरत महेस उपदेस हैं कहा करत
सुरसरि-तीर कासी धरम-धरनि।
रामनाम को प्रताप हर कहैं, जपैं आपु,
जुग जुग जानै जग बेदहूँ बरनि॥
मति रामनाम ही सों, रति रामनाम ही सों,
गति रामनाम ही की बिपति-हरनि।
रामनाम सों प्रतीति प्रीति राखे कबहुँक
तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि॥ १८४॥

लाज न आवत दास कहावत ।
सो आचरन बिसारि सोच तजि जो हरि तुम कहँ भावत ॥
सकल संग तजि भजत जाहि मुनि जप तप जाग बनावत ।
मो सम मंद महा खल पाँवर कौन जतन तेहि पावत ?
हरि निर्मल, मल-ग्रसित हृदय, असमंजस मोहिं जनावत ।
जेहि सर काक कंक बक सूकर क्यों मराल तहँ आवत ॥
जाकी सरन जाइ कोविद दारुन त्रयताप बुझावत ।
तहूँ गए मद मोह लोभ अति सरगहुँ मिटति न सावत ॥
भव-सरिता कहँ नाव संत यह कहि औरनि समुझावत ।
हौं तिन सों करि परम बैर हरि तुम सों भलो मनावत ॥
नाहिंन और ठहर मो कहँ तातें हठि नातो लावत ।
राखु सरन उदार-चूड़ामनि तुलसिदास गुन गावत ॥ १८५ ॥

कौन जतन बिनती करिए ।
निज आचरन बिचारि हारि हिय मानि जानि डरिए ॥
जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन सो हठि परिहरिए ।
जातें बिपति-जाल निसि दिन दुख तेहि पथ अनुसरिए ॥
जानत हूँ मन बचन कर्म पर हित कीन्हें तरिए ।
सो बिपरीत देखि परसुख बिनु कारन ही जरिए ॥
स्रुति पुरान सब को मत यह सतसंग सुदृढ़ धरिए ।
निज अभिमान मोह ईर्षा बस तिनहि न आदरिए ॥
संतन सोइ प्रिय मोहिं सदा जातें भव-निधि परिए ।
कहो अब नाथ ! कौन बल तें संसार-सोक हरिए ॥
जब कब निज करुना सुभाव तें द्रवहु तो निस्तरिए ।
तुलसिदास बिस्वास आन नहिं, कत पचि पचि मरिए ॥ १८६ ॥

ताहि तें आयो सरन सबेरे ।
ज्ञान-बिराग-भगति साधन कछु सपनेहु नाथ न मेरे ॥
लोभ, मोह, मद, काम, क्रोध रिपु फिरत रैन दिन घेरे ।
तिनहिं मिले मन भयो कुपथ-रत फिरै तिहारेहि फेरे ॥
दोष-निलय यह बिषय सोकप्रद कहत संत स्रुति टेरे ।
जानत हूँ अनुराग तहाँ अति सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे ॥

१८५—सावत = सवति भाव, डाह, ईर्षा ।

बिष पियूष सम करहु, अगिनि हिम, तारि सकहु बिनु बेरे ।
तुम सम ईस कृपालु परम हित पुनि न पाइहौं हेरे ॥
यह जिय जानि रहौं सब तजि रघुबीर भरोसे तेरे ।
तुलसिदास यह बिपति-बाँगुरो तुम्हहि सों बनै निबेरे ॥ १८७ ॥

मैं तोहि अब जान्यों, संसार ।
बाँधि न सकहि मोहि हरि के बल प्रगट कपट-आगार ॥
देखत ही कमनीय, कछू नाहिन पुनि किए बिचार ।
ज्यों कदलीतरु मध्य निहारत कबहुँ न निकसत सार ॥
तेरे लिये जनम अनेक मैं फिरत न पायो पार ।
महामोह-मृगजल-सरिता महँ बोर्‌यो हौं बारहिं बार ॥
सुनु खल छल बल कोटि किए बस होहिं न भगत उदार ।
सहित सहाय तहाँ बसि अब जेहि हृदय न नंदकुमार ॥
तासों करहु चातुरी जो नहिं जानै मरम तुम्हार ।
सो परि डरै मरै रजु अहि तें बूझै नहिं ब्यवहार ॥
निज हित सुनु सठ ! हठ न करहि जो चहहि कुसल परिवार ।
तुलसिदास प्रभु के दासन्ह तजि भजहि जहाँ मद मार ॥ १८८ ॥

राग गौरी

राम कहत चलु, राम कहत चलु, राम कहत चलु, भाई रे ।
नाहिं तौ भव बेगारि महँ परिहौ छूटत अति कठिनाई रे ॥
बाँस पुरान साज सब अटखट सरल तिकोन खटोला रे ।
हमहि दिहल करि कुटिल करमचँद मंद मोल बिनु डोला रे ॥
बिषम कहार मार-मदमाते, चलहिं न पाउँ बटोरा रे ।
मंद बिलंद अभेरा दलकन पाइय दुख झकझोरा रे ॥
काँट कुरायँ लपेटन लोटन ठाँवहिं ठाँउ बझाऊ रे ।
जस जस चलिय दूरि तस तस निज बास न भेंट लगाऊ रे ॥
मारग अगम, संग नहिं संबल, नाउँ गाउँ कर भूला रे ।
तुलसिदास भवत्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे ॥ १८९ ॥

१८७—बाँगुरो = जाल ।

१८९—अटखट = गड़बड़ । सरल = सड़ा हुआ । दिहल = दिया । मंद = नीचा । बिलंद = ऊँचा । अभेरा = धक्का । दलकन = झटका । कुरायँ = कंकड़ी । लपेटन = पैरों में लिपटनेवाला तृण । लोटन = सरीसृप, साप । बझाऊ = बझाव, उलझन ।

जो अनुराग न राम सनेही सों । तो लह्यो लाहु कहा नर देही सों ॥
जो तनु धरि परिहरि सब सुख भए सुमति राम अनुरागी ।
सो तनु पाइ अघाइ किए अघ अवगुन-उदधि अभागी ॥
ज्ञान बिराग जोग जप तप मख जग मुद-मग नहिं थोरे ।
राम-प्रेम बिनु नेम जाय जैसे मृग-जल-जलधि हिलोरे ॥
लोक बिलोकि, पुरान बेद सुनि, समुझि बूझि गुरु ज्ञानी ।
प्रीति प्रतीति रामपद-पंकज सकल सुमंगल-खानी ॥
अजहुँ जानि जिय मानि हारि हिय होइ पलक महँ नीको ।
सुमिरु सनेह सहित हित रामहिं मानु मतो तुलसी को ॥ १६४ ॥

बलि जाउँ हौं राम गुसाईं । कीजै कृपा आपनी नाईं ॥
परमारथ सुरपुर-साधन सब स्वारथ सुखद भलाई ।
कलि सकोप लोपी सुचाल, निज कठिन कुचाल चलाई ॥
जहँ जहँ चित चितवत हित तहँ नित नव बिषाद अधिकाई ।
रुचि-भावती भभरि भागहि, समुहाहिं अमित अनभाई ॥
आधि-मगन मन, ब्याधि-बिकल तन, बचन मलीन झुठाई ।
एतेहुँ पर तुम सों तुलसी की प्रभु सकल सनेह सगाई ॥ १६५ ॥

काहे को फिरत मन करत बहु जतन,
मिटै न दुख बिमुख रघुकुल-बीर ।
कीजै जो कोटि उपाइ त्रिबिध ताप न जाइ,
कह्यो जो भुज उठाइ मुनिबर-कीर ॥
सहज टेव बिसारि तुहीं धौं देखु बिचारि
मिलै न मथत बारि घृत बिनु छीर ।
समुझि तजहि भ्रम भजहि पद जुगम,
सेवत सुगम गुन गहन गँभीर ॥
आगम निगम ग्रंथ, रिषि मुनि सुर संत
सबही को एक मत सुनु, मतिधीर ।
तुलसिदास प्रभु बिनु पियास मरै पसु
जद्यपि है निकट सुरसरि-तीर ॥ १६६ ॥

१६४—मुद-मग = मंगल के मार्ग ।
१६६—मुनिबर कीर = शुकदेवजी । हीर = गूदा, सार ।

नाहिंन चरन रति ताहि तें सहौं बिपति
कहत स्रुति सकल मुनि मतिधीर ।
बसै जो ससि-उछंग सुधा-स्वादित कुरंग
ताहि क्यों भ्रम निरखि रविकर-नीर ? ॥
सुनिय नाना पुरान मिटत नाहिं अज्ञान
पढ़िय न समुझिय जिमि खग कीर ।
बझत बिनहिं पास सेमर-सुमन-आस
करत चरत तेइ फल बिनु हीर ॥
कछु न साधन सिधि, जानौं न निगम-बिधि
नहिं जप तप बस मन, न समीर ।
तुलसीदास भरोस परम करुना-कोस
प्रभु हरिहैं बिषम भवभीर ॥ १९७ ॥

भैरवी

मन पछितैहै अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु करम बचन अरु ही ते ॥
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बली ते ।
हम हम करि धन धाम सँवारे, अंत चले उठि रीते ॥
सुत बनितादि जानि स्वारथ-रत न करु नेह सबही तें ।
अंतहुँ तोहि तजैंगे, पामर ! तू न तजै अबही तें ॥
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जी तें ।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ बिषय-भोग बहु घी तें ॥ १९८ ॥

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो ।
तजि हरिचरन-सरोज सुधारस रबिकर-जल लय लायो ॥
त्रिजग, देव, नर, असुर, अपर जग जोनि सकल भ्रमि आयो ।
गृह, बनिता, सुत, बंधु भए बहु मातु पिता जिन्ह जायो ॥
जातें निरय-निकाय निरंतर सोइ इन्ह तोहि सिखायो ।
तुव हित होइ कटै भवबंधन, सो मगु तोहि न बतायो ॥
अजहुँ बिषय कहँ जतन करत जद्यपि बहु बिधि डहँकायो ।
पावक-काम भोग-घृत तें सठ कैसे परत बुझायो ?

१९७ समीर = प्राण वायु, जिसे योगी वश में करते हैं ।

तेरसि तीन अवस्था तजहु भजहु भगवंत ।
मन-क्रम-बचन-अगोचर, ब्यापक, ब्याप्य, अनंत ॥
चौदसि चौदह भुवन अचरचर रूप गोपाल ।
भेद गए बिनु रघुपति अति न हरहिं जगजाल ॥
पूनों प्रेमभगति-रस हरिरस जानहिं दास ।
सम सीतल गत-मान ज्ञानरत बिषय उदास ॥
त्रिबिध सूल होलिय जरै, खेलिय अस फागु ।
जो जिय चहसि परम सुख तो यहि मारग लागु ॥
श्रुति-पुरान-बुध-संमत चाँचरि चरित मुरारि ।
करि बिचार भव तरिय, परिय न कबहुँ जमधारि ॥
संसय-समन दमन-दुख सुखनिधान हरि एक ।
साधुकृपा बिनु मिलहिं न करिय उपाइ अनेक ॥
भवसागर कहँ नाव सुद्ध संतन के चरन ।
तुलसिदास प्रयास बिनु मिलहिं राम दुखहरन ॥ २०३ ॥

राग कान्हरा

जौ मन लागै रामचरन अस ।
देह, गेह, सुत, बित, कलत्र महँ मगन होत बिनु जतन किए जस ॥
द्वंद्व-रहित, गत-मान, ज्ञानरत, बिषय-बिरत खटाइ नाना कस ।
सुखनिधान सुजान कोसलपति ह्वै प्रसन्न कहु क्यों न होहिं बस ?
सर्ब भूतहित निर्ब्यलीक चित भगति प्रेम दृढ़ नेम एक-रस ।
तुलसिदास यह होइ तबहिं जब द्रवै ईस जेहि हतो सीसदस ॥ २०४ ॥

जौ मन भज्यो चहै हरि-सुरतरु ।
तौ तजि बिषय बिकार सार भजु, अजहूँ जो मैं कहौं सोइ करु ॥
सम, संतोष, बिचार बिमल अति, सतसंगति, ए चारि दृढ़ करि धरु ।
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद राग द्वेष निसेष करि परिहरु ॥
स्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरु ।
नयनन निरखि कृपा-समुद्र हरि अगजग रूप भूप सीताबरु ॥
इहै भगति बैराग्य ज्ञान यह हरि-तोषन यह सुभ ब्रत आचरु ।
तुलसिदास सिवमत मारग यहि चलत सदा सपनेहुँ नाहिंन डरु ॥२०५॥

२०३—चाँचरि = फाग के स्वाँग ।
२०४—खटाइ = परीक्षा में पूर्ण उतरे । कस = जाँच, परीक्षा ।

नाहिन और कोउ सरन लायक दूजो श्रीरघुपति सम बिपति-निवारन।
काको सहज सुभाउ सेवक-बस, काहि प्रनत पर प्रीति अकारन ?
जन-गुन अलप गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि बिलोकि बिसारन।
परम कृपालु, भगत-चिंतामनि बिरद पुनीत पतितजन-तारन ॥
सुमिरत सुलभ, दास दुख सुनि हरि चलत तुरत पट पीत सँभार न।
साखि पुरान निगम आगम सब, जानत द्रुपदसुता अरु बारन ॥
जाको जस गावत कबि कोबिद, जिन्हके लोभ मोह मद मार न।
तुलसिदास तजि आस सकल भजु कोसलपति मुनि-बधू-उधारन ॥२०६॥

भजिबे लायक सुखदायक रघुनायक सरिस सरनप्रद दूजो नाहिन।
आनँदभवन दुखदमन सोकहरन रमारमन गुन गनत सिराहि न ॥
आरत अधम कुजाति कुटिल खल पतित सभीत कहूँ जे समाहि न।
सुमिरत नाम बिबस हू बारक पावत सो पद जहाँ सुर जाहि न ॥
जाके पद-कमल लुब्ध मुनि-मधुकर बिरत जे परम सुगतिहु लुभाहि न।
तुलसिदास सठ तेहिं न भजसि कस कारुनीक जो अनाथहि दाहिन ॥२०७॥

राग कल्याण

नाथ सों कौन बिनती कहि सुनावौं ?
बिबिध अनगनित अवलोकि अघ आपने
सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौं ॥
बिरचि हरि-भगति को बेष बर टाटिका
कपट-दल हरित पल्लवनि छावौं।
नाम-लगि लाइ, लासा-ललित-बचन कहि
ब्याध ज्यों बिषय-बिहँगनि बझावौं ॥
कुटिल सत कोटि मेरे रोम पर बारियहि,
साधुगनती मैं पहिलेहि गनावौं।
परम बर्बर खर्बगर्ब-पर्वत चढ्यो
अज्ञ सर्बज्ञ जनमनि जनावौं ॥
साँच किधौं झूठ मोको कहत कोउ
कोउ राम रावरो हौंहुँ तुम्हरो कहावौं।
बिरद की लाज करि दासतुलसिहि, देव !
लेहु अपनाइ अब देहु जनि बावौं ॥ २०८ ॥

२०८—टाटिका = टट्टी। लगि = लग्गी, बाँस की लंबी छड़। जनमनि = मनुष्यों में श्रेष्ठ।

नाहिनै नाथ अवलंब मोहिं आन की ।
करम मन बचन पन सत्य, करुनानिधे !
एक गति राम भवदीय पदत्रान की ॥
कोह मद मोह ममतायतन जानि मन,
बात नहि जाति कहि ज्ञान बिज्ञान की ।
काम-संकल्प उर निरखि बहु बासनहि
आस नहिं एक हू आँक निरवान की ॥
बेद-बोधित करम धरम बिनु, अगम अति
जदपि, जिय लालसा अमरपुर जान की ।
सिद्ध सुर मनुज दनुजादि सेवत कठिन
द्रवहि हठजोग दिए भोग बलि प्रान की ॥
भगति दुरलभ परम, संभु सुक मुनि मधुप,
प्यास पदकंज-मकरंद-मधुपान की ।
पतित-पावन सुनत नाम बिश्रामकृत
भ्रमत पुनि समुझि चित ग्रंथि अभिमान की ॥
नरक अधिकार मम घोर संसार-तम-कूपकहि,
भूप ! मोहि सक्ति आपान की ।
दासतुलसी सोउ त्रास नहि गनत मन
सुमिरि गुह गीध गज ज्ञाति हनुमान की ॥२०९॥

और कहँ ठौर, रघुबंसमनि मेरे ?
पतित-पावन प्रनत-पाल असरन सरन
बाँकुरे बिरद बिरुदैत केहि केरे ॥
समुझि जिय दोष अति रोष करि राम के
करत नहि कान बिनती बदन फेरे ।
तदपि ह्वै निडर हौं कहौं, करुनासिंधु !
क्योंऽब रहि जात सुनि बात बिन हेरे ॥
मुख्य रुचि होति बसिबे की पुर रावरे,
राम तेहि रुचिहि कामादि गन घेरे ।
अगम अपवर्ग, अरु स्वर्ग सुकृतैक फल,
नाम-बल क्यों बसौं जमनगर नेरे ?

२०९—एक हू आँक = सोलह आने में एक आना भी, कुछ भी । आपान की = अपनी या आपकी ।

कतहुँ नहिं ठाउँ कहँ जाउँ, कोसलनाथ !
दीन बितहीन हौं बिकल बिनु डेरे ।
दास तुलसिहिं बास देहु अब करि कृपा,
बसत गज गीध ब्याधादि जेहि खेरे ॥ २१० ॥

कबहुँ रघुबंस-मनि सो कृपा करहुगे ?
जेहि कृपा ब्याध गज बिप्र खल नर तरे
तिन्हहिं सम मानि मोहिं नाथ उद्धरहुगे ॥
जोनि बहु जनमि किए करम खल बिबिध बिधि,
अधम आचरन कछु हृदय नहिं धरहुगे ।
दीनहित अजित सर्वज्ञ समरथ प्रनतपाल,
चित-मृदुल निज गुननि अनुसरहुगे ॥
मोह मद मान कामादि खल-मंडली,
सकुल निरमूल करि दुसह दुख हरहुगे ।
जोग जप ज्ञान बिज्ञान तें अधिक अति,
अमल दृढ़ भगति दै परम सुख भरहुगे ॥
मंदजन-मौलि-मनि, सकल-साधनहीन,
कुटिल-मन, मलिन-जिय जानि जो डरहुगे ।
दासतुलसी बेद-बिदित बिरुदावली,
बिमल जस नाथ केहि भाँति बिस्तरहुगे ? ॥ २११ ॥

राग केदारा

रघुपति बिपति-दवन ।
परम कृपालु प्रनत-प्रतिपालक पतित-पवन ॥
क्रूर कुटिल कुलहीन दीन अति मलिन जवन ।
सुमिरत नाम राम पठए सब अपने भवन ॥
गज पिंगला अजामिल से खल गनै धौं कवन ?
तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्हि गति जानकी-रवन ॥ २१२ ॥

हरि सम आपदाहरन ।
नहिं कोउ सहज कृपालु दुसह-दुखसागर-तरन ॥
गज निज बल अवलोकि कमल गहि गयो सरन ।
दीन बचन सुनि चले गरुड़ तजि सुनाभ-धरन ॥
द्रुपदसुता को लग्यो दुसासन नगन करन ।
'हा हरि पाहि !' कहत पूरे पट बिबिध बरन ॥

इहै जानि सुर नर मुनि कोबिद सेवत चरन।
तुलसिदास प्रभु को न अभय कियो नृग-उद्धरन ॥२१३॥

राग कल्याण

ऐसी कौन प्रभु की रीति।
बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति॥
गई मारन पूतना कुच कालकूट लगाइ।
मातु की गति दई ताहि कृपालु जादवराइ॥
काम-मोहित गोपिकनि पर कृपा अतुलित कीन्ह।
जगतपिता बिरंचि जिन्हके चरन की रज लीन्ह॥
नेम तें सिसुपाल दिन प्रति देत गनि गनि गारि।
कियो लीन सु आपु में हरि राजसभा मँझारि॥
ब्याध चित दै चरन मार्‍यो मूढ़मति मृग जानि।
सो सदेह सुलोक पठयो प्रगट करि निज बानि॥
कौन तिन्हकी कहै जिन्हके सुकृत अरु अघ दोउ।
प्रगट पातक-रूप तुलसी सरन राख्यो सोउ॥ २१४॥

श्री रघुबीर की यह बानि।
नीचहू सों करत नेह सुप्रीति मन अनुमानि॥
परम अधम निषाद पाँवर, कौन ताकी कानि?
लियो सो उर लाइ सुत ज्यों प्रेम को पहिचानि॥
गीध कौन दयालु जो बिधि रच्यो हिंसा सानि?
जनक ज्यों रघुनाथ ता कहँ दियो जल निज पानि॥
प्रकृति-मलिन कुजाति सबरी सकल अवगुन-खानि।
खात ताके दिए फल अति रुचि बखानि बखानि॥
रजनिचर अरु रिपु बिभीषन सरन आयो जानि।
भरत ज्यों उठि ताहि भेंटत देह-दसा भुलानि॥
कौन सुभग सुसील बानर जिनहिं सुमिरत हानि।
किए ते सब सखा, पूजे भवन अपने आनि॥
राम सहज कृपालु कोमल दीनहित दिन दानि।
भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी कुटिल कपट न ठानि॥२१५॥

२१३—सुनाभ = चक्र।

हरि तजि और भजिए काहि ?
नाहिनै कोउ राम सो ममता प्रनत पर जाहि ॥
कनककसिपु बिरंचि को जन करम मन अरु बात ।
सुतहि दुखवत बिधि न बरज्यो काल के घर जात ॥
संभु-सेवक जान जग, बहु बार दिए दस सीस ।
करत राम-बिरोध सो सपनेहु न हटक्यो ईस ॥
और देवन की कहा कहौं स्वारथहि के मीत ।
कबहुँ काहु न राखि लियो कोउ सरन गयउ सभीत ॥
को न सेवत देत संपति ? लोकहू यह रीति ।
दास तुलसी दीन पर एक राम ही की प्रीति ॥ २१६ ॥

जो पै दूसरो कोउ होइ ।
तो हौं बारहिं बार प्रभु कत दुख सुनावौं रोइ ?
काहि ममता दीन पर, को पतितपावन नाम ?
पापमूल अजामिलहि केहि दियो अपनो धाम ?
रहे संभु बिरंचि सुरपति लोकपाल अनेक ।
सोक-सरि बूड़त करीसहिं दई काहु न टेक ॥
बिपुल भूपति-सदसि महँ नर-नारि कह्यो 'प्रभु पाहि !'
सकल समरथ रहे काहु न बसन दीन्हों ताहि ॥
एक मुख क्यों कहौं करुना-सिंधु के गुनगाथ ?
भगतहित धरि देह काह न कियो कोसलनाथ ॥
आप से कहुँ सौंपिए मोहि जौ पै अतिहि घिनात ।
दासतुलसी और बिधि क्यों चरन परिहरि जात ? ॥२१७॥

कबहिं देखाइहौ हरि चरन ?
समन सकल कलेस कलिमल, सकल-मंगल-करन ॥
सरदभव सुंदर तरुनतर अरुन बारिज-बरन ।
लच्छि लालित ललित करतल छबि अनूपम धरन ॥
गंग-जनक, अनंग-अरि-प्रिय, कपट बटु बलि-छरन ।
बिप्रतिय, नृग, बधिक के दुख दोष दारुन दरन ॥
सिद्ध-सुर-मुनि-बृंद-बंदित सुखद सब कहँ सरन ।
सकृत उर आनत जिनहिं जन होत तारनतरन ॥

२१७—करीस = गजराज । सदसि = सभा । नर-नारि = अर्जुन की स्त्री, द्रौपदी ।

कृपासिंधु सुजान रघुबर प्रनत-आरति-हरन ।
दरस-आस-पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥ २१८ ॥

द्वार हौं भोर ही को आज ।
रटत रिरिहा आरि और न कौर ही तें काज ॥
कलि कराल दुकाल दारुन सब कुभाँति कुसाज ।
नीच जन, मन ऊँच, जैसी कोढ़ में की खाज ॥
हहरि हिय में सदय बूझयो जाइ साधु-समाज ।
मोहुँ से कहुँ कतहुँ कोउ तिन्ह कह्यो कोसलराज ॥
दीनता दारिद दलै को कृपा-बारिधि बाज ।
दानि दसरथ राय के तुम बानइत-सिरताज ॥
जनम को भूखो भिखारी हौं गरीबनेवाज ।
पेट भरि तुलसिहि जेंवाइय भगति-सुधा सुनाज ॥ २१९ ॥

करिय सँभार, कोसलराय !
और ठौर, न और गति, अवलंब नाम बिहाय ॥
बूझि अपनी आपनो हित आप बाप न माय ।
राम राउर नाम गुरु सुर स्वामि सखा सहाय ॥
रामराज न चले मानस-मलिन के छल-छाय ।
कोप तेहि कलिकाल कायर मुएहि घालत घाय ॥
लेत केहरि को बयर ज्यों भेक हनि गोमाय ।
त्योंहि रामगुलाम जानि निकाम देत कुदाय ॥
अकनि याके कपट करतब अमित अनय अपाय ।
सुखी हरिपुर बसत होत परीछितहिं पछिताय ॥
कृपासिंधु बिलोकिए जन-मन की साँसति साय ।
सरन आयो, देव दीनदयालु ! देखन पाय ॥
निकट बोलि न बरजिए बलि जाउँ हनिय न हाय ।
देखिहैं हनुमान गोमुख-नाहरनि के न्याय ॥
अरुन मुख, भ्रू बिकट, पिंगल नयन रोष कषाय ।
बीर सुमिरि समीर को घटिहै चपल चित चाय ॥

२१८—लच्छि = लक्ष्मी ।

२१९—रिरिहा = रट लगाकर और गिड़गिड़ा कर माँगनेवाला । आरि = टेक, हठ । बाज = बिना, बग़ैर ।

बिनय सुनि बिहँसे अनुज सों बचन के कहि भाय।
भली कही कह्यो लषन हू हँसि, बने सकल बनाय॥
दई दीनहि दादि सो सुनि सुजन-सदन बधाय।
मिटे संकट सोच पोच प्रपंच पाप-निकाय॥
पेखि प्रीति प्रतीति जन पर अगुन अनघ अमाय।
दास तुलसी कहत मुनिगन, 'जयति जय उरगाय'॥२२०॥

नाथ-कृपा ही को पंथ चितवत दीन हौं दिन राति।
होइ धौं केहि काल दीनदयालु जानि न जाति॥
सुगुन, ज्ञान, बिराग, भगति सुसाधननि की पाँति।
भजे बिकल बिलोकि कलि अघ-अवगुननि की थाति॥
अति अनीति कुरीति भइ भुइँ तरनि हू तें ताति।
जाउँ कहँ बलि जाउँ? कहूँ न ठाउँ मति अकुलाति॥
आप सहित न आपनो कोउ, बाप! कठिन कुभाँति।
स्यामघन सींचिए तुलसी सालि सफल सुखाति॥२२१॥

बलि जाउँ, और कासों कहौं?
सदगुन-सिंधु स्वामि सेवक-हितु कहुँ न कृपानिधि सो लहौं॥
जहँ जहँ लोभ लोल लालचबस निजहित चित चाहनि चहौं।
तहँ तहँ तरनि तकत उलूक ज्यों भटकि कुतरु-कोटर गहौं॥
काल सुभाव करम बिचित्र फलदायक सुनि सिर धुनि रहौं।
मोको तो सकल सदा एकहि रस दुसह दाह दारुन दहौं॥
उचित अनाथ होइ दुखभाजन, भयो नाथ किंकर न हौं।
अब रावरो कहाय न बूझिए सरनपाल साँसति सहौं॥
महाराज राजीव-बिलोचन मगन-पाप-संताप हौं।
तुलसी-प्रभु जब तब जेहि तेहि बिधि राम निबाहे निरबहौं॥२२२॥

आपनो कबहुँ करि जानिहौ
राम गरीब-निवाज राजमनि बिरद-लाज उर आनिहौ॥
सील सिंधु सुंदर सब लायक समरथ सदगुन-खानि हौ।
पाल्यो है, पालत, पालहुगे प्रभु प्रनत प्रेम पहिचानिहौ॥

२२०—गोमाय = गोमायु, गीदड़। कुदाय देत = घात करता है। माय = जाय या शांत हो। गोमुख नाहर न्याय = ऊपर से गाय की तरह सीधा, पर असल में व्याघ्र के समान क्रूर। उरगाय = विष्णु।

बेद पुरान कहत, जग जानत, दीनदयालु दिन दानि हौ।
कहि आवत, बलि जाउँ, मनहुँ मेरी बार बिसारे बानि हौ।
आरत दीन अनाथनि के हित मानत लौकिक कानि हौ।
है परिनाम भलो तुलसी को सरनागत-भय भानिहौ॥ २२३॥

रघुबरहिं कबहुँ मन लागिहै ?
कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागिहै ?
जानत गरल अमिय बिमोहबस, अमिय गनत करि आगि है।
उलटी रीति प्रीति अपने की तजि प्रभुपद अनुरागिहै॥
आखर अरथ मंजु मृदु मोदक रामप्रेम-पाग पागिहै।
ऐसे गुन गाइ रिझाइ स्वामि सों पाइहै जो मुँह माँगिहै॥
तू यहि बिधि सुख-सयन सोइहै जिय की जरनि भूरि भागिहै।
राम-प्रसाद दासतुलसी-उर राम-भगति जोग जागिहै॥ २२४॥

भरोसो और आइहै उर ताके।
कै कहुँ लहै जो रामहि सो साहिब, कै अपनो बल जाके॥
कै कलिकाल कराल न सूझत मोह-मार-मद-छाके।
कै सुनि स्वामि-सुभाउ न रह्यो चित जो हित सब अंग थाके॥
हौं जानत भलि भाँति अपनपो, प्रभु सो सुन्यो न साके।
उपल, भील, खग, मृग, रजनीचर भले भए करतब का के?
मोको भलो रामनाम सुरतरु सो रामप्रसाद कृपालु कृपा के।
तुलसी सुखी निसोच राज ज्यों बालक माय बबा के॥ २२५॥

भरोसो जाहि दूसरो सो करो।
मोको तो राम को नाम कल्पतरु कलि कल्यान फरो॥
करम, उपासन, ज्ञान बेदमत सो सब भाँति खरो।
मोहि तो सावन के अंधहिं ज्यों सूझत रंग हरो॥
चाटत रह्यो स्वान पातरि ज्यों कबहुँ न पेट भरो।
सो हौं सुमिरत नाम सुधारस पेखत परुसि धरो॥
स्वारथ औ परमारथ हू को नहि कुंजरो नरो।
सुनियत सेतु पयोधि पषाननि करि कपि कटक तरो॥
प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ ताको काज सरो।
मेरे तो माय बाप दोउ आखर हौं सिसु-अरनि अरो॥

२२३—भानिहौ = भजन करोगे नष्ट करोगे।

संकर साखि जो राखि कहौं कछु तौ जरि जीह गरो।
अपनो भलो राम नामहिं तें तुलसिहि समुझि परो॥ २२६॥

नाम राम रावरोई हित मेरे।
स्वारथ परमारथ साथिन्ह सों भुज उठाइ कहौं टेरे॥
जननी जनक तज्यो जनमि, करम बिनु बिधिहु सृज्यो अवडेरे।
मोहुँ से कोउ कोउ कहत रामहि को सो प्रसंग केहि केरे ?
फिर्यो ललात बिनु नाम उदर लगि दुखउ दुखित मोहिं हेरे।
नाम-प्रसाद लहत रसाल-फल अब हौं बबुर बहेरे॥
साधत साधु लोक परलोकहि, मुनि गुनि जतन घनेरे।
तुलसी के अवलंब नाम को एक गाँठि कई फेरे॥ २२७॥

प्रिय रामनाम तें जाहि न रामो।
ताको भलो कठिन कलिकालहुँ आदि मध्य परिनामो॥
सकुचत समुझि नाम-महिमा मद लोभ मोह कोह कामो।
रामनाम-जप-निरत सुजन पर करत छाँह घोर घामो॥
नाम प्रभाउ सही जो कहै कोउ सिला सरोरुह जामो।
जो सुनि सुमिरि भाग-भाजन भइ सुकृतसील भील-भामो॥
बालमीकि अजामिल के कछु हुतो न साधन सामो।
उलटे पलटे-नाम-महातम गुंजनि जितो ललामो॥
राम तें अधिक नाम-करतब जेहि किए नगर-गत गामो।
भए बजाइ दाहिने जो जपि तुलसिदास से बामो॥ २२८॥

गरैगी जीह जो कहौं और को हौं।
जानकी-जीवन ! जनम-जनम जग ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं॥
तीनि लोक तिहुँ काल न देखत सुहृद रावरे जोर को हौं।
तुमसों कपट करि कलप कलप कृमि ह्वैहौं नरक घोर को हौं॥
कहा भयो जो मन मिलि कलिकालहिं कियो भौंतुवा भौंर को हौं।
तुलसिदास सीतल नित यहि बल बड़े ठेकाने ठौर को हौं॥ २२९॥

२२६—कुंजरो नरो = नरो वा कुंजरो वा; दुबिधा या संदेह।

२२७—अवडेरे = चक्करदार, बेढब।

२२८—भीलभामो = भील की स्त्री शबरी भी। सामो = सामग्री। ललामो = रत्नों के आभूषण।

२२९—जोर = जोड़। भौंतुवा = जौ के बराबर एक काला कीड़ा जो नदियों में तैरा करता है; ये तारों के निकट झुंड के झुंड दिखाई देते हैं।

अकारन को हितु और को है ?
बिरद गरीब-निवाज कौन की भौंह जासु जन जोहै ?
छोटो बड़ो चहत सब स्वारथ जो बिरंचि बिरचो है ।
कोल कुटिल कपि भालु पालिबो कौन कृपालुहि सोहै ?
काको नाम अनख आलस कहें अघ अवगुननि बिछोहै ?
को तुलसी से कुसेवक संग्रह्यो, सठ सब दिन साईं द्रोहै ? ॥२३०॥

और मोहि को है काहि कहिहौं !
रंकराज ज्यों मन को मनोरथ केहि सुनाइ सुख लहिहौं ?
जम-जातना जोनि-संकट सब सहे दुसह अरु सहिहौं ।
मोको अगम, सुगम तुम्हको प्रभु ! तउ फल चारि न चहिहौं ॥
खेलिबे को खग मृग तरु किंकर ह्वै रावरो राम हौं रहिहौं ।
यहि नाते नरकहुँ सचु पैहौं, या बिनु परमपदहुँ दुख दहिहौं ॥
इतनी जिय लालसा दास के कहत पानही गहिहौं ।
दीजै बचन कि हृदय आनिए तुलसी को पन निर्बहिहौं ॥ २३१ ॥

दीनबंधु दूसरो कहँ पावौं ?
को तुम बिनु पर-पीर पाइहै ? केहि दीनता सुनावौं ? ॥
प्रभु अकृपालु, कृपालु अलायक जहँ जहँ चितहिं डोलावौं ।
इहै समुझि सुनि रहौं मौन ही, कहि भ्रम कहा गँवावौं ? ॥
गोपद बूड़िबे जोग करम करौं बातनि जलधि थहावौं ।
अति लालची काम-किंकर मन, मुख रावरो कहावौं ॥
तुलसी प्रभु जिय की जानत सब, अपनो कछुक जनावौं ।
सो कीजै जेहि भाँति छाँड़ि छल द्वार परो गुन गावौं ॥ २३२ ॥

मनोरथ मन को एकै भाँति ।
चाहत मुनि-मन-अगम सुकृत-फल, मनसा अघ न अघाति ॥
करमभूमि कलि जनम कुसंगति मति बिमोह मद माति ।
करत कुजोग कोटि क्यों पैयत परमारथ-पद-सांति ॥
सेइ साधु गुरु, सुनि पुरान स्रुति बूझ्यो राग बाजी ताँति ।
तुलसी प्रभु सुभाउ सुरतरु सो ज्यों दरपन मुखकाँति ॥ २३३ ॥

जनम गयो बादिहिं बर बीति ।
परमारथ पाले न पर्यो कछु, अनुदिन अधिक अनीति ॥

२३१—पानही = जूता ।
२३२—अपनो = आप भी ।

खेलत खात लरिकपन गो चलि, जौबन जुबतिन लियो जीति ।
रोग-बियोग-सोक-स्रम-संकुल बड़ि बय बृथहि अतीति ॥
राग-रोष-इरषा-बिमोह बस रुची न साधु-समीति ।
कहे न सुने गुनगन रघुबर के, भइ न रामपद-प्रीति ॥
हृदय दहत पछिताय-अनल अब सुनत दुसह भवभीति ।
तुलसी प्रभु तें होइ सो कीजिय समुझि बिरद की रीति ॥ २३४ ॥

ऐसेहि जन्म-समूह सिराने ।
प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत चरन बिराने ॥
जे जड़ जीव कुटिल कायर खल केवल कलिमल-साने ।
सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ, हरि तें अधिक करि माने ॥
सुख हित कोटि उपाय निरंतर करत न पाँय पिराने ।
सदा मलीन पंथ के जल ज्यों कबहुँ न हृदय थिराने ॥
यह दीनता दूरि करिबे को अमित जतन उर आने ।
तुलसी चित चिंता न मिटै बिनु चिंतामनि पहिचाने ॥ २३५ ॥

जो पै जिय जानकीनाथ न जाने ।
तौ सब करम धरम स्रमदायक, ऐसेइ कहत सयाने ॥
जे सुर, सिद्ध, मुनीस, जोगबिद बेद पुरान बखाने ।
पूजा लेत देत पलटे सुख हानि-लाभ अनुमाने ॥
काको नाम धोखेहूँ सुमिरत पातक-पुंज सिराने ।
बिप्र, बधिक, गज गीध कोटि खल कौन के पेट समाने ॥
मेरु से दोष दूरि करि जन के, रेनु से गुन उर आने ।
तुलसिदास तेहि सकल आस तजि भजहि न अजहुँ अयाने ॥ २३६ ॥

काहे न रसना रामहिं गावहि ?
निसि दिन पर-अपवाद बृथा कत रटि रटि राग बढ़ावहि ॥
नरमुख सुंदर मंदिर पावन बसि जनि ताहि लजावहि ।
ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत रबिकर-जल कहँ धावहि ॥
काम-कथा कलि-कैरव-चंदिनि सुनत स्रवन दै भावहि ।
तिनहि हटकि कहि हरि-कल-कीरति करन-कलंक नसावहि ॥
जातरूप मति जुगुति रुचिर मनि रचि रचि हार बनावहि ।
सरन-सुखद रबिकुल-सरोज-रबि राम नृपहिं पहिरावहि ॥

२३४—अतीति = बीत गई । समीति = समिति, समाज ।

बाद-बिबाद-स्वाद तजि भजि हरि सरस चरित चित लावहि ।
तुलसिदास भव तरहि, तिहूँ पुर तू पुनीत जस पावहि ।। २३७ ।।

आपनो हित रावरे सों जो पै सूझै ।
तौ जनु तनु पर अछत सीस सुधि क्यों कबंध ज्यों जूझै ।।
निज अवगुन, गुन राम रावरे लखि सुनि मति मन रूझै ।
रहनि कहनि समुझनि तुलसी की को कृपालु बिनु बूझै ? ।। २३८ ।।

जाको हरि दृढ़ करि अंग कस्यो ।
सोइ सुसील पुनीत बेदबिद बिद्या-गुननि-भर्यो ।।
उतपति पांडुतनय की करनी सुनि सतपंथ डर्यो ।
ते त्रैलोक्य-पूज्य, पावन जस सुनि सुनि लोक तर्यो ।।
जो निज धर्म बेद-बोधित सो करत न कछु बिसर्यो ।
बिनु अवगुन कृकलास कूप-मज्जित कर गहि उधर्यो ।।
ब्रह्म-बिसिख ब्रह्मांड-दहन-छम गर्भ न नृपति जर्यो ।
अजर अमर कुलिसहुँ नाहिन बध सो पुनि फेन मर्यो ।।
बिप्र अजामिल अरु सुरपति तें कहा जो नहि बिगर्यो ?
उनको कियो सहाय बहुत, उर को संताप हर्यो ।।
गनिका अरु कंदर्प तें जग महँ अघ न करत उबर्यो ।
तिनको चरित पबित्र जानि हरि निज हृदि-भवन धर्यो ।।
केहि आचरन भलो मानै प्रभु सो तो न जानि पर्यो ।
तुलसिदास रघुनाथ-कृपा को जोवत पंथ खर्यो ।। २३९ ।।

सोइ सुकृती सुचि साँचो जाहि राम तुम रीझे ।
गनिका, गीध, बधिक हरिपुर गए लै करसी प्रयाग कब सीझे ?
कबहुँ न डग्यो निगम-मग तें पग नृग जग जान जिते दुख पाए ।
गज धौं कौन दिछित जाके सुमिरत लै सुनाभ बाहन तजि धाए ।।
सुर मुनि बिप्र बिहाय बड़े कुल गोकुल जनम गोपगृह लीन्हो ।
आयों दियो बिभव कुरुपति को, भोजन जाइ बिदुर घर कीन्हो ।।

२३८—रूझै = रुद्ध होता है, रुकता है ।

२३९—अंग कस्यो = अंगीकार किया । कृकलास = गिरगिट । कूपमज्जित = कुएँ में पड़ा हुआ (राजा नृग) । उधर्यो = उद्धार किया । ब्रह्मबिसिख = ब्रह्मास्त्र । * राजा परीक्षित । † नमुचि दैत्य को इन्द्र ने समुद्र की फेन से मारा था । खर्यो = खड़ा खड़ा ।

मानत भलहि भलो भगतनि तें, कछुक रीति पारथहिं जनाई ।
तुलसी सहज सनेह राम बस और सबै जल की चिकनाई ॥ २४० ॥

तब तुम मोहू से सठनि को हठि गति देते ।
कैसेहुँ नाम लेहि कोउ पामर सुनि सादर आगे ह्वै लेते ॥
पाप-खानि जिय जानि अजामिल जमगन तमकि तये तायो भे ते ।
लियो छुड़ाइ, चले कर मींजत, पीसत दाँत गए रिसरेते ॥
गौतम-तिय, गज, गीध, बिटप, कपि हैं नाथहि नीके मालुम जेते ।
तिन्ह के काज समाज साधु तजि कृपासिंधु तब तब उठि गे ते ॥
अजहुँ अधिक आदर यहि द्वारे, पतित पुनीत होत नहि केते ?
मेरे पासंगहु न पूजिहैं, ह्वै गए, हैं, होने खल जेते ॥
हौं अबलौं करतूति तिहारिय चितवत हुतो न रावरे चेते ।
अब तुलसी पूतरो बाँधिहै सहि न जात मोपे परिहास एते ॥ २४१ ॥

तुम सम दीनबंधु न दीन कोउ मोसम सुनहु नृपति रघुराई !
मोसम कुटिल-मौलिमनि नहि जग, तुम सम हरि न हरन कुटिलाई ॥
हौं मन बचन कर्म पातक-रत, तुम कृपालु पतितनि-गतिदाई ।
हौं अनाथ प्रभु, तुम अनाथहित, चित यह सुरति कबहुँ नहिं जाई ॥
हौं आरत, आरति-नासक तुम, कीरति निगम पुरानन गाई ।
हौं सभीत तुम हरन सकल भय, कारन कौन कृपा बिसराई ? ॥
तुम सुखधाम राम स्रमभंजन, हौं अति दुखित त्रिबिध स्रम पाई ।
यह जिय जानि दासतुलसी कहँ राखहु सरन समुझि प्रभुताई ॥ २४२ ॥

यहै जानि चरनन्हि चित लायो ।
नाहिन नाथ अकारन को हितु तुम समान पुरान स्रुति गायो ॥
जननि, जनक, सुत, दार, बंधुजन भए बहुत जहँ जहँ हौं जायो ।
सब स्वारथ हित प्रीति कपट चित, काहू नहि हरिभजन सिखायो ॥
सुर, मुनि, मनुज, दनुज, अहि, किन्नर मैं तनुधरि सिर काहि न नायो ।
जरत फिरत त्रयताप-पापबस काहु न हरि ! करि कृपा जुड़ायो ॥

२४०—करसी=कंडे की आग । जंगली कंडों की आग में जल कर मरना बड़ा भारी तप माना जाता था । त्यागि दियो=किनारा खींचा, छोड़ दिया ।

२४१—भे=भय । गे ते=गए थे । पूतरो बाँधिहै=भाट लोग जिससे कुछ न पाकर अप्रसन्न होते हैं उसके नाम का पुतला बनाकर उसकी निंदा करते हुए लिए फिरते हैं ।

जतन अनेक किए सुख-कारन हरिपद-बिमुख सदा दुख पायो।
अब थाक्यो जलहीन नाव ज्यों देखत बिपतिजाल जग छायो॥
मो कह नाथ ! बूझिए यह गति सुख-निधान निज पति बिसरायो।
अब तजि रोष करहु करुना हरि तुलसिदास सरनागत आयो॥ २४३॥

याहि तें मैं हरि ! ज्ञान गँवायो।
परिहरि हृदय-कमल-रघुनाथहिं बाहर फिरत बिकल भयो धायो॥
ज्यों कुरंग निज अंग रुचिर मद अति मतिहीन मरम नहिं पायो।
खोजत गिरि, तरु, लता, भूमि, बिल परम सुगंध कहाँ धौं आयो॥
ज्यों सर बिमल बारि परिपूरन ऊपर कछु सिवार तृन छायो।
जारत हियो ताहि तजिहौं सठ, चाहत यहि बिधि तृषा बुझायो॥
ब्यापत त्रिबिध ताप तनु दारुन तापर दुसह दरिद्र सतायो।
अपनेहिं धाम नाम-सुरतरु तजि बिषय-बबूर-बाग मन लायो॥
तुम सम ज्ञाननिधान, मोहि सम मूढ़ न आन पुराननि गायो।
तुलसिदास प्रभु यह बिचारि जिय कीजै नाथ उचित मन भायो॥ २४४॥

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो।
याके लिए सुनहु करुनामय मैं जग जनमि जनमि दुख रोयो॥
सीतल मधुर पियूष सहज सुख निकटहि रहत दूरि जनु खोयो।
बहु भाँतिन स्रम करत मोहबस बृथहि मंदमति बारि बिलोयो॥
करम-कीच जिय जानि सानि चित चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।
तृषावंत सुरसरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो॥
तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछू नहिं गोयो।
डासत ही गई बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ ! नींद भरि सोयो॥ २४५॥

लोक बेदहूँ बिदित बात सुनि समुझि
मोह-मोहित बिकल मति थिति न लहति।
छोटे बड़े, खोटे खरे, मोटेऊ दूबरे
राम ! रावरे निबाहे सबही की निबहति॥
होती जो आपने बस रहती एकही रस
दुनी न हरख सोक साँसति सहति।
चहतो जो जोई जोई लहतो सो सोई सोई
केहू भाँति काहू की न लालसा रहति॥

२४५—बिगोयो = बिगाड़ा, नष्ट किया। बिलोयो = मथा।

करम काल सुभाव गुन दोष जीव-जग-माया
तें सो सभय भौंह चकित चहति ।
ईसनि, दिगीसनि, जोगीसनि, मुनिमनिहूँ
छोड़ति छोड़ाये तें, गहाए तें गहति ॥
सतरंज को सो राज, काठ को सबै समाज
महाराज बाजी रची प्रथम न हति ।
तुलसी प्रभु हाथ हारिबो जीतिबो नाथ !
बहु बेष बहु मुख सारदा कहति ॥ २४६ ॥

राम जपु, जीह ! जानि, प्रीति सों प्रतीति मानि,
राम नाम जपे जैहै जिय की जरनि ।
रामनाम सों रहनि, रामनाम की कहनि,
कुटिल-कलिमल-सोक संकट-हरनि ॥
रामनाम को प्रभाउ पूजियत गनराउ,
कियो न दुराउ कही आपनी करनि ।
भवसागर को सेतु, कासी हूँ सुगति हेतु,
जपति सारद संभु सहित घरनि ॥
बालमीकि ब्याध हे अगाध-अपराध-निधि,
मरा मरा जपे पूजे मुनि अमरनि ।
रोक्यो बिंध्य, सोख्यो सिंधु घटजहुँ नाम-बल,
हार्‍यो हिय, खारो भयो भूसुर-डरनि ॥
नाम-महिमा अपार सेष सुक बार बार
मति-अनुसार बुध बेद हुँ बरनि ।
नामरति-कामधेनु तुलसी को कामतरु
रामनाम है बिमोह-तिमिर-तरनि ॥ २४७ ॥

पाहि पाहि ! राम पाहि ! रामभद्र रामचंद्र
सुजस स्रवन सुनि आयो हौं सरन ।
दीनबंधु ! दीनता-दरिद्र-दाह-दोष-दुख
दारुन-दुसह-दर-दरप-हरन ॥
जब जब जगजाल-ब्याकुल करम काल
सब खल भूप भए भूतल-भरन ।

२४६—राज = राजा ।

तब तब तनु धरि, भूमि-भार दूरि करि
थापे मुनि सुर साधु आस्रम बरन ॥
बेद लोक सब साखी, काहू की रती न राखी,
रावन की बंदि लागे अमर मरन ।
आंक दै बिसोक किए लोकपति लोकनाथ
रामराज भयो धरम चारिहु चरन ॥
सिला, गुह, गीध, कपि, भील, भालु, रातिचर
ख्याल ही कृपालु कीन्हें तारन-तरन ।
पील-उद्धरन सीलसिंधु ढोल देखियत
तुलसी पै चाहत गलानि ही गरन ॥ २४८ ॥

भली भाँति पहिचाने जाने साहिब जहाँ लौं जग
जूड़े होत थोरे ही थोरे ही गरम ।
प्रीति न प्रबीन, नीतिहीन, रीति के मलीन,
मायाहीन सब किए कालहू करम ॥
दानव दनुज बड़े महामूढ़ मूड़ चढ़े
जीते लोकनाथ नाथबल निभरम ।
रीझि रीझि दिए बर खीझि खीझि घाले घर,
आपने निवाजे की न काहू को सरम ॥
सेवा सावधान तू सुजान समरथ साँचो
सद्गुन-धाम राम पावन परम ।
सुरुख सुमुख एकरस एकरूप तोहि
बिदित बिसेषि घटघट के मरम ॥
तो सो नतपाल न कृपाल, न कँगाल मो सो,
दया में बसत देव सकल धरम ।
राम कामतरु-छाँह चाहे रुचि मन माहँ
तुलसी बिकल बलि कलि कुधरम ॥ २४९ ॥

तौ हौं बारबार प्रभुहिं पुकारिकै खिझावतो न
जापै मोको होतो कहूँ ठाकुर ठहरु ।

२४८—दर = डर । भूतल-भरन = पृथ्वी के भार । रती=तेज, कांति ।
२४९—निभरम = निःशंक ।

आलसी अभागे मोसे तैं कृपालु पाले पोसे
राजा मेरे राजाराम, अवध सहरु ॥
सेये न दिगीस, न दिनेस, न गनेस गौरी
हित कै न माने बिधि हरिउ न हरु ।
रामनाम ही सों जोग छेम, नेम प्रेम-पन
सुधा सो भरोसो एहु, दूसरो जहरु ॥
समाचार साथ के अनाथ-नाथ ! कासों कहौं ?
नाथ ही के हाथ सब चोरऊ पहरु ।
निज काज, सुरकाज, आरत के काज राज !
बूझिए बिलंब कहा कहूँ न गहरु ॥
रीति सुनि रावरी प्रतीति प्रीति रावरे सों
डरत हौं देखि कलिकाल को कहरु ।
कहेही बनैगी, कै कहाए बलि जाउँ, राम !
'तुलसी तू मेरो हारि हिये न हहरु' ॥ २५० ॥

राम रावरो सुभाउ, गुनसील महिमा प्रभाउ
जान्यो हर हनुमान लखन भरत ।
जिन्हके हिये-सुथल राम-प्रेम-सुरतरु
लसत सरस सुख फूलत फरत ॥
आप माने स्वामी कै सखा सुभाय भाइ पति
ते सनेह-सावधान रहत, डरत ।
साहिब-सेवक-रीति प्रीति-परमिति नीति
नेम को निबाह एक टेक न टरत ॥
सुक सनकादि प्रहलाद नारदादि कहैं
राम की भगति बड़ी बिरति-निरत ।
जाने बिनु भगति न, जानिबो तिहारे हाथ
समुझि सयाने नाथ ! पगनि परत ॥
छ-मत बिमत न पुरान मत, एक मत
नेति नेति नेति नित निगम करत ।

२५०—जोग छेम = योग्य क्षेम, प्राप्ति और रक्षा । गहरु = विलंब, देर ।

२५१—बिरति-निरत = विषयों से विरक्ति में तत्पर होने में । छ-मत = छः दर्शनों के मत । विमत = विरुद्ध मत ।

औरनि की कहा चली ? एकै बात भले भली
रामनाम लिए तुलसी हूँ से तरत ॥ २५१ ॥

बाप आपने करत मेरी घनी घटि गई ।
लालची लबार की सुधारिए बारक, बलि,
रावरी भलाई सबही की भली भई ॥
रोगबस तनु, कुमनोरथ मलिन मन,
पर-अपवाद मिथ्या-वाद बानी हई ।
साधन की ऐसी बिधि, साधन बिना न सिधि,
बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई ॥
पतित-पावन, हित आरत अनाथनि को,
निराधार को अधार दीनबंधु दई ।
इन्हमें न एकौ भयो, बूझि न जूझ्यो न जयो,
ताहि तें त्रिताप तयो लुनियत बई ॥
स्वाँग सूधो साधु को, कुचालि कलि तें अधिक,
परलोक-फीकी मति लोकरंग-रई ।
बड़े कुसमाज राज आजुलौं जो पाए दिन
महराज केहूँ भाँति नाम-ओट लई ॥
रामनाम को प्रताप जानियत नीके आप,
मोको गति दूसरी न बिधि निरमई ।
खीझिबे लायक करतब कोटि कोटि कटु,
रीझिबे लायक तुलसी की निलजई ॥ २५२ ॥

राम ! राखिए सरन, राखि आए सब दिन ।
बिदित त्रिलोक तिहुँ काल न दयालु दूजो,
आरत-प्रनत-पाल को है प्रभु बिन ? ॥
लाले पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी
नाथ पै अनाथनि सों भए न उरिन ।
स्वामी समरथ ऐसो हौं तिहारो जैसो तैसो,
काल-चाल हेरि होति हिये घनी घिन ॥
खीझि रीझि बिहँसि अनख क्यों हूँ एक बार
'तुलसी तू मेरो' बलि, कहियत किन ?
जाहि सूल निरमूल होहि सुख अनुकूल,
महाराज राम रावरी सौं तेहि छिन ॥ २५३ ॥

राम रावरो नाम मेरो मातु-पितु है।
सुजन सनेही गुरु साहब सखा सुहृद
रामनाम-प्रेम-पन अबिचल बितु है॥
सतकोटि चरित अपार दयानिधि! मथि
लियो काढ़ि बामदेव नाम-घृतु है।
नाम को भरोसो बल, चारिहूँ फल को फल,
सुमिरिए छाँड़ि छल, भलो क्रतु है॥
स्वारथ-साधक परमारथ-दायक नाम
रामनाम सारिखो न और हितु है।
तुलसी सुभाय कही, साँचियै परैगी सही
सीतानाथ-नाम चित हूँ को चितु है॥ २५४॥

राम! रावरो नाम साधु-सुरतरु है।
सुमिरे त्रिबिध धाम डरत, पूरत काम
सकल-सुकृत-सरसिज को सरु है॥
लाभहू को लाभ, सुखहू को सुख सरबस,
पतित-पावन, डरहू को डरु है।
नीचे हू को, ऊँचे हू को, रंक हू को, राव हू को
सुलभ सुखद आपनो सो घरु है॥
बेद हू, पुरान हू, पुरारि हू पुकारि कह्यो
नाम-प्रेम चारि फलहू को फरु है।
ऐसे रामनाम सों न प्रीति न प्रतीति मन
मेरे जान जानिबो सोइ नर खरु है॥
नाम सो न मातु पितु मीत हित बंधु गुरु
साहिब सुधी सुसील-सुधाकरु है।
नाम सों निबाहु नेहु दीन को दयालु देहु
दास तुलसी को, बलि, बड़ो बरु है॥ २५५॥

कहे बिनु रह्यो न परत, कहे राम! रस न रहत।
तुम से सुसाहिब की ओट जन खोटो खरो
काल की करम की कुसाँसति सहत॥

२५४—क्रतु = यज्ञ।
२५५—बरु = बल।

करत बिचार सार पैयत न कहूँ कछु,
सकल बड़ाई सब कहाँ तें लहत ?
नाथ की महिमा सुनि समुझि, आपनी ओर
हेरि हारि कै हहरि हृदय दहत ॥
सखा न, सुसेवक न, सुतिय न, प्रभु, आप,
माय बाप तुही साँचो तुलसी कहत ।
मेरी तो थोरी ही है, सुधरैगी बिगरियो,
बलि, राम रावरी सौं रही रावरी चहत ॥ २५६ ॥

दीनबंधु दूरि किए दीन को न दूसरी सरन ।
आपको भले हैं सब, आपने को कोऊ कहूँ,
सब को भलो है, राम ! रावरो चरन ॥
पाहन पसू पतंग कोल भील निसिचर
काँच तें कृपानिधान किए सुबरन ।
दंडक-पुहुमि पाँय-परस पुनीत भई,
उकठे बिटप लागे फूलन फरन ॥
पतित-पावन नाम, बाम हू दाहिनो, देव,
दुनी न दुसह-दुख-दूषन-दरन ।
सीलसिंधु ! तोसों ऊँची नीचियौ कहत सोभा,
तोसो तुही तुलसी को आरतिहरन ॥ २५७ ॥

जानि पहिचानि मैं बिसारे हौं कृपानिधान,
एतो मान ढीठ हौं उलटि देत खोरि हौं ।
करत जतन जासों जोरिबे को जोगीजन
तासों क्योंहू जुरी, सो अभागो बैठो तोरि हौं ॥
मोसे दोस-कोस को भुवन-कोस दूसरो न,
आपनी समुझि सूझि आयो टकटोरि हौं ।
गाड़ी के स्वान की नाईं माया मोह की बड़ाई
छिनहि तजत, छिन भजत बहोरि हौं ॥

२५६—सखा न, सुसेवक न = सखा कहिए तो... सेवक कहिए तो आप ही हैं। सों = कसम। रही रावरी चहत = आपनी बात (साख, मर्यादा) रहे यही चाहता हूँ।

बड़ो साँइद्रोही, न बराबरी मेरी को कोऊ,
नाथ की सपथ किए कहत करोरि हौं।
दूरि कीजै द्वार तें लबार लालची प्रपंची,
सुधा सो सलिल सूकरी ज्यों गहडोरिहौं ॥
राखिए नीके सुधारि, नीच को डारिए मारि,
दुहूँ ओर की बिचारि अब न निहोरिहौं।
तुलसी कही है साँची रेख बार बार खाँची,
ढील किए नाम-महिमा की नाव बोरिहौं ॥२५८॥

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी,
कहौ, बलि, बेद की न, लोक कहा कहैगो।
प्रभु को उदास-भाव जन को पाप-प्रभाव
दुहू भाँति दीनबंधु! दीन दुख दहैगो!
मैं तो दियो छाती पबि, लयो कलिकाल दबि,
साँसति सहत परबस को न सहैगो?
बाँकी बिरदावली बनैगी पाले ही कृपालु!
अन मेरो हाल हेरि यों न मन रहैगो॥
करनी, धरनी, साधु, सेवक, बिरत, रत
आपनी भलाई थल कहाँ कौन लहैगो?
तेरे मुँह फेरे मोसे कायर कपूत कूर,
लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो? ॥
काल पाय फिरत दसा दयालु! सब ही की,
तोहि बिनु मोहि कबहूँ न कोऊ चहैगो।
बचन करम हिये कहौं राम सौंह किए
तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहैगो ॥ २५९ ॥

साहिब उदास भए दास खास खीस होत,
मेरी कहा चली? हौं बजाइ जाइ रह्यो हौं।
लोक में न ठाउ, परलोक को भरोसो कौन?
हौं तो बलि जाउँ रामनाम ही ते लह्यो हौं ॥

२५८—गहडोरिहौं = मथ कर गँदला कर दूँगा।
२५९—लटे = शिथिल, नीचे गिरे, पतित। लटपटे = गिरते पड़ते।

करम सुभाव काल काम कोह लोभ मोह
　　ग्राह, अति गहनि गरीबी गाढ़े गह्यो हौं।
छोरिबे को महाराज, बाँधिबे को कोटि भट,
　　पाहि! प्रभु पाहि! तिहुँ ताप पाप दह्यो हौं॥
रीझि बूझी सबकी, प्रतीति प्रीति एही द्वार,
　　दूध को जर्‌यो पियत फूँकि फूँकि मह्यो हौं।
रटत रटत लर्‌यो, जाति पाँति भाँति घर्‌यो,
　　जूठनि को लालची चहौं न दूध नह्यो हौं॥
अनत चह्यो न भलो सुपथ सुचाल चल्यो,
　　नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचह्यो हौं।
तुलसी समुझि समुझायो मन बार बार
　　अपनो सो नाथ हूँ सों कहि निरबह्यो हौं॥ २६० ॥

मेरी न बनै बनाए मेरे कोटि कलप लौं
　　राम! रावरे बनाए बनै पलपाउ मैं।
निपट सयाने हौ कृपानिधान! कहा कहौं?
　　लिये बेर बदलि अमोल-मनि-आउ मैं॥
मानस मलीन, करतब कलिमल-पीन,
　　जीव हू न जप्यो नाम, बक्यो आउ बाउ मैं।
कुपथ कुचाल चल्यो, भयो न भूलि हूँ भलो,
　　बाल-दसा हूँ न खेल्यो खेलत सुदाउँ मैं॥
देखा-देखी दंभ तें, कि संग तें भई भलाई,
　　प्रगटि जनाई, कियो दुरित दुराउ मैं।
राग रोष द्वेष पोषे, गोगन समेत मन,
　　इनकी भगति कीन्हीं इनहीं को भाउ मैं॥
आगिली पाछिली, अबहूँ की अनुमान हो तें
　　बूझियत गति, कछु कीन्हों तो न काउ मैं।
जग कहै राम की प्रतीति प्रीति तुलसी हूँ,
　　झूठे साँचे आसरो साहिब रघुराउ मैं॥ २६१ ॥

२६०—खीस होत = नष्ट होते हैं। जाइ रह्यो हौं = नष्ट हो रहा हूँ। मह्यो = मठा। भाँति = मर्यादा, चाल। नह्यो न चहौं = नहाना नहीं चाहता।
२६१—काउ = कभी।

कह्यो न परत, बिनु कहे न रह्यो परत,
बड़ो सुख कहत बड़े सों, बलि, दीनता।
प्रभु की बड़ाई बड़ी, आपनी छोटाई छोटी,
प्रभु की पुनीतता आपनी पाप-पीनता॥
दुहूँ ओर समुझि सकुचि सकुचत मन,
सनमुख होत सुनि स्वामी समीचीनता।
नाथ-गुनगाथ गाए, हाथ जोरि माथ नाए,
नीचऊ निवाजे प्रीति रीति की प्रबीनता॥
एही दरबार है गरब तें सरब-हानि,
लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता।
मोटो दसकंध सो न, दूबरो बिभीषन सो,
बूझि परी रावरे की प्रेम-पराधीनता॥
यहाँ की सयानप अयानप सहस सम,
सूधौ सत भाय कहे मिटति मलीनता।
गीध सिला सबरी की सुधि सब दिन किए
होइगी न साईं सों सनेह-हित-हीनता॥
सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु,
सुमिरत होत कलिमल-छल-छीनता।
करुनानिधान बरदान तुलसी चहत
सीतापति-भक्ति-सुरसरि-नीर-मीनता॥ २६२।

नाथ नीके कै जानिबी ठीक जन-जीय की।
रावरो भरोसो नाह कैसो प्रेमनेम लियो
रुचिर रहनि रुचि मति गति तीय की॥
दुकृत सुकृत बस सबही सों संग पर्यो
परखी पराई गति, आपने हू कीय की।
मेरे भले को गोसाईं पोच को न सोच संक
हौं किए कहौं सौंह साँची सीयपीय की॥
ज्ञानहूँ गिरा के स्वामी बाहर-भीतर-जामी
यहाँ क्यों दुरैगी बात मुख की औ हीय की

२६२—मिसकीनता = (अ० मिसकीन) नम्रता।
२६३—कीय की = किए की, करनी की।

तुलसी तिहारो, तुमहीं तें तुलसी को हित
राखि कहौं हौं जो पै तो ह्वैहौं माखी घीय की ॥२६३॥

मेरो कह्यौ सुनि पुनि भावै तोहि करि सो ।
चारिहूँ बिलोचन बिलोकु तू तिलोक महँ
तेरो तिहुँ काल कहु को है हितु हरि सो ॥
नए नए नेह अनुभए देह-गेह बसि
परखे प्रपंची प्रेम परत उघरि सो ।
सुहृद-समाज दगाबाजि ही को सौदा सूत
जब जाको काज तब मिलै पाँय परि सो ॥
बिबुध सयाने पहिचाने कैधौं नाहीं नीके
देत एकगुन लेत कोटिगुन भरि सो ।
करम धरम स्रम-फल रघुबर बिनु
राख को सो होम है, ऊसर कैसो बरिसो ॥
आदि अंत बीच भलो, भलो करै सबही को
जाको जस लोक बेद रह्यो है बगरि सो ।
सीतापति सारिखो न साहिब सील-निधान
कैसे कल परै सठ बैठो सो बिसरि सो ॥
जीव को जीवन-प्रान, प्रान को परम हित
प्रीतम पुनीत कृत नीचन निदरि सो ।
तुलसी तोको कृपालु जो कियो कोसलपाल
चित्रकूट को चरित्र चेतु चित करि सो ॥ २६४ ॥

तन सुचि, मन रुचि, मुख कहौं जन हौं सिय-पी को ।
केहि अभाग जान्यो नहीं जो न होइ नाथ सों नातो नेह न नीको ॥
जल चाहत पावक लहौं, बिष होत अमी को ।
कलि कुचाल संतनि कही सोइ सही, मोहिं कछु फहम न तरनि तमी को ॥
जानि अंध अंजन कहै बन-बाघिनि-घी को ।
सुनि उपचार बिकार को सुबिचार करौं जब तब बुधि बल हरै ही को ॥
प्रभु सों कहत सकुचत हौं, परौं जनि फिरि फीको ।
निकट बोलि बलि बरजिये परिहरै ख्याल अब तुलसिदास जड़ जी को ॥२६५॥

२६५—तरनि = सूर्य । तमी = रात्रि ।

ज्यों ज्यों निकट भयो चहौं कृपालु त्यों त्यों दूरि पर्यो हौं।
तुम चहुँ जुग रस एक राम हौंहूँ रावरो जदपि अघ अवगुननि भर्यो हौं।
बीच पाइ नीच बीच ही छरनि छर्यो हौं।
हौं सुबरन कुबरन कियो, नृप तें भिखारि करि, सुमति तें कुमति कर्यो हौं॥
अगनित गिरि कानन फिर्यो, बिनु आगि जर्यो हौं।
चित्रकूट गए लखि कलि की कुचाल सब, अब अपडरनि डर्यो हौं॥
माथ नाइ नाथ सों कहौं हाथ जोरि खर्यो हौं।
चीन्हों चोर जिय मारिहै तुलसी सो कथा सुनि,
प्रभु सों गुदरि निबर्यो हौं॥ २६६॥

पन करि हौं हठि आजु तें राम द्वार पर्यो हौं।
'तू मेरो' यह बिनु कहे उठिहौं न जनम भरि, प्रभु की सौं करि निबर्यो हौं।
दै दै धक्का जमभट थके, टारे न टर्यो हौं।
उदर दुसह साँसति सही बहु बार जनमि जग नरक निदरि निकर्यो हौं॥
हौं मचला लै छाँड़िहौं जेहि लागि अर्यो हौं।
तुम दयालु बनिहै दिए बलि, बिलंब न कीजिए जात गलानि गर्यो हौं॥
प्रगट कहत जो सकुचिए, अपराध भर्यो हौं।
तौ मन में अपनाइए तुलसिहि कृपा करि, कलि बिलोकि हहर्यो हौं॥२६७॥

तुम अपनायो तब जानिहौं जब मन फिरि परिहै।
जेहि सुभाव बिषयनि लग्यो तेहि सहज नाथ सों नेह छाँड़ि छल करिहै॥
सुत की प्रीति, प्रतीति मीत की नृप ज्यों डर डरिहै।
अपनो सो स्वारथ स्वामी सों चहुँ बिधि चातक ज्यों एक टेक ते नहिं टरिहै॥
हरषिहै न अति आदरे, निदरे न जरि मरिहै।
हानि लाभ दुख सुख सबै समचित हित अनहित कलि कुचाल परिहरिहै॥
प्रभु गुन सुनि मन हरषिहै, नीर नयननि ढरिहै।
तुलसिदास भयो राम को बिस्वास प्रेम लखि आनँद उमगि उर भरिहै॥२६८॥

राम कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीन को।
सुख जीवन ज्यों जीव को, मनि ज्यों फनि को, हित ज्यों धन लोभ-लीन को॥
ज्यों सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नबीन को।
त्यों मेरे मन लालसा करिए करुनाकर पावन प्रेम पीन को॥

२६७--मचला = मचलनेवाला हठी।

तुलसी को दाता कहै श्रुति प्रभु प्रवीन को ।
तुलसिदास को भावतो, बलि जाउँ, दयानिधि दीजै दान दीन को ॥२६९॥

कबहुँ कृपा करि रघुबीर मोहूँ चितैहो ।
भलो बुरो जन आपनो जिय जानि दयानिधि ! अवगुन अमित बितैहौ ॥
जनम जनम हौं मन जित्यो, अब मोहिं जितैहौ ।
हौं सनाथ ह्वैहौं सही, तुमहूँ अनाथपति, जो लघुतहि न भितैहौ ॥
बिनय करौं अपभयहुँ ते तुम्ह परम हितै हौ ।
तुलसिदास कासों कहै तुमहीं सब मेरे प्रभु गुरु मातु पितै हौ ॥२७०॥

जैसो हौं तैसो हौं राम ! रावरो जन जनि परिहरिए ।
कृपासिंधु कोसलधनी सरनागत-पालक, ढरनि आपनी ढरिए ॥
हौं तो बिगरायल और को, बिगरो न बिगरिए ।
तुम सुधारि आए सदा सब की सब बिधि, अब मेरीयो सुधरिए ॥
जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कत एहि डर डरिए ?
कपि केवट कीन्हे सखा जेहि सील सरल चित तेहि सुभाव अनुसरिए ॥
अपराधी तउ आपनो तुलसी न बिसरिए ।
टूटियो बाँह गरे परै, फूटेहुँ बिलोचन पीर होत हित करिए ॥ २७१ ॥

तुम जनि मन मैलो करो लोचन जनि फेरो ।
सुनहु राम ! बिनु रावरे लोकहुँ परलोकहुँ कोउ न कहूँ हित मेरो ॥
अगुन अलायक आलसी जानि अधम अनेरो ।
स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा कोसो टोटक, औचट उलटि न हेरो ॥
भगतिहीन, बेद-बाहिरो लखि कलिमल घेरो ।
देवनि हू देव परिहर्‌यो, अन्याव न तिनको, हौं अपराधी सब केरो ॥
नाम की ओट लै पेट भरत हौं पै कहावत चेरो ।
जगत-बिदित बात ह्वै परी समुझिए धौं आपने, लोक कि बेद बड़ेरो ॥
ह्वैहै जब तब तुम्हहिं तें तुलसी को भलेरो ।
दीन दिन बिगरिहै बलि जाउँ, बिलंब किए अपनाइए सबेरो ॥२७२॥

तुम तजि हौं कासों कहौं, और को हितु मेरे ?
दीनबंधु सेवक-सखा, आरत अनाथ पर सहज छोहु केहि केरे ?

२७०—भितैहौ = डरोगे । अपभयहुँ ते = अपने ही डर से ।
२७१—और को = हद दरजे का । बिगरिए = बिगाड़िए । सुधरिए = सुधारिए ।
२७२—अनेरो = व्यर्थ का, निकम्मा ।

बहुत पतित भवनिधि तरे बिनु तरि बिनु बेरे।
कृपा, कोप, सति भाय हूँ धोखेहुँ, तिरछेहुँ राम तिहारेहि हेरे ॥
जो चितवनि सौंधी लगै चितइए सबेरे।
तुलसिदास अपनाइए कीजै न ढील अब जीवन-अवधि अति नेरे ॥२७३॥

जाउँ कहाँ, ठौर है कहाँ देव! दुखित दीन को?
को कृपालु स्वामी सारिखो, राखै सरनागत सब अंग बल-बिहीन को?
गनिहि गुनिहि साहिब लहै सेवा समीचीन को।
अधम, अगुन, आलसिन को पालिबो फबि आयो रघुनायक नवीन को ॥
मुख के कहा कहौं? बिदित है जी की प्रभु प्रबीन को।
तिहूँ काल, तिहूँ लोक में, एक टेक रावरी तुलसी से मनमलीन को ॥२७४॥

द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद, परि पाहूँ।
है दयालु दुनि दस दिसा दुख-दोष-दलन छम, कियो न संभाषन काहूँ ॥
तनु-जन्यो कुटिल कीट ज्यों तज्यो मातु पिता हूँ।
काहे को रोस दोस काहि धौं मेरे ही अभाग मोसों सकुचत छुइ सब छाहूँ ॥
दुखित देखि संतन कह्यो सोचै जनि मन माहूँ।
तोसे पसु पाँवर पातकी परिहरे न सरन गए रघुबर ओर-निबाहूँ ॥
तुलसी तिहारो भए भयो सुखी प्रीति प्रतीति बिना हूँ।
नाम की महिमा सील नाथ को मेरो भलो
बिलोकि अब तें सकुचाहु सिहाहूँ ॥ २७५ ॥

कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो?
राम रावरे बिन भए जन जनमि जनमि जग दुख दसहू दिसि पायो ॥
आस-बिबस खास दास ह्वै नीच प्रभुनि जनायो।
हाहा करि दीनता कही द्वार द्वार बार बार, परी न छार मुँह बायो ॥
असन बसन बिन बावरो जहँ तहँ उठि धायो।
महिमा मान प्रियप्रान ते तजि खोलि खलनि आगे खिनु खिनु पेट खलायो ॥
नाथ हाथ कछु नाहि लग्यो लालच ललचायो।
साँच कहौं नाच कौन सो जो न मोहि लोभ लघु निलज नचायो ॥
स्रवन नयन मन मग लगे सब थलपति तायो।

२७३—सौंधी = रुचिर, अच्छी।
२७५—दुनि = दुनियाँ। ओर-निबाहू = अंत तक निर्वाह करनेवाला।

मूड़ मारि हिय हारि कै हित हेरि हहरि अब चरन-सरन तकि आयो ।।
दसरथ के समरथ तुही त्रिभुवन जस गायो ।
तुलसी नमत अवलोकिए बलि बाँह-बोल दै बिरदावली बुलायो ।।२७६।।

रामराय बिनु रावरे मेरे को हितु साँचो !
स्वामि सहित सब सों कहौं सुनि गुनि बिसेषि कोउ रेख दूसरी खाँचो ।।
देह-जीव-जोग के सखा मृषा टाँचन टाँचो
किए बिचार सार कदली ज्यों मनि कनक संग लघु लसत बीच बिच काँचो ।।
बिनयपत्रिका दीन की, बापु ! आपु ही बाँचो ।
हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूँछिए पाँचो ।।२७७।।

पवन-सुवन, रिपुदवन, भरत लाल, लखन दीन की ।
निज निज अवसर सुधि किए बलि जाउँ, दास आस पूजिहै खास खीन की ।।
राजद्वार भली सब कहैं साधु समीचीन की ।
सुकृत सुजस साहिब कृपा स्वारथ परमारथ गति भए गति-बिहीन की ।।
समय सँभारि सुधारिबी तुलसी मलीन की ।
प्रीति रीति समुझाइबी नतपाल कृपालुहिं परमिति पराधीन की ।।२७८।।

मारुति मन रुचि भरत की लखि लखन कही है ।
कलि-कालहुँ नाथ नाम सों प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है ।।
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है ।
कृपा गरीबनिवाज की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है ।।
बिहँसि राम कह्यो सत्य है सुधि मैं हूँ लही है ।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ सही है ।।२७९।।

२७६—थलपति = राजा । तायो = जाँचा ।
२७७—टाँचन = टाँकों या डोभों से । टाँचो = टँके हुए ।
२७९—लै उठी = वही बात कहने लगी ।